ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(तृतीय खण्ड)

भाष्यकार

श्री पं. जयदेव शर्मा

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

प्रकाशक

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर

आवरण सज्जा - मोक्षराज

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(तृतीय खण्ड)

—०—



भाष्यकार—

श्री परिडत जयदेव शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ, वेदमार्तण्ड

—०—

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मराडल लिमिटेड, अजमेर.

तृतीयावृत्ति } सं० २०३२ वि० { मूल्य २०) रुपये

मुद्रक :—
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर



❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद विषय सूची

तृतीयोऽष्टकः । तृतीये मण्डले

(सप्तमसूक्ताद् आरभ्य)

प्रथमोऽध्यायः (पृ० १–८४)

सू० [७]—(१) माता पिता गुरुजनों का कर्त्तव्य। (२) किरणों वाले सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा, प्रकाश ग्रहणवत् शिष्यों की उपासना और ज्ञान ग्रहण। (३) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (४) चालक शक्ति और यन्त्र, किरणों और सूर्य और स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से राजा प्रजा का व्यवहार। (५) राजा प्रजावत् गुरु शिष्य। (६) सूर्य, मेघ से जलान्नवत् गुरु जनों से ज्ञानोपार्जन। (७) यज्ञ-कर्त्ताओं, सूर्य की किरणों के समान देह में प्राणों के कर्म। (८) मेघों के तुल्य आदर योग्य गुरुजन। (९) अश्व की रासों वा सूर्य की किरणों के समान शिष्यों प्रजाओं का नियन्त्रण। (१०) उषाओं के समान प्रजाओं के कर्त्तव्य।

सू० [८]—(१–३) वृक्षवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। पक्षान्तर में राजा का कर्त्तव्य। (४–५) आचार्य के गर्भ से उत्पन्न विद्वान् को उपदेश। (६–७) कुठारवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। कृषक, वा क्षत्रियवत् विद्वान्। (८) लोकों में सूर्यवत् प्रधान विद्वान् की स्थिति। (९) हंसों के तुल्य वीर और विद्वान् जन। (१०) यज्ञ में यूपों के समान विद्वान्

वीरजन। (११) वटवत् राजा या आचार्य का शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ना।

सू० [९]—(१) अपांनपात् आत्मा के समान विद्वान् नायक (२) जलों में विद्युत्, काष्ठों में अग्निवत् विद्वान् वीर नायक की स्थिति। (३) नौकावत् आचार्य और प्रभु। (४) प्रजाओं का सिंहवत् शूर नायक का स्वीकार। (५–६) अग्नि वायुवत् गुरु शिष्य का व्यवहार। (७–९) अन्धकार में दीपवत् विद्वान्। यज्ञाग्निवत् विद्वान् और वीर नायक।

सू० [१०]—(१–३) सम्राट्-अग्नि, परमेश्वर के कर्त्तव्य। परमेश्वर की भक्ति, उपासना। (४) परमेश्वर का स्वात्म ज्ञान दर्शन। (५–९) परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना।

सू० [११]—(१–१०) अग्नि, अग्रणी नायक के कर्त्तव्य।

सू० [१२]—(१–३) इन्द्र, अग्नि, मेघ और सूर्य वा वायु और विद्युत् के समान, प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। गुरु आचार्य के कर्त्तव्य। (४–९) वायु-सूर्यवत् विद्वानों और वीरों के कर्त्तव्य। सेनाध्यक्ष सभाध्यक्षों का कर्त्तव्य।

सू० [१३]—(१–७) अग्निवत् आचार्य और राजा के कर्त्तव्य।

सू० [१४]—(१–२) विद्वान् गुरु और परमेश्वर का वर्णन। (३) यज्ञाग्निवत् उसकी उपासना। (४) 'सहसः पुत्र' अग्नि और नायक। (५) दान-प्रतिदान, विद्वत्सेवा और ज्ञानार्जन। (६–७) आराधना, आत्म-समर्पक विद्वान् नायक के प्रति कर्त्तव्य।

सू० [१५]—(१) विद्वान् उत्तम नायक की शरण में रहने का उपदेश। (२) राजा वा गुरु का प्रजा से पिता-पुत्रवत् सम्बन्ध। (३) मेघवत् राजा के कर्त्तव्य। (४) प्रजा वर्ग की उत्तम कामना। (५–७) रथवत् नायक। विजिगीषु के कर्त्तव्य।

सू० [१६]—(१) स्वामी का वर्णन। (२) वायुवत् वीरों के

कर्त्तव्य। (३-४) अग्रणी के अनुयायियों के प्रति कर्त्तव्य। (५-६) उत्तम राजा से प्रार्थना।

सू० [१७]—(१) यज्ञाग्निवत् वीर विद्वान् के कर्त्तव्य। (२) सूर्यवत् विद्वान् का आदान, प्रतिदान। (३) तीन आयु, तीन उपायों की व्याख्या। (४-५) उत्तम रक्षक, ज्ञानप्रद का आदर।

सू० [१८]—(१) मित्र और मातृ पितृवत् ज्ञानी और प्रभु का वर्णन। (२) दुष्ट संतापक प्रभु। (३) अपने बल वृद्धि के लिये ज्ञानी, तेजस्वी, प्रतापी का पालन करना प्रजा का कर्त्तव्य है। (४) उत्तम राजा का कर्त्तव्य। सर्वस्नेही उत्तम पुरुषों में शक्ति स्थापन करके उपद्रवों को शान्त करने का उपदेश। (५) राजा को सदा सहायतार्थ उद्यत होने का उपदेश।

सू० [१९]—(१) यज्ञ में होता के समान नायक का वर्णन। (२) गृहाश्रम के समान राज्याश्रम का निर्वाह। (३-५) प्रजा को शिक्षित करने का कर्त्तव्य।

सू० [२०]—(१) गृहस्थ के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। (२) राजा के तीन बल, तीन स्थान, तीन जिह्वा, तीन तनु। (३) विद्वान् ज्ञानाश्रय गुरु, प्रभु। (४) तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य। (५) दधिक्रा अग्नि, उषा, बृहस्पति, सविता, अश्वी, मित्र-वरुण, आदित्यों का आह्वान। इनका रहस्य। (६०-६४)

सू० [२१]—(१) यज्ञ का संस्थापक अग्नि विद्वान्। (२-४) अग्नितुल्य विद्वान्। पक्षान्तर में राजा। (५) विद्वान् का ज्ञान जल से स्नान।

सू० [२२]—(१-३) अग्नि विद्युत्, ज्ञानप्रद आचार्य गुरु का शिष्य को उपदेश और अग्नि तत्व का वर्णन। (४) पुरीष्य अग्नि में। नाना नेता। अध्यात्म में—प्राणगण।

सू० [२३]—(१-२) अरणियों से अग्निवत् विवाद द्वारा सभा-

भवन में शास्त्र का सत्य निर्णय प्राप्त करना। अग्नि, सूर्य, विद्युत के तुल्य दीर्घ जीवन की वृद्धि का उपदेश। (३-४) देह में प्राणों से गर्भवत् सेनाओं और प्रजाओं से तेजस्वी नायक की उत्पत्ति। नायक का चुनाव और प्रतिष्ठा।

सू० [२४]—(१-५) वीर नायक के कर्त्तव्य। तेजस्वी हो, उत्तमासन पर विराजे, अभिमानी शत्रुओं को पराजित करे, सत्कार लाभ करे, राष्ट्र को वीर पुरुषों और ऐश्वर्यों से बढ़ावे।

सू० [२५]—(१-५) उत्तम सेनापति। उत्तम आचार्य, उपदेशक आदि का वर्णन।

सू० [२६]—(१) वैश्वानर अग्नि और विद्वान्। (२) वैश्वानर मातरिश्वा। (३) अश्व के दृष्टान्त से विद्वान् नेता वा प्रभु का वर्णन। (४) मेघमालाओं, अश्वों, सेनाओं से युक्त वायुवत् वीर पुरुषों का वर्णन। (५-६) तेजस्वीं पुरुषों की वायुओं श्लिष्टोपमा। (७) जातवेदाः अग्नि जीवात्मा। (२) तीन पावन साधनों से पवित्र होकर ब्रह्म की साधना। (९) शतधार मेघवत् विद्वान् का रूप।

सू० [२७]—(१-१०) विद्वानों का वर्णन। गुरु की उपासना। नायक, विद्वान्, प्रधान, नेता और स्वामी के कर्त्तव्य। (११) यन्त्र-चालकाग्निवत् नियन्ता के कर्त्तव्य।

सू० [२८]—(१-३) अग्नि, शिष्य का कर्त्तव्य वर्णन। (४) माध्यन्दिन सवन का रहस्य (५) तृतीय सवन का भाव (६) ज्ञानी विद्वान्।

सू० [२९]—(१) अग्नि के समान प्रजा और आत्मा के शरीर-धारक होने और उत्पन्न होने का वर्णन।. अग्नि-मन्थन, प्राण-मन्थन, और प्रजोत्पत्ति की समानता। (२-४) अरणियों से अग्नि की उत्पत्ति की व्याख्या। अग्रणी नायक की अधिस्थापना। (५-६) अग्निमन्थन का अध्यात्म प्रकार। मन्थन और अश्व चालन की तुलना। अग्निवत्

आत्मा और वीर। (७) विद्वान् अग्नि। (८) अग्नि राजा और स्वामी। (९) अग्नि आचार्य और वीर पुरुष। (१०) अग्नि के ऋत्विग् योनि की व्याख्या। (११) तनूनपात् जीव। विद्युतवत् आत्मा की उत्पत्ति का रहस्य। (१२–१३) मथिताग्नि और विद्वान्। अमृत अग्नि वीर। (१४) विद्युत् जीव। (१५) यज्ञाग्निवत् विद्वान्। (१६) विद्वान् होता अग्नि।

अथद्वितीयोऽध्यायः (पृ० ८४–१५०)

सू० [३०]—(१) वीर पुरुष और परमेश्वर का वर्णन। (२) वीर, विद्वान्, (३–४) सेनापति का वर्णन। विद्युत के समान वीर का वर्णन। (५–८) राजा के कर्त्तव्य। वीर सेनापति के कर्त्तव्य, शत्रुनाश, प्रजापालन। (९) सजल मेघवत् लोक का धारण। (१०) बलवान् राजा के कर्त्तव्य। (११) सूर्यवत् महारथी राजा का कर्त्तव्य वर्णन। (१२–१४) मेघ सूर्यवत् प्रजा को अन्न देने का कर्त्तव्य। राजा के अधीन उत्तम भूमि का वर्णन। (१५) राजा का प्रजा को युद्ध शिक्षा देने का कर्त्तव्य। दानशील के कोशों का वर्णन। (१६–१८) शत्रु का महास्त्रों से नाश करने का उपदेश। (१९) ऐश्वर्यवान् दानी सर्वप्रिय, सबके वंशों को बढ़ाने वाला हो। (२०) सर्वश्रेष्ठ, वीर स्तुत्य पुरुष इन्द्र कहाने योग्य है। (२१) राजा और विद्वान्। (२२) इन्द्र पद से आह्वान।

सू० [३१]—(१) पुत्रपुत्रिका-विधान, कन्या का अपुत्र पिता कन्या में जामाता द्वारा उत्पन्न पुत्र को अपना पुत्र बनावे। (२) कन्या के पिता का वही दायभागी पुत्र हो। कन्या परगोत्र के पुरुष को दी जाती है। अग्नियों के दृष्टान्त से पुत्र-पुत्री का विचार (३) अग्निवत् पुत्र शिष्य और वीर बड़े होकर उन्नत हों। (४) सूर्य के दाहक किरणों

के तुल्य वीर को सेनाएं और प्रजाएं अपनावें। (५) देह में सातों प्राणवत् राष्ट्र में सात प्रकृतियों का वर्णन। (६) विद्युतवत् सेना का कर्त्तव्य। (७) मेघ और रत्नगर्भ पाषाणवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। (८) वीर और विद्वान् ज्ञान संग्रह करे, दुःखदायक, प्रजाशोषक कारणों का नाश करें। प्रजा को पाप से मुक्त करे। (९) विद्वानों का नियमानुसार व्रताचरण, और आराधना। (१०) गौओं से दुग्धवत् आत्मज्ञान का उपार्जन, इसी प्रकार राजा का दुग्धवत् भूमि-दोहन। (११) शत्रुहन्ता का आदर और पोषण। (१२) उसके लिये विशाल भवन निर्माण। (१३) सर्वथा स्तुत्य प्रभु। (१४) प्रभु की सहस्रों सनातन शक्तियें। (१५) उत्तम राजा का कर्त्तव्य। (१६) विद्या वृद्धि और प्रजा को उन्नत करने का उपदेश। (१७) दिन रात्रिवत् राजा प्रजा का व्यवहार। (१८) सूर्य वा मेघवत् राजा उदार हो। (१९) वह प्रजा को शिक्षित करे। (२०) प्रजा का पालन करे। (२१) सूर्यवत् भूमि पर राजा का शासन और दुष्टदमन का वर्णन।

सू० [३२]—(१) मध्याह्न में भोजन अन्न, खाने का उत्तम उपदेश। (२) सूर्य के जलपानवत् प्रजा से कर संग्रह और उसके पालन का उपदेश। (३) मध्याह्न के सूर्यवत् तेजस्वी राजा की दशा। (४) तेजस्वी राजा के वायुवत् बलवर्धक जन। (५) सूर्य विद्युतवत् तेजस्वी को व्यवहार करने का उपदेश। (६) विद्युत के मेघ को आघात करने के समान दुष्टजन का नाश। (७) अपार शक्तिशाली इन्द्र का आदर। (८) जगद्-धारक वायुवत् राजा का कर्त्तव्य। (१०) राजा जीव और ईश्वर का वर्णन। (११) विद्युत वत् शत्रु पर आघात, (१२) यज्ञ से इन्द्र राजा की वृद्धि। (१३) यज्ञ द्वारा इन्द्र का आह्वान। (१४) रक्षक सर्वतारक प्रभु। (१५) कुशलवत् राष्ट्र को पूर्ण समृद्ध करने का उपदेश। (१६) निर्बाध इन्द्र का सामर्थ्य।

सू० [३३]—(१–२) गो-वृषभ वा नदियों के समान प्रेम से

सगत स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सेना-सेनापति का वर्णन। विपाट् शुतुद्री का रहस्य। (३) विपाट् माता का वर्णन। विपाट् माता परमेश्वर। (४) नदी जल के दृष्टान्त से प्रजोत्पत्त्यर्थ स्त्री का पाणिग्रहण (५) रक्षा की इच्छा से वरवर्णिनी का वरवरण। नदियों और कुशिकसूनु का रहस्य। (६) सूर्य, मेघ, जलधारावत् राजा का दुष्टदमन, प्रजापालन। (७) मेघ के छेदक भेदक सूर्य, वायुवत् राजा और आचार्य का शत्रु और अज्ञान का नाश। (८) उपदेष्टा और शासक को उपदेश। (९) नदियोंवत् विनीत महिलाओं को उपदेश। (१०) कन्या वा स्त्रीवत् प्रजा का राजा के प्रति विनय। (११) स्त्रियों के प्रति आदर भाव। (१२) योग्य भूमिवत् स्त्री प्राप्त कर संसार पार करने का उपदेश। (१३) ब्रह्मचारिणियों को मेखलादि मोचन और शुद्ध हो कर गृहस्थ में प्रवेश।

सू० [३४]—(१) वीर राजा के कर्त्तव्य। शत्रु नाश, स्वपक्ष-पोषण, प्रजा पालन। (२) प्रजा का राजा की शरण में जाना। (३–४) मायावियों का नाश। सूर्य अग्निवत् राजा के कर्त्तव्य। ध्वजा के नीचे प्रजा को लाना, (५) उत्तम अध्यक्षों की नियुक्ति। राजा का गुरुवत् व्यवहार। (६) पुण्यकर्मा, दुष्टदलक को कीर्ति लाभ। (७) राजा को विद्वान् का उपदेश। (८–१०) सैन्यादि का श्रेणी विभाग, चिकित्सा, छाया वाले वृक्षों और जल, सैन्यादि का प्रबन्ध।

सू० [३५]—(१) वीर राजा की युद्ध यात्रा। (२–३) युद्ध रथ। अश्व पालन (४) रथ में दो अश्वों के समान राष्ट्र में दो प्रमुखों की नियुक्ति। (५) प्रलोभन में पड़ने का उपदेश। (६) स्थायी राजा की नियुक्ति। (७–९) सूर्य वत् राष्ट्र के प्रबन्धक अधीन शासकों के कर्त्तव्य। (१०) राजा की तीक्ष्ण वाणी।

सू० [३६]—(१–२) राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य। (३) गुरु शिष्य और राजा प्रजा का पुत्र पितावत्

सम्बन्ध। (४–६) महान् का अपार सामर्थ्य। सूर्यवत् राजा का वर्णन और प्रजा का पालन और समर्थन। (७) नदियों वत् प्रजाओं का कर्त्तव्य। (८) जलाशयवत् जनों और कोषों का वर्णन। इन्द्र की सोमधाना कुक्षियों और उसके सोम-भक्षण का रहस्य। (९) वसुओं का वसुपति। उसके कर्त्तव्य। (१०) शिप्री इन्द्र का रहस्य।

सू० [३७]—(१–९) शत्रु दलन और विजयार्थ सेनापति का स्थापन। उसके प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य। सेनापति का प्रस्ताव, स्तुति और उत्साहवर्धापन। सेनापति के कर्त्तव्य, शत्रु पराजय। पञ्चजन का स्पष्टीकरण (१०) राजा की राष्ट्र के धनैश्वर्य की आशंसा। (११) शक्तिशाली का आह्वान।

सू० [३८]—(१) उत्तम शिल्पी और अश्व के समान विद्वान् के कर्त्तव्य। (२) ज्ञान प्राप्त्यर्थ विद्वानों की उपासना का उपदेश। (३) ज्ञान प्रकाश करना विद्वानों का कर्त्तव्य। संयम और परस्पर पोषण। (४) किरणों और सूर्यवत् अध्यक्ष और अधीनों का सम्बन्ध। स्वरोचि, असुर, वृपा परमेश्वर। (५) 'मेघवत्' राजा का शासन। (६) शासन कार्य में तीन सभाएं। वायुकेश गन्धर्वों का रहस्य। (७) मेघमाला वत् वाणी के अद्‌भुत कर्म। (८) राजा प्रजा का परस्पर वरण। (९) ईश्वरीय सनातन धर्म की साधना।

सू० [३९]—(१) पति को स्त्रीवत् ईश्वर को सर्व स्तुति की प्राप्ति। (२) उत्तम पत्नीवत् वेदवाणी का वर्णन। (३) यमसू के दृष्टान्त से, संयमी को विद्या प्राप्ति, स्त्री पुरुषों को उपदेश। राष्ट्र के यम, यमसू और प्रभु यम। (४) विद्वान् वीर योद्धा पालक पितरों का वर्णन। (५) गुरुओं का शिष्यानुगमन और सूर्य-व्रतपालन। (६) राजा की पशु-सम्पत् प्राप्ति। (७) असत्य से सत्य के और अन्धकार से प्रकाश के विवेक का उपदेश। (८) ज्ञान-प्रकाश की स्तुति।

तृतीयोऽध्यायः (पृ० १५०–२२०)

सू० [४०]—(१) राजा का राष्ट्रोपभोग। (२) प्रशस्त पुरुषों के लिये अन्न भोजन का उपदेश। (३) यज्ञ, सत्संग की वृद्धि का उपदेश। (४) गुरु गृह में शिष्योंवत् अभिषिक्त अध्यक्षों का राजा के अधीन कार्य करना। (५) पेट में अन्न को जैसे वैसे कोश में ऐश्वर्य को और विद्यागर्भ में शिष्य को रखने का उपदेश। (६–९) ऐश्वर्यों का पालक इन्द्र, प्रभु, उसकी उपासना।

सू० [४१]—(१) सूर्यवत् राजा वा प्रभु का आह्वान। (२) राजा राष्ट्र की वृद्धि करे। (३–५) विवेक से राष्ट्र का पालन और उपभोग करे। (६–८) उत्तम पुरुष को नीच कार्य में लगाने का निषेध। (९) सर्वप्रिय राजा। सोम और इन्द्र का रहस्य।

सू० [४२]—(१–४) सोम इन्द्र के सम्बन्ध और उनके नाना रहस्य। राजा प्रजा, शिष्य आचार्य के कर्त्तव्य। (५) शतक्रतु, वाजिनीवसु इन्द्र। (६) धनञ्जय और इन्द्र। (७–९) गवाशिर यवाशिर सुत का रहस्य। कुशिकों का इन्द्राह्वान।

सू० [४३]—(१–६) राजा का दो मित्र ब्रह्म, क्षत्र से मिलकर राज्य संचालन। प्रजा के साथ उत्तम व्यवहार। (७) सूर्य मेघवत् राजा के नाना कर्त्तव्य।

सू० [४४]—(१) अध्यक्ष राजा के कर्त्तव्य। (२) गृहवत् राज्य में परस्पर आदर सत्कार और प्रेम का उपदेश। (३–५) सूर्य-आकाश का सस्यश्यामला भूमि का पालन। राजा तेजस्वी हो, सूर्य वायु की शक्तिवत् इन्द्र, और अर्जुन वज्र की व्याख्या। सैन्य दलों से ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश।

सू० [४५]—(१) राजा का अश्व सैन्यों सहित प्रयाण और आगमन। (२) सूर्य विद्युत् वायुवत् राजा का शत्रु-उच्छेदन कार्य। (३) किरणों, समुद्र, गो-गोपाल आदिवत् राजा प्रजा के सम्बन्ध।

(४) पिता का पुत्रवत् राजा का प्रजा को सम्पत्ति देना। (५) स्वराट् शासक सर्वोच्च, बहुश्रुत, कीर्त्तिमान् हो।

सू० [४६]—(१–४) राजा के वीरोचित कर्त्तव्य। (५) शासकों और शास्यों का राजा के प्रति कर्त्तव्य।

सू० [४७]—(१) मरुत्वान् इन्द्र का जठर में सोम-सेचन का रहस्य। राष्ट्र में जल सेचन का उपदेश। (२) समरुत्, सूर्यवत् सगण इन्द्र को विजय का आदेश (३) ऋतुपालक, सूर्यवत् राजसभा के सभ्यों सहित राजा का वर्णन। (४–५) प्रजा के सुखकारक दुष्टों को ताड़न। उत्तम शासक राजा का मेघवत् वर्णन।

सू० [४८]—(१) वनस्पति के पालक मेघवत् राजा के कर्त्तव्य। (२–४) माता पिता, सूर्य पृथिवीवत् राजा प्रजा का व्यवहार। पुत्र मातावत् राजा भूमि का सम्बन्ध। शरीरवत् वीर की राष्ट्र वृद्धि।

सू० [४९]—(१–२) राज-परिषत् प्रजा-परिषत् के बल से बलवान् राजा। स्वराट् का दुष्ट नाश करने का कर्त्तव्य। (३) पितावत् प्रजा का शिक्षण करे। (४) सर्वप्रिय हो।

सू० [५०]—(१–२) वर्षाकारी सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। रथ में दो अश्वों के तुल्य दो विद्वानों की नियुक्ति। अधीन सैन्यों का कर्त्तव्य। (३–४) विद्वानों द्वारा सर्वोच्च पद प्राप्ति।

सू० [५१]—(१) प्रजा पालक राजा का वर्णन। प्रभु की स्तुति प्रार्थना। (२) प्रतापी राजा का वर्णन। (३–४) उत्तम राजा के गुण। (५) राजा की अज्ञानों का प्रवर्तन और उसके ऐश्वर्य का विस्तार। (६–७) राजा के कर्त्तव्य। (८) प्रजास्थ विद्वानों के कर्त्तव्य। (९) वीरों व्यापारियों के कर्त्तव्य। (१०) धनपति इन्द्र के कर्त्तव्य। (११–१२) राजा जितेन्द्रिय रहे।

सू० [५२]—(१–५) आदर योग्य पुरुष। उत्तम अन्न खाने और श्रम करने का उपदेश। आदर पूर्वक प्राप्त भोजन खाने का

उपदेश। (६) तीन आश्रम और तीन सवनों का वर्णन। (७-८) बल उत्पन्न करने और अन्न सम्पदा प्राप्त करने का उपदेश।

सू० [५३]—(१-२) सूर्य मेघवत् राजा सेनापति का कर्त्तव्य। राजा का राज्याभिषेक, राजा के लम्बे दामन को पकड़ कर चलने का अभिप्राय। प्रजा द्वारा राजा की वृद्धि। (३) ज्ञान-प्रसार। (४) गृहणी गृह है। उसका संग्रहण। (५) ऐश्वर्य के वृद्ध्यर्थ देश-देशान्तर में यातायात करने का उपदेश। (६) ऐश्वर्य कमा कर दुनियां के सुख, उत्तम स्त्री, जाया, रथ, भवन आदि को प्राप्त करने का उपदेश। (७) समृद्धों को दान का उपदेश। (८) सूर्य के जल पानवत् ज्ञानोपार्जन का उपदेश। (९) सर्व प्रिय होने का उपाय। (१०) परम हंस विद्वानों का कर्त्तव्य। हंस का रहस्य। (११) वीरों के कर्त्तव्य। (१२-१३) उत्तम राजा। (१४) राजा का निकृष्ट असभ्य देशों के प्रति कर्त्तव्य। 'कीकट', 'प्रमगन्द', 'नैचाशाख' के रहस्य। (१५) उषावत् वाणी और भूमि का रूप। (१६) वृद्धों की वाणी और भूमि। (१७) रथवत् राष्ट्र, गृहाश्रम और बैलोंवत् शास्त्रशासन और स्त्री पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (१८) बलप्रद स्वामी सबको पुष्ट करे। (१९) वीरोचित उपदेश। (२०-२२) रथवत् और तरुवत् स्वामी के कर्त्तव्य। उबलती हांडी के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य का उपदेश। (२३) मूर्ख और विवेकी का भेद। (२४) राज पुरुषों, सैनिकों के कर्त्तव्य।

सू० [५४]—(१-२) प्रथम नायक के कर्त्तव्य। उत्तम शासक की प्रशंसा और आदर। (३) स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (४-५) (उत्तम) ज्ञान के वक्ता दुर्लभ हैं। (६) सूर्य भूमिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। स्त्री पुरुषों के स्वभाव कैसे होने चाहियें। (८) स्त्री का अधिकार। (९) पवित्र दाम्पत्य। (१०) दम्पति के कर्त्तव्य। (११) उत्तम पिता के कर्त्तव्य। (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य। वीरों के

कार्य। (१४) उत्तम मुख्य पुरुष का स्थापन। उसके कर्त्तव्य। (१८) व्यवस्थापक न्यायाध्यक्ष के कर्त्तव्य। (२१) उत्तम अन्न जलों के उपभोग का उपदेश।

सू० [५५]—(१–३) परब्रह्म परमेश्वर का वर्णन। महान् असुर। सूर्यवत् उसके ज्ञानमय प्रकाश। पक्षान्तर में विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य। (४–५) तेजस्वी पुरुष का वर्णन। माता पुत्रवत् राजा-प्रजा का व्यवहार। (६–८) राजा की दो सभाएँ। द्विमाता का रहस्य। (९) शूरवीरवत् परमेश्वर का वर्णन। सूर्य वा राजदूतवत् ईश्वर। (१०) सर्वज्ञ प्रभु। (११–१२) प्रभु के अधीन दो अन्य सत्ताएं। श्यावी, अरुपी का रहस्य, परमेश्वर का अद्वितीय बल। (१३) विद्युत् मेघ के निदर्शन से प्रभु का वर्णन। (१४) सूर्य भूमि का परस्पर सम्बन्ध। मेघ की उत्पत्ति। (१५) ईश्वर की विराट् देह। ईश्वर के दो चरण, आकाश, भूमि। (१६–२२) युवतियों, गौओं के तुल्य मेघादि लोकधारक शक्तियों का वर्णन। मेघ, सूर्य, वृषभ-राजा, आत्मा, परमात्मा का श्लिष्ट वर्णन। उनके नाना अद्भुत कार्य।

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० २२०–२८६)

सू० [५६]—(१–८) स्थिर नियमों और कर्त्तव्यों का उपदेश। सूर्य, आत्मा, परमेश्वर का वर्णन।

सू० [५७]—(१) वाणी का वर्णन। (२) इन्द्र पूषा आदि विद्वानों का वर्णन। (३) ओषधियोंवत् माता युवतियों के कर्त्तव्य। प्रजाओं का कर्त्तव्य। (४) स्त्रियों के आदर करने का उपदेश। (५) वाणी का सदुपयोग। (६) नदीवत् वाणी।

सू० [५८]—(१–९) गौ, उषावत् वाणी। गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। अश्वी, नासत्य, सोमपान आदि पदों की व्याख्या।

सू० [५९]—(१–९) 'मित्र' का लक्षण। मित्र राजा, मित्र परमेश्वर। मित्र आचार्य। मित्र आप्त जन। उनके कर्त्तव्य।

सू० [६०]—(१–२) ऋभु विद्वान् जन, उत्तम नेता लोग, शिल्पी लोग, उनके नाना शिल्प और कर्त्तव्य, चमसों का रहस्य, धर्म की गौ का रहस्य। (३) सौधन्वन वीर, (४–७) इन्द्र ऋभुओं का सम्बन्ध।

सू० [६१]—(१–३) उपावत् युवति वधू के कर्त्तव्य। (४–७) चर्खे की तकली के समान स्त्री के कर्त्तव्य। उपावत् स्त्री के उत्तम गुण और कर्त्तव्य।

सू० [६२]—(१–४) सूर्य मेघवत् राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का उपदेश। इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, पूषा आदि नाना विद्वानों के कर्त्तव्य। (५–७) बृहस्पति परमेश्वर। (८) वाणी का स्त्रीवत् स्वीकार। (९) सम्यग्दृष्टि वाला विद्वान् वा सर्व द्रष्टा प्रभु। (१०–१२) गुरु मन्त्र, सावित्री गायत्री। सर्वोत्पादक प्रभु सविता की उपासना, (१३–१५) सोम विद्वान् के कर्त्तव्य। (१६–१८) मित्र वरुण अर्थात् स्त्री पुरुषों को उपदेश।

॥ इति तृतीय मण्डलम् ॥

अथ चतुर्थं मण्डलम्

सू० [१]—(१–५) उत्तम मार्गदर्शी और अग्रणी पुरुष के आदर का उपदेश। आचार्य और राजा का वरण। उनके कर्त्तव्य। (६) राजा की गौवत् अघ्न्या प्रजा का पालन। (७) अग्नि, विद्युत्, सूर्यवत् राजा के तीन रूप। (८) दीपकवत् मार्गदर्शी और भवनवत् सर्वरक्षक राजा का स्वरूप। (९) लगाम से अश्ववत् उत्तम नीति से राष्ट्र का संचालन और ऐश्वर्य पद प्राप्ति। (१०) अग्नि, अग्रणी का यथार्थ

कर्त्तव्य। (११) राजा का अपात् अशीर्षा रूप। मेघवत् दयालु हो। (१२) मेघवत् आचार्य और राजा का वर्णन। उनकी ७ प्रकृति। (१३) जिज्ञासु जनों का कर्त्तव्य। मार्गदर्शी जनों का गोपालकवत् कर्त्तव्य। (१४) शिक्षकों और संचालकों के कर्त्तव्य। (१५) उनका वरण। (१६) वेद वाणी का त्रिधा मनन। उसके २७ रूप। उस द्वारा प्रभु की स्तुति। (१७) प्रकाश से तिमिरवत् ज्ञान से अज्ञान का नाश। दुष्टों का नाश और न्याय का कर्त्तव्य। (१८) ज्ञान की प्रकाश से तुलना। (१९) प्रभु, स्वामी का उत्तम रूप। (२०) नित्य परमेश्वर का वर्णन।

सू० [२]—(१–३) अविनाशी अमृत परमेश्वर का वर्णन। जगत् के राजा के तुल्य प्रभु का वर्णन। (४) राजा के कर्त्तव्य। (५) उसके लिये उपदेश। (६) सूर्यवत् उसका पद। (७–१०) प्रभु के कृपापात्र कौन। प्रातः उपासक उसके कृपापात्र हैं। उपासकों के कर्त्तव्य। (११) दाता राजा, (१२) स्वामी के कर्त्तव्य। (१३) ज्ञानी विद्वान् से प्रार्थना। (१४) शिल्पियों के तुल्य वीरों के कर्त्तव्य। (१५–१६) किरणों के तुल्य विद्वानों का कर्त्तव्य। (१७) पुण्यकर्मा जनों का सुवर्णवत् आत्म शोधन। (१८) स्वामी का आदर्श रूप। (१९) अधीन के कर्त्तव्य। (२०) उत्तम वचनों का स्वीकार।

सू० [३]—(१) न्यायवान् राजा की प्रथम स्थापना (२) उसके लिये उत्तम भवन। (३–८) शास्ता के कर्त्तव्य। उसको क्या २ जानना चाहिये? (९–११) शास्य या शिष्य के कर्त्तव्य। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (१२) उत्तम देवियों और गृहपतियों के कर्त्तव्य। (१३–१६) उत्तम मनुष्य के कर्त्तव्य। नायक के कर्त्तव्य और नीतियुक्त वचनों के उपदेश।

सू० [४]—(१–५) रक्षोघ्न अग्नि। राज को बल सम्पादन का उपदेश, दुष्ट सन्तापक राजा वा सेना नायक के कर्त्तव्य। उसके

अग्निवत् तीव्र तेजस्वी रूप का वर्णन। (६–१०) उसके अनुग्रहपात्र। पक्षान्तर में प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, अर्चना। (११) स्वामी और प्रजा का उत्तम सम्बन्ध। (१२–१५) भृत्य वा अधीन शासक कैसे हों।

अथ पञ्चमोऽध्यायः (पृ० २८६–३५०)

सू० [५]—(१) वैश्वानर अग्नि। सर्वनायक की उपासना। (२–४) उसका स्वरूप। अग्रणी परमेश्वर से प्रार्थना। (५) नीचे गिरने वाले लोगों की दशा। (६) गुरु, महान् ज्ञान शिष्य को देवे। (७) शिष्य का कर्त्तव्य। (८) माता पितावत् आचार्य का स्वरूप। (९) सूर्यवत् प्रमुख पद। (१०–११) वाणी द्वारा शिष्य गुरु के ज्ञान को कैसे जाने। (१२–१३) गुरु का कर्त्तव्य और उसकी उत्तम अभिलाषा। (१४) जिज्ञासुओं के कर्त्तव्य। उनके प्रति गुरु के कर्त्तव्य। (१५) तेजस्वी राजा।

सू० [६]—(१) अध्वर का होता अग्नि, ज्ञानप्रद गुरु और राजा। (२) तेजस्वी सेनानायक के कर्त्तव्य। (३) ब्रह्मचारिणी के तेजस्वी पुत्रवत् सेना के तेजस्वी नायक का वर्णन। (४–६) अग्नि, सूर्यवत् तेजस्वी नायक। (७) सर्वोपरि आदरणीय प्रभु। (८) अग्रणी का उज्ज्वल पद। (९–११) कैसे को नायक बनावें। उसकी गुणस्तुति।

सू० [७]—(१–३) प्रभु की उपासना। वह अग्निवत् स्वप्रकाश। स्तुत्य। दीपक वा अग्निवत् उसका ग्रहण। (४) पापनाशक प्रभु। (५) परम पावन। (६) सत् चित् प्रभु। (७) आनन्द मय प्रभु, प्रकृति का स्वामी। (८–११) अग्नि, विद्वान्, दूतवत् प्रभु। अग्निवत् तेजस्वी का वर्णन।

सू० [८]—(१–५) बहुज्ञ पुरुष का आदर सत्कार। ज्ञानमय सर्वज्ञ प्रभु की उपासना। अग्निहोत्र और प्रभु की उपासना। (६) विद्युत-साधना और ऐश्वर्य प्राप्ति। गुरु प्रभु-शुश्रूषा (७–८) धन, बल की याचना।

सू० [९]—(१–८) राजा, विद्वान् अग्रणी नायक, और ज्ञानमय प्रभु की उपासना और स्तुति।

सू० [१०]—(१–८) उत्तम नायक, विद्वान् आदि की समृद्धि की आशंसा। उससे रक्षा, ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना।

सू० [११]—(१) विद्वान् नायक को तेजस्वी होने का उपदेश। (२) विद्वानों, शिष्यों के कर्त्तव्य। (३–६) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष। वह ज्ञान और ऐश्वर्य का अग्नि, विद्युत् के समान उत्पादक हो। दोषों, पापों से सबको पार करे। उत्तम बुद्धि दे।

सू० [१२]—(१) यज्ञाग्निवत् विद्वान् की सेवा सुश्रूषा। उसको श्रद्धापूर्वक दान। (२–६) प्रातः सायं अग्निहोत्र। अग्नि का स्वरूप, अग्निवत् तेजस्वी अग्र नायक। उसके कर्त्तव्य। प्रजा को अपराध रहित करना। पैर में बद्ध गौवत् पदों में बद्ध वाणी का दान। पाप मोचन।

सू० [१३]—(१) प्राभातिक सूर्यवत् विद्वान् का वर्णन। (२) महावृषभवत् बलवान् तेजस्वी को सबको कंपाने का कर्त्तव्य। (३) रक्षार्थ तेजस्वी का आश्रय। (४) अन्धकार को सूर्यवत् अज्ञान वा शत्रु का नाश (५) सूर्य की अनवलम्ब स्थिति का कारण। तद्वत् नायक की सर्वोच्च स्थिति।

सू० [१४]—(१–२) सूर्य की उषाओं की तरह तेजस्वी पुरुष को प्रजाओं की चाह। सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक विस्तार करना। (३–४) उषावत् विदुषी स्त्री के कर्त्तव्य। स्त्री पुरुषों का परस्पर बन्धन।

सू० [१५]—(१–५) तेजस्वी पुरुष के योग्य पद। (६–७) उसका संस्कार। (८–१०) वीरों में से दो प्रधानों का चुनाव। 'साहदेव्य कुमार' की व्याख्या।

सू० [१६]—(१) ऐश्वर्यवान् सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के गुरुवत् कर्त्तव्य। (२) विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य। मार्गावसान में अश्वों के

तुल्य शिष्यों को अवकाश प्रदान। (३) मेघ के दृष्टान्त से ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश। (४) सूर्यवत् अज्ञान नाश। (५) राजा का विनय धारण, भरण, रक्षणादि से पिता तुल्य होना। (६-९) मेघवत् शत्रु दल में भेद के प्रयोग का उपदेश। शत्रु को पराजय करने का उपदेश। (१०) भूपति सैन्यपति दोनों का स्थापना। नारीवत् सेना का वर्णन। (११) प्रयाण का उपदेश। (१२) दुष्टों का दमन और दलन। (१३) सैकड़ों सहस्रों परसैन्यों का उच्छेद। (१४) विद्युत्वान् मेघ और सिंह के तुल्य वीर का स्वरूप। (१५) प्रजाओं का राजा को, गुरु को शिष्य और पति को स्त्रीवत् वरण द्वारा प्राप्त होना। (१६-१७) 'इन्द्र' किसे कहें। उसके कर्त्तव्य। (१८-२१) सर्वोपरि राजा और प्रभु। प्रजाओं का उत्साह और कर्त्तव्य।

सू० [१७]—(१) शत्रुहन्ता इन्द्र (२) प्रतापी का प्रभाव और आतंक कैसा हो। (३) वज्रधर का शत्रु मर्दन। (४) प्रचुर बलशाली ही प्रचुर सम्पदा का स्वामी हो। (५-६) प्रजा के वास्तविक अधिकार निरूपण। (७-११) शत्रुदलन की प्रार्थना। शत्रुहन्ता का आतंक और उत्तम फल। प्रजा के पालन पोषण की प्रार्थना। (१२-१३) विजेता का अंश निर्णय। उसके उदार कर्त्तव्य। (१४-१५) राजचक्रवत् सैन्यचक्र का चालन, राष्ट्र की वृद्धि, और उसमें अभय का स्थापन। (१६) गृहस्थों का रक्षक राजा हो। (१७-२०) आचार्य इन्द्र।

सू० [१८]—(१) उन्नति का पुराण मार्ग। प्रत्येक राष्ट्र, प्रजा और पुत्रादि के पालन योग्य व्रत। (२) जन्म मरण के जीवन रूप संकट मार्ग से निकलने की जिज्ञासा। (३) मुग्ध पुरुष के समान, आत्मा की गति और विवेक की प्राप्ति। (४) आत्मा की सर्वोपरि शक्ति। (५-६) प्रकृति परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति। जलधारावत् प्रवाह रूप से प्रकट होने वाली प्रकृति की विकृतियों से उनके विकर्त्ता के विषय में विवेकपूर्ण प्रश्न। (७) प्रभु का जगत् सर्जन। (८) स्त्रीवत्

प्रकृति का वर्णन। प्रकृति परमेश्वर का परस्पर व्याप्य व्यापकभाव। (९–१३) सर्वेश्वर कर्म फलप्रद, परमेश्वर। विवेक। राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। अध्यात्मदर्शी का कथन।

अथ षष्ठोऽध्यायः (पृ० ३५०–४१४)

सू० [१९]—(१) वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। राजा का शत्रुनाशार्थ वरण। (२) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से विद्वानों, वीरों का प्रयाण और राजा का शासन। विघ्नकारी शत्रु का विनाश। (३) शत्रु पर आक्रमण का आदेश। (४) वायु और सूर्यवत् पराक्रमी वीर शत्रु को चूर्ण करे। (५) राजा प्रजा, सैन्यादि के कर्त्तव्य। (६) भूमि माता की सेवा (७) नदियों को मेघवत् प्रजाओं को समृद्ध करने का उपदेश। (८) सूर्यवत्, मेघवत् शत्रु से घोर संग्राम। (९) शत्रुओं को करप्रद बनावे। 'उखच्छित् पर्व' का रहस्य। विस्फोटक पदार्थों का उपयोग। आग्नेयास्त्र। (१०) सनातन वेद-धर्मों का प्रवर्त्तन करे। (११) राजा विद्वानों का पालन करे।

सू० [२०]—(१–५) राजा के प्रजा पालन के धर्मों का उपदेश। (६) पति पत्नी, राजा प्रजा का प्रेम व्यवहार। पति इन्द्रपद वाच्य। इन्द्र का लक्षण। (७) सेनापति इन्द्र। (८) दण्ड नायक पालक। (९) प्रभु का महान् सामर्थ्य। (१०) उससे रक्षा, समृद्धि की याचना।

सू० [२१]—(१) अति प्रबल सैन्यबल के स्वामी राजा का रक्षार्थ आह्वान। (२) राजा कृषक वर्ग का उपकारक हो। (३) सूर्य, विद्युत्, सुवर्णवत् राजा की प्राप्ति। (४) राजा विजयी, स्तुत्य। (५) शत्रु विजयी ऐश्वर्य का स्वामी बने। (६) नायक का दीपवत् कर्त्तव्य। (७) राजा के सब प्रयत्न राष्ट्रहित हों। (८) कृषि के लिये नहरों का

आयोजन और साधनों का वर्णन। (९) बाहु कल्याण कर्म करें, दान दें। (१०) राजा कर्मानुसार वेतन दे।

सू० [२२]—(१) बलशाली राजा का कर्त्तव्य, ऐश्वर्य वृद्धि। (२) राजा की ऊणी, परुष्णी सेना। (३) बल पराक्रम का यश। (४–५) ईश्वर के जगत् सञ्चालकवत् राजा का राष्ट्र-सञ्चालन का कार्य। (६) राजा के सब कार्य न्यायानुसार होने चाहियें। प्रजाएं भी राजा की वृद्धि करें। (७–११) वह राष्ट्र का नियन्ता और उत्तम कर्मशील हो। प्रजा को ज्ञान और धन से सम्पन्न करे।

सू० [२३] - (१–४) राजा और आचार्य के सम्बन्ध में नाना ज्ञातव्य बातें। प्रजा वा शिष्य को उपदेश। (५–६) प्रश्नोत्तर से नाना उपदेश। (७) शत्रु का निःशेषकरण। (८) वेद वाणी का महत्व। राजा की आज्ञा, न्याय व्यवस्था का वर्णन। (९) सत्याचरण की महिमा। (१०) ऋत का महत्व।

सू० [२४]—(१–४) राजा की उत्तम गुण स्तुति और प्रभु की अपार कीर्ति। स्तुत्य प्रभु। सर्व शर काम्य प्राप्य, प्रभु। (५) राष्ट्र समृद्धि और आत्म समृद्धि का वर्णन। (६) प्रभु सेना और प्रभु सख्य। (७) प्रभु शक्ति और बल प्राप्ति। (८) प्रजा का सम्पन्न, बली राजा के प्रति प्रेम। (९) राजा की राष्ट्र के प्रत्येक अंग से देहांगवत् प्रीति। कर संग्रह और कर्त्तव्य-परायणता। (१०) राष्ट्र का क्रम—प्रति क्रम।

सू० [२५]—(१–२) सर्व हितकारी नायक। उसके कर्त्तव्य। उसके प्रिय सहयोगी। (३) तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर। (४) सूर्यवत् राजा की स्थिति। (५) सर्वोपरि शक्ति राजा। (६) वह दुष्टों का कुछ नहीं लगता। अदाता कंजूस कदर्य को राजा प्रेम नहीं करता। (७–८) इन्द्र राजा के लिये सबकी पुकार।

सू० [२६]—(१-३) स्वतः परमेश्वर का आत्म वर्णन। पक्षान्तर में यजमान के आत्मा की उदात्तता। (४-७) श्येन, विद्वान्वत् आत्म-तत्व का वर्णन। धर्मात्माओं का उन्नति पथ।

सू० [२७]—(१) जीव का वर्णन। आवागमन का सिद्धान्त। (२) सर्व बन्धनमोचक, मोक्षदायक प्रभु। (३) ज्ञान दाता गुरु प्रभु ही जीव को मुक्त करता है। (४) मोक्ष मार्ग की ओर गमन। (५) राजा द्वारा ब्रह्म ज्ञान का धारण।

सू० [२८]—(१) सूर्यवत् उपकारक और देह में आत्मा के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। (२-५) राजा का प्रबल सहायक। शत्रु नाश का कर्त्तव्य। दुर्ग का प्रयोग। राष्ट्र में कृपि और खानें खोदने के कार्य को प्रवृत्त करना।

सू० [२९]—(१-२) उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (३) विद्वान् आचार्य, उपदेशक और राजा का कर्त्तव्य। (४-५) बलवान् राजा प्रजा से अभय करे। प्रजा का हितैषी हो।

सू० [३०]- (१) राजा की सर्वोत्तम स्थिति। सर्वोपरि परमेश्वर का वर्णन। (२) सेना और प्रजा दो राज्यरथ के दो पहियों के तुल्य हैं। (३) शत्रु नाशन आदि राजा के कर्त्तव्य। (४-१२) प्रजा 'दिवः दुहिता'। उपा, सेना और नववधू का समान वर्णन। शत्रुसेना का दमन। प्रजा पर आधिपत्य। धनैश्वर्य का विजय। (१३) शुष्ण के नाश का रहस्य। (१४) शम्बर हनन का रहस्य। (१५) राष्ट्र के पांच जनों की रक्षा (१६-१८) क्षत्रिय, वैश्यों की रक्षा का उपदेश। तुर्वश यदु का रहस्य। आचार्य। (१९-२०) विकलाङ्ग दीनों पर दया (२१-२३) राजा का महान् विक्रम। (२४) राजा के करसंग्रही समृद्धिकारक हों।

सू० [३१]—(१-१५) परमेश्वर और राजा से प्रार्थना और राजा के कर्त्तव्य।

सू० [३२]—(१–२१) राजा सेनापति के प्रति प्रजा की नाना प्रार्थनाएं और आकांक्षाएं और राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। राजा से रक्षा, धन, ज्ञान, न्याय आदि की प्रार्थना। (२२–२४) दो आंखों के तुल्य सस्नेह रहने का राजा प्रजा वर्गों को उपदेश।

सप्तमोऽध्यायः (४१४–४८२)

सू० [३३]—(१–३) सूक्ष्म जल के परमाणुओं के तुल्य ज्ञानी पुरुषों का वर्णन, उनके कर्त्तव्य। वाज, विभ्वा, ऋभु, इनका रहस्य। (४) ऋतुओं का वर्णन (५–६) ऋभुओं के बनाये चमसों का रहस्य। चतुर्वर्ग साधना की विवेचना। (७) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य। (८–११) उत्तम शिष्यों के कर्त्तव्य।

सू० [३४]—(१–८) ऋभुओं का वर्णन। विद्वानों और शिल्पज्ञों के कर्त्तव्य (९–११) ऋभु नाम से कहाने योग्य जनों का वर्णन।

सू० [३५]—(१) ऋभुओं का वर्णन। किरणों वत् सौधन्वन, वीर। (२–३) चतुर्धा पुरुषार्थ, चतुर्धा आश्रम, चतुरंग सैन्य और चतुर्धा अन्न का निर्माण। (४) ऋभुओं के चमस का रूप। (५–६) कृत्रिम अश्वादि यन्त्र निर्माण। (७) हर्यश्व और ऋभु कौन हैं। (८) सौधन्वन, साधकों का वर्णन। (९) सौधन्वन वीरों का वर्णन।

सू० [३६]—(१–२) विना अश्व, विना लगाम के त्रिचक्र आकाश, जल, भूमि गामी रथ के दृष्टान्त से आत्मा के देहरथ का वणन। (३) ऋभु विद्वानों का कार्य युवकों को तैयार करना है। (४) राष्ट्र का चतुर्धा विभाग। अन्तःकरण चतुष्टय। आयु के चार भागों का वर्णन। चर्ममयी गौ जिह्वा, वाणी का वर्णन। ऋभु प्राण। (५) वेद नामक ज्ञान का वर्णन। उसके रक्षा का कर्त्तव्य। (६–८)

ऋभु, विभ्वा, बाज आदि विद्वानों, वीरों के कर्त्तव्य। उनमें वेदोपदेश के स्थिर करने का उपदेश। (९) ज्ञानपूर्वक कर्म करने का उपदेश।

सू० [३७]—(१–३) ऋभु विद्वानों के कर्त्तव्य। (४–८) उत्तम सुवर्ण रत्नादि के आभूषण धारण करने का उपदेश।

सू० [३८]—(१) द्यावा पृथिवी रूप से राजा प्रजा और उनके कर्त्तव्यों का वर्णन। (२–४) अश्ववत् रथधारक राजा का वर्णन। (५) चोरवत् दुष्ट राजा की निन्दा, उत्तम राजा की प्रशंसा। (६–७) सूर्यवत्, अश्ववत् और वरवत् वीर सेनापति का वर्णन। (८) बिजुली वत् सेनापति। (९–१०) रथवत् महारथी का वर्णन। 'दधिक्रा' सेनापति राजा का वर्णन। भयहेतु।

सू० [३९]–(१–२) 'दधिक्रा' परमेश्वर। राष्ट्र का संचालक, धारक राजा 'दधिक्रा', उसका अभिषेक। (३–५) दधिक्रा गुरु। (६) उनकी उपासना।

सू० [४०]—(१–२) दधिक्रा राजा, परमेश्वर। परस्पर स्नेही राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (३) वेगवान् बाणवत् और बाज पक्षी के तुल्य सेनापति। (४) वेग से बढ़ते अश्ववत् अभ्युदयशील पुरुष का वर्णन। (५) आत्मा का वर्णन।

सू० [४१]—(१–३) इन्द्र वरुण गुरु जन। विनीत शिष्य के कर्त्तव्य। इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुष, दिन रात्रि, प्राणपान। (४) राज्य के प्रधान दो पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) गाड़ी के तुल्य वाणी और उसके अभ्यागत गुरु शिष्य, इन्द्र वरुण। (६) मेघ विद्युत्वत् राजा अमात्य इन्द्र वरुण। (७–८) माता पितावत् उनके कर्त्तव्य। (९) अर्थपति ज्ञानपति इन्द्र वरुण।

सू० [४२]—(१) राजा के कर्त्तव्य। (२–६) राजा वरुण, उसका वैभव। (७) शत्रुनाशक राजा (८–९) त्रसदस्यु का रहस्य। (१०) इन्द्र और वरुण।

सू० [४३]—(१–७) स्त्री पुरुषों के उत्तम गुणों का वर्णन।

सू० [४४]—(१–६) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य।

सू० [४५]—(१–२) गृहस्थ रथ का वर्णन। उसमें विद्वान् की जल अन्नादि से पूर्ण पात्रवत् स्थिति। किरणों वत् विद्वानों का अभ्युदय। (३) गृहस्थ स्त्री पुरुषों का कर्त्तव्य। (४) विद्वान् नायकों का कर्त्तव्य। (५–७) अग्नियों के तुल्य विद्वान् गण। उनके कर्त्तव्य।

सू० [४६]—(१–६) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य। विद्युत् वा सूर्य और पवन वत् इन्द्र वायु।

सू० [४७]—(१–४) राजा सेनापति, इन्द्र वायु। गुरु शिष्य। इनके कर्त्तव्य।

सू० [४८]—(१–५) ज्ञानवान् बलवान् पुरुष वायु। उसके कर्त्तव्य। शत्रु उच्छेदक सेनापति का वर्णन।

सू० [४९]—(१–५) बलवान् राजा और ज्ञानवान् अमात्य इन्द्र बृहस्पति। उनके कर्त्तव्य। उसी प्रकार आचार्य शिष्य। उनका सोमपान।

सू० [५०]—(१–३) परमेश्वर विद्वान्, राजा का वर्णन। (४) बृहस्पति सप्तास्य सप्तरश्मि आत्मा। (५) राष्ट्रपालक राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (६) परमेश्वर का वर्णन। (७) प्रभु बृहस्पति। (८–९) परमेश्वर का राजवत् वर्णन। (१०) राजा और परमेश्वर का वर्णन। (११) राजा और वेद विद्यापालक के कर्त्तव्य।

अष्टमोऽध्यायः (पृ० ४८२–५५४)

सू० [५१]—(१–११) उषावत् नव युवतियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। उषावत् उनका वर्णन।

सू० [५२]—उषावत् गृहपत्नी के कर्त्तव्य।

सू० [५३]—(१–७) सूर्यवत् सविता प्रभु परमेश्वर, जगदुत्पादक का वर्णन, प्रजापति का वर्णन।

सू० [५४]—(१–३) सविता, प्रभु, राजा, आचार्य। प्रभु की उपासना स्तुति प्रार्थना, (४) प्रभु का अविनाशी सत्य सामर्थ्य, (५) सब महान् शक्तियों, पञ्च भूतों के भी सामर्थ्य उसी उत्पादक के हैं। (६) सब उसी की विभूति हैं।

सू० [५५]—(१) सर्वोपरि शासक की विवेचना। (२) सर्वप्रिय विद्वान् जन। (३) स्त्री माननीया है, वह सब सुखों की जननी है। (४) उत्तम विद्वान् और स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य, उत्तम भूमि और गृह आदि प्राप्त करें। (५) स्त्री को पापों से बचाने वाला उसका पति है। (६) स्त्रियें कैसे पुरुष को वरें। (७) अदिति माता रूप स्त्री के कर्त्तव्य। (८–९) अग्नि पुरुष, उषा स्त्री का कर्त्तव्य। (१०) सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, इन्द्र देवों के रूप में पति को सुख प्राप्ति।

सू० [५६]—(१–७) सूर्य पृथिवीवत् वर वधू, स्त्री पुरुष और गुरु शिष्य, राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। दोनों का उत्पादक विश्वकर्मा प्रभु। सुज्ञानी गुरु है।

सू० [५७]—(१–८) खेतपाल के समान गृहस्थ में क्षेत्रपति पुरुष और संसार में क्षेत्रपति परमेश्वर और राष्ट्र में राजा के कर्त्तव्य। अन्न, फल, मूल आदि खाद्य सामग्री की समृद्धि की याचना। उत्तम रीति से कृषि का उपदेश।

सू० [५८]—(१) समुद्र से उत्पन्न मधुमान् ऊर्मि का वर्णन। (२) वेदमय परम ज्ञान को धारण करने का आदेश। चतुःश्रृङ्ग गौर का रहस्य। (३–७) मर्त्य मात्र में प्रविष्ट चतुःश्रृंग, त्रिपाद्, द्विशिरा, सप्तहस्त महादेव वृषभ का आलंकारिक वर्णन। (८–१०) उत्तम

स्त्रियों के समान घृतधारा और वाणियों का वर्णन। (११) जगदाश्रय परमेश्वर।

इति चतुर्थं मण्डलम्

अथ पंचमं मण्डलम्

सू० [१]—(१–३) प्रातः यज्ञ। तरु की शाखाओं के समान विद्वानों को शाखा प्रशाखाओं में फैलने का आदेश। सूर्यवत् ज्ञानी पुरुष का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। सूर्यवत् गुरु का शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य। वाणियों द्वारा ज्ञानबीजारोपण, ज्ञानयज्ञ का वर्णन। शिष्यों का भूमिवत् और अग्निवत् ज्ञानाहुतियों का ग्रहण। (४) माता पितावत् गुरुजनों से शिष्य पुत्र की उत्पत्ति। (५–६) जीवन के पूर्व भाग में वनस्थों के बीच ज्ञानग्रहण का उपदेश। उसका अग्नि वा सूर्यवत् व्यवहार (७–१२) ज्ञानी की यज्ञाग्निवत् स्थिति। ज्ञानी, गुरु, परम पावन, दान्त चित्त, पूज्य है, वही 'सहस्रशृङ्ग वृषभ' सूर्यवत् है। सहस्रशृङ्ग वृषभ का रहस्य। उसके कर्त्तव्य।

सू० [२]—(१–६) माता पुत्र के दृष्टान्त से आचार्य शिष्य और राजा और पृथिवी का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (७–१२) नायक राजा के नाना कर्त्तव्य। शुनःशेप के बन्धन मोचन का रहस्य।

सू० [३]—(१) अग्रणी नायक के ही वरुण, मित्र, इन्द्रादि नाना रूप और उनकी विशेषताएं। (२) कन्या के पितावत् राजा के कर्त्तव्य। (३–६) राजा का रुद्ररूप। (७) पापी को कठोर दण्ड देने का विधान। (८) यज्ञाग्निवत् नायक पुरुष का रूप। (९) राजा का पुत्र और पितृ भाव। राजा पिता वसु। (१०–११) राजा द्वारा विद्वान् का पालन (१२) आचार्य और शिष्य गण।

सू० [४]—(१) वसुपति अग्नि राजा आचार्य प्रभु की स्तुति।

(२) हव्यवाड् यज्ञाग्निवत् विद्वान् का वर्णन । (३) परमपावनाग्नि विश्पति । (४) जातवेदा का समिदाधान । (५) दमूना अग्नि अतिथि का वर्णन । (६-८) दुष्टों का दमन और नाश । (९) नौकावत् प्रभु । (१०) उससे अमृतत्व की प्राप्त्यर्थं यज्ञ का रहस्य । (११) ऐश्वर्यं को कौन प्राप्त करता है ।

सू० [५]—(१-४) अग्निहोत्र, देवयज्ञ का वर्णन । विद्वान् अग्नि और राजा । उसके कर्त्तव्य । (५) द्वारों के समान सेनाएं और प्रजाओं का कर्त्तव्य । (६) उपासानक्त । स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (७) दैव्य होता । (८) तीन देवियां । (९-१०) शिव और वनस्पति अग्नि । (११) अग्नि आदि के लिए हवि प्रदान ।

सू० [६]—(१-१०) अग्नि वसु का विवरण । विश्पति उसके कर्त्तव्य । यज्ञाग्निवत् अग्नि, राजाग्नि का वर्णन ।

सू० [७]—(१-१०) सहस्वान् नक्षा, अग्नि सेनापति, उसके कर्त्तव्य । यज्ञ की व्याख्या ।

सू० [८]—(१-७) यज्ञाग्निवत् तेजस्वी का वरण और संस्थापन । गृहपतिवत् उसका वर्णन । प्रजाओं द्वारा राजा की चाह और प्रजाओं के प्रति उसके कर्त्तव्य ।

अथ चतुर्थोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः (पृ० ५५५-६२३)

[पञ्चमे मण्डले]

सू० [९]—(१-७) यज्ञाग्निवत् विद्वान् और तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य । वनाग्निवत् तेजस्वी नायक ।

सू० [१०]—(१–७) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुष का वर्णन । उससे प्रजा की उपयुक्त याचनाएं ।

सू० [११]—(१–२) अग्नि विद्युत् आदि के तुल्य तेजस्वी, विद्वान् अध्यक्ष के कर्त्तव्य वर्णन । वह तीनों सभा-भवनों का अध्यक्ष हो । (३) संस्कारों द्वारा उसको सुसंस्कृत करना । (४) उसका दूत आदि के पद पर वरण । (५) प्रभु के प्रति प्रार्थना । (६) मथित अग्नि के समान आत्मा और नायक की मथन द्वारा उत्पत्ति ।

सू० [१२]—(१–२) वृष्ट्यर्थ यज्ञाहुति के तुल्य नायक पुरुष के प्रजा का करादि त्याग, सत्य ज्ञान और सत्याचरण का उपदेश । (३–४) विना भूमि के जैसे बीज नहीं फलता वैसे ही विना प्रजा वा पृथिवी के राष्ट्र नहीं समृद्ध होता । राजा को उसी को प्राप्त करने का उपदेश । (५) दुष्टों का स्वयं नाश । (६) नहुष-पुत्र का रहस्य ।

सू० [१३]—(१–६) विद्वान् तेजस्वी पुरुष की सेवा सुश्रूषा, उसका समर्थन । अपने ऐश्वर्य के निमित्त प्रजा का राजा का आश्रय ग्रहण ।

सू० [१४]—(१–६) परमेश्वर की स्तुति । विद्वान् शिष्यादि का ज्ञानवान् करने का आदेश । यज्ञाग्निवत् उसकी उपचर्या । उसके दस्युनाशक सामर्थ्य की उत्पत्ति ।

सू० [१५]—(१–५) उत्तम विद्यावान् श्रेष्ठ जन का अभिषेक । उसके गुणों की स्तुति । उसके प्रति अधीनों के कर्त्तव्य । उसके मातृवत् कर्त्तव्य । विद्युत्वत् उसका उग्र सामर्थ्य । चौरवत् उसका धनान्वेषण का कर्त्तव्य ।

सू० [१६]—(१–५) मित्रवत् अग्नि का स्थापन, उस अग्निवत् विद्वान् अग्रणी नायक का कर्त्तव्य । सम्पन्न जनों के नायक के प्रति कर्त्तव्य ।

सू० [१७]—(१–५) यज्ञाग्निवत् उत्तम अध्यक्ष की स्तुति। उसके कर्त्तव्य।

सू० [१८]—(१–५) प्रातः स्मरणीय प्रभु की उपासना। उत्तम विद्वान् अधिनायक वृन्द का आदर सत्कार। नायक जन कैसे बनें।

सू० [१९]—(१) जीव बालकवत् अग्नि की उत्पत्ति। (२) जीवों का पुरियों में प्रवेश। (३) जीवों को अन्न द्वारा पोषण। (४–५) न्याय से शासन कर्त्ता की स्वस्थ शरीरवत् वृद्धि। वायु से धौंके हुए अग्नि के तुल्य नायक की बलवान् सहयोगी से वृद्धि।

सू० [२०]—(१–४) विद्वान् का उपदेश करने का कर्त्तव्य। उसका आदर सत्कार करने का उपदेश।

सू० [२१]—(१–४) मनुष्यवत् अग्नि, विद्युत् आदि का स्थापन। विद्वान् सन्देशहर अग्नि। उसका आदर सत्कार।

सू० [२२]—(१–४) अग्रणी पुरुष का आदर सत्कार।

सू० [२३]—(१–४) अग्रणी नायक के कर्त्तव्य।

सू० [२४]—(१–४) अग्रणी प्रमुख अध्यक्ष के प्रति प्रजा के निवेदन।

सू० [२५]—(१–३) प्रभु परमेश्वर और राजा वा नायक से प्रजाओं की प्रार्थना। (४) यन्त्रचालक। अग्निवत् अध्यक्ष के कर्त्तव्य। (५–६) आचार्य के कर्त्तव्य। (७) जिम्मेदारी का 'अग्नि' पद। (८–९) विद्युत् के तुल्य उसके कर्त्तव्य।

सू० [२६]—(१–९) ज्ञानवान् गुरु के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्युत् का वर्णन। उत्तम पुरुष का उच्च पद पर स्थापन।

सू० [२७]—(१–३) इन्द्र पद। उस पद के अधिकारी का

कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्वान् के कर्त्तव्य। त्रसदस्यु की व्याख्या। (४–६) शिष्य गुरु के कर्त्तव्य। अश्वमेध की व्याख्या।

सू० [२८]—(१) प्रातःकालिक सूर्य, यज्ञाग्निवत् राजा के कर्त्तव्य। उषा के दृष्टान्त से विदुषी के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२–३) सूर्यवत् वृष्टि हेतु होकर प्रजा की समृद्धि का कारण हो। (४) यज्ञाग्निवत् राजा की दीप्ति, तेज। (५) उसको अधीनों को भृति देने का उपदेश। (६) उसका आदर करने का उपदेश।

सू० [२९]—(१) तीन प्रधान बल। तीन सभाओं द्वारा राजा का स्थापन। (२) उसका राजदण्ड ग्रहण। दुष्टों के दमन का कर्त्तव्य। (३) राष्ट्रैश्वर्य पालन, शत्रु नाशक। (४) सेनाओं का प्रबन्ध और सिंहवत् पराक्रम। (५) राष्ट्र से करादान, नवभूमि विजय और उस पर अध्यक्ष स्थापन। (६) शिल्पी के तुल्य बलवान् राजा के कर्त्तव्य। (७) ३०० बड़े अध्यक्षों का स्थापन। सभाओं वा त्रिविध सैन्यों का स्थापन। (८–११) युद्धार्थ प्रयाण। शत्रु नाश। (१२) विद्वान् आचार्य की गोरस से पूर्ण पात्र से तुलना। उसी प्रकार सम्पन्न राजा का वर्णन। (१३–१५) ईश्वर, विद्वान् राजा की स्तुति और अर्चा।

सू० [३०]—(१–४) विद्युत्, बीज निधाता प्रभु का वर्णन। विद्यादाता गुरु का वर्णन। (५) विद्युत् के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (६) प्रजा समृद्ध्यर्थ दुष्टों का दमन। (७) गोदुग्धवत् कर संग्रह का उपदेश। अवश्य दण्डनीय का शिरच्छेद। पुरस्कार योग्य कामना। (८–९) शत्रु नाशार्थ सैन्य सञ्चालन। (१०–११) शत्रु की छानबीन, स्वशक्ति वर्धन। (१२) भूमियों का अध्यक्षों में विभाग और प्रबन्ध। (१३) अधीनजनों का राजा से पुत्र पिता का सा सम्बन्ध। (१४–१५) सूर्यवत् राजा का राष्ट्र भोग।

सू० [३१]—(१) सूर्यवत् सेनापति राजा का वर्णन। (२) राजा अधर्म में पैर न रखे, समवाय बनावे और राष्ट्र में अविवाहितों

को विवाहित करके राष्ट्र की प्रजा-वृद्धि का प्रबन्ध करें। (३) राजा शत्रु से भूमि की रक्षा करे। (४) प्रजा राजा की शक्ति बढ़ावे। (५) शत्रु पर आक्रमण का उपाय। (६) नये २ साहस कार्यों का उपदेश। (७) राजा वा प्रधान का कर्त्तव्य। राष्ट्रवृद्धि, वा शत्रुनाश, शक्तिसंचय। (८) ज्ञान, पालन का प्रबन्ध। सैन्य का धारण। (९) सेनापति और सैन्य के कर्त्तव्य। (१०-११) नाना योग्य पुरुषों की नियुक्ति, यन्त्र के मुख्य चक्रवत् सैन्य चक्र का संचालन। (१२-१३) राष्ट्र का प्रेम से भरण पोषण।

सू० [३२]—(१) सूर्यवत् वीर राजा के नाना कर्त्तव्य। (२) कृषक के समान राजा के कर्त्तव्य। (३) सिंहवत् राजा के कर्त्तव्य। (४) वर्षते मेघ वा विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य। (५) शत्रु को बन्दी कर लेने का उपदेश। (६-९) शत्रु को नाश करने का उपदेश। (१०) स्त्रीवत् भूमि का पालन। (११) पञ्चजनों का स्वामिवरण। (१२) दानशील राजा और त्यागी विद्वान्। इति प्रथमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः (पृ० ६२३-६८५)

सू० [३३]—(१-३) उत्तम नायक के अधीन निर्बलों का प्रबल संघ। अध्यक्ष के कार्य। (४-५) उर्वरा भूमियों का विजय। राजा के शासन की विशेषता। (६) राज पुरुष की विशेषता वसुपति राजा। (७) सेना और प्रजा के लिये अन्न-जल का प्रबन्ध करना राज्य का कर्त्तव्य। (८) विद्वानों वीरों के सहयोग से उत्तम प्रबन्ध। (९) राष्ट्र शरीर को सुशोभित करने का प्रकार। (१०) मुद्रांकित राज-शासनों का प्रचार।

सू० [३४]—(१) प्रजा का पत्नीवत् राजा को वरण, राजा का अजातशत्रु रूप। तदनुरूप पदों के कर्त्तव्य। (२) अन्न-भोजन वत् राष्ट्रैश्वर्य भोग। (३) आरोग्य-सम्पादन। (४) वैरी का पूर्ण दमन।

(५) मित्रता के अयोग्य और योग्य का विवेक। (६) राजचक्र में सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (७) राजा योग्य अयोग्य को पारितोषिक और दण्ड दे। पात्रानुरूप धन का विभाग करे (८-९) समृद्धों और बलवानों में भी व्यवस्था करे। उनको लड़ने न दे। राजा प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य।

सू० [३५]—(१-४) राजा वा आचार्य प्रजार्थ ही शक्तियां, ज्ञानों और सभादि को धारण करे और उनको सम्पन्न करे। उसके अन्यान्य कर्त्तव्य (५-६) प्रयाण का आदेश। (७-८) प्रयाण और युद्धकालिक कर्त्तव्य।

सू० [३६]—(१) समृद्धिकाम राजा की करसंग्रह की नीति। (२) राष्ट्रपालन में स्थान स्थान पर सैन्य-संस्थापन। मुख के जबड़ों के समान सेनाओं की स्थिति। (३) अशक्त प्रजा की स्थिति और उसका कर्त्तव्य। (४) ब्रह्म क्षत्र वर्ग का राजा के साथ सम्बन्ध (५) बलशाली, समृद्ध उत्तम राजा का कर्त्तव्य। (६) अधीन दो प्रमुख और प्रजा द्वारा उसका आदर।

सू० [३७]—(१-२) विद्युत्वत् विजयशील बलवान् नेता का कर्त्तव्य। (३) प्रजारक्षार्थ शासन। (४) पतीवत् पालक प्रभु का वरण। (५) समृद्ध सम्पन्न राजा।

सू० [३८]—(१-५) उत्तम राजा के कर्त्तव्य।

सू० [३९]—(१-५) राजा के प्रजा को समृद्ध करने के कर्त्तव्य। दानशील को उपदेश। सर्वदाता प्रभु। उसकी स्तुति।

सू० [४०]—(१) सोमपति इन्द्र राजा के कर्त्तव्य। (२) उसका बल और बल का उपयोग। (३-४) तेजस्वी होने का उपदेश। (५-७) चक्र द्वारा उत्पन्न सूर्यग्रहण के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन। (८) शत्रुनाश के उपाय। (९) राजा की पुनः स्थापना।

सू० [४१]—(१–२) मित्र और वरुण। उनके कर्त्तव्य। (३) अश्वी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (४) कार्यकर्त्ताओं की अविलम्बकारी होने का उपदेश। (५) सामान्य विद्वान् जनों के कर्त्तव्य। (६) वायु तीव्रगामी साधन का रथ में उपयोग। प्रजाओं के कर्त्तव्य। (७) उपासानक्ता दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (८) पोष्य वर्ग का आदर। (९) पालन-कर्त्ताओं के कर्त्तव्य। (१०) वैद्युतिक अग्नि, तद्वत् तेजस्वी नायक के कर्त्तव्य। (११) वृद्ध गुरु जनों के कर्त्तव्य। (१२–१३) प्रजा और शासक के परस्पर के कर्त्तव्य। (१४) उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य। सेना के कर्त्तव्य। विद्वानों के कर्त्तव्य। (१५–२०) सेना और वाणी का साथ वर्णन।

सू० [४२]—(१) वाणी का वर्णन। पक्षान्तर में पञ्चजन की वाणी का आदर (२) अखण्ड शासक परिषत् अदिति। उसके मातृवत् कर्त्तव्य, (३–६) विद्वानों में उत्तम का अभिषेक। राजा विद्वान् के कर्त्तव्य, (७–१०) प्रधान पद योग्य जन। दुष्टों और कदर्यों को दण्ड। (११–१२) वीर पुरुष का आदर। रुद्र का रहस्य। वैद्यवत् वीर जन स्त्रियोंवत् उत्तम नदियों नहरों का उपयोग। (१३) गृहस्थवत् राज्य-व्यवहार। (१४) मेघवत् गुरु का कर्त्तव्य। (१५–१८) सैन्य बल का कर्त्तव्य। राजाज्ञा की व्यापकता और मान्यता हो। शासन में अपीड़ित प्रजा का रहना। स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य।

सू० [४३]—(१) नदीवत् वाणी का वर्णन। (२) माता पिता के प्रति कर्त्तव्य। (३–५) किरणों वत् विद्वानों का कर्त्तव्य। उत्तम अन्न जल से सत्कार करने का उपदेश। वायुवत् और सूर्यवत् क्षत्रियों का कर्त्तव्य। (६) अन्नवत् ज्ञानोपार्जन। (७) किरणोंवत् और गुरुओं का शिष्यों को तप करने का उपदेश। (८) उत्तम शान्तिदायक वाणी का प्रयोग हो। स्त्री पुरुष समान रूप से उन्नति पथ पर बढ़ें (९) ज्ञानवान् बलवानों का आदर (१०) शिष्यों, वीरों के कर्त्तव्य, वायु

मरुत् शिष्य, प्रजा वैश्य जन हैं। (११) नदीवत् वाणी और स्त्री का वर्णन। अधिकार, न्यायशासन योग्य पुरुष। (१२-१३) शस्त्र-सज्जित राजा के कर्त्तव्य। (१४) जलवत् राजा का अभिषेक संस्कार। (१५-१७) मातवत् राजा वा गुरु का कर्त्तव्य। प्रजा पीड़ारहित राज्य में रहे। सुखदायक नीति से रहे।

सू० [४४]—(१) राजा को राष्ट्र-दोहन का उपदेश। (२) राष्ट्र की रक्षा और समृद्धि का उपाय। (३) राजा की उन्नति का मार्ग। (४) करादान की विधि। (५) प्रजा को बढ़ाने का उपदेश। (६) वृक्षों के तुल्य शासक जनों को दयालु होने का उपदेश। (७-८) उत्तम राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (९) उत्तम वाणी, उत्तम गति उन्नति का मूल है। (१०) नायक होने योग्य पुरुष। (११) उत्तम सेना-नायक। (१२) उदार राजा। (१३) पितावत् राजा। (१४-१५) सावधान का महत्व, उसकी मैत्री।

सू० [४५]—(१) सूर्यवत् विद्वान् का ज्ञान प्रकाश करने का कर्त्तव्य। (२) नाना दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य। (३) गर्भवत् बालक के समान शिष्य वा राजा का कार्य। (४-७) ज्ञानवृद्ध्यर्थ विद्वानों के कर्त्तव्य। (८) वेद वाणियों का परम स्थान प्रभु। (९-११) तेजस्वी के कर्त्तव्य।

सू० [४६]—(१-६) गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश। विद्वानों के कर्त्तव्य। (७-८) स्त्रियों के कर्त्तव्य।

॥ इति चतुर्थेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

———

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-संहिता



अथ तृतीयोऽष्टकः

(तृतीये मण्डले)

[७] विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ६, १० त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् पंक्तिः । ११ भुरिक् पंक्तिः ॥

एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥

भा०—(धासेः) दुग्धपान करने वाले बालक के (मातरा) माता और पिता (परिक्षिता) उसके ऊपर और उसके साथ रहने वाले (पितरा) पालक होकर (प्रयक्षे) उत्तम मैत्रीभाव, संगति-लाभ तथा उत्तम दान प्रतिदान करने के लिये (संचरेते) साथ मिलकर धर्म का आचरण करें। (दीर्घम् आयुः) वे दीर्घ आयु (प्रसर्स्राते) प्राप्त करते हैं। परन्तु (ये) जो लोग (शितिपृष्ठस्य) सूक्ष्म विषयों पर भी प्रश्नशील और (धासेः) ज्ञान धारण करने वाले विद्वान् शिष्य ब्रह्मचारी के (मातरा) माता और (पितरा) पिताओं के समान उत्पादक और पालक गुरुजनों को (प्र-आरुः) उत्तम रीति से प्राप्त होते हैं वे (सप्त वाणीः) सातों प्रकार की छन्दोमयी

वाणी को (विविशुः) प्रविष्ट होते हैं। (परिक्षिता पितरा) दोषों को सब प्रकार से दूर करने वाले पालकजनों का मां बाप के समान ही आदर होता है। वे ज्ञान प्रदान करने के लिये उसके (सं चरते) साथ रहते और उसके (दीर्घम् आयुः) दीर्घ जीवन और ज्ञान को (प्रसर्स्रते) फैलाते हैं।

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः॥ २॥

भा०—(वृष्णः) जल बरसाने वाले सूर्य की (अश्वाः) व्यापनशील किरणें (दिवक्षसः) आकाश में व्यापती हैं। वे (धेनवः) संसार को रस-पान कराने वाली गौओं के समान हैं। उन (देवीः) प्रकाशमयी और (मधुम् उद्वहन्तीः) जल को ऊपर उठा लेने वाली किरणों को वह सूर्य ही (आतस्थौ) धारण करता है और (ऋतस्य सदसि) जल के या इस गति-शील संसार की स्थिति के एकमात्र स्थान आकाश में (क्षेमयन्तं) रक्षा करने और सुख शान्ति देने वाले सूर्य के (परि) चारों ओर (एका गौः) एक यह पृथिवी (वर्तनि) बार २ लौटकर आने वाला मार्ग (चरति) चलती है। उसी प्रकार (वृष्णः) बलवान् पुरुष, राजा की ही (अश्वाः) शीघ्रगामिनी अश्व-सेनाएं और (दिवक्षसः) व्यवहार तथा विज्ञानोपार्जन में लगी प्रजाएं ही (धेनवः) उसकी रस पिलाने वाली गौओं के समान हैं। वह बलवान् पुरुष (देवीः) कर आदि देने और ऐश्वर्यादि की कामना करने वाली (मधुम् उद्वहन्तीः) अन्न और बल को धारण करने वाली प्रजाओं पर गृहपति के समान (आ तस्थौ) अध्यक्षवत् विराजता है। हे राजन्! (ऋतस्य) सत्य व्यवहार वा अन्न से पूर्ण (सदसि) राज-सभा और भवन में (क्षेमयन्तं) सदा कल्याण करते हुए (त्वा परि) तेरा ही आश्रय करके (एका गौः) यह पृथिवी (वर्तनि) सन्मार्ग (चरति) चलती है।

आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान् रयिविद्रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (सीम्) सूर्य (पतिः) पालक (रयिविद्) भूमि को प्राप्त कर (भवन्तीः) उत्पन्न या प्रकट हुई (सुयमाः) उत्तम नियमों में व्यवस्थित रश्मियों को (अरोहत्) उत्पन्न करता है और वही (नीलपृष्ठः) नील वर्ण होकर भी (पुरुधप्रतीकः) बहुत प्रकार के सामर्थ्य से युक्त होकर (धासेः) विशेष नील वर्ण के रस को धारण करने में समर्थ (अतसस्य) अलसी नामक पौदे के भीतर ही (ताः प्र अवासयत्) उन २ वर्ण की रश्मियों को प्रविष्ट करा देता है वैसे ही (चिकित्वान्) ज्ञानवान् विद्वान् (रयीणाम्) ऐश्वर्यों का (रयिवित्) स्वामी (पतिः) सर्वपालक (सुयमाः) उत्तम सुखपूर्वक नियम में आने वाली (भवन्तीः) प्रजाओं को वश कर उन पर (सीम्) सब प्रकार से (आ अरोहत्) अधिष्ठित रहता है और वही (नीलपृष्ठः) नीलवर्ण का पीठ पर लबादा पहन कर अथवा (नील-पृष्ठः) नील मेघ के समान सौम्य और (पुरुधप्रतीकः) बहुतों को धारण करने में समर्थ ज्ञान और बल से सुस्वरूप होकर (अससस्य) निरन्तर गमन में समर्थ, आक्रमण आदि करने में तैयार (धासेः) धारण करने में तत्पर पुरुष के समान (ताः) अपनी उन प्रजाओं को (प्र अवासयत्) उत्तम रीति से बसा देता है ।

महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (स्तभूयमानं) स्तम्भन करने या थाम रखने वाले (त्वाष्ट्रम्) शिल्पी द्वारा बनाये यन्त्र-प्रबन्ध को (ऊर्जयन्तीः) अधिक बल देने वाली शक्तियों को (वहत) रथादि पदार्थ (वि अङ्गेभिः वहन्ति) विविध अंगों, कल पुर्जों से धारण करते हैं. (सधस्थे) उसी स्थान में (दिद्युतानः) दीप्तिमान् अग्नि, विद्युत् (रोदसी) शब्द करने या बल को

रोकने वाले दो स्थानों में (एकाम् इव) एक के समान ही प्रवेश करता है और जैसे सबको (स्तम्भूयमानं) स्तम्भन और धारण करने वाले (यजुर्यम्) न जीर्ण होने वाले स्थायी (त्वाष्ट्रं) सूर्य के तेज को (ऊर्जयन्तीः) बल रूप में बदलने वाली दीप्तियों को (वहतः) दूर तक ले जाने वाले तरङ्ग रूप किरण (वि अङ्गेभिः) विविध अंगों या प्रकाश के कणों के रूप में (वहन्ति) दूर तक पहुंचाने में समर्थ होते हैं और (दिद्युतानः) प्रकाशमान् सूर्य या विद्युत् (सधस्थे एकाम् इव) शयन स्थान में एक स्त्री को एक पुरुष के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी के बीच के भाग को (आविवेश) व्याप लेता है। वैसे ही (स्तम्भूयमानं) स्तम्भन करने वाले (त्वाष्ट्रम्) सूर्य के समान तीक्ष्ण प्रकाशवान् (अजुर्यं) अक्षय (महि) महान् (ऊर्जयन्तीः) ऐश्वर्य करने वाली प्रजाओं को (वहतः) अपने अधीन ले चलने वाले नायकगण (वि अंगेभि) अश्व, रथ, पदाति आदि विविध सेनाओं तथा राज्यांगों द्वारा (वहन्ति) धारण करते हैं।

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवो रुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः॥५॥१॥

भा०—(येषां) जिनकी (इला) इच्छा और स्तुति योग्य वाणी और भूमि (गण्या) गणना करने योग्य, पूज्य एवं गण अर्थात् सैन्य दलों और जनों की हितकारिणी और (गीः) उत्तम वाणी, उपदेश (माहिना) बड़ी महत्त्वपूर्ण सत्कार करने योग्य होती हैं वे (दिवः रुचः) प्रकाश से कान्तिमान्, विद्या-प्रकाश में रुचि रखने वाले (सुरुचः) उत्तम कान्तियुक्त (रोचमानः) स्वयं चमकते हुए, सर्वप्रिय होते हैं। वे (अरुषस्य) अहिंसक, रोषरहित, तेजस्वी (वृष्णः) बलवान् आचार्य, राजा या सेनापति के (शासने) शासन या उपदेश में (शेवं जानन्ति) सुख अनुभव करते हैं। (उत) और वे ही (ब्रध्नस्य) सबको व्यवस्था में बांधने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी आचार्य, राजा के (शासने) शासन में (रणन्ति) ज्ञान का अभ्यास करते और प्रसन्न होते हैं॥ इति प्रथमो वर्गः॥

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (उक्षा) सेचन में समर्थ बलवान् सूर्य (जरितुः अक्तोः) शब्द करने और जल सेचन करने वाले मेघ को (परिधानं) सब प्रकार से धारण करने में समर्थ (स्वं धाम) अपने तेज को अनुकूलता से धारण करता है और उस समय (महद्भ्याम् पितृभ्याम्) बड़े पालक सूर्य और पृथिवी या आकाश और भूमि दोनों से लोग (घोषम् अनु प्रविदा) गर्जन के अनन्तर उत्तम लाभ से (महः शूषम् अनयन्त) बड़े भारी सुख और अन्न को प्राप्त करते हैं और जैसे सूर्य जब (अक्तोः परिधानं) रात्रि के अनन्तर उसको दूर करने वाले (जरितुः स्वं धाम) और रात्रि को जीर्ण करने वाले स्व तेज को (ववक्ष) पहुँचाता है तब ब्रह्मचारी लोग (महद्भ्यां पितृभ्यां अनु) बड़े पूजनीय पालक या माता पिता और आचार्य इनसे (घोषम् अनु) वेद के अनुकूल (प्रविदा) उत्तम ज्ञान प्राप्त करके (महः शूषम्) बड़ा बल, ज्ञान और सुख प्राप्त करते हैं।

अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥

भा०—जैसे यज्ञ में (सप्त विप्राः) उद्‌गाताओं को छोड़कर शेष १२ ऋत्विजों में सात होता का का॰ करने वाले (पञ्चभिः अध्वर्युभिः) पांच यज्ञकर्त्ताओं के साथ मिलकर अथवा पांच अध्वर्युओं सहित पत्नी और यजमान सब सात विद्वान् होकर (वेः प्रियं पदं) कान्तिमान् अग्नि के स्थान, यज्ञ की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं और (अजुर्या उक्षणः देवाः) अविनाशी, जलादि सेचन समर्थ कान्तिमान् सूर्य की किरणें (प्राञ्चः) पूर्व दिशाओं में प्रकट होकर (देवानाम् व्रता अनु गुः) जल देने वाले मेघों के कार्यों का अनुगमन करते हैं। वैसे ही अध्यात्म में—(सप्त विप्राः) सात या सर्पणशील निरन्तर गति करने हारे और शरीर को विविध प्रकार से

पूर्ण करने वाले सात प्राण या देहस्थ सात धातु (पञ्चभिः) पांच (अध्वर्युभिः) देह को न मरने देने वाले, उसको जीवित रखने वाले पांच इन्द्रियों सहित अथवा पांच इन्द्रियां, मन और बुद्धि मिलकर सातों (निहितं) भीतर स्थित (वेः) व्यापक ज्योतिर्मय आत्मा के (प्रियं) अति प्रिय (पदं) स्वरूप की (रणन्ते) रक्षा करते हैं, उसको अपने भीतर धारण करते हैं। वे प्राण गण (प्राञ्च) आगे की ओर प्रकट होने वाले (उक्षणः) सुख के सेचन और देह को धारण करने हारे (अजुर्याः) कभी जीर्ण न होने वाले (देवाः) कान्तिमय और कामनाशील होकर (देवानाम् व्रता) सूर्य की किरणों के कर्त्तव्यों का (अनु गुः हि) अनुसरण करते हैं। अर्थात् जैसे (पञ्चभिः) परिपाक करने में समर्थ अहिंसक किरणों से मिलकर (सप्त) वेगवान् किरण सूर्य के प्रिय स्वरूप को रखते हैं और वे सेचन समर्थ होते और प्रकाश करते हैं वैसे ये इन्द्रियगण भी भीतर रस सुख सेचन करते और सब पदार्थों का ज्ञान प्रकाशित करते हैं और वे ही (मदन्ति) सबको सुखी करते हैं।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ८ ॥

भा०—जैसे दो (दैव्या) देने और लेने वाले (होतारा) जल देने और जलाकर्षण करने वाले (प्रथमा) सबसे श्रेष्ठ सूर्य और पृथ्वी दोनों मुख्य करके जाने जाते हैं, जिनके आश्रय पर (सप्त पृक्षासः) गतिशील जलसेचक मेघ (स्वधया) अन्न और जल से सबको (मदन्ति) हर्षित करते हैं (ऋतं शंसन्तः) जल की ही सूचना गर्जना द्वारा देते हुए (दीध्यानाः) प्रजाओं का धारण पोषण करते हुए (व्रतपाः) अपने नियमों का पालन करते हुए (व्रतम् अनु) नियम के अनुसार (ऋतम् इत् आहुः) अन्न की सूचना देते हैं। वैसे (दैव्या) विद्वानों और ज्ञान ऐश्वर्य के देने वालों में उत्तम ज्ञानैश्वर्य की कामना करने वालों के हितकारी (होतारा) ज्ञान अन्नादि देने वाले

(प्रथमा) उत्तम पिता और आचार्य दोनों को मैं (नि ऋञ्जे) अच्छी प्रकार पूजित करूं। वे (सप्त) सातों प्रकार के (पृक्षासः) सम्बन्धों से सम्बद्ध वा सप्त उपसर्पण या सत्संग करने योग्य (पृक्षासः) ज्ञान जलों की मेघों के समान वर्षा करने वाले (स्वधया) अन्न और आत्मज्ञान से (मदन्ति) स्वयं प्रसन्न रहते हैं। (ऋतं शंसन्तः) सत्योपदेश करते हुए (ते) वे (व्रतपाः) व्रतों के पालक (दीध्यानाः) निरन्तर ध्यान धारणा का अभ्यास करते हुए (ऋतम्) सत्य ज्ञान, वेदाभ्यास को (व्रतं) आचरणशील कर्त्तव्य का (अनु आहुः) निरन्तर उपदेश करते हैं।

वृ॒षा॒यन्ते॑ म॒हे अत्या॑य पू॒र्वीर्वृष्णे॑ चि॒त्राय॑ र॒श्मयः॑ सुया॒माः।
देव॑ होतर्म॒न्द्रत॑रश्चिकि॒त्वान्म॒हो दे॒वान् रोद॑सी॒ एह व॑क्षि ॥ ९ ॥

भा०—(रश्मयः महे अत्याय यथा सुयामाः वृषायन्ते) जैसे रासें वेगवान् अश्व को उत्तम रीति से वश करने वाली उसके लिये बन्धन के समान हो जाती हैं और जैसे (रश्मयः महे अत्याय चित्राय वृष्णे) बड़े भारी अद्भुत वर्षणकारी दीप्तिमान् सूर्य की किरणें (सुयामाः) चमकने वाली होकर (वृषायन्ते) वर्षणशील मेघ के समान आचरण करती हैं अर्थात् वृष्टि लाती हैं, वैसे ही (रश्मयः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाली व्यापक (सुयामाः) उत्तम व्यवस्था करने वाली (पूर्वीः) पहले के विद्वानों की बनाई व्यवस्थाएं वा पूर्णसमृद्ध प्रजाएं (महे) महान् (अत्याय) सबको अतिक्रमण करके रहने वाले, (वृष्णे) प्रजा को नियमों में बांधने वाले (चित्राय) सबके पूजनीय एवं अद्भुत पराक्रमी पुरुष के लिये भी (वृषायन्ते) उसको नियम में बांधने के लिये बलवती एवं सुखों की वृद्धि करने के लिये मेघतुल्य हो जाती हैं। (देवः देवान् रोदसी वहति) जैसे प्रकाशमान सूर्य किरणों को, आकाश और पृथिवी को धारण करता है वैसे ही हे (देव) विजय की कामना करने हारे विद्वन्! राजन्! हे (होतः) प्रजाओं को सुख एवं अधीनों को वेतनादि देने हारे! तू (मन्द्रतरः) अत्यधिक हर्षित करने वाला एवं (चिकित्वान्)

ज्ञानवान् होकर (महः) बड़े २ (देवान्) दानशील एवं विजयेच्छुक, नाना कामनाओं से युक्त वीर पुरुषों को और (रोदसी) स्वकीय प्रजावर्ग और शासकवर्ग या स्व और पर चक्र दोनों को (वक्षि) धारण कर।

पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१०॥

भा०—जैसे (उषसः ऊषुः) प्रभात वेलाएं प्रकट होती हैं वैसे ही हे (द्रविणः) ज्ञानवान् पुरुष! राजन्! (पृक्षप्रयजः) अन्नों को अच्छी प्रकार देने वाले (सुवाचः) उत्तम वाणी बोलने वाले और (सुकेतवः) उत्तम ज्ञान से युक्त और विद्याओं द्वारा ज्ञान कराने वाले, (उषसः) तेजस्वी ब्राह्मण (रेवत् ऊषः) ऐश्वर्य से पूर्ण राष्ट्र में बसें। (उतो चित्) और हे (अग्ने) तेजस्विन्! (चित्) सूर्य या अग्नि जैसे (पृथिव्याः एनः दशस्यति) पृथिवी के दोष को नाश करती है वैसे ही तू भी (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (पृथिव्याः) पृथिवी पर विस्तृत प्रजा के (कृतं एनः) किये हुए अपराध को (महे) बड़े सौभाग्य के लिये (सं दशस्य) अच्छी प्रकार नष्ट कर।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥२॥

भा०—व्याख्या देखो (मं०३।सू०१।ऋं०२३) इति द्वितीयो वर्गः ॥

[८] विश्वामित्र ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, ८, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५, ६, ११ त्रिष्टुप्। ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। ३, ७ स्वराडनुष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १ ॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान राष्ट्रैश्वर्य के विभागों के भोक्ता, प्रजा के पालक, शिष्यजनों के पालक विद्वन्! तू

(यत्) जब (ऊर्ध्वः) गुणों और अधिकारों में सबसे उत्कृष्ट होकर (तिष्ठ) रह और (इह) इस राष्ट्र में और शिष्य में (द्रविणा) नाना ऐश्वर्य (धत्तात्) धारण करा (यत् वा) और जब (अस्याः मातुः) इस सर्वोत्पादक माता पृथिवी के (उपस्थे) गोद में बालक के समान (क्षयः) तेरा निवास हो तब जैसे (देवयन्तः दैव्येन मधुना अञ्जन्ति) सूर्य की किरणें जल देने वाले मेघ के समान होकर मेघस्थ जल से भूमि को सींचते हैं और वे स्वयं प्रकाशमान होकर सूर्य के प्रकाश से समस्त भूमि को प्रकाशित करते हैं वैसे ही (अध्वरे) हिंसा रहित, प्रजाओं को नाश न करने वाले राष्ट्रपालन रूप व्यवहार में (त्वाम्) तुझको (देवयन्तः) चाहते हुए (दैव्येन) देव, विद्वानों के योग्य (मधुना) अन्न और ज्ञान से (त्वाम् अञ्जन्ति) तुझे प्रकाशित करते हैं।

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥

भा०—हे वनस्पते ! राजन् ! विद्वन् ! तू (समिद्धस्य) अच्छी प्रकार प्रज्वलित, ज्ञानवान् पुरुष के (पुरस्तात्) आगे (श्रयमाणः) स्थिर होकर (अजरं) अविनाशी (सुवीरम्) उत्तम वीर्य-बल के दाता (ब्रह्म) वेदज्ञान और ऐश्वर्य को (वन्वानः) सेवन और अभ्यास करता हुआ (अस्मद् आरे) हमारे समीप और दूर के (अमतिं) अधर्म युक्त, जड़ बुद्धि को और शत्रु सेना को भी (बाधमानः) दूर करता हुआ (महते सौभगाय) बड़े भारी उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (उत् श्रयस्व) उन्नत पद पर स्थिर हो॥

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सूर्य के समान तेजस्वी शिष्यों और वीरों के पालक ! (पृथिव्याः वर्ष्मन्) वृष्टि जलादि युक्त स्थान पर बड़े वृक्ष के समान तू भी (पृथिव्या वर्ष्मन्) पृथिवी के सुप्रबन्ध से युक्त राष्ट्र शासन

के कार्य में (तत् श्रयस्व) उन्नत पद पर विराज और (सुमिती) जैसे बड़ा भारी वृक्ष बड़े परिमाण से (मीयमानः) मापे जाने योग्य होता है वैसे ही तू भी (सुमिती) शुभ, उत्तम माप या पैमाने से मापा जाकर (वर्चोधाः) तेज और बल को धारण करता हुआ (यज्ञवाहसे) राज्यरूप यज्ञ को वहन करने के लिये (पृथिव्याः अधि) पृथिवी पर उन्नत हो। (सुमिती मीयमानः) उत्तम ज्ञान से तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी होकर दान दिये जाने योग्य अध्यापनीय ज्ञान को धारण करने, कराने के लिये उन्नत पद पर विराज।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥

भा०—(युवा) बलवान् (सुवासाः) उत्तम वस्त्रों को धारण करता हुआ (परिवीतः) सब प्रकार से विद्याओं को प्राप्त कर तेजस्वी, उपवीत-धारी ब्रह्मचारी के समान (आ अगात्) प्राप्त हो। (सः उ) वह ही (जायमानः) माता के गर्भ के समान विद्या के गर्भ में से उत्पन्न होता हुआ (श्रेयान् भवति) सबसे श्रेष्ठ हो। (धीरासः) बुद्धिमान् (कवयः) विद्वान् (स्वाध्यः) उत्तम विद्या को प्रदान करने वाले जन उसको (मनसा) चित्त से (देवयन्तः) चाहते हुए और (मनसा देवयन्तः) ज्ञानप्रकाश से दानशील सूर्य समान तेजस्वी बनाते हुए (तम् उन्नयन्ति) उसको ऊंचे पद पर ले जावें।

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥५॥३॥

भा०—जैसे सूर्य (अह्नां सुदिनत्वे जायते) प्रकट होकर उत्तम दिन बनाने में समर्थ होता है वैसे ही (समर्ये) मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान संग्राम या सभास्थलों और (विदथे) यज्ञों में भी (वर्धमान) बढ़ता हुआ (जातः) विद्वान् और वीर पुरुष (अह्नां) आगे आने वाले विपक्षियों

और मित्रों के दिनों को उत्तम बनाने में समर्थ होता है। (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (मनीषा) विचारपूर्वक ही (अपसः) कर्मों को पवित्र करते हैं और (देवानां) विद्वानों का सत्कार करने हारा (विप्रः) विद्वान् ब्राह्मण भी (मनीषा) उत्तम मननशील मति से ही (वाचम्) वेद वाणी को (उद् इयर्त्ति) उच्चारण करता है। इति तृतीयो वर्गः॥

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम्॥६॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यान् वः) जिन आप लोगों को (देवयन्तः) कामनाशील पुरुषों के समान आचरण करने वाले (नरः) नायकजन और शिष्यों के इच्छुक गुरुजन (नि मिम्युः) अच्छी प्रकार से उपदेश करते और (स्वधितिः वा) मेघों को वज्र के समान, काष्ठों को कुठार के समान, हे (वनस्पते) सर्वाश्रय! सैन्यदलपते! तू जिनको (ततक्ष) गढ़ता और तैयार करता है (ते) वे (देवासः) विद्वान् और वीर पुरुष (स्वरसः) सूर्य के समान तेजस्वी और स्वयं विद्योपदेशों से युक्त, (तस्थिवांसः) स्थिर बुद्धि होकर (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये (प्रजावत्) प्रजा से युक्त (रत्नम्) रमणीय धन (दिधिषन्तु) धारण करें और दें।

ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः॥७॥

भा०—(ये) जो (वृक्णासः) अविद्या के बन्धनों को काट देनेहारे, (यत-स्रुचः) प्राणों और इन्द्रियों का संयम करने वाले, (अधि क्षमि) क्षमा में रहकर (निमितासः) स्थिर रूप से ज्ञानवान् या परिमित भाषण करने वाले (क्षेत्र-साधसः) देह पर वश करने में कुशल हैं (देवत्रा) ज्ञानी और दानशील पुरुषों के बीच वे (नः) हमारे (वार्यं) वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों को (व्यन्तु) प्रदान करें।

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥

भा०—(आदित्याः) सूर्यगण, सूर्य की किरणों और बारहों मास (रुद्राः) और प्राणगण और आकाश के वायु (वसवः) पृथिव्यादि लोक और जीवगण जैसे (सुनीथाः) उत्तम रीति से संगत होकर (द्यावा क्षामा) सूर्य पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों को व्यापक (सजोषसः) एक समान रूप से सेवने योग्य (यज्ञम् अवन्ति) सुव्यवस्थित संसार-प्रबन्ध और परस्पर के जल प्रकाश आदि के लेने देने के व्यवहार को चला रहे हैं और (अध्वरस्य) महान् यज्ञ के (केतुम्) प्रवर्त्तक और व्यापक सूर्य और परमेश्वर को (ऊर्ध्वं कृणवन्ति) सबसे ऊपर रखते हैं वैसे ही (आदित्याः) सूर्यसमान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी, परस्पर आदान-प्रतिदान करने वाले वैश्य जन, (रुद्राः) नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण ए दुष्टों को रुलाने वाले क्षत्रियगण (वसवः) २४ वर्ष के ब्रह्मचारी एवं राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजन (द्यावा क्षामा) आकाश और भूमि (पृथिवी अन्तरिक्षम्) पृथिवी और अन्तरिक्ष इन सबको वशकर (सजोषसः) समान प्रेरित भाव से युक्त होकर (देवाः) दानशील और तेजस्वी होकर (यज्ञम् अवन्तु) परस्पर के सत्सङ्ग की रक्षा करें और (अध्वरस्य) इस हिंसारहित राष्ट्र-यज्ञ के (केतुम्) ज्ञापक और ध्वजा के समान उन्नत और मान आदर के योग्य पुरुष को (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर (कृण्वन्तु) रक्खें ।

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥९॥

भा०—(हंसा इव श्रेणिशः) पंक्ति बांधकर जैसे हंस शब्द करते हुए आते हैं वैसे ही (शुक्रा वसानाः) स्वच्छ वस्त्रों के धारक (श्रेणिशः यतानाः) अपने २ वर्ग या पंक्ति में बद्ध होकर यत्न करते हुए (स्वरसः) शत्रुओं को पीड़ा देने वाले, या उत्तम शब्द करते हुए, उत्तम उपदेश वचन कहते

हुए (नः) हमें (आगुः) प्राप्त हों। वे (पुरस्तात्) सबके समक्ष (कविभिः) विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुषों द्वारा (उत् नीयमाना) उत्तम पद पर पहुँचाये हुए (देवाः) विद्वान् और विजयी पुरुष (देवानाम्) सूर्य के प्रकाशक किरणों के (पाथः) जल को जलप्रद मेघों के समान उनके (पाथः) अनुकरणीय मार्ग को (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं देदृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम्।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥ १० ॥

भा०—विद्वान् और वीरजन (पृथिव्याम्) इस पृथ्वी पर (चषालवन्तः) भोग करने योग्य नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न और (स्वरवः) शत्रुओं को तपाने वाले और उत्तम वचन कहने वाले हों और वे चषालवन्तः स्वरवः) सुन्दर छल्लों से युक्त यज्ञ के यूपों के समान (शृङ्गिणां) सींग वाले बैल आदि पशुओं या उच्च पर्वतों के (शृङ्गाणि इव) सींगों या शिखरों के समान ऊंचे स्थान पर स्थित हों, आगे बढ़कर विपक्षियों के नाशक होकर (संददृश्रे) अच्छी प्रकार दीखें। वे (वाघद्भिः) विद्वानों द्वारा (विहवे) विविध उपदेश दान से युक्त स्वाध्यायकाल या विशेष आह्वान करने के संग्रामकाल में (श्रीयमाणाः) उपदेश और ज्ञान श्रवण करते हुए (अस्मान्) हमारी (पृतनाज्येषु) संग्रामों में (अवन्तु) रक्षा करें।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥४॥

भा०—हे (वनस्पते) महावृक्ष के समान याचनाशील जनों और ऐश्वर्यों के पालक राजन्! शिष्यों के पालक विद्वन्! सैन्य दलों के पालक सेनापते! तुझको (अधितिः) बल से धारण करने योग्य उत्तम शस्त्रबल और शास्त्रबल (तेजमानः) तीक्ष्ण करता हुआ (महते सौभगाय) बड़े भारी ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (प्र;निनाय) उन्नत पद पर पहुँचाता है। शस्त्र से काटा जाकर भी पुनः सहस्रों शाखाओं से फूटने वाला वट आदि

वनस्पति जैसे (शतवल्शः सहस्रवल्शः) सैकड़ों सहस्रों शाखाओं और अंकुरों से युक्त होकर वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही तू (शतवल्शः सहस्रवल्शः) सैकड़ों और हजारों अंग प्रत्यंग एवं पुत्र पौत्रादि रूप शाखाओं, अंकुरों से युक्त होकर (विरोह) विविध प्रकार से उन्नत हो और (वयम्) हम भी (वि रुहेम) विविध वृद्धि को प्राप्त हों। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[९] विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः १, ४ बृहती । २, ५, ६, ७ निचृद्बृहती । ३, ८ विराड् बृहती । ९ स्वराट् पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १ ॥

भा०—हम सब (सखायः) एक समान नाम, ख्याति वाले (मर्तासः) मरणधर्मा मनुष्य (ऊतये) रक्षा, ज्ञान और मनोकामना की पूर्त्ति के लिये (अपां नपातम्) प्राणों के बीच आत्मा के समान, स्वयं नाश न होने वाले, प्राणों को बांधने वाले आप्त प्रजाजनों के प्रबन्धक, (सुभगं) उत्तम ऐश्वर्यवान् (सुदीदितिम्) उत्तम ज्ञान प्रकाश से युक्त, तेजस्वी (सुप्रतूर्त्तिम्) सुखपूर्वक पार पहुँचा देने और खूब वेग वाले, क्रियावान्, (अनेहसम्) अहिंसक (त्वा) तुझको हे विद्वन्! हे नायक! हम लोग गुरु, नेता, रक्षक रूप से (ववृमहे) वरण करते हैं।

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥ २ ॥

भा०—जैसे अग्नि (कायमानः) कान्तिमान् होकर (वना अजगन्) वनों में लगता और विद्युत् रूप से (अपः अजगन्) जलों को भी प्राप्त है और उसका (निवर्त्तनं) बुझाना भी असह्य होता है, अग्नि (दूरे सन् इह अभवः) दूर रहकर भी प्रकाशरूप से समीप हो जाता है वैसे ही

हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! (जना) सेवन योग्य ज्ञानों को (कायमानः) चाहता हुआ, देता हुआ (यः त्वं) जो तू (मातृः अपः) माता के समान स्नेहवान् आप्त पुरुषों को (अजगन्) प्राप्त हो, हे अग्ने! विद्वन्! एवं विनयशील! (ते) तेरे (तत्) उस (निवर्त्तनम्) विद्याभ्यास के पथ से 'निवर्त्तन' लौट आने को मैं (न प्र मृषे) कभी सहन न करूं। (यत्) जो तू (दूरे सन्) दूर रहकर (इह अभवः) फिर यहां रहता है।

अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! आचार्य! हे प्रभो! तू (तृष्टं) प्यारे, विद्या के तीव्र अभिलाषी शिष्य को (अति ववक्षिथ) अज्ञान से पार वा उत्तम २ उपदेश कर। अथवा—(तृष्टं अति ववक्षिथ) चाहे तू अति 'तृष्ट' तीखा, कटु, कठोर वचन ही कहे (अथैव) तो भी तू (सुमनाः असि) शुभ चित्त, शुभ कामना युक्त (असि) हो। हे विद्वन् आचार्य! तू जिनके (सख्ये) मित्रभाव में (श्रितः) स्थित हो, उन शिष्यजनों में से भी (अन्ये) कुछ विद्यार्थी (प्र प्रयान्ति) विद्या समाप्त करके चले जाते हैं और (अन्ये) दूसरे जिनकी विद्या समाप्त नहीं हुई वे (परि आसते) तेरे समीप ही बैठते हैं।

ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४ ॥

भा०—विद्वान् लोग जैसे (अप्सु श्रितम्) जलों में स्थित विद्युत् अग्नि को भी (अद्रुहः) उससे द्रोह न करते हुए अनुकूल रूप से वशमें कर लेते हैं वैसे ही (निचिरासः) अति काल से विद्यमान (अद्रुहः) द्रोह-रहित प्रजाएं भी (स्रिधः) हिंसाकारिणी शत्रु सेनाओं और सहनशील सेनाओं को (अति ईयिवांसम्) अतिक्रमण करने वाले, उनसे अधिक शक्तिशाली और (शश्वतीः) अपने राष्ट्र की पूर्व से ही विद्यमान और (सश्चतः) साथ में सहयोग करने वाली प्रजाओं को भी (अति) अतिक्रमण

करने वाले (ईम्) इस नायक पुरुष को (अप्सु श्रितं) आप्त प्रजाओं के बीच स्थित (सिंहम् इव) सिंह के समान पराक्रमी पुरुष को (अनु अविन्दन्) प्राप्त करें ।

ससृवांसमिव त्मनाऽग्निमित्था तिरोहितम् ।
एनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—जैसे (त्मना) अपने स्वरूप से (ससृवांसम्) व्यापक और (तिरः हितम्) छुपे हुए (अग्निम्) अग्नि को (मथितं परि) मथे जाने के उपरान्त (मातरिश्वा परावतः परि आ अनयत्) वायु दूर २ तक ले जाता है वैसे ही (इत्था) सत्य के बल से और (त्मना) अपने बल से (ससृवांसम्) आगे बढ़ने वाले (तिरः-हितम्) सबसे ऊपर विराजमान (एवं) इस (मथितम्) मन्थन करके निकाले सारवान् भाग से युक्त, एवं मथ कर निकाले गये (अग्निम् इव) अग्नि के समान प्रकाशमान, तेजस्वी (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को (मातरिश्वा) ज्ञानी पुरुष के आश्रय से आगे बढ़ने वाला शिष्यगण (देवेभ्यः) उत्तम कमनीय गुणों को प्राप्त करने के लिये (परावतः) दूसरे दूर देशों से भी (परि आ अनयन्) आ आ कर प्राप्त करते हैं । इति पञ्चमो वर्गः ॥

तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥ ६ ॥

भा०—हे (हव्यवाहन) ग्रहण योग्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों को धारण करने और प्राप्त कराने हारे विद्वन् ! (मर्त्ताः) मनुष्य लोग (देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों और विद्यादि चाहने वालों के हितार्थ शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिये (तं त्वा) उस तुझ श्रेष्ठ पुरुष को (अगृभ्णत) स्वीकार करते हैं । हे (मानुष) मननशील ! मनुष्यों के हितकारक ! हे (यविष्ठय) युवा पुरुषों में सबसे उत्तम, बलवन् ! तू (तव) अपने (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से (विश्वान्) सब (यज्ञान्) श्रेष्ठ कर्मों, उत्तम दानयोग्य

ज्ञानों, दानयोग्य धनों तथा सत्संग करने योग्य विद्वानों को भी (अभि पासि) सब प्रकार से पालन करता है।

तद्भद्रं तव॑ दंसना पाका॑य चिच्छदयति।
त्वां यद॑ग्ने पशवः॑ समासते॒ समि॑द्धमपिशर्व॒रे ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जैसे (पशवः अपिशर्वरे समिद्धम्) रात्रि के अन्धकार में प्रदीप्त अग्नि के समीप ही समस्त गवादि पशु और मनुष्यादि आश्रय पाते हैं वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवान्! (यत्) जब (अपिशर्वरे) रात्रि के समान घोर अज्ञानान्धकार के काल और चारों ओर से हिंसाकारी शस्त्रादि के द्वारा प्रवृत्त संग्राम-काल में (पशवः) सब मनुष्य पशुओं के समान अज्ञानी और अधीनता स्वीकार करने वाले (समिद्धम्) ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित और तेजस्वी (त्वाम्) तुझको ही (सम्-आसते) आश्रय लेते हैं। (तव) तेरा (तद्) वह (भद्रम्) सुख-जनक (दंसना) उत्तम कर्म और ज्ञान दर्शन ही (पाकाय) परिपाक के लिये अग्नि के तेज के समान अपने ज्ञान-अनुभव और बल वीर्य को परिपक्व करने या उत्तम उपदेश देने के लिये (चित्) ही (छदयति) उनको वस्त्रों और कवचों से आच्छादित या सुशोभित करता है।

आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पा॑वकशो॑चिषम्।
आ॒शुं दू॒तम॑जि॒रं प्र॒त्नमीड्यं॑ श्रु॒ष्टी दे॒वं स॑पर्यत ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (सु-अध्वरम्) उत्तम यज्ञ करने वाले, अहिंसक, स्वयं हिंसादि से पीड़ा न देने योग्य (शीरम्) सुप्त के समान अति शान्त, (पावक-शोचिषम्) पवित्र करने वाली दीप्ति से युक्त, (आशुम्) विद्याओं में व्यापक, (दूतम्) सेवा करने योग्य (प्रत्नम्) वृद्ध (ईड्यं) स्तुति योग्य (देवं) दानशील, ज्ञानों के प्रकाशक विद्वान् को (आजुहोत) अच्छी प्रकार स्वीकार करो, आदर से बुलाओ और उसकी (सपर्यत) सेवा सत्कार करो।

त्रीणि शृता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निं देवाः असपर्यन्) जैसे अग्नि में दिव्य किरण आश्रित हैं, वे उसे (घृतैः औक्षन्) तेजों से बढ़ाते और (अस्मा बर्हिः अस्तृणन्) उसके वृद्धिशील रूप या प्रकाश को फैलाते हैं वैसे ही (त्रीणि शता त्री सहस्रा, त्रिंशत् च नव च) तीन हजार, तीन सौ, तीस और ९ अर्थात् ३३३९ (देवाः) वीर पुरुष (अग्निम् असपर्यन्) अग्रणी तेजस्वी नायक की सेवा करें, उसके अधीन आज्ञा पालन करें। वे उसको (घृतैः) तेजों से (औक्षन्) घी से अग्नि के समान ही बढ़ावें और (अस्मा) उसके (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र को (अस्तृणन्) विस्तृत करें और (आत्) अनन्तर उसी (होतारं) सर्वैश्वर्य के दाता राजा को (नि असादयन्त) स्थापित करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१०] विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ विराडुष्णिक् ३ उष्णिक् । ४, ६, ७, ९ निचृदुष्णिक् । २ भुरिग् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! प्रभो! (मनीषिणः) मन को वश करके सन्मार्गगामी बुद्धिमान् (मर्त्तासः) पुरुष (चर्षणीनां) दर्शन करने वाले ज्ञानी पुरुषों और प्रजाओं (सम्राजं) तेजस्वी सम्राट् के समान सबके शासक (देवं) दानशील, विजीगीषु (त्वाम्) तुझको (अध्वरे) शत्रुओं द्वारा न नाश होने वाले, दृढ़ राज्य-पालन एवं यज्ञकर्म में (सम् इन्धते) प्रकाशित करते हैं।

त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (यज्ञेषु) उपासना आदि व्यवहारों में (ऋत्विजम्) ज्ञानवान् पुरुषों में ज्ञान देने वाले, (होतारम्) समस्त संसार (त्वाम्) तेरी (ऋतस्य गोपाः) सत्य धर्माचरण के पालकजन (ईळते) स्तुति करते हैं और तू भी (ऋतस्य गोपाः) सत्य ज्ञान का रक्षक होकर (स्वे दमे) अपने जगत् के दमन कार्य और अन्तःकरणों में प्रकट हर्ष रूप में (दीदिहि) प्रकाशित हो ।

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे ।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक, प्रभो ! (यः) जो पुरुष (जातवेदसे) उत्पन्न हुए प्रत्येक पदार्थ के भीतर विद्यमान (ते) तुझको (समिधा) हृदय प्रकाशित करने वाले विज्ञान द्वारा (ददाशति) अपना आत्मा सौंप देता है (सः) वह (सुवीर्यम्) उत्तम बल, पराक्रम को (धत्ते) धारण करता है और (सः) वही (पुष्यति) धनधान्य, गौ, पशु, सुवर्णादि से पुष्ट और समृद्ध होता है ।

स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् ।
अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः अध्वराणां केतुः) अग्नि यज्ञों का ज्ञापक और (सप्तहोतृभिः अञ्जानः) सात होताओं द्वारा प्रकाशित होता है । वैसे ही (सः) वह (अध्वराणां) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले जीवात्माओं और सत्कर्मों का (केतुः) ज्ञान देने और प्रकाशित करने वाला (अग्निः) तेजोमय परमेश्वर (देवेभिः) दिव्य गुणों, दिव्य पदार्थों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों द्वारा (आगमत्) हमें प्राप्त हो । वही (सप्तहोतृभिः) प्रकाश देने वाली सात रश्मियों से सूर्य के समान और सात प्राणों से आत्मा के समान (सप्त) सात वा सर्पणशील (होतृभिः) संसार के धारक प्रवहण आदि सात तत्वों से, ज्ञान प्रदान करने वाले सात छन्दों से (हविष्मते)

'हवि' अर्थात् ज्ञान-ग्रहण में समर्थ बुद्धि-बल से युक्त पुरुष के लिये (अज्ञानः) अपने गुणों और ज्ञानों का प्रकाश करने हारा है ।

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप (विपां) विद्वानों के मध्य (ज्योतींषि) ज्ञानमय ज्योतियों के (बिभ्रते) धारक (वेधसे न) श्रेष्ठ विद्वान् के समान (अग्नये) ज्ञान-प्रकाशक और (बृहत् पूर्व्यम्) बहुत बड़े, पूर्वों द्वारा उपासित (वचः) वेदवाणी के (होत्रे) दाता और धारक परमेश्वर के लिये (बृहत्) बहुत अन्नादि (प्र भरत) लाओ । एवं परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (बृहत् प्र भरत) बड़ा ज्ञान प्राप्त करो । इति सप्तमो वर्गः ॥

अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः ।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निम्) अङ्ग में विनयशील तेजस्वी पुरुष को (नः गिरः) हमारी वाणियां (वर्धन्तु) बढ़ावें (यतः) जिनसे वह (उक्थ्यः) उक्थ अर्थात् वेद और वेदोपदिष्ट ब्रह्म ज्ञान में निपुण, प्रशंसनीय (जायते) हो और (महे) बड़े भारी (वाजाय) ज्ञान और बल प्राप्ति और (द्रविणाय) ऐश्वर्य लाभ के लिये भी (दर्शतः) दर्शनीय हो ।

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान परमेश्वर ! तू (यजिष्ठः) सब दान देने, सत्संग करने और मैत्रीभाव रखने वालों में सर्वश्रेष्ठ है । तू (देवयते) उत्तम गुणों और विद्वानों की (यज) संगति कर । तू (होता) सबका दाता, धर्त्ता (मन्द्रः) सबको हर्षित करने वाला, (स्त्रिधः) विद्या आदि गुणों को नाशक दुर्वासनाओं को (अति विराजसि) लांघकर, उनसे कहीं ऊपर प्रकाशित है ।

स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् ।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥

भा०—हे (पावक) पवित्र करने हारे, प्रभो ! (सः) वह तू (नः) हमें (दीदिहि) प्रकाशित कर और (अस्मे) हमें (द्युमत्) कान्ति से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम वीर्य, बल (दीदिहि) प्रदान कर । तू (स्वस्तये) सुख कल्याण की वृद्धि के लिये (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता पुरुषों के (अन्तमः) समीपतम, अन्तःकरण में स्थित (भव) हो ।

तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥ ८ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! (विपन्यवः) विविध प्रकार से स्तुतिकर्त्ता (विप्राः) ज्ञानी पुरुष (जागृवांसः) जागरणशील ब्राह्ममुहूर्त्त में जागने वाले, सावधान (हव्यवाहम्) देने योग्य ज्ञान के दाता, (सहोवृधम्) सहन करने, शत्रुओं को परास्त करने वाले, बल को बढ़ाने वाले, (अमर्त्यं) अमरणशील, (तं) उस प्रसिद्ध (त्वा) तुझको (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार यज्ञाग्नि के समान ही प्रकाशित करते हैं । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[११] विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ८ निचृद्गायत्री । ३, ९ विराड् गायत्री । ४, ६ गायत्री ॥

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः ।
स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥

भा०—जो (अग्निः) विद्वान् पुरुष (होता) दानशील, (पुरोहितः) दीपक के समान समक्ष अध्यक्षरूप में स्थापित किया जाता है वह (अध्वरस्य) जिस कार्य में प्रजाओं का नाश न हो, उसका (विचर्षणिः) विविध रूप से देखने हारा हो (सः) वही (यज्ञम्) परस्पर के सत्संग, दान सत्कार आदि के (आनुषक्) आनुपूर्वी क्रम से विधिविधान को (वेद) भली प्रकार जाने ।

स ह॒व्य॒वाळम॑र्त्य उ॒शिग्दू॒तश्चनो॑हितः।
अ॒ग्निर्धि॒या समृ॑ण्वति ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (हव्यवाड्) दान देने और लेने योग्य पदार्थों को स्वयं और अन्यों को प्राप्त कराने हारा (अमर्त्यः) साधारण पुरुषों से विशेष (उशिक्) अग्नि के समान तेजस्वी, उत्तम पदार्थों की कामना करने वाला (दूतः) दुष्टों को संतापदायक और सेवा के योग्य, (चनोहितः) पचन योग्य अन्न और उत्तम वचन योग्य ज्ञानादि का हितकारी (अग्निः) अग्रणी हो वह (धिया) बुद्धि और उत्तम कर्म से (सम् ऋण्वति) अच्छी प्रकार कार्यों को जाने और उत्तम मार्ग पर चले।

अ॒ग्निर्धि॒या स चे॑तति के॒तुर्य॒ज्ञस्य॑ पू॒र्व्यः।
अर्थं॒ ह्य॑स्य त॒रणि॑ ॥ ३ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान्, विद्वान् (धिया) उत्तम बुद्धि से (चेतति) विचार करे वह (यज्ञस्य) सत्कार आदि कार्यों में (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान, वृद्धजनों में कुशल और (केतुः) सब कर्त्तव्यों का बतलाने वाला एवं ध्वजा के समान सर्वोपरि अग्रगण्य हो (अस्य) इसका (अर्थं हि) गमन, चेष्टा और प्रयोजन भी (तरणि) प्रजा को दुःखों से तारने वाला लोकोपकारक हो।

अ॒ग्निं सू॒नुं सन॑श्रुतं॒ सह॑सो जा॒तवे॑दसम्।
वह्निं॑ दे॒वा अ॑कृण्वत ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (देवाः) व्यवहार और शिल्पकुशल विद्वान् लोग (सहसः सूनुं) बल के सञ्चालक और उत्पादक (अग्निं) अग्नि तत्व, विद्युत् को (वह्निं) रथादि को देश से देशान्तर में उठाकर ले जाने में समर्थ (अकृण्वत) बना लेते हैं। वैसे ही (अग्निम्) अग्रणी और ज्ञानवान् (सनश्रुतम्) सनातन शास्त्रों को श्रवण करने हारे (जातवेदसम्) पदार्थ

मात्र के ज्ञाता एवं ऐश्वर्यवान् (सहसः सूनुं) बल के उत्पादक, सैन्यबल के सञ्चालक पुरुष को (देवाः) व्यवहारकुशल पुरुष (वह्निं) राष्ट्र कार्य को वहन करने में समर्थ (अकृण्वत) बनावें ।

अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।
तूर्णी रथः सदा नवः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(तूर्णीरथः) अति वेगवान् रथ जैसे (मानुषीणाम् विशाम् पुरः एता) प्रजाओं के बीच सबसे आगे चलता है वैसे ही (मानुषीणाम्) मननशील, मनुष्य (विशाम्) प्रजाओं के बीच (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (अदाभ्यः) किसी से भी मारा न जा सकने योग्य, बलवान् और रक्षा करने योग्य, (तूर्णी) कार्य करने में क्षिप्रकारी (रथः) वेगवान् और (सदानवः) सदा नवीन, सर्वस्तुत्य होकर (पुरः एता) आगे २ चलने हारा हो । इति नवमो वर्गः ॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः) अग्रगी नायक तेजस्वी पुरुष (तुविश्रवस्तमः) बहुत से ऐश्वर्यों से सम्पन्न, (देवानाम्) प्राणों के बीच (अमृक्तः) [अमृतः, ककारोपजनः] अमर आत्मा के समान वा (देवानाम्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच (अमृक्तः) शत्रुजनों से न मारा जा सकने योग्य, (क्रतुः) कर्मकुशल और (विश्वान् अभियुजः) समस्त अभियोक्ता, आक्रमणकारी शत्रुओं को (साह्वान्) पराजित करने वाला और सहयोगिनी प्रजाओं को भी वश करने वाला हो ।

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।
क्षयं पावकशोचिषः ॥ ७ ॥

भा०—(दाश्वान् मर्त्यः) दानशील, प्रजाजन (वाहसा) उत्तम उद्देश्य

तक पहुँचा देने वाले नायक एवं विद्वान् पुरुष के द्वारा ही (प्रयांसि) अन्न ज्ञान, बल आदि प्रिय पदार्थों को (अभि-अश्नोति) प्राप्त करता है और वही (पावकशोचिषः) अग्नि के तेज के समान तेज वाले उस नायक के (क्षयं) निवास योग्य गृह को भी (अभि अश्नोति) प्राप्त करता है।

परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः।
विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥

भा०—हम (विप्रासः) बुद्धिमान् (जातवेदसः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न हो (अग्नेः) अग्रणी पुरुष वा प्रभु के (मन्मभिः) मनन-योग्य वचनों और सामर्थ्यों से (विश्वानि) सब प्रकार के (सुधितानि) सुख से धारण-योग्य पदार्थों का (परि अश्याम) सब प्रकार से भोग करें।

अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे।
त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे नायक! हम लोग (देवासः) धनादि ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (त्वे) तेरे प्रति (ऐरिरे) शरण आते, प्रार्थना करते हैं और हम सब (वाजेषु) संग्रामों में वा ऐश्वर्यों के प्राप्त होने पर (विश्वानि) सब प्रकार के (वार्या) वरणयोग्य ऐश्वर्यों को (सनिषामहे) एक दूसरे को दान करें। इति दशमो वर्गः ॥

[१२] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ९ निचृद्‌गायत्री । २, ४, ६ गायत्री । ७ यवमध्या विराड्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और हे अग्ने! हे ऐश्वर्यवन् हे ज्ञानवन्! मेघ और सूर्य के समान जीवन, प्राण अन्न और ज्ञान देने वाले गुरुजनो! आप दोनों (आ गतम्) आइये। जैसे मेघ और सूर्य मिलकर (नभः)

आकाश को (गीर्भिः) गर्जना आदि मध्यम वाणियों से व्यापते हैं वैसे ही आप दोनों भी (गीर्भिः) उत्तम उपदेशों से (वरेण्यम्) स्वीकार योग्य (नभः) विद्या और योनि सम्बन्धों से बन्धे (सुतम्) उत्पन्न हुए पुत्र वा शिष्य को (आ गतम्) प्राप्त होओ और आप दोनों (धिया इषिता) ज्ञान और कर्म द्वारा उसको सन्मार्ग में प्रेरित करते हुए (अस्य) इसको (पातम्) पालन करो ।

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त वायु और सूर्य के समान बल और ज्ञान से युक्त आप दोनों के समीप ही (यज्ञः) सत्सङ्ग करने एवं विद्योपदेशादि देने योग्य (चेतनः) ज्ञान से प्रबुद्ध पुत्र वा शिष्य (जिगाति) प्राप्त होता है। आप (जरितुः सचा) उपदेष्टा सहायक होकर (इमं सुतम्) इस पुत्रादि को (अया पातम्) वाणी से पालन करो ।

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रम्) वायु के समान बलवान् और (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी दोनों (कविच्छदा) विद्वान् पुरुषों को अन्न वस्त्रादि से आच्छादित करने वाले हैं उन दोनों को मैं (यज्ञस्य) मैत्री भाव की (जूत्या) प्रेरणा या बल से (वृणे) वरण करता हूँ । (ता) वे दोनों (इह) इस समय (सोमस्य) सौम्य स्वभाव वाले शिष्य के उत्तम गुणों द्वारा (तृम्पताम्) सुखी हों और शिष्य को भी ज्ञान से तृप्त, पूर्ण करें ।

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥

भा०—मैं शिष्य वा पुत्र (तोशा) ज्ञानोपदेशक (वृत्रहणा) आवरण-

कारी विघ्न और अज्ञान नाशक, (सजित्वाना) समानरूप से जितेन्द्रिय (अपराजितौ) कभी न पराजित (वाजसातमा) ज्ञानैश्वर्य के उत्तम दाता, (इन्द्राग्नी) वायु-सूर्य के समान विद्वानों को (हुवे) प्राप्त करूं ।

प्र वा॑मर्चन्त्युक्थिनो॑ नीथा॒विदो॑ जरि॒तारः॑ ।
इन्द्रा॑ग्नी इष॒ आ वृ॑णे ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत्-सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषो ! (उक्थिनः) ज्ञान और गुणों वाले, (नीथाविदः) विनयाचारों और उत्तम मार्गों के ज्ञाता, (जरितारः) विद्वान् पुरुष (वाम् अर्चन्ति) आप दोनों को पूजते हैं। मैं भी (इषे) अन्नादि ऐश्वर्य और अभिलाषा की पूर्त्ति के लिये (आवृणे) आप दोनों को वरण करता हूँ। इति एकादशो वर्गः ॥

इन्द्रा॑ग्नी नव॒तिं पुरो॑ दा॒सप॑त्नीरधूनुतम् ।
सा॒कमेके॑न॒ कर्म॑णा ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) वायु और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पुरः) अपने सामने स्थित (नवतिम्) ९० (नव्वे) (दासपत्नीः) शत्रुनाशक सैनिकों की पालक सेनाओं को (एकेन कर्मणा) एक ही समान कर्म के (साकम्) साथ (अधूनुतम्) सञ्चालन करें ।

इन्द्रा॑ग्नी॒ अप॑स॒स्पर्युप॒ प्र य॑न्ति धी॒तयः॑ ।
ऋ॒तस्य॑ प॒थ्या॒३॒॑ अनु॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि के समान बलवान् पुरुषो ! जैसे (धीतयः अपसः परि उप प्र यन्ति) हाथ की अंगुलियां कार्य करने के लिये आगे बढ़ती हैं, वा लोग (ऋतस्य पथ्याः अनु) ऐश्वर्य प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण करते हैं वैसे ही आप दोनों की (धीतयः) सब गतियें, धारक शक्तियें, (अपसः परि उप प्र यन्तु) कर्त्तव्य-कर्म पर आश्रित, उसके ही ऊपर निर्भय हों। और वे सब (ऋतस्य पथ्याः अनु) सत्याचरण और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के मार्गों के अनुकूल हों।

इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ८ ॥

भा०—हे वायु और सूर्य के समान बलवान् पुरुषो ! जैसे वायु और सूर्य दोनों के (तविषाणि) बल और (प्रयांसि) प्रजाओं को तृप्त करने वाले अन्न जलादि (सधस्थानि) एक ही स्थान पर सम्बद्ध रहते हैं और उन दोनों पर ही (अप्तूर्यम्) वृष्टि जलों का लाना निर्भर होता है । वैसे ही (वां) तुम दोनों के (तविषाणि) सब बल, कर्म और (प्रयांसि च) प्रजाओं को प्रिय और पुष्ट करने वाले कार्य (सधस्थानि) एक स्थान पर ही हों अर्थात् वे परस्पर अनुकूल रहें । (युवोः) तुम दोनों पर ही (अप्तूर्यम्) कार्यों को करने और प्रजाओं के सञ्चालन का भार भी स्थित है ।

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ॥ १२ ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) सूर्य और वायु के समान बलवान् सेनाध्यक्ष और सभाध्यक्षो ! आप दोनों (दिवः) तेजस्विता और उत्तम कामनायुक्त व्यवहारों में (रोचना) कान्ति और तेज से युक्त सब प्रजाजन को अच्छे लगने हारे होकर (वाजेषु) संग्रामों और ऐश्वर्यों के बीच (परि भूषथः) विद्यमान रहो । (वां) आप दोनों का (तत्) वह अद्भुत (वीर्य) पराक्रम (प्र चेति) सबसे उत्तम जाना जाए । इति द्वादशो वर्गः ॥ इति तृतीये मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१३] ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक् । २, ३, ५, ६, ७ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आपके (देवाय) विद्या आदि शुभ गुणों की कामना करने वाले (अग्नये) अग्नि के समान तेजस्वी एवं अङ्गों में विनयशील शिष्य को विद्याभ्यास करने के लिये (देवेभिः) अन्य विद्याभिलाषी शिष्यों वा उत्तम दिव्य गुणों सहित (आगमत्) हमें प्राप्त हो (सः) वह (नः) हमारा (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य और उत्तम विद्यादाता होकर (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ सदत्) विराजे। उस (बर्हिष्ठम्) उत्तम आसन पर स्थित पुरुष का (अस्मै) इसके हित के लिये (अर्चं) आदर सत्कार करो।

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (दक्षं) बल और ज्ञान का (रोदसी) आकाश और भूमि के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों (सचेते) आश्रय लेते हैं और (ऊतयः) सब रक्षाकार्य और रक्षकजन भी (यस्य दक्षं सचन्ते) जिसके बल का आश्रय लेते हैं। (तं) उसको (हविष्मन्तः) ऐश्वर्यों के स्वामी भी (अवसे) रक्षा के लिये (ईडते) चाहते हैं, और (सनिष्यन्तः) भविष्यत् में दान देने और ऐश्वर्य-सेवन के अभिलाषी भी (अवसे) रक्षा के लिये (तं सचन्ते, तम् ईळते) उसकी शरण जाते हैं।

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (वः) तुम लोगों को (मघम् वनिता) ऐश्वर्य का विभाग करता और (दाता) देता है, तुम लोग (तम् अग्निम्) उस विद्वान् तेजस्वी पुरुष की (दुवस्य) सेवा करो। (सः) वह (विप्रः) विविध बलों से पूर्ण करने हारा है। (सः) वही (एषां) इन प्रजाओं को (यन्ता) नियम में बांधने वाला, (अथ) और (सः) वही (यज्ञानां) सत्संग और मैत्री भावों का (यन्ता) बांधने वाला है।

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) अग्रणी पुरुष (नः) हमें (शंतमा) अति शान्ति देने वाले (शर्माणि) सुख आदि उपभोग (वीतये) रक्षा के लिये (यच्छतु) प्रदान करे । यतः जिनसे (नः) हमें (दिवि) आकाश में और (अप्सु) अन्तरिक्ष में विद्यमान (वसुः) जीवन वसाने योग्य प्रकाश, वृष्टि, वायु आदि और (क्षितिभ्यः) भूमियों और उसमें रहने वाली प्रजाओं से प्राप्त होने वाला (वसु) रत्न, सुवर्ण, अन्न आदि खूब (प्रुष्णवत्) स्नेहन, सेचन और पुष्टि करने वाले प्रकाश, जल और अन्न से समृद्ध ऐश्वर्य (आ) सब प्रकार से प्राप्त हों ।

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥ ५ ॥

भा०—(वस्वीभिः) ऐश्वर्य से युक्त (धीतिभिः) दीप्तियों, किरणों से (दीदिवांसं यथा ऋक्वाणः अग्निम् इन्धते) प्रकाशमान् अग्नि को जैसे वेदज्ञ विद्वान् प्रकाशित करते हैं वैसे ही (ऋक्वाणः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् (अस्य) इस नायक की अपनी (वस्वीभिः) वसने वाली, ऐश्वर्य युक्त प्रजाओं, सेनाओं तथा (धीतिभिः) धारक पोषक समृद्धियों और नीतियों में से (दीदिवांसं) राष्ट्ररक्षा करने वाले, (अपूर्व्यं) अपूर्व कार्यों के करने में कुशल, (अग्निम्) तेजस्वी, (विशाम् विश्पतिम्) प्रजाओं के बीच रहकर प्रजाओं के पालक (होतारं) सबको सब प्रकार के सुखों को देने और शत्रु के ललकारने वाले वीर पुरुष को (इन्धते) प्रकाशित करें और अधिक उज्ज्वल और प्रतापी बनावें ।

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! एवं विद्वन् ! तू (मरुद्वृधः) स्वयं भी विद्वान् मनुष्यों, व्यापारी जनों, प्रजाओं और शत्रु को मारने वाले वीरों के बल पर बढ़ने वाला और (सहस्रसातमः) सहस्रों ऐश्वर्यों को देने और स्वयं उपभोग करने में श्रेष्ठ और (उक्थेषु) प्रशस्त कार्यों और पदों पर भी (देवहूतमः) विद्वानों द्वारा प्रशंसित, एवं कामनावान् पुरुषों द्वारा प्रेम से बुलाये जाने योग्य, विद्वानों को अपनी शरण में लेने हारा है, ऐसा तू (नः) हमें (ब्रह्मन्) बड़े भारी धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (अविषः) व्याप, एवं रक्षा कर और (नः) हम (मरुद्-वृधः) सामान्य व्यापारी प्रजाओं के बल पर बढ़ने वाले प्रजाजनों को भी (शं) शान्ति सुख (शोच) प्रदान करे ।

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! परमेश्वर ! (नः) हमें तू (सहस्रवत्) हजारों की संख्या वाले, (तोकवत्) उत्तम पुत्र पौत्रादि से युक्त, (पुष्टिमत्) धन धान्य आदि समृद्धि से सम्पन्न, (द्युमत्) दीप्तियुक्त, ज्ञानयुक्त, (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य, बल से युक्त (वर्षिष्ठम्) बढ़े हुए (अनुपक्षितम्) बहुत व्यय करने पर भी न क्षीण होने वाले ऐश्वर्य को (नः) हमें (रास्व) प्रदान कर । इति त्रयोदश वर्गः ॥

[१४] ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६ पंक्तिः ॥

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१॥

भा०—(होता) विद्वानों को आदरपूर्वक बुलाने, विद्यार्थियों को सब विद्याओं का देने हारा (मन्द्रः) स्वयं कमनीय गों से युक्त, अन्यों को

प्रसन्नकर्ता (सत्यः) धर्माचरण से युक्त, (यज्वा) मित्रभाव से रहने हारा, (कवितमः) दूरदर्शी, (सः) वह पुरुष (वेधाः) सर्व कार्य करने में कुशल होकर (विदथानि) लाभ करने योग्य विद्वानों को (आ अस्थात्) प्राप्त करे। वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (विद्युत् रथः) विद्युत् से चलने वाले रथ का स्वामी, वा विद्युत् के समान रमणीय स्वरूप, कान्तिमान् (सहसस्पुत्रः) बलवान् पुरुष का पुत्र (शोचिष्केशः) तेजों को सिंह के बालों के समान धारक होकर (पृथिव्यां) अन्तरिक्ष में सूर्य के समान पृथिवी पर (पाजः) ऐश्वर्य (अश्रेत्) धारण करे।

अया॑मि ते॒ नम॑उक्तिं जुषस्व॒ ऋता॑व॒स्तुभ्यं॒ चेत॑ते सहस्वः।
वि॒द्वाँ आ व॑क्षि वि॒दुषो॒ नि ष॑त्सि॒ मध्य॒ आ ब॒र्हिरू॒तये॑ यजत्र ॥२॥

भा०—हे (ऋतवः) धर्म-व्यवस्था के जानने हारे! मैं (ते अयामि) तेरी शरण आता हूँ। (ते) तेरे सत्कार के लिये हे (सहस्वः) भीतरी और बाह्य पशुओं को पराजित करने वाले, 'सहः' शक्ति के स्वामिन्! (चेतते ते) स्वयं ज्ञानवान् और अन्यों को सद्विद्या और सन्मार्ग का ज्ञान कराने हारे तेरे आदर के लिये मैं (नमः उक्तिम् अयामि) आदरसूचक 'नमः' ऐसा वचन प्रस्तुत करता हूँ। (जुषस्व) तू उसे स्वीकार कर। तू स्वयं (विद्वान्) विद्यावान् होकर (विदुषः) अन्य विद्वानों को भी (आ वक्षि) धारण करता है। हे (यजत्र) पूजनीय! हे विद्या के दाता! तू (ऊतये) ज्ञान देने के लिये (मध्ये) हमारे बीच में (बर्हिः) वृद्धियुक्त उत्तम आसन पर (आ निषत्सि) सबके समक्ष आदरपूर्वक विराज।

द्रव॑तां त उ॒षसा॑ वा॒जय॑न्ती॒ अग्ने॒ वात॑स्य प॒थ्या॑भि॒रच्छ॑।
यत्सी॑म॒ञ्जन्ति॑ पू॒र्व्यं ह॒विर्भि॒रा व॒न्धुरे॑व तस्थतुर्दुरो॒णे ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (उषसा) दिन रात्रि की दोनों सन्ध्याएं (वातस्य पथ्याभिः) वायु के मार्गों, अर्थात् आकाश मार्गों से (वाजयन्ती) प्रकाश करती हुई (अच्छ द्रवताम्) सबके सन्मुख आती रहती हैं वे (दुरोणे)

उच्च आकाश के बीच में (वन्धुरा इव) एक जुए में लगे दो काष्ठों के समान परस्पर सम्बद्ध, या परस्पर बन्धुता से युक्त होकर (आ तस्थतुः) विराजती हैं। उस समय विद्वान् लोग (हविर्भिः पूर्व्यं अञ्जन्ति) चरुओं द्वारा पूर्व साधित अग्नि के समान ही (हविभिः) ज्ञानदायक वचनों से चिरन्तन प्रभु को ही (अञ्जन्ति) प्रकाशित करते हैं। वैसे ही हे अग्ने! ज्ञानवन्! विद्वन्! (उपसा) उत्तम कान्ति से युक्त वा तुझे या परस्पर कामना करते हुए प्रेमयुक्त स्त्री और पुरुष (ते वाजयन्ती) तेरे लिये अन्न प्रदान करते हुए वा तेरे ज्ञान की कामना करते हुए (वातस्य) वायु के समान जीवनदाता वा बलवान् तुझ पुरुष के पास (पथ्याभिः) उत्तम मार्गों से (अच्छ द्रवताम्) तेरे सन्मुख आवें और वे दोनों (दुरोणे) गृह में (बन्धुरा इव) रथ के युग में जुड़े ईषा नामक दो बांसों के समान बंधकर (आतस्थतुः) रहें और सभी वे लोग (सीम्) सब प्रकार से (पूर्व्यम्) विद्याओं से पूर्ण विद्वान् को (हविर्भिः) उत्तम अन्नों से (अञ्जन्ति) आदर-पूर्वक बढ़ावें।

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन्।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥४॥

भा०—(अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! नायक! हे (सहस्वः) शक्तिशालिन्! (तुभ्यम्) तेरे (सुम्नम्) उत्तम ज्ञान और बल की (मित्रः च वरुणः) स्नेही मित्र और तुझे वरण करने वाले जन और (मारुतः) वायु के समान बलवान् सैनिकजन और प्रजाजन भी (अर्चन्) अर्चना करते हैं, (यत्) क्योंकि हे (सहसः पुत्र) बल के पुत्र! बल के अवतार वा (सहसः) शत्रु पराजयकारी बल, सैन्य के (पुत्र) बहुत से पुरुषों के रक्षक! तू (शोचिषा) अपने तेज से (सूर्यः) सूर्य के समान बलवान् और प्रेरक वा आज्ञापक होकर अपने (नॄन्) नायक पुरुषों को (प्रथयन्) दूर २ तक किरणों के समान फैलाता हुआ (क्षिताः) नाना राष्ट्रों को भी (अभि तिष्ठाः) विजय कर इनको अपने अधीन कर।

अयं ते अद्य रतिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! (अद्य) आज (वयम्) हम (उत्तान-हस्ताः) हाथों को ऊपर की ओर बढ़ाये हुए (नमसा) नमस्कार और अन्नादि सहित (उपसद्य) तेरे समीप आकर, शान्ति से आचार्य के समीप शिष्य के समान बैठकर (ते कामम्) तेरे अभिलषित पदार्थ को (ररिम) दें और तू (विप्रः) विविध विद्याओं, ऐश्वर्यों और बलों से पूर्ण है। तू (अस्रेधता) कभी न क्षीण होने वाले और दूसरे के प्रति हिंसा-भाव से रहित (मन्मना) ज्ञान और विचार से (यजिष्ठेन) दान भाव और मैत्रीभाव से युक्त (मनसा) चित्त से (देवान्) अत्यन्त अधिक विद्या और ऐश्वर्य की कामना करने वालों को (यक्षि) विद्यादि दान कर।

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६ ॥

भा०—हे (सहसः पुत्र) बल के पवित्रकर्त्ता, हे शक्ति को कीर्ति युक्त करने हारे! वीर, विद्वान् एवं शक्तिशालिन्! (देवस्य) सूर्य के समान सर्वप्रकाशक सर्व सुखों के दाता परमेश्वर और उत्तम विजिगीषु राजा के (वाजाः) समस्त ज्ञान, ऐश्वर्य और (पूर्वीः) पूर्ण एवं सनातन से चली आई (ऊतयः) समस्त रक्षाएं भी (त्वत्) तुम से ही (वि यन्ति) हमें प्राप्त होती हैं। (त्वं) तू ही हमें (सहस्रिणं) सहस्रों सुख, ऐश्वर्यों से युक्त (रयिं) धन और (अद्रोघेण) द्रोहरहित (वचसा) वाणी से वेद के द्वारा (सत्यम्) ज्ञान, सत्य न्याय (देहि) प्रदान कर।

तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥१४॥

भा०—हे (दक्ष) अतिचतुर! विद्वन्! प्रभो! तेजस्विन्! प्रताप-

शालिन्! हे (कविक्रतो) मतिमान् पुरुषों के ज्ञान के समान ज्ञानों और कर्मों वाले! हे (देव) दानशील! (अध्वरे) अहिंसारहित राष्ट्रपालन आदि यज्ञ रूप कार्य में (यानि) जो भी (इमा) ये नाना कार्य हम (अकर्म) करते हैं वे सब (तुभ्यम्) तेरे लिये ही करते हैं। तू (विश्वस्य सुरथस्य) समस्त उत्तम रथादि अश्व पदाति अङ्गों से युक्त सैन्य का अपने को स्वामी (बोधि) जान। हे (अमृत) न मरने हारे! तू (इह) इस राष्ट्र में (तत् सर्वम्) वह समस्त ऐश्वर्य (स्वद) भोग कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१५] उत्कील कात्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ३, ७ भुरिक् पंक्तिः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे तेजस्विन्! प्रभो! राजन्! तू स्वयं (पृथुना) अति विस्तृत (पाजसा) बल और ज्ञान से (शोशुचानः) देदीप्यमान होता हुआ (अमीवाः) रोगों के समान (रक्षसः) विघ्नकारी (द्विषः) द्वेष युक्त, शत्रु पुरुषों को (बाधस्व) पीड़ित कर। (बृहतः) महान् (सुशर्मणः) उत्तम घरों के स्वामी, दुष्टों के नाशक एवं सुख साधनों से युक्त (सुहवस्य) उत्तम ख्याति वाले (अग्नेः) ज्ञानवान् अग्रणी के (शर्मणि) गृह में और (प्रणीतौ) उत्तम नीति या शासन में (स्याम) रहूँ।

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥ २ ॥

भा०—(अस्याः उषसः) उस उषा के (व्युष्टौ) विशेष चमकने पर और (सूरे उदिते) सूर्य के उदय हो जाने पर (त्वं) तू ही (नः गोपाः) हमारा रक्षक होकर (बोधि) स्वयं जाग और हमें भी जगा। (जन्म इव

तनयं) नवीन जन्म अर्थात् देह धारण करना ही जैसे नव-जात बच्चे को (तन्वा जुषते) नये देह से युक्त करता है वैसे ही हे (सु-जात) उत्तम जात अर्थात् बालक के समान शुभ गुणों और कर्मों से प्रख्यात (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! तू भी (तन्वा) अपने शरीर से या विस्तृत राष्ट्र से (नित्यं) सदा से विद्यमान (मे स्तोमं) मुझ प्रजाजन के उत्तम प्रशंसनीय समूह को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर ।

त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेज से युक्त विद्वन्! राजन्! प्रभो! हे (वृषभ) मेघ के समान प्रजाओं पर ज्ञानों और सुखों के वर्षक! हे उत्तम प्रबन्ध-कारिन्! (त्वं) तू (नृचक्षाः) मनुष्यों को उत्तम ज्ञानोपदेश करने और उनके सत् और असत् कर्मों को देखने वाला होकर (कृष्णासु अरुषः) अन्धकार युक्त रात्रियों में या उनके उपरान्त अग्नि या सूर्य के समान (अरुषः) देदीप्यमान होकर स्वयं भी (कृष्णासु) युद्धादि के कारण कर्षणा द्वारा पीड़ित प्रजाओं पर (अरुषः) रोष-रहित, दयाशील होकर (पूर्वीः) पूर्व के राजाओं की बसाई प्रजाओं को (वि भाहि) प्रकाशित कर ।

अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! प्रभो! हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन्! विवेकशील! हे (सुप्रणीते) शुभ और उत्कृष्ट नीति वाले! तू (अषाळ्हः) अन्यों से न पराजित होने वाला, (वृषभः) मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजाओं पर सुख सम्पदायों का वर्षक या बैल के समान बलवान् (विश्वा सौभगा) समस्त ऐश्वर्यों और (विश्वाः पुरः) शत्रु के समस्त गढ़ों को (संजिगीवान्) विजय करने हारा (प्रथमस्य) सबसे मुख्य, (पायोः) सबके रक्षक, (बृहतः) महान्

(यज्ञस्य) प्रजापालन या संग्राम आदि का (नेता) नायक होकर (दिदीहि) प्रकाशित हो।

अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके॥ ५॥

भा०—(जरितः) सत्य गुणों और विद्याओं के उपदेष्टा विद्वन्! हे शत्रुओं को जीर्ण शीर्ण कर देने हारे प्रतापशालिन्! तू (सुमेधाः) प्रज्ञावान् (दीद्यानः) अग्नियों के समान तेजस्वी होकर (देवान्) दिव्य गुणों और विद्या के अभिलाषी पुरुषों को (अच्छिद्रा) त्रुटिरहित (शर्म) गृह और (पुरूणि) बहुत से ऐश्वर्य (भावक्षि) प्राप्त करा। (रथः न) जैसे रथ (सस्नि अभि वाजं वक्षि) अच्छी प्रकार वश किया हुआ वीर को युद्ध में पहुंचा देता है जैसे रथ अच्छी प्रकार दृढ़ होकर (वाजं) अन्न को ढो लेता है वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन्! नायक तू भी (सस्निः) अपनी इन्द्रियों और मन को अच्छी प्रकार दमन कर, जितेन्द्रिय होकर (वाजं वक्षि) ज्ञानैश्वर्य को धारण कर और (वक्षि) उपदेश कर। हे वीर तू (सस्निः) ऐश्वर्य को प्राप्त करने में समर्थ होकर (देवान् वाजं वक्षि) विजिगीषु सैन्य दलों को युद्ध में ले जा और (नः) हमें (त्वं) तू (सुमेके) उत्तम रूपवान् या उत्तम उपदेष्टा दानशील, मेघों के समान ज्ञान अन्न या सुखों को सेचन व वर्षण करने वाले (रोदसी) उत्तम उपदेश देने, मर्यादा में सन्तानों और परस्पर को रोक रखने, दुष्टों को रोकने वाले स्त्री पुरुष, पति पत्नी, माता आदि प्राप्त करा। हे वीर तू (सुमेके रोदसी) मेघों के समान उत्तम, शस्त्रवर्षी शत्रुओं को रुलाने और रोक रखने वाला दो सेनाओं को दायें बायें रख कर (वक्षि) धारण कर।

प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात्॥६॥

भा०—हे (वृषभ) बलशालिन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (त्वं) तू (नः)

हमें (प्र पीपय) अच्छी प्रकार बढ़ा। (नः वाजान् प्र पीपय) हमारे ऐश्वर्यों की वृद्धि कर (नः सुदोघे रोदसी प्र पीपय) जैसे सूर्य उत्तम जल वृष्टि और अन्न देने वाले भूमि और आकाश दोनों को समृद्ध करता है वैसे ही तू उत्तम उपदेश करने, हमें कुपथ से रोकने, दुष्टों को रुलाने, उत्तम ज्ञानों और अन्नों से पूर्ण करने वाले माता पिताओं को (प्र पीपय) बढ़ा, पुष्ट कर। हे (देव) विद्वन्! (देवेभिः सुरुचा रुचानः) प्रकाशयुक्त किरणों से उत्तम कान्ति से प्रकाशमान् सूर्य के समान तू भी (देवेभिः) विद्याभिलाषी शिष्यों और विजयाभिलाषी वीरों से और उत्तम रुचि और कान्ति से (रुचानः) प्रकाशित होता हुआ हमें (वाजान् जिन्व) ऐश्वर्यों को दे और (वाजान् जिन्व) संग्रामों का विजय कर (नः) हमारे बीच (मर्त्तस्य) किसी मनुष्य को (दुर्मतिः) दुष्टबुद्धि (मा परि स्थात्) न आ घेरे।

इळा॑मग्ने पुरुदंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध।
स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥ ७ ॥१५॥

भा०—व्याख्या देखो (म०३।सू०७।म०११) इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१६] उत्कीलः कात्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ भुरिगनुष्टुप् २, ६ निचृत् पंक्तिः। ३ निचृद् बृहती। ४ भुरिग् बृहती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अ॒यम॒ग्निः सु॒वीर्य॒स्येशे॑ म॒हः सौभ॑गस्य।
रा॒य ई॑शे स्वप॒त्यस्य॒ गोम॑त॒ ईशे॑ वृत्र॒हथा॑नाम् ॥ १ ॥

भा०— (अयम्) यह (अग्निः) ज्ञानी पुरुष और नायक, राजा अग्नि, विद्युत्वत् (सुवीर्यस्य) उत्तम बल का (इशे) स्वामी हो, (महः सौभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो। वह (सु-अपत्यस्य) उत्तम सन्तानों और (गोमतः) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न (रायः) धनैश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो और वह (वृत्र-हथानां) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों के हनन, नाश करने वाले वीर पुरुषों का भी (ईशे) स्वामी हो।

इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (पृतनासु) सेनाओं और संग्रामों में (दूढ्यः) दूसरे का बुरा सोचने वाले शत्रुओं को (अभि सन्ति) पराजित करते हैं और जो (विश्वाहा) सब दिनों अपने (शत्रुम्) शत्रु को (आदभुः) अच्छी प्रकार नाश करें ऐसे हे (नरः) वीर लोगो ! हे (मरुतः) वायु के समान बलवान्, वेग से आक्रमण करने और बल से शत्रु को मारने और उखाड़ देने हारो ! आप लोग (इमम्) इस (वृधम्) सबको बढ़ाने हारे प्रधान पुरुष को (सश्चत) प्राप्त होओ, (यस्मिन्) जिसके अधीन रहकर आप (रायः) धन के (शेवृधासः) सुखों के वर्धक हों ।

स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) हे राजन् ! हे (मीढ्वः) सुखों के सेचक ! बढ़ाने हारे ! (तुविद्युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (नः) हमें (रायः) धन देकर (शिशीहि) तेजस्वी कर और (सुवीर्यस्य) शोभाजनक वीर्य से युक्त, (वर्षिष्ठस्य) अति मधुर मात्रा में विद्यमान, (प्रजावतः) प्रजाओं से युक्त, (अनमीवस्य) रोगादि-रहित और (शुष्मिणः) बल से युक्त अर्थात् प्रजा और बल वीर्य के उत्पादक अन्न के द्वारा (नः शिशीहि) हमें तेजस्वी कर ।

चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (चक्रिः) स्वयं कार्यों को करने में कुशल होकर (विश्वा भुवना अभि यतते) समस्त लोकों के उपकार करने में यत्नवान् रहता है, जो (सासहिः) सहनशील होकर (देवेषु) ऐश्वर्य की कामना

करने वाले विद्वानों के बीच (चक्रिः) कार्यकुशल होकर उनकी (दुवः) सेवा (आ यतते) आदर से करता है। जो (देवेषु) दानशील, विजयेच्छुक पुरुषों के बीच (सुवीर्ये) उत्तम शोभाजनक वीर्य, बल प्राप्त करने (उत्) और (नृणाम्) मनुष्यों या नेता पुरुषों के बीच (शंसे) उत्तम ख्याति लाभ करने के निमित्त (आ यतते) यत्न करता है वह (अग्निः) तेजस्वी है।

मा नो॑ अग्ने॒ऽमत॑ये॒ मावी॒रता॑यै रीरधः।
माऽगो॒ता॑यै सहसस्पुत्र॒ मा नि॒दे॒ऽप॒ द्वेषां॒स्या कृ॑धि ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू हमें (अमतये) बुद्धिहीनता के कारण (मा रीरधः) नष्ट मत होने दे। (अवीरतायै मा रीरधः) वीरता न होने के कारण नष्ट मत होने दे। (अगोतायै) भूमि और इन्द्रियों में बल न होने के कारण (मा रीरधः) विनष्ट मत होने दे। हे (सहसस्पुत्र) पराक्रम के पालक ! तू (निदे) निंदा, कलह के कारण (मा रीरधः) विनष्ट मत होने दे। हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! तू (नः) हमारे बीच में से (द्वेषांसि) द्वेषों को (अपाकृधि) दूर कर जिससे हम प्रजागण द्वेषरहित और प्रेमयुक्त होकर बढ़ें।

श॒ग्धि वाज॑स्य सुभग प्र॒जाव॒तोऽग्ने॑ बृह॒तो अ॑ध्व॒रे।
सं रा॒या भूय॑सा सृज मयो॒भुना॒ तुवि॑द्युम्न॒ यश॑स्वता ॥ ६ ॥१६॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! विद्वन् ! तू (अध्वरं) हिंसा रहित उत्तम व्यवहार के पालन में (प्रजावतः) प्रजा से युक्त (बृहतः) बड़े (वाजस्य) ऐश्वर्य को प्राप्त करने में (शग्धि) समर्थ हो और उसके द्वारा स्वयं (शग्धि) शक्तिशाली बन। हे (सुभग) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (तुविद्युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (मयोभुना) सुख उत्पादक (यशस्वता) कीर्त्ति से सम्पन्न (राया) ऐश्वर्य से (संसृज) हमें समृद्ध कर। इति षोडशो वर्गः ॥

[१७] ❀ कतो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्पंक्तिः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

स॒मि॒ध्यमा॑नः प्रथ॒मानु॒ धर्मा॒ सम॒क्तुभि॑रज्यते वि॒श्ववा॑रः ।
शो॒चिष्के॑शो घृ॒तनि॑र्णिक्पाव॒कः सु॑य॒ज्ञो अ॒ग्निर्य॒जथा॑य दे॒वान् ॥१॥

भा०—जैसे (यजथाय) यज्ञ के लिये (समिध्यमानः) प्रदीप्त किया हुआ अग्नि (प्रथमा धर्मा अनु) विस्तृत, श्रेष्ठ, प्रसिद्ध धर्मों के अनुसार (अक्तुभिः) यात्रियों द्वारा या अन्य को प्रकट करने वाले साधन घृत आदि या रश्मियों से अच्छी प्रकार चमकाया या सींचा जाता है और वह (विश्ववारः) सबसे वरणयोग्य सब कष्टों का वारक (शोचिष्केशः) दीप्तिमय केशों वा किरणों से युक्त, (घृत-निर्णिक्) दीप्तिस्वरूप या घृत से अति पवित्र स्वरूपवान्, (पावकः) पवित्रकारक (सुयज्ञः) उत्तम यज्ञ का साधन होकर (देवान् यजथाय भवति) जो विद्वानों के सत्सङ्ग तथा प्रकाश देने में समर्थ होता है वैसे ही (अग्निः) तेजस्वी पुरुष भी (शोचिष्केशः) दीप्तियों तेजों को केशों के समान शिर पर धारण करनेहारा (घृत-निर्णिक्) तेजस्वी स्वरूप से युक्त, (पावकः) अग्नि के समान तेजस्वी और सत्सङ्ग से अन्यों को पवित्र करने वाला (सुयज्ञः) सुखपूर्वक सत्सङ्ग, आदर करने योग्य, (विश्ववारः) सबसे वरण करने योग्य (देवान् यजथाय) विद्वान् पुरुषों की परस्पर संगति और मैत्रीभाव उत्पन्न करने के लिये (समिध्यमानः) सबसे मिलकर उत्तेजित, प्रेरित किया जाकर (प्रथमा धर्मा अनु) कीर्त्ति प्रसिद्धि करने वाले, उत्तम, या पूर्व से चले आये (धर्मा अनु) धर्मों, नियमों, धार्मिक व्यवस्थाओं के अनुकूल (अक्तुभिः) अभिषेकों द्वारा, घृतसेचनों द्वारा अग्नि के समान (सम् अज्यते) अच्छी प्रकार अभिषेक किया जावे ।

❀ उत्कीलः कात्य इति द० । समिध्यमानः पञ्च कतो वैश्वामित्र इति सर्वानु० ॥

यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान्।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! (यथा) जैसे तू (पृथिव्याः) पृथिवी से (होत्रम्) लेने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य के समान (पृथिव्याः) पृथिवी पर बसी विस्तृत प्रजा से ऐश्वर्य (अयजः) प्राप्त करता है और हे (जातवेदः) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (यथा) जैसे (दिवः) सूर्य से प्रकाश के तुल्य, आकाश से वृष्टि के तुल्य (दिवः) ज्ञानी पुरुषों से (होत्रम् अयजः) ग्रहण करने योग्य उत्तम ज्ञान प्राप्त करता है (एवं) वैसे ही (अनेन) इस (हविषा) ग्रहण-योग्य अन्न और ज्ञान से तू (देवान्) इन पदार्थों की कामना करने वाले विद्वान् जनों को (यक्षि) प्रदान कर और तू (मनुष्वत्) मननशील, ज्ञानी पुरुष के तुल्य ही (इमं यज्ञं) इस परस्पर के सत्सङ्ग व्यवहार को (अद्य) आज (प्र तिर) उत्तम रीति से विस्तृत कर।

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे (जातवेदः) उत्तम प्रज्ञा से युक्त (तव) तेरे (त्रीणि) तीन (आयूंषि) हों और तदनुसार (ते) तेरे (उषसः) प्रभात के समान देह के दोषों को दग्ध करने वाली (तिस्रः) तीन (आजानीः) नवीन शक्तियों को उत्पन्न करने वाली, माता के समान उत्पादक दशाएं हों। तू (विद्वान्) इन दशाओं को अच्छी प्रकार जानता हुआ (ताभिः) उन दशाओं से ही (देवानाम्) प्राणों को (अवः) रक्षा और उचित अन्नादि तृप्ति (यक्षि) प्रदान कर (अथ) और (यजमानाय) सत्सङ्ग करने वाले के लिये (शं) शान्तिकारक और (योः) संकटों और संशयों को दूर करने वाला (भव) हो। यहां तीन आयु शैशव, कौमार्य और वृद्धावस्था

हैं। तीन आजानी तीन शक्तियां हैं—ज्ञानशक्ति, कर्मशक्ति और उपासना शक्ति।

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे राजन्! हे प्रभो! हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे और समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन्! हम लोग (ईड्यम्) प्रशंसायोग्य, (सुदीतिम्) उत्तम दीप्ति वाले, उत्तम दाता (सुदृशं) उत्तम दर्शनीय (त्वा अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् तुझको (नमस्यामः) नमस्कार करते हैं। (देवाः) दिव्य पदार्थ और वीर (त्वाम्) तुझको (दूतम्) सबके सेवा करने योग्य एवं दुष्ट पुरुषों को संतापजनक (हव्य-वाहं) ग्राह्य पदार्थों को धारण करने और कराने वाला और (अमृतस्य) दीर्घ जीवन का (नाभिम्) आश्रय (अकृण्वन्) करें।

यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ॥५॥१७॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे तेजस्विन्! राजन्! (यः) जो पुरुष (त्वत्) तुझसे (होता) ऐश्वर्य का ग्रहण करने वाला, (पूर्वः) पूर्व ज्ञान और बल से युक्त, (यजीयान्) अधिक दानशील, सबका सत्संगी होकर (द्विता) स्व और पर दोनों पक्षों में (सत्ता) उत्तम पद पर विराजने हारा और (स्वधया) अन्न और जल से (शम्भुः) सबको शान्ति देने हारा है। हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! तू (तस्य धर्म अनु) उसके धर्मानुसार ही (प्र यज) उत्तम ज्ञान और अधिकार प्रदान कर। (अथ) और (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसन या पीड़न से रहित प्रजापालन आदि उत्तम कार्य को (देववीतौ) विद्वानों और वीर पुरुषों की रक्षा में ही (धाः) स्थापित कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१८] कतो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! (सखा इव सख्ये) मित्र के लिये मित्र जैसे (सुमनाः साधुः) उत्तम चित्त वाला और हितोपदेशादि से मित्र का कार्य-साधक होता है और जैसे (पितरा इव) पुत्र के लिये माता पिता उत्तम चित्त वाले और सन्मार्ग में चलने का उपदेश देकर कार्यसाधक होते हैं, वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (नः) हमें (उपेतौ) प्राप्त होकर हमारे प्रति (सुमनाः) शुभ चित्त वाला और (साधुः भव) कार्यसाधक हो । (हि) और (जनानां) मनुष्यों के बीच जो (क्षितयः) राष्ट्र निवासी लोग (पुरुद्रुहः) बहुतों के साथ द्रोह करने वाले हैं उनको और (प्रतीचीः) प्रतिकूल मार्ग से जाने वाले और (अरातीः) शत्रुओं को (प्रति दहतात्) प्रति समय भस्म कर ।

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! तेजस्विन् ! हे (तपो) संतापजनक ! तू (अन्तरान्) भीतरी या परस्पर फूटे हुए (अमित्रान्) परस्पर स्नेहभाव रहित शत्रुओं को (तप) सन्तप्त कर और (परस्य) दूसरे (अररुषः) हिंसा-कारी शत्रु की (शंसम्) अभिलाषा को (तप) सन्तप्त कर । हे (तपो) संतापजनक! हे तपस्विन् ! हे (वसो) प्रजा के बसाने हारे! तू स्वयं (चिकि-तानः) ज्ञानवान् रहता हुआ (अचित्तान्) चित्तरहित, तेरी आज्ञा पर चित्त न देने वालों को भी (तप) पीड़ित कर और (ते) तेरे (अयासः) विज्ञानयुक्त, या शीघ्रगामी अश्वारोही आदि भृत्य दूत आदि (अजरा) जरावस्था से रहित होकर (वि तिष्ठन्ताम्) विविध दिशाओं में स्थिर रहें ।

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥

भा०—(तरसे बलाय) इस संसार से पार उतरने और बल प्राप्त करने के लिये (इच्छमानः) चाहता हुआ जैसे यज्ञकर्त्ता (घृतेन इध्मेन) घृत और काष्ठ के साथ (हव्यं जुहोति) आहुतियोग्य पदार्थ अग्नि में देता है वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रतापिन् ! मैं प्रजाजन भी (तरसे) शत्रुओं से पार उतरने का सामर्थ्य प्राप्त करने और (बलाय) बल वृद्धि के लिये (इच्छमानः) कामना करता हुआ (घृतेन) उत्तम जल तथा (इध्मेन) ईंधन के सहित (हव्यं जुहोमि) तुझे भोजन करने योग्य अन्न सामग्री प्रदान करूं अथवा बल की अभिलाषा वाला पुरुष जैसे (इध्मेन घृतेन) ईंधन से पकाकर और घी से मिलाकर (हव्यं) अन्न जठराग्नि में देता या खाता है वैसे ही मैं प्रजाजन भी बल वृद्धि की कामना करता हुआ काष्ठों और जलों सहित अन्नादि तुझे देता हूँ। मैं प्रजाजन (वन्दमानः) पूज्यों की स्तुति और अभिवादन से आदर करता हुआ (शतसेयाय) सौ संख्या से परिमित आयु को पूर्ण करने के लिये (इमां) इस (देवीम्) सबसे चाहने योग्य (धियं) बुद्धि को (यावत् ईशे) जितना हो सके उतना (ब्रह्मणा) बड़े भारी वेद ज्ञान से प्राप्त करूं।

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहसः पुत्र) शत्रु को पराजित करने वाले बल के सञ्चालक ! तू (स्तुतः) स्तुतियुक्त उच्च पद पर प्रस्तुत होकर, (शोचिषा) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (शशमानेषु) प्रशंसा योग्य और (विश्वामित्रेषु) सबसे मित्रभाव से रहने वाले पुरुषों में (रेवत्) धनैश्वर्य से युक्त राष्ट्र और (बृहत् वयः) बड़ा भारी बल, सैन्य (उत् धेहि) उत्तम रूप में स्थापित जिससे राष्ट्र में (शं) शान्ति हो और (योः) उपद्रवों का

नाश हो। हे (कृत्वः) क्रियाशील पुरुष ! इसीलिये हम (ते) तेरे (तन्वं) शरीर एवं विस्तृत राष्ट्र को (भूरि) बहुत २ (मर्मृज्म) शुद्ध करें।

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदंग्ने भवसि यत्समिद्धः।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥५॥१८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (धनानां सनितः) धनों के दान और संविभाग करने हारे! तू (रत्नं कृधि) रमणयोग्य ऐश्वर्य उत्पन्न कर। (यत् समिद्धः) जब तू अच्छी प्रकार चमकता है तब तू (सः घ इत् भवसि) उसी प्रकार होता है। तू (सुभगस्य) ऐश्वर्यवान् (स्तोतुः) स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् पुरुष के (दुरोणे) घर में (रेवत्) ऐश्वर्य से युक्त (सृप्रा करस्ना) सदा सहायता के लिये आगे बढ़ने वाले बाहुओं को और (वपूंषि) उत्तम रूपवान् शरीरों का (दधिषे) धारण करता, पालता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१९] कुशिकपुत्रो गाथी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ स्वराट् पंक्तिः। स्वरः—१, २, ४, ५ धैवतः। ३ पञ्चमः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम्।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥ १ ॥

भा०—(मियेधे) पवित्र यज्ञ में (अग्निं होतारं) ज्ञानवान् आहुति-दाता को जैसे वरण किया जाता है वैसे ही मैं प्रजाजन (मियेधे) शत्रुओं को हनन करने के कार्य, संग्राम के निमित्त (होतारं) योग्य दान, ऐश्वर्य व अधिकार देने वाले (गृत्सं) ऐश्वर्य प्राप्त करने के इच्छुक, लोकैषणा और वित्तैषणा से युक्त और (गृत्सं) उत्तम उपदेश देने हारे, (कविं) बुद्धिमान् (विश्वविदम्) समस्त राज्यकार्यों के ज्ञाता (अमूरम्) विपत्ति-काल में मोह को प्राप्त न होने वाले, (अग्निं प्रवृणे) अग्नि समान तेजस्वी

पुरुष को उत्तम पद पर वरण करता हूँ। (सः) वह (यजीयान्) सबसे बड़ा दानी, आदर, संगति या सख्य करने हारा पुरुष (देवताता) विद्वानों और वीर पुरुषों को (यक्षत्) एकत्र कर संगति करे और वह (राये) ऐश्वर्य और (वाजाय) बल वृद्धि, संग्राम में विजय के लिये (मघानि) नाना धन (वनते) प्रदान करे।

प्र ते॑ अग्ने ह॒विष्म॑तीमिय॒र्म्यच्छा॑ सुद्यु॒म्नां रा॒तिनीं॑ घृ॒ताची॑म्।
प्र॒द॒क्षि॒णिद्दे॒वता॑तिमुरा॒णः सं रा॒तिभि॒र्वसु॑भिर्य॒ज्ञम॑श्रेत् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते) तुझे मैं (हविष्मतीम्) गुणों, अन्नादि समृद्धियों से युक्त, (सुद्युम्नाम्) ऐश्वर्य से युक्त (रातिनीम्) दिये नाना पदार्थों से युक्त (घृताचीम्) तेजस्विनी, विद्वान् युवा के हाथ उत्तम कन्या के समान उत्तम राष्ट्र-प्रजा को (अच्छ प्र इयर्मि) तेरे सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ और (उराणः) जैसे अधिक प्राणवान् युवा पुरुष, अग्नि की प्रदक्षिणा करके (रातिभिः वसुभिः) उत्तम दान योग्य ऐश्वर्यों सहित (देवतातिम् ताम्) कामनाशील स्त्री को प्राप्त कर (यज्ञम् सम् अश्रेत्) संगतिकारक यज्ञ, परस्पर दान प्रतिदान के व्यवहार और मैत्रीभाव को सेवता है वैसे ही हे अग्ने! तू भी (प्रदक्षिणित्) उत्तम बलयुक्त मार्ग से जाता हुआ (उराणः) बलवान् और यज्ञवान् होकर (रातिभिः) दानशील, एवं बसने वाले प्रजाजनों वा देने योग्य ऐश्वर्यों से हित (यज्ञं) परस्पर के व्यवहार को (सम् अश्रेत्) चला, स्थापित कर।

स तेजी॑यसा॒ मन॑सा॒ त्वोत॑ उ॒त शि॑क्ष स्वप॒त्यस्य॑ शि॒क्षोः।
अग्ने॑ रा॒यो नृत॑मस्य॒ प्रभू॑तौ भू॒याम॑ ते सुष्टु॒तय॑श्च॒ वस्वः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! कोष्ठ को अग्नि के समान अपने सम्पर्क से छात्र को ज्ञान प्रकाश से प्रज्वलित करने हारे! (सः) वह विद्यार्थी (त्वा उतः) तेरे से सुरक्षित और तेरे से अध्यापित होकर (तेजीयसा मनसा) अधिक तेज से युक्त ज्ञान और तेजस्वी चित्त से यु हो

(उत) तू भी (सु-अपत्यस्य) उत्तम पुत्र के समान (शिक्षोः) शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्य के लिये (शिक्ष) ज्ञान को दे । हे (अग्ने) विद्वन् ! (रायः) दान योग्य ज्ञान के (नृतमस्य) सबसे उत्तम पुरुष (ते) तेरे (प्रभूतौ) उत्तम प्रभाव में हम (सुस्तुतयः) उत्तम विद्योपदेशों से युक्त, (वस्वः च) तेरे अधीन वास करने वाले शिष्य (भूयाम) होकर रहें ।

भूरी॑णि॒ हि त्वे द॑धि॒रे अनी॒काग्ने॑ दे॒वस्य॒ यज्य॑वो॒ जना॑सः ।
स आ व॑ह दे॒वता॑तिं यविष्ठ॒ शर्धो॒ यद॒द्य दि॒व्यं यजा॑सि ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! प्रतापवान् पुरुष ! (देवस्य) परमेश्वर के (यज्यवः) उपासक वा (देवस्य ते यज्यवः जनासः) विजय करने के इच्छुक, तरी संगति करने वाले, (ते) तेरे अधीन (भूरीणि) बहुत से (अनीका) सैन्यों को (दधिरे) स्थापित करें । हे (यविष्ठ) सबसे बढ़कर शत्रुओं के नाशक । (सः) वह तू जो (अद्य) आज (दिव्यं) कान्तियुक्त (शर्धं) बल को (यजासि) संग्रह करता है तू उस (देवतातिम्) विद्वान् विजयी पुरुषों के योग्य, बल को (आ वह) धारण कर ।

यत्त्वा॒ होता॑रमन॒जन्मि॒येधे॑ नि॒षाद॑यन्तो य॒जथा॑य दे॒वाः ।
स त्वं नो॑ अग्नेऽवि॒तेह बो॑ध्य॒धि श्रवां॑सि धेहि न॒स्तनू॑षु ॥५॥१९॥

भा०—हे आचार्य (अग्ने) विद्वन् ! (देवाः) ज्ञानों के अभिलाषी शिष्यजन (यजथाय) विद्यादान, सत्संगति लाभ करने के लिये ही (मियेधे) ज्ञानरूप पवित्र यज्ञ में (निषादयन्तः) समीप बैठते हुए (होतारम्) विद्या के दाता (त्वा) तुझको (अनजन्) प्राप्त होते, प्रकाशित करते या उत्तम पद पर अभिषिक्त करते हैं। (अग्ने) ज्ञानवन्! (सः त्वं) वह तू (इह) इस आश्रय में (नः) हमारा (अविता) रक्षक, ज्ञानदाता होकर (बोधि) हमें ज्ञानोपदेश कर और (नः तनूषु) हमारे शरीरों में (श्रवांसि) अन्नों के समान (तनूषु श्रवांसि) विस्तृत आत्माओं में या पुत्र समान शिष्यों में श्रवण करने योग्य वेद ज्ञानों को (धेहि) धारण कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[२०] कौशिको गाथी ऋषिः ॥ विश्वेदेवाः देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१॥

भा०—(वह्निः) विवाह करने वाला युवा जैसे (अग्निम्) आवसथ्य यज्ञाग्नि को और (दधिक्रां उषसम्) पोषण करने वाले पति को प्राप्त होने वाली, मनोरमा स्त्री को या (दधिक्रां) पोषक पिता से भी बढ़ जाने वाले पुत्र को और (अश्विना) सूर्य-पृथिवी के समान माता पिता दोनों को (व्युष्टिषु) विशेष उषा कालों में या विशेष प्रेम के अवसरों में (उक्थैः) उत्तम वचनों से (हवते) बुलाता है वैसे ही (वह्निः) राज कार्य भार को अपने ऊपर धारण करने वाला पुरुष (अग्निम्) नायक को (उषसम्) प्रभात वेला के समान अपने पीछे तेजस्वी सूर्यवत् सेनापति को धारण करने वाली (दधिक्राम्) अपने धारक पोषक को प्राप्त (उषसम्) शत्रु को सन्तप्त करने वाली सेना को, या (दधिक्राम्) पीठ पर सवार को धारण करके वेग से जाने वाले अश्व को और (अश्विना) दो अश्ववान्, सेनापति या राजा प्रजावर्ग या राजा रानी दोनों को (व्युष्टिषु) दुष्ट शत्रुओं को विविध प्रकार से ताप या पीड़ा देने के संग्राम आदि कार्यों में (उक्थैः) उत्तम प्रशंसनीय वचनों, पदों और कर्मों से (हवते) अपनाता और रखता है। (सुज्योतिषः) उत्तम चमकते आभूषणों, तेजों और ज्ञानों को धारण करने वाले (देवाः) विद्वान्, वीर लोग (सजोषसः) परस्पर समान प्रीतिभाव से युक्त होकर (नः अध्वरं) शत्रु द्वारा होने वाले विनाश को (वावशानाः) चाहते हुए (नः शृण्वन्तु) हमारे निवेदन तथा व्यवहारों को सुना करें।

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः । तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् पुरुष ! (ते) तेरे (त्री) तीन प्रकार के (वाजिना) ज्ञान, बल और अन्न हैं। तीन प्रकार के शास्त्रकृत परानुभववेद्य और स्वानुभववेद्य और तीन प्रकार का बल आत्मिक, वाचिक, शारीरिक तीन प्रकार का अन्न, खाद्य, लेह्य, चोष्य, अथवा औषधियों से उत्पन्न धान्य बीजादि, लता वृक्षादि से प्रसूत कन्द मूल फल पुष्पादि और पशु जीवों से उत्पन्न दूध और दूध से बने पदार्थ और (त्री सधस्था) तेरे तीन एकत्र होकर रहने के स्थान हैं। एक ब्रह्मचर्य, दूसर गृहस्थ और तीसरा वानप्रस्थ ये तीन आश्रम हैं। चतुर्थ आश्रम में एकान्त विचरता है तब किसी के साथ नहीं होता। राजा की तीन 'सधस्थ' अर्थात् सभाभवन राजसभा, धर्मसभा, विद्वत् सभा हैं। (ते तिस्रः पूर्वीः जिह्वा) तेरी तीन पूर्व आचार्यों द्वारा उपदिष्ट सनातन जीभें अर्थात् वाणियां हैं। स्तुति रूप ऋग्, गान रूप साम और कर्म-निदर्शक गद्यरूप यजुः। राजा की तीन जिह्वाएं तीन वाणियें अपने शासकों के प्रति, प्रजा के प्रति और परपक्ष के प्रति। हे (ऋतजात) वेद, सत्य व्यवहार और न्याय में प्रसिद्ध पुरुष। (ते) तेरे (तिस्रः उ तन्वः) तीन ही तनु अर्थात् देह हैं अपना देह, यश और राष्ट्र। ये तीनों देह (देववाताः) देवों द्वारा सञ्चालित हैं। देह को देव अर्थात् प्राण चलाते हैं यशःकाय को विजिगीषु सैन्य स्थिर रखते हैं और राष्ट्र देह को ऐश्वर्य के इच्छुक एवं दानशील शासक और प्रजावर्ग चलाते हैं। (ताभिः) उन तीनों देहों द्वारा तू (अप्रयुच्छन्) विना प्रमाद के ही (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (पाहि) रक्षा कर।

अग्ने॒ भूरी॑णि॒ तव॑ जातवेदो॒ देव॑ स्वधावो॒ऽमृत॑स्य॒ नाम॑।
याश्च॑ मा॒या मा॒यिनां॑ विश्वमिन्व॒ त्वे पू॒र्वीः सं॑द॒धुः पृ॑ष्टबन्धो ॥३॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञान प्राप्त करके प्रसिद्ध होने हारे ! विद्वन् ! हे (देव) ज्ञानों के दाता आचार्य ! गुरो ! हे (स्वधावः) आत्मा को धारण करने वाली स्नेहमयी शक्ति के स्वामिन् वा अन्नवन् ! (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक ! (अमृतस्य) कभी न मरने वाले, शिष्य-पुत्रादि परम्परा

से सदा जागृत (तव) तेरे (भूरीणि नाम) बहुत से नाम (संदधुः) बतलाते हैं। हे (विश्वमिन्व) समस्त जगत् को जाननेवाले या विश्व अर्थात् आत्मा को जानने जनाने हारे! (याः च) जो भी (मायिनां) बुद्धिमान् पुरुषों की (मायाः) नाना विद्याएं और ज्ञान बुद्धियां हैं, हे (पृष्टबन्धो) प्रश्न करने वाले शिष्य के बन्धुरूप आचार्य! उन सब (पूर्वीः) पूर्व काल से चली आई, सनातन विद्याओं को (त्वे) तेरे में, तेरे ही आश्रय रहकर (संदधुः) अच्छी प्रकार धारण करें।

अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥

भा०—(भगः इव) तेजस्वी सूर्य जैसे (ऋतुपाः) वसन्त आदि ऋतुओं का पालक होकर (दैवीनां) देव अर्थात् जल प्रदान करने वाले मेघों से हरी भरी रहने वाली (क्षितीनां) भूमियों का (नेता) नायक है, उनमें उत्पन्न औषधि आदि को पालता है वैसे ही (अग्निः) ज्ञानप्रकाश से युक्त तेजस्वी पुरुष (भगः) सबका कल्याणकारी (दैवीनां) दानशील राजा के पीछे चलने वाली (क्षितीनां) प्रजाओं का (नेता) नायक स्वयं (देवः) दानशील (ऋतुपाः) राजसभा के सदस्यों का स्वामी और (ऋतावा) सत्य, न्याय-विधान का पालक हो। (सः) वह (वृत्रहा) मेघों को सूर्य के समान बढ़ते शत्रुओं को और अज्ञानों का नाशक (सनयः) नीतिमान् होकर (विश्ववेदाः) सब कुछ जानने हारा, सब प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी होकर (गृणन्तम्) दुःख का निवेदन करने वाली प्रजा को (विश्वा दुरिता अति पर्षत्) सब प्रकार के दुःखदायी मार्गों और बुराइयों से पार करे।

दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम्।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥२०॥

भा०—मैं (दधिक्राम्) धारक पदार्थों में व्यापक विद्युत् (उषसं

च) दाहकारी (देवीं) तेजस्विनी प्रकाशयुक्त प्रभा, (बृहस्पतिम्) महान् आकाश के पालक, वायु और (देवं च सवितारम्) सबके प्रकाशक, सबके प्रेरक और उत्पादक सूर्य (अश्विना) सूर्य और चन्द्र से युक्त दिन और रात्रि तथा (मित्रावरुणा) मित्र, वायु और वरुण जल अथवा प्राण और अपान, (भगं च) सबके सेवन योग्य सुख-शान्तिकारक ऐश्वर्ययुक्त अन्न, (वसून्) पृथिवी आदि वसुओं (रुद्रान्) ग्यारह प्राणों और (आदित्यान्) बारहों मास को (इह हुवे) इस जगत् में प्राप्त करूं।

[२१] कौशिको गाथी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप् । २, ३ अनुष्टुप् । ५ विराट् बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्य वाले विद्वन् ! तू (इमं यज्ञम्) पूजा सत्कार, सत्संग व्यवहार आदि इन उत्तम कामों को (नः) हमारे बीच (अमृतेषु) न मरने हारे, दीर्घजीवी, वृद्ध जनों और युवा पुत्रों में (धेहि) स्थापित कर। (इमा) ये (हव्या) ग्रहण योग्य अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य और सद्गुणों धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि के साधक साधनों को (जुषस्व) सेवन कर। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (होतः) सबके दाता ! (अग्ने) प्रतापिन् ! (प्रथमः) सबसे प्रथम (घृतस्य मेदसः) घृत के समान स्नेहयुक्त चिकने पदार्थ द्वारा बने (स्तोकानां) थोड़ी २ मात्रा में स्थित पदार्थों का तू (निषद्य) आदरपूर्वक बैठकर (प्र अशान) उत्तम रीति से भोजन कर।

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (पावक) पवित्र करने हारे, तेजस्विन् ! जैसे (मेदसः स्तोकाः) स्निग्ध पदार्थ के विन्दु अग्नि में पड़ते हैं वैसे ही (ते) तेरे

(मेदसः) स्नेह से युक्त (घृतवन्तः) ज्ञान और तेज से सम्पन्न (स्तोकाः) बिन्दुओं के समान अल्पबल और अल्पज्ञानी वा विद्याभ्यासी शिष्यगण (श्चोतन्ति) तुझ से ही निकलते हैं। हे विद्वन् ! तू (देव-वीतये) विद्वान् पुरुषों के बीच कान्ति धारण करने वा ज्ञानाभिलाषी शिष्यों के बीच ज्ञान प्रकाशित करने के लिये (स्वधर्मन्) अपने धर्म में स्थित होकर (नः) हमें (श्रेष्ठं वार्यम्) उत्तम, वरणयोग्य और ज्ञानैश्वर्य (धेहि) प्रदान कर।

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव॥ ३॥

भा०—हे (सन्त्य) सत्यासत्य का विवेक करने में श्रेष्ठ पुरुष ! (अग्ने) विद्वन् ! (विप्राय) विविध प्रकार से पूर्ण एवं नाना धर्म कर्मों में रत (तुभ्यं) तेरे अधीन ये (घृतश्चुतः) घृत से सिंचे अग्नियों के समान तेज से युक्त (स्तोकाः) विद्याभ्यासी शिष्यजन हैं। तू (श्रेष्ठः) उन सबमें श्रेष्ठ (ऋषिः) ज्ञानों का द्रष्टा होकर (समिध्यसे) प्रकाशित हो और (यज्ञस्य) ज्ञानमय श्रेष्ठ दान और सत्संग का (प्र-अविता) सबसे उत्तम रक्षक और ज्ञाता (भव) हो।

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर॥ ४॥

भा०—हे (अध्रिगो) 'गो' वेदवाणी और इन्द्रियगण पर अधिकार रखने हारे विद्वन् ! हे 'गो' अर्थात् पृथिवी के शासन करने हारे राजन् ! हे (शचीवः) हे उत्तम प्रजा और शक्ति वाले ! (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशक ! (स्तोकासः) वेदों का स्तवन, पठन और अभ्यास कराने वाले विद्वान् जन (तुभ्यं) तेरा ही (मेदसः) स्नेहयुक्त तथा (घृतस्य) जल और घी के समान प्रवाह युक्त, तेजस्वी या पवित्रकारक ज्ञान जल के द्वारा (श्चोतन्ति) सेचन करते, जलों से मेघों के समान तुझे स्नान कराते हैं।

हे राजन् (स्तोकासः) शत्रु का हनन करने वाले वीर और उसके स्तुति-कर्त्ता अल्पशक्तिशाली पुरुष (तुभ्यं) तेरा ही (मेदसः घृतस्य) स्नेह युक्त जल के द्वारा अभिषेक करते हैं। तू (कविशस्तः) विद्वान् पुरुषों से प्रशंसित होकर (बृहता भानुना) बड़े भारी तेज से सूर्य के समान (आ अगाः) हमें प्राप्त हो। हे (मेधिर) विद्वन्! तू (हव्या) ग्रहण योग्य ऐश्वर्यादि को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर।

ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥२१॥

भा०—हे (वसो) गुरु के अधीन बसे विद्वन्! हे अपने अधीन शिष्यों को बसाने हारे आचार्य! (ते) तेरे (मध्यतः) हृदय के बीच (ओजिष्ठं) अति ओजस्वी (मेदः) स्नेह और वीर्य (उद्भृतं) उत्तम रीति से तूने धारण किया है। (वयं) हम गुरुजन (ते) तुझे (प्र ददामहे) अच्छी प्रकार उत्तम २ ज्ञान प्रदान करते हैं। (ते अधि त्वचि) तेरी त्वचा पर (स्तोकाः) जल धाराओं के समान ज्ञान-जल प्रवाहित करने वाले विद्वान् जन (श्चोतन्ति) तेरा ज्ञान जल से स्नान करावें। तू (तान् देवशः) उन विद्वानों या तुझे चाहने वाले बन्धुजनों को (प्रति विहि) प्राप्त हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२२] कौशिको गाथी ऋषिः ॥ पुरीष्या अग्नयो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ३ भुरिक् पंक्तिः। ५ निचृत् पंक्तिः। ४ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥१॥

भा०—(अयं) यह (सः) वह (अग्निः) अग्नि या विद्युत् है (यस्मिन्) जिसमें (इन्द्रः) सबको प्रदीप्त करने वाला विद्वान् पुरुष (वावशानः) इच्छा करता हुआ, (जठरे) यन्त्र के मध्य में (सुतं) उत्पन्न (सोमं) प्रेरक

बल को उदर में जल वा अन्न के समान (दधे) स्थापित करता है । इस प्रकार वह (अत्यं न सस्निम्) वेगवान् अश्व के तुल्य (अत्यं) निरन्तर जाने वाले (सस्निम्) गतिशील (सहस्रिणं वाजं) सहस्रगुण बल को (दधे) धारण करता है । हे (जातवेदः) ज्ञानवन् ! तू उस बल को (ससवान्) अच्छी प्रकार यन्त्र के अन्य २ भागों में विभक्त करता हुआ (स्तूयसे) स्तुति करने योग्य है ।

अग्ने॒ यत्ते॑ दि॒वि वर्चः॑ पृथि॒व्यां यदोष॑धीष्व॒प्स्वा य॑जत्र ।
येना॒न्तरि॑क्षमु॒र्वा॑त॒तन्थ॑ त्वे॒षः स भा॒नुर॑र्ण॒वो नृ॒चक्षाः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते यद् वर्चः) तेरा जो तेज (दिवि) सबके कामना करने योग्य ज्ञान-प्रकाश में और (पृथिव्याम्) विस्तृत वेद वाणी में और (यत्) जो तेज (ओषधीषु) देह में ताप को धारण करने वाले (अप्सु) प्राणों में है । हे (यजत्र) शक्ति और ज्ञान के देने हारे ! (येन) जिस तेज से (उरु) तू बहुत बड़े (अन्तरिक्षं) अन्तःकरण में विद्यमान ज्ञान को (आ ततन्थ) विस्तारित करता है (सः) वह तू (भानुः) प्रकाशमान सूर्य के समान (त्वेषः) तीक्ष्ण, तेजस्वी (अर्णवः) समुद्र के समान गम्भीर (नृचक्षाः) मनुष्यों के बीच द्रष्टा और उपदेष्टा है ।

अग्ने॑ दि॒वो अर्ण॒मच्छा॑ जिगा॒स्यच्छा॑ दे॒वाँ ऊ॑चिषे॒ धिष्ण्या॒ ये ।
या रो॑च॒ने प॒रस्ता॒त्सूर्य॑स्य॒ याश्चा॒वस्ता॑दुप॒तिष्ठ॑न्त॒ आपः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (दिवः) सबसे अधिक प्रकाशमान सूर्यवत् तेजस्वी गुरुजन से (अर्णम्) विनय द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञान को (अच्छ) उसके सम्मुख होकर (जिगासि) अभ्यास कर और (ये धिष्ण्याः) जो विशेष धारणवती बुद्धियों, नाना ज्ञानों को चाहने वाले शिष्य जन हैं उन (देवान्) शिष्यों को (अच्छा ऊचिषे) अभिमुख कर भली प्रकार उपदेश कर और (याः) जो (आपः) आप्त प्रजाएं (सूर्यस्य

रोचने) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान गुरु के सर्व प्रिय, तेजोयुक्त प्रकाश या उच्च पद पर और (परस्तात्) उससे भी उत्तम पद पर और जो (अवस्तात्) उससे नीचे शिष्य पद पर (उपतिष्ठन्ते) उपस्थित होते हैं उनके प्रति भी उत्तम उपदेश कर।

पुरीष्यांसो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ४ ॥

भा०—(पुरीष्यासः) अन्न, ऐश्वर्य, पृथिवी, विद्वान्, प्रजाजन, पशु आदि से सम्पन्न (अग्नयः) तेजस्वी नेताजन, (प्रवणेभिः) उत्तम सैन्य दलों, प्रजाजनों और अधीनस्थ विनयशील सहायक मार्गों से (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर, (अद्रुहः) तथा द्रोहरहित होकर (यज्ञम्) मैत्रीभाव, सत्सङ्ग, दान-प्रतिदान को, (अनमीवाः) रोगरहित (इषः) अन्न जलों और (महीः) उत्तम वाणियों और भूमियों को (जुषन्ताम्) सेवन करें। (२) पुरीष्यासः—पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति। श० २।१।१।७ ॥ अन्नं पुरीषम्। श० ८।१।४।५ ॥ पुरीषं वा इयम्। श० १२।५।२।५ ॥ ऐन्द्रं हि पुरीषम्। श० ८।७।३।७ ॥ दक्षिणाः पुरीषम्। ८।७।४।१५ ॥ देवाः पुरीषम्। नक्षत्राणि पुरीषम्। वयांसि पुरीषम्। प्रजाः पुरीषम्। पशवः पुरीषम्। पुरीतत् पुरीषम्। शत० ८।७।४।१—१८ ॥ अध्यात्मम्—मांसं पुरीषम्। देवाः पुरीषम्। पुरीतत् पुरीषम्। शत० ८।७।४–१–१८ ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२२॥

भा०—व्याख्या देखो मं० ३।सू०१।मं०२३ ॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२३] देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २–५ निचृत् त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १ ॥

भा०—(निर्मथितः) दो अरणियों के बीच में मथन करने से प्रकट होने वाला अग्नि जैसे (सधस्थे) यजमान के गृह में (सुधितः सन् अमृतं आदधे) उत्तम रीति से स्थापित होकर अमृत, सदा जागृत रूप को धारण करता है वैसे ही (सधस्थे) एकत्र सभासदों के विराजने के स्थान, सभाभवन में (निर्मथितः) विशेष, आलोड़न किए हुए ज्ञान को जानने वाला, शास्त्रज्ञ विद्वान् (सुधितः) उत्तम रीति से स्थापित होकर (अमृतं) अविनाशी स्थायी पद को (आदधे) धारण करे । वह (युवा) बलवान् युवावस्थासम्पन्न, दानैश्वर्यों का विभाजक, (कविः) क्रान्तदर्शी, बुद्धिमान्, (अध्वरस्य) नाशरहित एवं अहिंसामय प्रजापालनादि यज्ञ को (प्रणेता) उत्तम मार्ग से चलने हारा हो। वह (अग्निः) नायक, तेजस्वी होकर (जूर्यत्सु) स्वयं भस्म हो जाने वाले (वनेषु) वनों में, या काष्ठों में अग्नि के समान, (जूर्यत्सु वनेषु) वेगवान् किरणों में (अजरः) अविनश्वर सूर्य के समान, स्वयं (अजरः) जीवन की हानि न करता हुआ (अत्र) इस राष्ट्र में (जातवेदः) ऐश्वर्य से युक्त होकर (अमृतं) सन्तति को गृहस्थ के समान अमृत, यश, अन्नादि समृद्धि और राष्ट्र के स्थायी दीर्घ जीवन को (आदधे) स्थापित करे ।

अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥

भा०—(देवश्रवाः) विद्वानों के ज्ञान का श्रवण करने वाला (देववातः) विद्वानों द्वारा प्रेरित, उनकी आज्ञा का वशंवद, ऐसे दोनों (भारता) प्रजाओं के भरण पोषण करने वाले स्त्री पुरुषों के समान उक्त प्रकार के दोनों पुरुष मिलकर (सुदक्षम्) उत्तम बलयुक्त, प्रजायुक्त (रेवत्) ऐश्वर्य से समृद्ध (अग्निं) तेजस्वी नायक को (अमन्थिष्टाम्) दो अरणियों से मथे गये अग्नि के समान पक्ष प्रतिपक्ष के बीच वादविवाद द्वारा

मथकर निर्णय करें। हे (अग्ने) नायक! (बृहता राया) बड़े भारी ऐश्वर्य से युक्त होकर (एषां) इन सब प्रजावर्गों को (वि पश्य) विविध प्रकार से देख। उनके व्यवहारों का निर्णय कर और (नः) हमारा (अनु द्यून्) सदा दिनों (नेता भवतात्) सन्मार्ग में ले चलने हारा हो।

दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम्।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥ ३ ॥

भा०—(दश क्षिपः) दशों प्रेरित प्राण जैसे (मातृषु प्रियं सुजातं अजीजनन्) माताओं के गर्भों में उत्तम रीति से उत्पन्न प्रिय, अभीष्ट बालक को उत्पन्न करते हैं और जैसे (दश क्षिपः) दशों दिशाएं उत्तम रूप से प्रकट प्रिय सूर्य को प्रकट करती हैं, वैसे ही (दश) दसों (क्षिपः) दिशाओं में शत्रु सेनाओं पर शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाली या आज्ञाकारिणी सेनाएं और प्रजाएं (मातृषु) सर्वोत्पादक भूमियों में (पूर्व्यम्) पूर्व या श्रेष्ठ वंश से चले आये (प्रियम्) सर्व प्रिय (सुजातम्) पुरुष को उत्तम रूप से (सीम् अजीजनत्) सर्वत्र प्रकट करें। हे (देवश्रवः) ज्ञानों को श्रवण कराने वाले विद्वन्! तू (देववातं) देवों के विद्वानों द्वारा सञ्चालित प्रेरित (अग्निम्) अग्रणी नायक की (स्तुहि) स्तुति कर उसके उत्तम गुणादि सहित उसे प्रस्ताव द्वारा प्रस्तुत कर (यः) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच सब को (वशी असत्) वश करने हारा हो।

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! मैं प्रजाजन (त्वा) तुझको (पृथिव्याः) अतिविस्तृत, (इळायाः) पृथ्वी और वाणी के (वरे) सर्वश्रेष्ठ प्राप्त करने योग्य पद पर, सर्वोच्च आसन पर (अह्नां सुदिनत्वे) दिनों के बीच शुभ दिन में (निदधे) स्थापित करूं और तू (दृषद्वत्यां) शिला पर्वतादि वाली, (आपयायां) जलों से व्याप्त, नदी ताल आदि वाली और

(सरस्वत्यां) उत्तम तालों वा सागरों से युक्त नाना भूमियों में (रेवत्) ऐश्वर्यवान् होकर (मानुषे) मनुष्यों के बीच में (दिदीहि) प्रकाशित हो।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२३॥

भा०—व्याख्या देखो म० ३ । १ । २३ ॥ इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[२४] विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री । ३, ४, ५ गायत्री ॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य ।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! तू (अभिमातीः) आक्रमण करके हत्या करने वाले और अभिमान से पूर्ण (पृतनाः) शत्रु-सेनाओं को (अप-अस्य) दूर कर और (सहस्व) पराजित कर । तू स्वयं (दुःस्तरः) शत्रुओं द्वारा विशाल सागर के समान अलंघ्य होकर और (अरातीः) शत्रुओं को (तरन्) पराजित करता हुआ (यज्ञ-वाहसे) तुझसे मित्रभाव, सत्संग, कर आदि देकर राजा प्रजा का सा सम्बन्ध करने वाले प्रजागण के उपकार के लिये तू (वर्चः) तेज, बल (धाः) धारण कर, उसको अन्न समृद्धि प्रदान कर ।

अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः ।
जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या, विज्ञान के प्रकाश और ब्रह्मचर्य आदि के तेज से युक्त विद्वन् ! तू (इळा) सबके चाहने योग्य उत्तम वेदवाणी और भूमि से युक्त होकर (समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हो । तू (वीतिहोत्रः) उत्तम गुणों से व्याप्त विद्याओं, रक्षाओं और कान्तिमय तेजों को स्वयं धारण करने और अन्यों को देने हारा और

(अमर्त्यः) कभी न मरने हारा होकर (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसन पीड़नादि से रहित पालन आदि यज्ञ कार्य को (सु जुषस्व) सुखपूर्वक प्रेम से स्वीकार कर ।

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (जागृवे) जागरणशील ! सावधान रहने वाले ! हे (सहसः सूनो) अन्तः-शत्रु नाशक, सहनशीलता के जनक ! बलों, सैन्यों के प्रेरक और बल के द्वारा शासक ! तू (द्युम्नेन) ऐश्वर्य और तेज के सहित (मम) मेरे (इदं) इस (बर्हिः) वृद्धिशील, उत्तम आसन, प्रजाजनाधिकार में (आ सदः) आ विराज ।

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः ।
यज्ञेषु ये उ चायवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तु (यज्ञेषु) परस्पर मित्रता और सत्सङ्ग-युक्त कार्यों में (ये उ चायवः) जो उत्तम सत्कार करने वाले, एवं सत्कार योग्य मनुष्य हैं उनकी (गिरः) वाणियों का वा (गिरः) उपदेश करने वाले उनका (विश्वेभिः अग्निभिः) समस्त ज्ञानी पुरुषों और (देवेभिः) कमनीय गुणों वाले, व्यवहारज्ञ, विजयेच्छुक पुरुषों द्वारा (महय) आदर करा ।

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसं ।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (दाशुषे) दानशील, सबको सुख देने वाले वा आत्म-समर्पक वा करादि देने वाले प्रजाजन को (वीरवन्तं) उत्तम पुत्रों और वीर पुरुषों से युक्त (परीणसं) बहुत प्रकार का (रयिं) ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर और (सूनुमतः) पुत्र पौत्रों से युक्त वा उत्तम शासक से युक्त (नः) हमें (शिशीहि) शासन कर । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२५] विश्वामित्र ऋषिः ॥ १, २, ३, ४ अग्निः। ५ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः— निचृदनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३, ४, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अग्ने॑ दि॒वः सू॒नुर॑सि॒ प्रचे॑ता॒स्तना॑ पृथि॒व्या उ॒त वि॒श्ववे॑दाः।
ऋध॑ग्दे॒वाँ इ॒ह य॑जा चिकित्वः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! तू (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान से युक्त (विश्ववेदाः) सब प्रकार के धनों और ज्ञानों का स्वामी होकर (दिवः सूनुः असि) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश का प्रवर्त्तक है। तू (पृथिव्याः तनः) पृथिवी के समान विशाल गुणों वाला, माता का पुत्र है। हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! तू (इह) इस लोक में, (देवाः) सब धनैश्वर्य व सुख चाहने वाले पुरुषों को (यज्ञः) सत्सङ्ग आदि गुण प्रदान कर।

अ॒ग्निः स॑नोति वी॒र्या॑णि वि॒द्वान्त्स॒नोति॒ वाज॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न्।
स नो॑ दे॒वाँ एह व॑हा पुरुक्षो ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष ! (वीर्याणि) नाना बल वीर्यों को (सनोति) देता है। वही (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (भूषन्) ज्ञान से सुशोभित होकर (अमृताय) मोक्षसुख, दीर्घायु, उत्तम सन्तति आदि के लिये (वाजं सनोति) बल, वीर्य, वाणी आदि देता है। हे अन्नादि (पुरुक्षो) भोज्य सामग्रियों के स्वामिन् तू (नः) हमें (इह) यहां (देवान् आवह) विद्वानों को प्राप्त करा।

अ॒ग्निर्द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वज॑न्ये॒ आ भा॑ति दे॒वी अ॒मृते॒ अमू॑रः।
क्षय॒न्वाजैः॑ पुरुश्च॒न्द्रो नमो॑भिः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (अग्निः) सूर्य, विद्युत्, अग्नितत्त्व (अमूरः) कभी नष्ट न होकर (विश्वजन्ये) सबको उत्पन्न करने वाली और (अमृते) नष्ट न होने वाली, प्रवाह से वा कारण रूप से नित्य, (देवी) दिव्य गुणयुक्त, जल अन्नादि देने वाली (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी दोनों को

(आभाति) प्रकाशित करता है और वह (पुरु-चन्द्रः) बहुत प्रकार से, बहुतों को आह्लादित करने वाला होकर (नमोभिः) अन्नों (वाजैः) प्रकाश, वेगादि से (क्षयन्) सर्वत्र व्यापता है। वैसे ही (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (अमूरः) कभी मूढ़ न होकर (देवी) उत्तम गुणों से युक्त, कमनीय, (अमृते) दीर्घायु (विश्वजन्ये) सबको उत्पन्न करने वाले, सब सुखसम्पदा के उत्पादक (द्यावापृथिवी) पिता माता व ज्ञानी और अज्ञानी दोनों को (आ भाति) चमकावे।

अग्न॒ इन्द्र॑श्च दा॒शुषो॑ दुरो॒णे सु॒ताव॑तो य॒ज्ञमि॒होप॑ यातम्।
अम॑र्धन्ता सोम॒पेया॑य देवा ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (इन्द्रः च) और सूर्य के समान अज्ञाननाशक और शत्रुपक्ष का दलन करने वाला वीर पुरुष दोनों ही (अमर्धन्ता) एक दूसरे का परस्पर नाश करते हुए (देवा) सत्य प्रकाशक, कान्ति से युक्त होकर (दाशुषः) दानशील, करप्रद, या आत्मसमर्पक (सुतवतः) ऐश्वर्य-युक्त प्रजाजन के (दुरोणे) गृह में (सोमपेयाय) ऐश्वर्य और ज्ञान के पान अर्थात् उत्तम रीति से प्राप्ति के लिये (इह) यहां (यज्ञम्) परस्पर प्रेमभाव के व्यवहार को (उप यातम्) प्राप्त हों।

अग्ने॑ अ॒पां समि॑ध्यसे दुरो॒णे नित्यः॑ सूनो सहसो जातवेदः।
स॒धस्था॑नि म॒हय॑मान ऊ॒ती ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र के समान ! एवं बल के उत्पादक, सैन्य के प्रेरक ! नेतः ! हे (जातवेदः) ऐश्वर्य के स्वामिन् (अपां दुरोणे) तू जलों के बीच सूर्य के समान (अपां दुरोणे) आप्त प्रजाजनों के गृह वा राष्ट्र के बीच में (नित्यः) सदा वर्तमान रहकर भी (सधस्थानि) गृहों और लोकों को अपनी (ऊती) रक्षा और ज्ञान से (महयमानः) अलंकृत करता हुआ (समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है। सूर्य, विद्युत् दोनों पृथिवी के स्थानों को (ऊती) अन्न से समृद्ध करते हैं। विद्वान् ज्ञान से, वीर पुरुष रक्षा से। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[२६] विश्वामित्रः । ७ आत्मा ऋषिः ॥ १—३ वैश्वानरः । ४—६ मरुतः । ७, ८ अग्निरात्मा वा । ९ विश्वामित्रोपाध्यायो देवता ॥ छन्दः—१—६ जगती । ७—९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥

भा०—जैसे (देवं वैश्वानरं अग्निं हविष्मन्तः गीर्भिः हवन्ते) प्रकाशमान, सबके हितकारी अग्नि को यज्ञ चरु वाले ऋत्विग् लोग प्राप्त कर उसे आहुति देते हैं वैसे ही हम (कुशिकासः) सत्य का उपदेश करने हारे विद्वान् और शत्रु को ललकारने वाले वीर (वसूयवः) आचार्य के अधीन निवास करने वाले ब्रह्मचारी होने की इच्छा करते हुए वा ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (वैश्वानरं) सबको उत्तम मार्ग में चलाने वाले, (अनुसत्यम्) सदा सत्य व्यवहार करने वाले (स्वर्विदम्) स्वयं सुख, प्रकाश और प्रताप को प्राप्त करने और अन्यों को सुख प्राप्त कराने हारे, (सुदानुं) उत्तम दानशील, शत्रुभञ्जक, (देवं) तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक, विजिगीषु (रथिर) रमणीय ज्ञानवान् वा रथादि के स्वामी, (रण्वं) उपदेष्टा और रण में प्रयाण कुशल, (अग्निम्) ज्ञानवान् एवं नायक पुरुष को (मनसा) चित्त से और उत्तम यन्त्रबल से (निचाय्य) पूजित कर वा अलंकृत करके (हविष्मन्तः) बहुत से उपहार पदार्थों को लिये हुए, (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (हवामहे) उसे प्राप्त हों और अपना गुरु व नायक स्वीकार करें ।

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥

भा०—हम लोग जैसे (अवसे) गति उत्पन्न करने और पदार्थों के सत्यासत्य रूप का ज्ञान करने और प्रकाश के लिये (शुभ्रम्) खूब चमकने वाले (अग्निम् हवामहे) अग्नि को उपयोग में लेते हैं वैसे ही हम लोग (अवसे) कमनीय गुणों के लिये (शुभ्रम्) तेजस्वी, शुद्ध कर्मों वाले,

(वैश्वानरं) सब नायकों के नायक (मातरिश्वानम्) वायु के आश्रय जीवित, अग्नि के समान मातृस्वरूप मातृभूमि के निमित्त प्राण धारण करने वाले और माता अर्थात् उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों के आश्रय (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (बृहस्पतिम्) बड़े वेदज्ञान और राष्ट्र के पालक (विप्रं) विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूरने वाले और शिष्यों को विविध ज्ञानों से पूर्ण करने वाले, (श्रोतारम्) श्रवणशील एवं सबसे सुख दुःख निवेदनों को यथावत् सुनने वाले, (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, सर्वोपरि उत्तम आसन पर अध्यक्ष रूप से विराजने वाले, (रघुस्यदम्) अतिशीघ्र-गामी, तीव्रबुद्धि, (अग्निम्) तेजस्वी, विद्वान् और नायक को (मनुषः) हम मननशील पुरुष मिलकर (देवतातये) उत्तम प्रकाशों और गुणों को पाने और विद्वानों और वीरों के हित के लिये (हवामहे) प्राप्त करें।

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥

भा०—(जनिभिः) स्वयं ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ (कुशिकेभिः) उत्तम उपदेष्टा लोगों द्वारा (अश्वः न) बलवान् अश्व के समान हृष्ट पुष्ट (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का नायक, सबका सञ्चालक पुरुष भी (युगेयुगे) प्रति दिन और प्रति वर्ष (समिध्यते) ज्ञान, बल और तेज द्वारा प्रदीप्त किया जाय। (सः) वह (जागृविः) सदा जागरणशील, सावधान (अग्निः) नायक वा विद्वान् (अमृतेषु) दीर्घजीवी गुरुओं के अधीन रहकर (नः) हमारे लिये (सुवीर्यं) उत्तम बल से युक्त (सु-अश्व्यम्) उत्तम अश्व आदि सेनाङ्गों सहित (रत्नं) रमणीय (दधातु) रक्खे।

प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे सम्मिश्लाः पृषतीरयुक्षत।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (वाजाः अग्नयः) वेग से गति करने वाली विद्युत् (तविषीभिः) बलवान् वायुओं से (सम्मिश्लाः) मिलकर (शुभे) जल वृष्टि के

निमित्त (प्र यन्ति) चलती हैं और (पृषतीः) सेचन करने वाली मेघमालाओं को (अयुक्षत) सञ्चालित करते हैं और जैसे (अग्नयः) आगे ले चलने वाले सारथि लोग (तविषीभिः प्र यन्तु) स्थूल बलवती घोड़ियों से आगे बढ़ें और उन (पृषतीः) दृढ़पार्श्व वाली अश्वाओं को (शुभे) उत्तम मार्ग में सञ्चालित करें वैसे ही (अग्नयः) नायक पुरुष (वाजाः) बलवान् होकर (तविषीभिः) बलवती सेनाओं के साथ (प्र यन्तु) युद्ध में आगे बढ़ें और (शुभे) शुभ कार्य के निमित्त (सम्मिश्लाः) मिलकर (पृषतीः) शत्रु पर शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाली सेनाओं को, दिव्य शक्तियों को अच्छी रीति से (प्र अयुक्षत) प्रयोग करें। जैसे (मरुतः) वायुगण (बृहदुक्षः पर्वतान्) बहुत २ जल वर्षाने वाले पर्वताकार मेघों को (प्र वेपयन्ति) कंपा देते हैं वैसे ही (विश्ववेदसः) समस्त बातों का ज्ञान कर पता लगाने वाले (मरुतः) वायुसमान, बलवान् शत्रुओं को मारने वाले वीर सैनिक जन (बृहदुक्षः) बहुत से शस्त्रास्त्र बरसाने वाले होकर (अदाभ्याः) स्वयं परास्त न हों, और (पर्वतान्) सैन्य दलों के पालक बड़े २ अचल योद्धा नायकों को (प्र वेपयन्ति) खूब कंपा देने में समर्थ हों।

अ॒ग्नि॒श्रियो॑ म॒रुतो॑ वि॒श्वकृ॑ष्टय॒ आ त्वे॒षमु॒ग्रमव॑ ईमहे व॒यम्।
ते स्वा॒निनो॑ रु॒द्रिया॑ व॒र्षनि॑र्णिजः सिं॒हा न हे॒षक्र॑तवः सु॒दान॑वः ५।२६

भा०—जैसे (मरुतः) वायुगण (अग्निश्रियः) विद्युत् की विशेष शोभा को धारण करने वाले (विश्वकृष्टयः) सब प्रकार की कृषियों को उत्पन्न करने के कारण होते हैं वैसे ही (मरुतः) विद्वान् और वायु के समान शत्रु-उच्छेदक वीर पुरुष भी (अग्निश्रियः) अग्नि के समान तेजस्वी रूप को धारण करने हारे और (विश्व-कृष्टयः) विश्व को सद्गुणों से आकृष्ट करने हारे हों। (वयम्) हम लोग उनके (उग्रं) शत्रु के लिये भयदायक (त्वेषम्) तेज और (अवः) रक्षण की (ईमहे) याचना करते हैं। (ते) वे (स्वानिनः) मेघ के समान गर्जने वाले (रुद्रियाः) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति के अधीन रहने वाले (वर्षनिर्णिजः) जलवर्षी वायु गण

के समान शस्त्रवर्षण द्वारा राष्ट्र के शोधक, (सिंहाः न) सिंहों के समान शूरवीर, (हेमक्रतवः) उत्तम प्रज्ञा वा कर्म वाले (सुदानवः) शुभ ऐश्वर्य देने और रक्षा करने वाले हों। इति षड्विंशो वर्गः ॥

व्रातंव्रातं गुणंगंणं सुशुस्तिभिरुग्नेर्भामं मुरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो युज्ञं विदथेषु धीराः ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (व्रातं-व्रातं) प्रत्येक सैन्य दल में और (गणं-गणं) प्रत्येक गण अर्थात् कटक २ में (सुशस्तिभिः) उत्तम स्तुतियों सहित (अग्नेः) नायक पुरुष के (भामं) विशेष तेजों और (मरुताम्) वीर पुरुषों के (ओजः) पराक्रम की कामना करते हैं। वे (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (विदथेषु) यज्ञों और संग्रामों के अवसरों पर (पृषदश्वासः) विशेष मृग के समान वेगगामी वा चित्र वर्ण या भरे कुक्षि वाले हृष्ट पुष्ट अश्व और (अनवभ्रराधसः) अक्षय बल के स्वामी होकर भी (यज्ञं) मैत्रीभाव को (गन्तारः) प्राप्त हों।

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (जातवेदाः जन्मना अग्निः) स्वरूप को प्रकट करने वाला व्यापक अग्नि उत्पन्न होकर (अग्निः) आगे २ रह कर सन्मार्ग से चलाने हारा होता है वैसे ही (जातवेदाः) ज्ञानी और ऐश्वर्यवान् मैं भी (जन्मना) स्वभाव से ही (अग्निः) अग्नि के समान सन्मार्ग का नायक (अस्मि) होऊं। (मे) मेरी आंख अग्नि के समान मार्ग देखने वाली और (घृतम्) तेज से युक्त हो। (मे आसन्) मेरे मुख में (अमृतम्) जल और अन्न हो। जैसे (अर्कः) सूर्य (त्रिधातुः) तीनों लोकों का धारक होता है और जैसे (अर्कः त्रिधातुः) अर्क अर्थात् अन्न, रुधिर, मांस, अस्थि तीनों को धारण करता है और जैसे (अर्कः त्रिधातुः) मन्त्र वाणी, मन और काय तीनों के कर्मों को धारण करता है, वैसे ही मैं भी (अर्कः) अर्चन या

५

सत्कार योग्य होकर (त्रिधातुः) उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के जनों का धारक होऊं । (रजसः विमानः) जैसे अन्तरिक्ष का धारक, विशेष रूप निर्माण करने वाला वायु वा लोक समूह का विशेष निर्माता है वैसे ही मैं भी (रजसः) प्रजा के बीच (विमानः) विशेष ज्ञान और मान-आदर से युक्त होऊं । (घर्मः) घर्म अर्थात् घाम या सूर्य (अजस्रः) निरन्तर एक सार एक तेज से चमकता रहता है वैसे ही मैं भी (घर्मः) दीप्तियुक्त, (अजस्रः) कभी विनाश न होने वाला होकर रहूँ और (हविः) अन्न के समान सब के ग्रहण योग्य पुष्टिकारक (नाम) भी (अस्मि) होऊं ।

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य१र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥ ८ ॥

भा०—(त्रिभिः पवित्रैः अर्कं) जैसे तीन प्रकार के पवित्र करने के साधन प्रकाश, वायु और छाज से अन्न को पवित्र किया जाता है वैसे ही विद्वान् मनुष्य (अर्कं) अर्चना या ज्ञान करने योग्य अपने आत्मा को भी (त्रिभिः) तीन (पवित्रैः) पवित्र करने वाले साधनों, पवित्र आचरण, वचन और विचार से (अपुपोत् हि) अवश्य पवित्र करे । वह (प्रजानन्) उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त होकर (ज्योतिः अनु) परम ज्योतिःस्वरूप आत्मा के अधीन रहने वाली (मतिं) मननशील बुद्धि या वाणी को (हृदा) हृदय के सहित (अनुपोत् हि) पवित्र कर ले । (स्वधाभिः वर्षिष्ठं रत्नम् अकृत) जैसे जलों से ही प्रचुर वृष्टि से युक्त रमणीय दृश्य हो जाता है और जैसे (स्वधाभिः वर्षिष्ठं रत्नम् अकृत) अन्नों द्वारा वृद्धियुक्त चिरकालिक रमणीय जीवन का प्रचुर सुखदायक बलवीर्य उत्पन्न किया जाता है । वैसे ही (स्वधाभिः) आत्मा की धारणपोषणकारिणी शक्तियों द्वारा (रत्नम्) उस रमण योग्य (वर्षिष्ठम्) चिरकाल विद्यमान, ब्रह्म तत्व को (अकृत) साधे, (आत् इत्) अनन्तर ही वह (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी के समान परस्पर सम्बद्ध, परमेश्वर और जीव, प्रकाशमान और प्रकाश रहित, ज्ञानी

अज्ञानी और उपकारक और उपकारार्थ ब्रह्म और प्रकृति इनको (परि अपश्यत्) सब प्रकार से पृथक् २ साक्षात् करता है ।

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९॥२७॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाशमान और अन्न के दाता माता पिता जनो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप (शतधारं) सैकड़ों धाराओं के बरसने वाले मेघ के समान, (शतधारं) सैकड़ों वेदवाणियों से सम्पन्न, (अक्षीयमाणं उत्सम्) कभी क्षीण न होने वाले कूप या स्रोत के समान अक्षय ज्ञान से युक्त, (विपश्चितम्) विद्वान् (वक्त्वानां पितरम्) अध्यापन वा प्रवचन योग्य उपदेश वाक्यों के पालक एवं योग्य शिष्यों के पालक (मेळिं मदन्तं) ज्ञान वाणी को उपदेश करने वाले और (पित्रोः उपस्थे) माता पिता के समीप पद पर स्थित (सत्यवाचं) सत्य वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष को (पिपृतं) सब प्रकार से पालन और पूर्ण करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[२७] विश्वामित्र ऋषिः ॥ १ ऋतवोऽग्निर्वा । २—१५ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, १४, १५ निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ११, १२ गायत्री । ४, ५, १३ विराड् गायत्री । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या ।
देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् पुरुषो ! हे सभासदो ! सदस्यो ! (वः) तुम लोगों के (वाजाः) वेगवान् रथ आदि पदार्थ (अभिद्यवः) सब प्रकार से चमकने वाले और (घृताच्या) दीप्ति से युक्त, (हविष्मन्तः) ग्राह्य प्रकाश वाले, दिनों के समान वा कान्ति और स्नेह से सम्पन्न होकर गतिशील शक्ति से (हविष्मन्तः) ग्राह्य गुणों, वेगादि से पूर्ण हों और (सुम्नयुः) सुखका

अभिलाषी पुरुष उन द्वारा (देवान्) दानशील, व्यवहारयज्ञ, विद्वान् और प्रेम से चाहने वालों को (जिगाति) प्राप्त हो ।

ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।

श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ २ ॥

भा०—(गिरा) वाणी द्वारा ही (यज्ञस्य) ज्ञान मैत्री और सत्संग के (साधनम्) करने वाले (विपश्चितम्) उत्तम कर्मों के ज्ञाता विद्वान् (श्रुष्टीवानम्) शीघ्र उद्देश्य तक पहुंचने और पहुँचाने में समर्थ गुरूपदेशों के श्रोता (धितावानम्) सेवन और धारने योग्य ज्ञानादि पदार्थों को धारण करने वाले (अग्निम्) विद्वान् पुरुष की मैं (इळे) स्तुति करूं।

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः ।

अति द्वेषांसि तरेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे प्रभो ! (देवस्य) ज्ञानद्रष्टा, दाता और विजयेच्छुक (वाजिनः) बलवान् और ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् (ते) तेरे अधीन रहकर हम (यमं) नियम व्यवस्था, ब्रह्मचर्य पालन और राष्ट्र और देह का संयम करने में (शकेम) समर्थ हो सकें और (द्वेषांसि) द्वेष करने वाले शत्रुओं को (अति तरेम) विजय करें ।

समिध्यमानो अध्वरे३ग्निः पावक ईड्यः ।

शोचिष्केशस्तमीमहे ॥ ४ ॥

भा०—(अध्वरे समिध्यमानः) यज्ञ में प्रज्वलित होते हुए (अग्निः) अग्नि के समान (अध्वरे) प्रजापालन अध्यापन आदि कार्य में (समिध्यमानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (पावकः) अग्नि के समान ही सबके हृदयों को पवित्र करता हुआ (ईड्यः) स्तुति योग्य और सबके चाहने योग्य होता है। वही (शोचिष्केशः) दीप्तियुक्त किरणों को केशों के समान धारण करने वाले अग्नि के

समान तेजोमय किरणों से युक्त तेजस्वी होता है। (तम्) उससे ही हम (ईमहे) ज्ञानोपदेश और ऐश्वर्य की याचना करें।

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—(घृतनिर्णिक् स्वाहुतः अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्) उत्तम रीति से आहुति पाकर दीप्त अग्नि जैसे यज्ञ के चरु को ग्रहण करता है वैसे ही (पृथुपाजाः) विस्तृत ज्ञान और बलशाली (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से विलेप (घृतनिर्णिक्) स्नेहमयस्वरूप, (सु-आहुतः) उत्तम दान मानादि से पुरस्कृत होकर (अग्निः) ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (यज्ञस्य) परस्पर के सत्संग, मैत्रीभाव और दान आदि के योग्य, (हव्यवाट्) ग्राह्य पदार्थों और गुणों को धारण करने में समर्थ होता है। इति अष्टाविंशो वर्गः ॥

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः।
आ चक्रुरग्निमूतये ॥ ६ ॥

भा०—(सबाधः) दुर्व्यसनों और आक्रमणकारी भीतरी और बाहरी शत्रुओं को पीड़ित करने में समर्थ (यतस्रुचः) यज्ञ चमसों को हाथ में थामने वाले याज्ञिकों के समान अपने उत्तम साधनों, इन्द्रियों और अधीन जनों को नियम में रखने वाले। (यज्ञवन्तः) यज्ञ, दान, सत्संग, परस्पर मैत्री, व्यवस्था के स्वामी पुरुष (ऊतये) रक्षा और ज्ञान के लिये (अग्निम्) विद्वान्, अग्रणी पुरुष को (इत्था धिया) इस २ प्रकार की सत्य बुद्धि और कर्म द्वारा (आचक्रुः) अध्यक्ष रूप से नियत करें।

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया।
विदथानि प्रचोदयन् ॥ ७ ॥

भा०—(होता) दानशील (देवः) विजिगीषु राजा, नायक (विदथानि) ऐश्वर्यों को (प्रचोदयन्) देता हुआ (मायया) अपनी बुद्धि और आज्ञा के बल से (पुरस्तात् एति) सबके आगे चलता है।

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते ।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८ ॥

भा०—(यज्ञस्य साधनः वाजी यथा वाजेषु प्रणीयते) संग्राम करने का साधन जैसे अश्व नाम सेनाङ्ग संग्रामों में आगे २ बढ़ाया जाता है वैसे ही (अध्वरेषु) हिंसादि दोषों से रहित (वाजेषु) ज्ञानों और बलों के कार्यों में (यज्ञस्य) परस्पर सत्संग में विद्यादि की साधना करने वाला, (विप्रः) विविध विद्याओं से पूर्ण करने वाला पुरुष ही (प्रणीयते) प्रधान पद अग्रासन पर किया जाता है ।

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे ।
दक्षस्य पितरं तना ॥ ९ ॥

भा०—(वरेण्यः) वरण योग्य गुरु जन (तना धिया) अपनी विस्तृत बुद्धि और ज्ञान आधान करने वाली शिक्षा से (भूतानां) सभी प्राणियों को (गर्भम्) गर्भ के समान रक्षा करने वाले और (दक्षस्य) चतुर विद्यार्थी जन के (पितरं) पिता के तुल्य पालन करने वाले, सद्गुण स्थापनादि ग्रहणयोग्य शिक्षण (आदधे) प्रदान करे और (चक्रे) तदनुसार आचरण करे ।

नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत ।
अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे (सहस्कृत) बल द्वारा उत्पन्न अग्नि के समान बल से सम्पन्न, एवं प्रसिद्ध राजन्! (अग्ने) अग्रणी तेजस्विन्! विद्वन्! एवं नायक! (दक्षस्य इडा) दक्ष अर्थात् विद्योपार्जन और धनोपार्जन, सेनासञ्चालन में चतुर, एवं शत्रुपक्ष को भस्म करने वाले पुरुष की (इडा) वाणी, भूमिवासिनी प्रजा और सर्वोपरि इच्छा (वरेण्यम्) वरण योग्य (सुदीतिम्) उत्तम दीप्ति से युक्त, (उशिजम्) शिष्यों को हृदय से चाहने वाले, तेजस्वी (त्वा) तुझको (निदधे) स्थापित करूं । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

अ॒ग्निं य॒न्तुर॑म॒प्तुर॑मृ॒तस्य॒ योगे॑ व॒नुषः॑ ।
वि॒प्रा वाजैः॒ समि॑न्धते ॥ ११ ॥

भा०—(विप्राः) विविध विद्याओं से पूर्ण शिल्पीजन जैसे (वाजैः) वेगवान् साधनों और चलने वाले चक्र आदि से (यन्तुरम्) सबको नियम में रखने वाले (अप्तुरम्) जलों को शीघ्रता से चलाने या प्रेरित करने वाले अग्नि को (ऋतस्य योगे) जल के सहयोग में (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते और यन्त्रादि चलाते हैं वैसे ही (वनुषः) ऐश्वर्यों की अभिलाषा वाले (विप्राः) विद्वान् जन (ऋपस्य योगे) धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (यन्तुरम्) उत्तम नियन्ता (अप्तुरम्) आप्त प्रजाजन को, सन्मार्ग में चलने वाले (अग्निम्) अग्रणी नायक विद्वान् को (वाजैः) ऐश्वर्यों से प्रदीप्त करते हैं ।

ऊ॒र्जो नपा॑तमध्व॒रे दी॑दि॒वांस॒मुप॒ द्यवि॑ ।
अ॒ग्निमी॑ळे क॒विक्र॑तुम् ॥ १२ ॥

भा०—(ऊर्जः) पराक्रम और अन्न-समृद्धि से (नपातम्) प्रजा को च्युत न होने देने वाले, प्रत्युत बल-पराक्रमशील सैन्य को नियम प्रबन्ध में बांधने वाले (अध्वरे) शत्रुओं की सेना को नष्ट करने योग्य दृष्ट राज्यादि कार्यों में (उप-द्यवि) आकाश में सूर्य वा विद्युत् के समान राजसभा और उत्तम कोटि की जनसभा में (दीदिवांसम्) प्रकाशित होने वाले (कवि-क्रतुम्) क्रांतदर्शी विद्वानों की सी प्रज्ञा और कर्म से युक्त, (अग्निम्) ज्ञानी, तेजस्वी विद्वान् की मैं (ईडे) स्तुति करूं ।

ई॒ळेन्यो॑ नम॒स्य॑स्ति॒रस्तमां॑सि दर्श॒तः ।
सम॒ग्निरि॑ध्यते॒ वृषा॑ ॥ १३ ॥

भा०—जैसे (अग्निः) आग (तमांसि तिरः समिध्यते) अन्धकारों का नाश करके स्वयं प्रकाशित होता है वैसे ही (वृषा) बलवान् और राज्य प्रबन्ध में चतुर राजा और व्रत-बन्ध में चतुर विद्वान् (ईडेन्यः) स्तुति

योग्य, (नमस्यः) सबके द्वारा नमस्कार योग्य, (दर्शतः) सबके दर्शन करने योग्य हो और वह (तमांसि तिरः) सब प्रकार के शोक, दुःखों, शत्रुरूप तिमिरों और अज्ञानान्धकारों को दूर करता हुआ (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार ज्ञान और तेज से प्रकाशित होता है।

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४ ॥

भा०—(देववाहनः अश्वः न) जैसे विजय की कामना करने वाले राजा को अपने ऊपर रखने वाला अश्व वा अश्वसैन्य (वृषः) बलवान् एवं शत्रु पर शस्त्रास्त्र की वर्षा करता हुआ (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार उत्तेजित होता है। वैसे ही (देववाहनः) वीर विजयी सैनिकों को अपने साथ युद्ध में ले जाने हारा, (अग्निः) नायक (वृषः) शस्त्र वर्षी, प्रजा पर सुखों की वृष्टि करने वाला होकर (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है। (तं) उसको (हविष्मन्तः) बहुत से अन्न धनादि के स्वामी प्रजाजन (ईडते) स्तुति करते हैं।

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ १५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (वृषन्) प्रजा पर सुखों और शत्रु पर बाणों के वर्षक पुरुष ! हे (अग्ने) विद्वन् ! हे नायक (वयं) हम (वृषणः) बलवान् होकर (बृहत्) बड़े (त्वा वृषणं) तुझ बलवान् (दीद्यतं) तेजस्वी को ही (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[२८] विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री। २, ३ निचृद् गायत्री। ३ स्वराडुष्णिक्। ४ त्रिष्टुप्। ५ निचृज्जगती ॥ षडृचं सूक्तम्।

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः।
प्रातःसावे धियावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे (जातवेदः) उत्तम विज्ञान के प्राप्तकर्त्ता! हे (धियावसो) ज्ञान और उत्तम कर्म, व्रत, पालन करते हुए, शिष्यों को बसाने वाले आचार्य एवं आचार्य के अधीन बसने वाले शिष्य! (प्रातः-सावे) प्रातःकाल यज्ञकाल में जैसे (नः पुरोडाशं हविः) हमारे पुरोडाश को अग्नि अग्निहोत्र काल में लेता है वैसे ही तू भी (प्रातःसावे) प्रभात के तुल्य जीवन के प्रथम काल, ब्रह्मचर्य आश्रम में (नः) हमारे (हविः) ग्रहण करने योग्य अन्न के समान ही उपदेश योग्य (पुरोडाशम्) आगे बैठे शिष्य को देने योग्य ज्ञान को (जुषस्व) प्रेम से ग्रहण कर।

पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः।
तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥

भा०—हे (यविष्ठय) सब युवा जनों में श्रेष्ठ, सबसे अधिक बलवन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! जैसे (पुरोडाः पचतः परिष्कृतः) आगे रक्खा हुआ, परिपाक किया हुआ, सजा सजाया अन्न रक्खा हो, उसको भोक्ता पुरुष प्रेम से सेवन करता है वैसे ही (पुरोडाः) समक्ष स्थित होकर अपने को आत्म-समर्पण करने हारा विद्यार्थी (पचतः) अपने बुद्धि और देह एवं ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्यादि को परिपक्व करता हुआ (वा घ) निश्चय से (परि-ष्कृतः) सब प्रकार से तैयार होकर विराजता है। (तं) उसको (जुषस्व) प्रेम से रख।

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम्।
सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे वीर! जैसे अग्नि (आहुतं पुरोडाशम् तिरः अह्न्यम्) आहुति किये सायंकाल या सूर्यास्त काल के पुरोडाश को लेता है वैसे ही तू भी (तिरः-अह्न्यम्) दिन व्यतीत हो जाने पर (आहु-तम्) प्राप्त (पुरोडाशम्) आगे सत्कारपूर्वक दिये हुए अन्न को खा और ज्ञान को प्राप्त कर। इसी प्रकार हे आचार्य! तू तेरे समर्पित शिष्य को

सायंकाल होने पर भी (पुरोडाशम्) अपने सदा समक्ष रख कर, (वीहि) रक्षा कर, क्योंकि तू (सहसः सूनुः) ब्रह्मचर्य का उत्पादक, प्रेरक उपदेष्टा (असि) है। तुझे ही (अध्वरे हितः) उसके नाश न होने देने के निमित्त स्थापित एवं नियुक्त किया है।

माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्! हे (जातवेदः) विज्ञानवन्! तू (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न काल में होने वाले 'सवन' अर्थात् होमादि कर्म, बलिवैश्वदेव आदि के हो चुकने पर (इह) यहां गृह में पुरोडाश को अग्नि के समान ही (पुरोडाशम्) आदरपूर्वक आगे स्थापित अन्न आदि भोज्य द्रव्य को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (विदथेषु) विज्ञानों, संग्रामों, यज्ञों और प्राप्त होने वाले ऐश्वर्यों में से भी (तव यह्वस्य) तुझ महान् एवं शत्रु पर प्रयाण करने वाले राजा के समान विद्या मार्ग या देवयान ज्ञान मार्ग से जाने वाले का (भागधेयं न प्रमिनन्ति) भाग नष्ट नहीं करते। विद्वान् पुरुष निः-संकोच होकर मध्याह्न-सवन बलिवैश्व होम के अनन्तर अपना अंश प्रेमपूर्वक स्वीकार करें।

अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम्।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक! एवं बलवान् पुरुष के पुत्र एवं शिष्य! (अग्ने) विद्वन्! तू (आहुतम्) आहुति किये अन्न के समान ही आदरपूर्वक प्रदान किये हुए (पुरोडाशं) आगे रखे हुए अन्नादि पदार्थ को (तृतीये सवने हि) तृतीय, सवन-काल में भी (कानिषः) भली प्रकार चाह। (अथ) और (अमृतेषु) दीर्घायु (देवेषु) विद्या की कामना करने वाले शिष्य जनों में (विपन्यया) विविध प्रकार से उपदेश योग्य वाणी

द्वारा (रत्नवन्तम्) उत्तम ज्ञानयुक्त (जागृवि) जागरणशील सावधान शिष्य को (अध्वरम्) यज्ञ के समान कभी नष्ट न होने वाला वा अहिंसादि व्रतनिष्ठ बनाकर (धाः) धारण कर ।

अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः ।
जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥ ६ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानवन् ! (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! तू (वृधानः) बढ़ता हुआ, (आहुतिम्) आहुति को अग्नि के समान (पुरोडाशम्) अन्न को और समर्पित शिष्य को (तिरः-अह्न्यम्) अतीत दिनों में कुशल, योग्य शिष्य वा भृत्य को (जुषस्व) समीप रख । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[२९] विश्वामित्र ऋषिः ॥ १–४, ६–१६ अग्निः । ५ ऋत्विजोऽग्निर्वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । १०, १२ भुरिगनुष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । १३ स्वराट् पंक्तिः । ३, ५, ६ त्रिष्टुप् । ७–९, १६ निचृत् त्रिष्टुप् । ११, १४, १५ जगती । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥

भा०—(अधिमन्थनं प्रजननं विश्पत्नीम्) जैसे अग्नि को मन्थन द्वारा उत्पन्न करने के लिये 'अधिमन्थन' अर्थात् मन्थन दण्ड के ऊपर रखने का काष्ठ होता है वैसे ही (प्रजननं) मन्थन दण्ड के नीचे का काष्ठ 'प्रजनन' अर्थात् अग्नि-उत्पादक काष्ठ (कृतम्) बनाया जाता है । इसी प्रकार परमेश्वर ने ही (इदम्) यह पुरुष शरीर (अधिमन्थनम्) स्त्री के हृदय को मथन कर देने वाले भावों पर अधिकार करने वाला, (कृतम् अस्ति) बनाया है और (इदम्) यह विशेष अंग भी परमेश्वर ने ही (प्रजनने) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का साधन (कृतम्) बनाया है । हे मनुष्य तू (एताम्) उस, दूर देश में विद्यमान अथवा (आहृताम्)

स्वयं इच्छा पूर्वक प्राप्त (विश्पलीम्) गर्भ में प्रविष्ट सन्तानों को भली भांति पालन करने में समर्थ स्त्री को (आ भर) उत्तम रीति से प्राप्त कर। (पूर्वथा) हम लोग पूर्व पुरुषों के समान ही, जैसे (अग्निं मन्थाम) मथन, घर्षण द्वारा अग्नि या विद्युत् को उत्पन्न किया जाता है वैसे ही (अग्निम्) भविष्य में प्राप्त होने योग्य और अगले वंश के चलाने वाले पुत्र को (मन्थाम) 'मथन' अर्थात् एक दूसरे के हृदयादि को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करें।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ २ ॥

भा०—(गर्भिणीषु) गर्भिणी स्त्रियों में (गर्भः इव) जैसे गर्भ (सुधितः) अच्छी प्रकार धारण किया होता है और जैसे (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान व्यापक अग्नि (अरण्योः) अरणी नामक दो काष्ठों में गुप्त रूप से स्थित रहता है। वैसे ही (जातवेदाः) उत्पन्न वा प्रसिद्ध पदार्थों को जानने वाला विद्वान् (अरण्योः) अति उत्तम मार्ग में ले जाने वाले माता पिता, गुरुजनों के अधीन (निहितः) नियमपूर्वक रक्खा जाकर और (गर्भिणीषु) अपने भीतर उसको गर्भ के समान सुरक्षित रखने वाली माताओं के समान, विद्याओं, वा विद्वानों के बीच (सुधितः) सुखपूर्वक उपदिष्ट होकर (दिवे दिवे) दिन प्रतिदिन (जागृवद्भिः) जागरणशील, अति सावधान (हविष्मद्भिः मनुष्येभिः) अग्नि को जैसे हवि चरु वाले ऋत्विज् उपासते हैं वैसे ही (हविष्मद्भिः) ग्राह्य ज्ञानों वाले (मनुष्येभिः) मननशील पुरुषों द्वारा (ईड्यः) उपदेश करने योग्य है।

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष ! (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (उत्तानायाम्) उत्तान लेटी भूमिरूप स्त्री में (अव भर) वीर्य आधान कर। वह (प्रवीता)

उत्तम रीति से कान्तिमती पति से संगत होकर (सद्यः) शीघ्र ही (वृषणं) बलवान् पुत्र को (जजान) उत्पन्न करे। (अस्य पाजः) इस पुरुष का वीर्य ही (रुशत्) दीप्तियुक्त और (अरुषस्तूपः) उज्ज्वल स्तुति योग्य होकर (इडायाः वयुने) भूमिरूप माता के अन्तरङ्ग भाग में (पुत्रः) पुत्र रूप में (अजनिष्ट) प्रकट होता है।

इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (जातवेदः) विद्वन्! हे ऐश्वर्यवन्! (पृथिव्या नाभा अधि) पृथिवी अर्थात् अन्तरिक्ष के बीच में (हव्याय वोढवे) ग्रहण करने, चलाने के लिये जैसे महान् सूर्य वैसे ही (इळायाः पदे) भूमि के सर्वोच्च शासक पद और वाणी के उत्तम ज्ञान के निमित्त (पृथिव्या नाभा अधि) पृथिवी राज्य के केन्द्र में और विस्तृत नगर भूमि के बीच (त्वा) तुझको (हव्याय) कर और ऐश्वर्य के रूप में स्वीकारने योग्य राज्य को (वोढवे) वहन करने के लिये (त्वा निधीमहि) स्थापित करें।

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—(यज्ञस्य पुरस्तात् अग्निं यथा मन्थन्ति जनयन्ति च) जैसे यज्ञ के पूर्व याज्ञिक लोग अग्नि का मथन करते और उसको प्रकट कर लेते हैं वैसे ही हे (नरः) नायको! आप (कविम्) क्रान्तदर्शी (प्रचेतसम्) उत्तम ज्ञान वाले (अमृतम्) अविनाशी दीर्घायु (सुप्रतीकम्) उत्तम विश्वासपात्र और शुभ रूपवान् (अद्वयन्तं) दो प्रकार का रूप न प्रकट करने वाले, भीतर बाहर, मन और वाणी और कर्म में एक समान आचरण करने हारे निष्कपट को (मन्थत) मथ कर दूध में से मक्खन के समान और काठों में से अग्नि के समान, सामान्य प्रजागण में से श्रेष्ठ सारवान् पुरुष को खूब वादविवाद, विचार के बाद प्राप्त करो। हे (नरः)

श्रेष्ठ पुरुषो ! आप उसको ही (यज्ञस्य केतुम्) परस्पर के सुसंगत जन-समाज की ध्वजा के समान आदरणीय और मान ज्ञान का बतलाने वाला (प्रथमम्) सबसे मुख्य (सुशेवम्) सेवादि सुखों से युक्त (पुरस्तात्) सबके आगे २ (अग्निम्) मार्गदर्शक के समान (जनयत) बनाओ। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६

भा०—जैसे (बहुभिः मन्थन्ति) बाहुओं से रासें पकड़ कर अश्व को जब मथते, मथने के समान झटके लगाते हैं और तब (अश्वः न वाजी) वेगवान् अश्व जैसे (अरुषः) मर्म स्थानों पर ताड़ित होकर (विरोचते) विविध रूप में उछलता, कूदता, भागता है वैसे ही जब अग्नि को बाहुओं से मथते हैं तब भी (अश्वः) वह अग्नि (अरुपः) सब प्रकार चमकता हुआ (वाजी) वेगवान् होकर (वनेषु विरोचते) किरणों और काष्ठो में विशेष रूप से चमकता है वैसे ही (यदि) जब (बाहुभः) बाधित वा पीड़ित करने वाली सेनाओं से शत्रुओं को (सन्थन्ति) मथन या विनाश करते हैं तब (वाजी) संग्राम में कुशल पुरुष (वनेषु) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के निमित्त वा सैन्य दलों के बीच (अरुपः) तेजस्वी होकर (विरोचते) चमकता और सर्वप्रिय होता है। (अश्विनो यामन् चित्रः न) दिन रात्रि के प्रहरों में जैसे सूर्य (अनिवृतः) अबाधित होकर (तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति) घासों को ताप से झुलसाता हुआ तीव्र ताप से ही मेघों को सर्वत्र छादित करता है और जैसे (अश्विनोः चित्रः न) अश्व के स्वामी रथी और सारथी दोनों का चित्र गति से जाने वाला अश्व (यामन्) मार्ग में (अनिवृतः) अबाधित होकर (तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति) तुच्छ घासों को खाता हुआ भी शत्रु के हथियारों को चीर कर निकल जाता है और जैसे अग्नि (अश्विनोः यामन् चित्रः) दिन रात्रि के कालों में अद्भुत रूप होकर (तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति) तिनकों को

जलाता हुआ पत्थरों को तड़का देता है वैसे ही तेजस्वी पुरुष भी (अश्विनोः) अश्व सैन्य के स्वामी, स्वपक्ष और परपक्ष, दोनों के (यामन्) संयमन या वश करने में (चित्रः) अद्भुत कुशल होकर (अनिवृतः) किसी से भी बाधित न होकर (तृणा दहन्) तिनकों के समान तुच्छ वा हिंसाकारी शत्रु सैन्यों को अग्नि के समान भस्म करता हुआ (अश्मनः) आयुधों को (परि वृणक्ति) भिन्न भिन्न कर देता है ।

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥

भा०—(जातः अग्निः रोचते) उत्पन्न होकर अग्नि जैसे प्रकाशित होता है और (हव्यवाहम् अध्वरेषु अदधुः) चरु को ग्रहण करने में समर्थ प्रज्वलित अग्नि को यज्ञों में आधान करते हैं । वैसे ही (जातः) प्रकट होकर, (अग्निः) विनयशील ज्ञानी पुरुष (चेकितानः) अन्यों को ज्ञान देता और स्वयं ज्ञानवान् होता हुआ (वाजी) ऐश्वर्य और ज्ञान से सम्पन्न होकर, (विप्रः) मेधावी (कविशस्तः) क्रान्तदर्शी, विद्वानों द्वारा शिक्षित, (सुदानुः) ज्ञान और धन का दाता होकर (रोचते) सबको प्रिय लगता है । (देवासः) विद्वान् और उसकी कामना करने हारे मित्र राजा जन (यं) जिस (विश्वविदं) सर्ववेत्ता (ईड्यं) स्तुतियोग्य, पृथ्वी राज्य के योग्य (हव्यवाहम्) ऐश्वर्य के धारक पुरुष को (अध्वरेषु) यज्ञों और संग्रामों तथा अन्य उत्तम कार्यों पर (अदधुः) अध्यक्ष रूप से स्थापित करते हैं ।

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (होतः) सुख और ज्ञान के दाता विद्वन्! तू (स्वे लोके उ) अपने आत्मदर्शन में ही (सीद) प्रसन्न होकर विराजे । तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (यज्ञं) अपने आत्मा या स्वाध्यायादि यज्ञ कार्य को (सुकृतस्य) उत्तम धर्म कर्म के (योनौ) परम योनि अर्थात् कारण पर-

मेश्वर वा शास्त्र में (सादय) स्थापित कर। तू (देवावीः) देव अर्थात् ज्ञानों को देने वाले इन्द्रिय गण की रक्षा करता हुआ, जितेन्द्रिय होकर (देवान्) इन प्राणों को (हविषा) अन्न वा ज्ञानोपाय से (यजासि) वश कर। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तू (यजमाने) तेरे से संगति करने वाले, तुझे सब सुखों के दाता प्रभु में ही तू (बृहत् वयः) अपना जीवन (धाः) प्रदान कर।

कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥९॥

भा०—(येन) जिसके द्वारा (देवासः) विद्वान् वीर लोग (दस्यून्) प्रजा का नाश करने वाले दुष्ट शत्रुओं को (असहन्त) पराजित करते हैं (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के समान वीर पुरुष (पृतनाषाट्) शत्रु सेनाओं को पराजित करने हारा (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान् हो। ऐसे ही (धूमं) शत्रुओं को कंपा देने वाले (वृषणं) बलवान् पुरुष को (कृणोत) अपने में उत्पन्न करो और हे (सखायः) मित्रगण! आप लोग (अस्रे-धन्तः नाश को न प्राप्त होते हुए (वाजम्) संग्राम में (अच्छ इतन) अपने शत्रु पर जा चढ़ो।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (ते) तेरा (अयं) यह (योनिः) घर (ऋत्वियः) सब ऋतुओं के अनुकूल सुखदायी हो। (यतः) जिसमें प्रकट होकर तू (अरोचथाः) सबका प्रेमभाजन हो। हे विनीत शिष्य! (अयं) यह आचार्य या गुरुगृह ही (ते ऋत्वियः योनि) तेरे लिये सत्यज्ञान प्राप्त करने योग्य स्थान है (यतः जातः) जिसमें से तू विद्यासम्पन्न होकर (अरोचथाः) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से चमक। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तू यहां (तम्) उस परमेश्वर को (जानन्) जानता हुआ (आसीद)

उत्तमासन पर विराज (अथ) और (नः) हमारी (गिरः) उत्तम वेद-वाणियों की वृद्धि कर । इति त्रयोत्रिंशो वर्गः ॥

तनूनपांदुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि॥११॥

भा०—यह अग्नि (तनूनपात्) जिसका व्यापक रूप कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है इसलिये 'तनूनपात्' कहा जाता है । अथवा वह सब प्राणियों के भीतर प्राण रूप से रहकर देहों को गिरने नहीं देता इसलिये 'तनूनपात्' कहाता है । वही (गर्भः) सबके भीतर गर्भ में बालक के समान प्रसुप्तवत् रहने से 'गर्भ' कहाता है । वही (आसुरः) असुर अर्थात् प्रकाश से रहित वायु के आश्रय उत्पन्न होने से 'आसुर' कहाता है । वह ही (नराशंसः) बहुत से विद्वान् पुरुषों से शिष्यों के प्रति विद्युत् आदि रूप में उपदेश करने योग्य होने से 'नराशंस' हो जाता है । (यत्) जो (विजायते) इस प्रकार से नाना रूपों में प्रकट होता है और (यत्) जो (मातरि) अपने ही निर्माण करने या उत्पन्न करने वाले आकाश में (अमिमीत) विद्युत् रूप से शब्द करता है इसलिये वह (मातरिश्वा) 'मातरिश्वा' कहाता है और इस अग्नि के (सरीमणि) वेग से चलने पर (वातस्य सर्गः) वायु की उत्पत्ति (अभवत्) होती है । अथवा वह विद्युत् रूप अग्नि (आसुरः गर्भः) जब मेघ के गर्भ में विद्यमान रहता है तब वह (तनूनपात् उच्यते) व्यापक जलों को भी नीचे न गिरने देने से या जलों के बीच में स्वयं न गिरने से 'तनूनपात्' कहाता है । (यद्) जब वह (विजायते) विशेष दीप्ति से प्रकट होता है । (नराशंस भवति) मनुष्य भी उसका वर्णन करते हैं इसलिये वह 'नराशंस' कहाता है और (यत्) जब (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में श्वास के समान वेग से चलने वाला वायु (मातरि) अन्तरिक्ष में (अमिमीत) इस अग्नि-विद्युत् को उत्पन्न करता है तब (वातस्य सरीमणि) प्रबल वायु के चलने पर ही (सर्गः अभवत्) जल वृष्टि होती है ।

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥

भा०—(सुनिर्मथा) उत्तम मन्थन दण्ड से (निर्मथितः) मथा हुआ अग्नि उत्तम स्थान पर स्थापित होकर जैसे (सु-अध्वरा) उत्तम व्यवहारों में (देवान् करोति यजते च) उत्तम २ व्यवहारों को उत्पन्न करता और उत्तम फल भी देता है वैसे ही (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (सुनिर्मथा) उत्तम शास्त्रालोडन रूप तप से (निर्मथितः) विशेष रूप से मथित हो, सुतप्त होकर, या पूर्ण ज्ञान रूप सार प्राप्त करके (सुनिधाः) उत्तम स्थान पर नियुक्त किया जावे। हे (अग्ने) नायक और हे विद्वन्! तू (देवान्) विद्वान् अपने ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों को (सुअध्वरा) शोभन, विनष्ट न होने वाले स्थिर काय (कृणु) कर और उनमें अपने उत्तम गुण प्रकट कर। (देवयते) शुभ गुणों की कामना करने वाले को (यज) उत्तम गुण प्रदान कर।

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३॥

भा०—(मर्त्यासः) मनुष्य (अस्रेमाणम्) शत्रुओं द्वारा शोषण न किये जाने योग्य (तरणिं) संकटों से पार उतारने में समर्थ (वीडुजम्भम्) बलवान्, हिंसाकारी सैन्य बलों से युक्त, पुरुष को नायक (अजीजनन्) बनावें और (दस) दसों दिशाओं की प्रजाएं वा सेना (स्वसारः) स्व-अर्थात् धन का लक्ष्य करके वा, स्वयं उसके शरण आने वाली (अग्रुवः) आगे आकर (समीचीः) एक साथ उसका आदर करती हुई (जातम् पुमांसं) उत्पन्न हुए पुत्र को बहिनों के समान, प्रसिद्ध वा प्रकट हुए वीर पुरुष को (अभि सं रभन्ते) सब ओर से प्राप्त करें।

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥

भा०—(यत्) जैसे अग्नि (सप्तहोता) सातों प्राणों से सात ऋत्विजों के समान ग्रहण करने योग्य (सनकात्) अपने सनातन मूलकारण से उत्पन्न होकर (अरोचत) प्रकाशित होता है और जो (मातुः उपस्थे) अपने उत्पादक निमित्त भूत वायु के समीप और (ऊधनि) रात्रिकाल वा अन्तरिक्ष में (अशोचत्) चमकता है, और जो (मातुः) आकाश के बीच (ऊधनि) मेघ में विद्युत् रूप से चमकता है, (यत्) जो अग्नि (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सुरणा) उत्तम ध्वनि करता हुआ (न निमिषति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता और जो (असुरस्य) बलवान्, प्रभञ्जन वायु के (जठरात्) मध्य से (अजायत) प्रकट होता है वैसे ही (मातुः उपस्थे ऊधनि) माता की गोद में स्तनों पर पलते बालकवत्, माता-पृथिवी के ऊपर उत्तम ऐश्वर्य पद पर (अशोचत्) विशेष कान्ति से चमकता है और सातों प्राणोंवत् सात प्रकृतियों का वशकर्त्ता सर्वप्रिय होता है वह उत्तम रमणशाली होकर कभी (न निमिषति) सूर्यवत् अस्त नहीं होता।

अ॒मि॒त्रा॒यु॒धो॑ म॒रुता॑मिव प्र॒याः प्र॑थम॒जा ब्रह्म॑णो॒ विश्व॒मिद्वि॑दुः ।
द्यु॒म्नव॒द्ब्रह्म॑ कुशि॒कास॒ एरि॑र॒ एक॑एको॒ दमे॑ अ॒ग्निं समी॑धिरे ॥१५॥

भा०—(अमित्रायुधः) शत्रुओं पर अपने शस्त्रों का प्रहार करने में कुशल जो वीर पुरुष (मरुताम्) वायु के समान बलवान् व व्यापारियों के हितार्थ (प्रयाः) आगे बढ़ते हुए (प्रथमजाः) सर्वश्रेष्ठ पद पर स्थित, अग्रगण्य (ब्रह्मणः) बड़े भारी राष्ट्रैश्वर्य का (विश्वम्) सर्वस्व (इत्) ही (विदुः) प्राप्त कर लेते हैं वे (कुशिकासः) सर्वश्रेष्ठ, सन्धि से सुसम्बद्ध, व्यवहारकुशल पुरुष (द्युम्नवत्) उत्तम कीर्तियुक्त (ब्रह्म) ऐश्वर्य को (एरिरे) प्राप्त होते हैं और वे (एकः-एकः) एक एक करके भी (दमे) दमन कार्य में (अग्निम्) अपने अग्रणी नायक को ही (सम-ईधिरे) सब ल कर चमकाते हैं। वैसे ही विद्वान् अपने भीतरी द्वेष, क्रोधादि शत्रुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने हारे श्रेष्ठ, उत्तम पद की ओर जाने वाले (ब्रह्मणः इत् विदुः) परमेश्वर से ही समस्त विश्व को उत्पन्न हुआ जानते

हैं। वे (कुशिकासः) उत्तम ज्ञानोपदेष्टा होकर तेजोयुक्त (ब्रह्म) वेद-वचनों का (एरिरे) उच्चारण करते, उपदेश करते हैं। वे एक २ करके (दमे) अपने गृह में और (दमे = दमे) अति हर्ष या प्रसन्नता की दशा में (अग्निं) ज्ञानमय तेजोमय प्रभु को यज्ञाग्नि के समान ही प्रकाशित करते हैं।

यदुद्य त्वा प्रयति युज्ञे अुस्मिन्होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम्॥१६॥३४॥१.२

भा०—हे (होतः) साधनों और राष्ट्र को ग्रहण करने वाले! हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! (यत्) जिस कारण से हम लोग (इह) इस (यज्ञे प्रयति) और प्रयत्नशील, परस्पर संगतियुक्त समुदाय वा प्रयत्नसाध्य संग्राम आदि कार्य में (त्वा) तुझको (अवृणीमहि) श्रेष्ठ पद पर वरण करते हैं इसलिये तू (ध्रुवम्) स्थायी पद को (अयाः) प्राप्त कर। (उत) और (ध्रुवम्) इस स्थिर राष्ट्र को (अशमिष्ठाः) शान्त कर। तू (विद्वान्) स्वयं ज्ञानवान् विद्वान् होकर (प्रजानन्) सब कुछ अच्छी प्रकार जानता हुआ (सोमम्) ऐश्वर्य को (उपयाहि) प्राप्त कर। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

इति तृतीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः। इति तृतीये मण्डले द्वितीयोऽनुवाकः॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[३०] विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ६—११, १४, १७, २० निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ६, ८, १३, १६, २१, २२ त्रिष्टुप्। १२, १५ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ७, १६, १८ भुरिक् पंक्तिः॥ द्वाविंशत्यृच सूक्तम्।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! अज्ञानान्धकार विनाशक विद्वन्! शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने हारे वीर! वा परमेश्वर! (त्वा) तुझको

(सोम्यासः) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य दीक्षा प्राप्त शिष्य और ऐश्वर्य प्राप्ति के इच्छुक एवं पदों पर अभिषेक योग्य (सखायः) और तेरे समान ख्याति वाले जन (त्वा इच्छन्ति) तुझे चाहते हैं। वे (सोमं) ज्ञान और ऐश्वर्य का (सुन्वन्ति) सम्पादन करते हैं और (प्रयांसि दधति) उत्तम ज्ञानों, अन्नों और ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। वे (जनानाम्) मनुष्यों के बीच में रहते हुए उनकी हुई (अभिशस्ति) हिंसा, स्तुति, निन्दा सब कुछ (तितिक्षन्ते) सहन करते हैं। हे इन्द्र ! (त्वत्) तुझसे अधिक (प्रकेतः) उत्कृष्ट ज्ञान वाला (कश्चन हि) कौन है ? तुझसे बड़ा ज्ञानी दूसरा नहीं ।

न ते॑ दू॒रे प॑र॒मा चि॒द्रजां॒स्या तु प्र या॑हि हरिवो॒ हरि॑भ्याम् ।
स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒ने अ॒ग्नौ ॥२॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् ! (ते) तेरे लिये (परमा चित् रजांसि) दूर से दूर के लोक या प्रदेश भी (दूरे न) दूर नहीं है। तू (हरिभ्याम्) वेगवान् अश्वों से (आ प्र याहि = आयाहि, प्रयाहि) आ जा सकता है। (स्थिराय) स्थिर (वृष्णे) बलवान् मेघ के समान ऐश्वर्यादि के वृष्टि करने वाले तेरे लिये (इमा) ये नाना प्रकार के (सवना) ऐश्वर्य और अभिषेकादि कृत्य (कृता) किये जावें और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के समान तेजस्वी नायक के अच्छी प्रकार प्रदीप्त एवं तेजस्वी होने पर (ग्रावाणः) शत्रुओं को शिलापाटों के समान कुचल देने वाले वीर गण भी (युक्ताः) अधीन नियुक्त हों।

इन्द्रः॑ सुशि॒प्रो म॒घवा॒ तरु॑त्रो म॒हाव्रा॑तस्तुवि॒कूर्मि॒र्ऋघा॑वान् ।
यदु॒ग्रो धा बा॑धि॒तो मर्त्ये॑षु॒ क्व१॒॑ त्या ते॑ वृषभ वी॒र्या॑णि ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्य व शत्रुबलों के विदारक (सुशिप्रः) उत्तम शोभायुक्त नासिका और जबाड़ों वाला, वा उत्तम शोभा युक्त शिरस्त्राण, मुकुट आदि वाला, (तरुत्रः) दुःखों, शत्रु के आक्रमणों, युद्धों से पार

उतारने वाला, (महाव्रातः) बड़े सैन्य दलों का स्वामी, (तुविकूर्मि) बहुत से कर्मकर्त्ताओं का स्वामी, (ऋघावान्) शत्रु नाशक नाना शस्त्रों, शक्तियों और सेनाओं का स्वामी है। हे (वृषभ) शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजा पर ऐश्वर्य-सुखों की वर्षा करने हारे! तू (बाधितः) शत्रुओं से संग्रामों में, दुष्टों की करतूतों से लाचार होकर राष्ट्र में भी (मर्त्येषु) स्वपक्ष के मारने वाले शत्रुओं, साधारण मनुष्यों के बीच में भी (यत्) जिन २ नाना (वीर्याणि) बलों को (उग्रः) अति भयंकर तेजस्वी होकर (धाः) धारण करता है (त्या) वे विस्मयजनक नाना बल पराक्रम के कर्म (ते) तेरे (क्व) कहां हैं? यह सब सदा सावधान रहकर जांचता रह।

त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः॥ ४॥

भा०—जैसे विद्युत् (अच्युतानि च्यावयन् वृत्रा जिघ्नमानः चरति) न गिरने वाले जलों को नीचे गिराता है और मेघस्थ जलों को ताड़न करता हुआ विचरता है वैसे ही हे इन्द्र! शत्रुहन्तः! सेनापते! (त्वं हि) तू निश्चय से (एकः) अद्वितीय, (अच्युतानि) न क्षीण होने वाले, जम कर लड़ने वाले, बलवान् शत्रु-सैन्यों को (च्यावयन्) स्थानच्युत करता हुआ, भागता और गिराता हुआ (वृत्रा) मेघों को, वायु विद्युत् या सूर्यवत् बढ़ते हुए शत्रुगण को (जिघ्नमानः) हनन करता हुआ (चरसि) विचरता है। (तव) तेरे (अनुव्रताय) अनुकूल, नियमपूर्वक रहने के लिये (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के समान ऊपर नीचे विराजमान ज्ञानी अज्ञानी, पुरुष स्त्री, सेनावर्ग और नायकवर्ग और (पर्वतासः) पर्वतों के समान अचल और मेघों के समान शस्त्रवर्षी वीर और पोरु २ और टुकड़ी टुकड़ी से बने सैन्य-व्यूह सभी (निमिता इव) नियम में व्यवस्थित के सदृश (अनु तस्थुः) रहकर तेरे अधीन काम करें। परमेश्वर एक अद्वितीय होकर गतिरहित, जड़ पांचों भूतों या प्रकृति के परमाणुओं को चला रहा है।

वह (वृत्रा) वृद्धिशील महान् ब्रह्माण्डों या चक्रगति से विवर्त्तन करने वाले सूर्यादि लोक और नीहार-मण्डलों (Nebulae) को जिघ्नमानः) घनीभूत स्थूल सूर्य, पृथिवी ग्रह नक्षत्रादि में पिण्डित करता हुआ व्यापक होकर सब को चला रहा है। (द्यावापृथिवी पर्वतासः) सूर्य पृथिवी और पर्वत वा मेघ आदि पदार्थ भी (तव व्रताय) तेरे व्यवस्था पालन करने के लिये ही मानो (निमित्ता इव) बहुत नियमपूर्वक रचे जा कर (अनु तस्थुः) तेरी आज्ञानुसार सब काम करते हैं।

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन्।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥५॥१॥

भा०—हे सेनापते! राजन्! मेघ या विद्युत् जैसे (वृत्रहासन् श्रवोभिः दृढम् अवदः) मेघों में व्यापता और उनको बलपूर्वक आघात करता हुआ सुनाई देने वाली गर्जनाओं से प्रजा को अकाल से निर्भय रहने के निमित्त स्थिर रूप से बतला देता है वैसे ही तू भी ((वृत्रहा) विघ्नकारी शत्रुओं को विनाश करता हुआ, हे (पुरुहूत) बहुत सी प्रजाओं से संकटों में पुकारने जाने योग्य राजन्! वीर! (श्रवोभिः) श्रवण करने योग्य घोषणा वचनों से (अभये) प्रजा को अभय के निमित्त (दृढम्) दृढ़तापूर्वक (अवदः) कह दे। (इमे अपारे रोदसी) इन समीप आकाश और पृथिवी दोनों को जैसे सूर्य अच्छी प्रकार वश करता है, उसका ही (काशिः) प्रकाश सर्वत्र व्याप रहा है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे रोदसी) ये स्वपक्ष और परपक्ष की दोनों सेनाएं जो दुष्टों को रुलाने और एक दूसरे को बढ़ने से रोकने में समर्थ हैं वे दोनों (अपारे) पापरहित, असीम विस्तृत वा उत्तम पालक, पुरुष से रहित हैं। उन दोनों को (यत्) जब तू (संगृभ्णाः) अच्छी प्रकार से वश कर लेता है तो वे हे (मघवन्) पूज्य पद के स्वामिन्! (ते इत्) तेरा ही यह (काशिः) प्रबल, न्यायप्रकाश वा तेज, पराक्रम वा प्रबल हाथ वा मुष्टि अर्थात् प्रहार साधन, बल और शासन है। इति प्रथमो वर्गः॥

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्विन्! (ते वज्रः) तेरा वेगवान् रथ (हरिभ्यां) वेगवान् दो अश्वों से युक्त होकर (प्रवता) प्रबल वेग और उत्तम मार्ग से (प्र सु एति) अति उत्तम रूप से आगे बढ़े और (ते वज्रः) तेरा खड्ग, अस्त्र बल भी (शत्रून् प्रमृणन्) शत्रुओं को अच्छी प्रकार नाश करता हुआ (प्र एतु) आगे बढ़े। तू (प्रतीचः) प्रतिकूल दिशा से आने वाले शत्रुओं और (अनूचः) कपट वृत्ति से अनुकूल वा पीछे से आक्रमण करने वाले और (पराचः) दूर गये, दूर के शत्रुओं को भी (प्रजहि) आगे बढ़कर मार और तू (विश्वं) सब (सत्यं) यथार्थ बात को (प्र सु कृणु) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर और यह सत्य (विष्टम् अस्तु) सर्वत्र राष्ट्र में फैले।

यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं१ सः।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मै) जिस पुरुष को हे ऐश्वर्यवन्! तू (धायुः) धारक पोषक होकर (अदधाः) धारण पोषण करता व विद्या ज्ञान आदि प्रदान करता है (सः) वह पुरुष (अभक्तं चित्) विभाग करने के अयोग्य विद्या आदि के समान या (अभक्तं) पूर्व कभी न सेवित अपूर्व धन के तुल्य श्रेष्ठ, (गेह्यं) गृहोपयोगी धन को (भजते) प्राप्त करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति योग्य (ते सुमतिः) तेरी शुभ मति, ज्ञान (भद्रा) सब का कल्याण करने वाली, (घृताची) प्रकाश और स्नेह से युक्त है। (ते रातिः) तेरा दान भी (सहस्रदाना) सहस्रों को देने वाला है।

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम्।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८ ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुतियोग्य ! (सहदानुम्) जल सहित (क्षुणारुम्) गर्जनशील मेघ को जैसे वायु, विद्युत् वा सूर्य अपने तेज से और वेग से छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही तू भी (सहदानुं) सैन्य को मार गिराने वाली शस्त्र बल से सहित (क्षियन्तम्) प्रजा या राष्ट्र में बसने वाले (क्षुणारुम्) अहंकार से गर्जते हुए, शत्रु या दुष्ट पुरुष को (अहस्तम्) हस्त या हनन साधनों शस्त्रों अस्त्रों से रहित करके (संपिणक्) अच्छी प्रकार कुचल डाला और जैसे सूर्य या विद्युत् (पियारुम् वर्धमानं वृत्रं अपादं तवसा जघन्थ) पान किये जाने योग्य, बढ़े हुए, बहुत अधिक जल को वेग से आघात करके नीचे गिरा देता है वैसे ही (अभिवर्धमानं) मुकाबले पर बढ़ने वाले (वृत्रं) अतएव वृद्धिशील (पियारुं) हिंसाशील शत्रु को (अपादम्) गमन करने के साधन चरण रथादि रहित, निराश्रय करके (तवसा) बलपूर्वक (जघन्थ) नाश कर, दण्डित कर ।

नि सा॒म॒नामि॑षि॒रामि॑न्द्र॒ भूमि॑ म॒हीम॑पा॒रां सद॑ने ससत्थ ।
अस्त॑भ्नाद् द्यां वृ॑ष॒भो अ॒न्तरि॑क्ष॒मर्ष॒न्त्वाप॒स्त्वये॒ह प्रसू॑ताः ॥ ९ ॥

भा०—(वृषभः) वृष्टि करने हारा सूर्य जैसे (द्याम् अस्तभ्नात्) आकाशस्थ जलों को धारण करता है और वही स्वयं (सदने) अपने स्थान पर (नि ससत्थ) नियम से स्थिर रहता है और (अपारम् महीम्) पालकरहित बड़ी भारी (सामनाम्) एक समान गति से जाने वाली, (इषिराम्) अन्न से पूर्ण (भूमिं) भूमि को और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष को भी (अस्तभ्नात्) धारण करता है और जैसे उसी से (प्रसूता) प्रेरित (आपः) जल अन्तरिक्ष और भूमि को (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे ही (वृषभः) शस्त्रवर्षी वीरपुरुष (सदने) अपने आश्रय पर (नि ससत्थ) स्थिर होकर विराजे और पहले (सामनाम्) साम-वचनों से युक्त (इषिराम्) पति के प्रति स्त्री के समान अपने प्रति अनुराग इच्छा से युक्त (महीम्) बड़ी पूज्य (अपाराम्) असीम, अपार वा रक्षक पालक-

व पूरक पुरुष से रहित (भूमिम्) सब अन्नादि ऐश्वर्यों की उत्पादक भूमि को और (अन्तरिक्षम्) भीतर से स्थित जन समुदाय को और (द्याम्) ज्ञान प्रकाश से युक्त जनता वा विद्वत्सभा को भी (अस्तभ्नात्) वश करे। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! राजन् (त्वया प्रसूताः) तेरे द्वारा शासित (आपः) प्राप्त प्रजाएं (अर्पन्तु) तुझे प्राप्त हों।

अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः॥१०॥२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अलातृणः) बहुत अधिक शत्रुओं पर प्रहार करने में समर्थ, (वलः) शत्रु नगरों को घेरने में समर्थ पुरुष जो (गोः व्रजः) गौ के आश्रयभूत बाड़े के समान (गोः) पृथिवी का (व्रजः) एकमात्र आश्रय हो वह (पुरा) सबसे प्रथम (हन्तोः) प्रतिपक्ष के आघात से (भयमानः) भय करता हुआ (वि आर) विविध प्रकार की चालें चले और (निरजे) अपने शत्रु को सर्वथा उखाड़ देने और अपने आप बच निकलने के लिये मार्गों को (सुगाम्) उत्तम सुखपूर्वक गमन करने योग्य (अकृणोत्) बनावे और (पुरुहूतं) बहुतों से प्रशंसित वा विपत्ति-काल में पुकारने योग्य उत्तम नायक को (धमन्तीः) उत्तेजित करने वाली (वाणीः) वाणियों को (प्र अवन्) अच्छी प्रकार सुरक्षित रक्खे और उसको (धमन्तीः) पुकारने वाली (गाः) भूमि निवासिनी प्रजाओं को भी (प्रावन्) अच्छी प्रकार रक्षा करे। इति द्वितीयो वर्गः॥

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम्।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान्॥११॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुओं के नाशक, विद्वान् पुरुष (पृथिवीम् उत द्याम्) आकाश और पृथिवी को सूर्य के समान (द्याम् उत पृथिवीम्) ज्ञानवान् प्रजाओं और सामान्य भूमिवासी प्रजाओं (द्वे) दोनों को (एकः) अकेला हो (समीची) परस्पर एक दूसरे से संगत और (वसु-

मती) ऐश्वर्यों तथा बसने वाले प्रजा और अध्यक्षगणों से युक्त करके (आ पप्रौ) सब प्रकार से पालता और पूर्ण, समृद्ध करता है वह (उत अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के बीच से भी प्रजा को पुष्ट करता है। वैसे ही हे (शूर) वीर पुरुष! तू (नः समीके) हमारे समीप रहता हुआ (रथीः) महारथी होकर (नः) हमारी (इषः) इच्छाओं और सेनाओं और (सयुजः) सहोद्योगी कार्यकर्त्ताओं और (वाजान्) वेगवान् अश्वों, ऐश्वर्यों को (अभि आ पूरय) सब प्रकार पूर्ण कर।

दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥ १२ ॥

भा०—(यत् = यः) जो (सूर्यः न) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (दिवे दिवे) प्रति दिन (हर्यश्वप्रसूताः) वेगवान् सैन्यों के नाम से प्रशंसित (प्रदिष्टाः) उत्तम रीति से आज्ञावशवर्त्ती (दिशः) दिशाओं में रहने वाली प्रजाओं या शत्रु सेनाओं को (मिनाति) वश करता या उखाड़ फेंकता है वह (अध्वनः) सब मार्गों और प्रदेशों को (अश्वैः) वेगवान् अश्वों और शीघ्र गमन करने वाले साधनों के द्वारा वश करे और (तत् आत् इत्) उसके अनन्तर ही वह (अस्य) उस राष्ट्र अर्थात् उत्तम अध्यक्षों से शासित सैन्यों से दूर २ के राष्ट्रों को पहले तेजस्वी होकर वश करे।

दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम्।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥

भा०—(विवस्वत्याः उषसः यामन् अक्तोः महि चित्रम् अनीकं दिदृक्षन्त) जैसे सूर्य की उत्तम प्रभा के प्रकट होने पर 'अक्तु' अर्थात् उसके प्रकाश व सूर्य का अद्भुत उत्तम मुख लोग देखना चाहा करते हैं और (इन्द्रस्य पुरूणि सुकृता कर्म जानन्ति) सूर्य के बहुत से उत्तम २ कर्मों को जाना करते हैं उसी प्रकार (उषसः) शत्रुओं को सन्तप्त करने वाली (विवस्वत्याः) ऐश्वर्यों और प्रजाजनों से बनी सेना के (यामन्) प्रयाण-

काल में लोग (अक्तोः) उसके संचालक सेनापति के (महि) महान् (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) सैन्यबल को (दिदृक्षन्ते) देखना चाहते हैं (यत्) जब वह (महिना) बड़े भारी सैन्य या महान् सामर्थ्य से (आगात्) आता है तब (इन्द्रस्य) उस शत्रुहन्ता के (पुरूणि) नाना (सुकृता) उत्तम रीति से किये (कर्म) कर्मों को (विश्वे) सभी लोग (जानन्ति) जान लेते हैं।

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय १४

भा०—(वक्षणासु) जगत् को धारण करने वाली दिशाओं में यह सूर्य (महि ज्योति निहितम्) बड़ा भारी प्रकाश, सूर्य रूप स्थापित है और (आमा) सहचरी (गौः) पृथिवी (पक्वं बिभ्रती) परिपक्व अन्न या स्वरूप को धारण करती हुई (चरति) विचरती है। (उस्रियायाम्) गौ के समान अन्नों को उत्पन्न करने वाली भूमि में (इन्द्रः) जल देने वाला मेघ वा (सीम्) सूर्य (यत्) जो कुछ भी सर्व प्रकार के (भोजनाय) प्राणियों के भोजन करने और उनकी रक्षा करने के लिये (अदधात्) धारण कराता है इसलिये उस पृथिवी में (विश्वं) सब प्रकार का (स्वाद्म) उत्तम स्वादयुक्त वा उत्तम खाद्य अन्न आदि पदार्थ (संभृतम्) अच्छी प्रकार स्थित और पुष्ट होता है।

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते! (यज्ञाय) संग्राम के लिये वीर पुरुष (यामकोशाः) लम्बे २ खड्ग वाले (अभूवन्) हों। तू (सखिभ्यः) मित्र-वर्ग और (गृणते) स्तुतिशील प्रजावर्ग को (शिक्ष) ज्ञान प्रदान कर, उनको वेतन और युद्ध की शिक्षा दे और (दृह्य) उनसे अपने को दृढ़ कर। क्योंकि (दुर्मायवः) दुःखदायी शब्द करने वाले (मर्त्यासः) मरने

वा मारने वाले (निषङ्गिणः) खड्ग वा तरकसों वाले (रिपवः) शत्रुगण (हन्त्वासः) मारने योग्य हैं (दुरेवाः) बड़े बलवान् हैं। इति तृतीयो वर्गः॥

सं घोषः शृण्वेऽवमैर॒मित्रै॑र्ज॒ही न्ये॑ष्व॒शनिं॒ तपि॑ष्ठाम् ।
वृ॒श्चेम॑ध॒स्ताद्वि रु॑जा॒ सह॑स्व ज॒हि रक्षो॑ मघवन् र॒न्धय॑स्व ॥१६॥

भा०—हे (मघवन्) सेनापते ! (अवमैः) अधम, (अमित्रैः) स्नेह न करने वाले शत्रुजनों द्वारा तेरा (घोषः) गर्जन, तेरे अस्त्रों का गर्जन (शृण्वे) सुना जाय और (एष) उन पर तू (तपिष्ठाम्) सन्तापदायक, अग्नि से खूब प्रज्वलित, (अशनिं) अशनि नामक विद्युत्वत् अस्त्र, तोप (विजहि) चलाकर शत्रु का नाश कर। (ईम्) इन शत्रुओं को सब तरफ से (वृश्च) शस्त्रों से काट, (विरुज) पीड़ित कर और उनको तोड़, (सहस्व) पराजित कर। (रक्षः) सत्कार्यों के करने से रोकने वाले बलवान् विघ्नकारियों को (जहि) मार (रन्धयस्व) विनष्ट कर।

उद्वृ॑ह॒ रक्षः॑ स॒हमू॑लमिन्द्र वृ॒श्चा मध्यं॒ प्रत्यग्रं॑ शृणीहि ।
आ कीव॑तः सल॒लूकं॑ चकर्थ ब्रह्म॒द्विषे॒ तपु॑षिं हे॒तिम॑स्य ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र उद्वृह) तू स्वयं उन्नत होकर बढ़, शत्रुहनन करने हारे ! सेनापते ! तू (रक्षः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष को (सह-मूलम्) मूल-सहित (वृश्च) काट डाल और (मध्यं) उसके बीच के भाग के (प्रत्यग्रं) आगे बढ़े हुए अगले भाग को भी (प्रति शृणीहि) एक २ करके नष्ट कर। (आकीवतः) कितने भी दूर पर विद्यमान (सललूकं) भागते हुए, अति लोभी व पापी पुरुष को (चकर्थ) मार और (ब्रह्मद्विषे) धन के कारण हमसे द्वेष करने वाले, वा वेद वा वेदज्ञ के द्वेषी पुरुष के विनाश के लिये (तपुषिम् हेतिम्) तापदायी, ज्वलनशील आग्नेय अस्त्र (अस्य) फेंक।

स्व॒स्तये॑ वा॒जिभि॑श्च प्रणेतः॒ सं यन्म॒हीरिष॑ आ॒सत्सि॑ पू॒र्वीः ।
रा॒यो व॒न्तारो॑ बृह॒तः स्या॑मा॒स्मे अ॑स्तु॒ भग॑ इन्द्र प्र॒जावा॑न् ॥१८॥

भा०—(हे प्रणेतः) उत्तम नेता, सेनापते ! तू (वाजिभिः) संग्राम करने में कुशल वीर पुरुषों, अश्वों और ज्ञानवान् पुरुषों सहित (यत्) जब (पूर्वीः) वंशपरम्परा से प्राप्त या सूर्य से शिक्षित (महीः) बड़ी २ (इषः) सेनाओं पर (स्वस्तये) प्रजा वा राष्ट्र के कल्याण के लिये (आ सत्सि) अध्यक्ष रूप से विराजे तब हम (बृहतः) बड़े २ (रायः) ऐश्वर्यों के (वन्तारः) विभाग करवाने वाले (स्याम) हों। (अस्मे) हमें हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (प्रजावान् भगः) उत्तम प्रजायुक्त ऐश्वर्य (अस्तु) प्राप्त हो।

आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके।
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (द्युमन्तं) तेज से युक्त, प्रकाशयुक्त, चमकीला (भगम्) स्वर्ण मुक्ता आदि ऐश्वर्य (आभर) प्राप्त करा। (प्ररेके) बड़े भारी संशय-पूर्ण संकटकाल में भी हम (ते) तुझ (देष्णस्य) दानशील पुरुष की ही (धीमहि) याद करें। (अस्मे कामः) हमारी इच्छा, धनादि की अभिलाषा (ऊर्वः) अग्नि के समान (प्रपथे) बढ़ा ही करती है। हे (वसूनां वसुपते) समस्त बसे हुए प्रजाजनों के बीच सब ऐश्वर्यों के, प्रजाओं के पालक ! तू हमारे (तत् आपृण) उस अभिलाषा को पूर्ण कर।

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (गोभिः) गौओं और (अश्वैः) अश्वों और (चन्द्रवता) सुवर्ण से युक्त (राधसा) कार्यसाधक धन से हमारे (इमं कामं) इस अभिलाषा या अभिलाषायुक्त आत्मा को (मन्दय) तृप्त कर, और (पप्रथः च) बढ़ा। (स्वर्यवः) सुख की कामनावाले (विप्राः) बुद्धिमान् (वाहः) कार्यों को अपने ऊपर लेने हारे (कुशिकासः) उत्तम वचन स्तुति बोलनेहारे कुशल पुरुष (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (कामं अक्रन्) अभिलाषा करते हैं।

आ नो॑ गो॒त्रा द॑र्दृहि गोपते॒ गाः सम॒स्मभ्यं॑ स॒नयो॑ यन्तु॒ वाजाः॑ । दि॒वक्षा॑ असि वृषभ स॒त्यशु॑ष्मो॒ऽस्मभ्यं॒ सु म॑घवन्बोधि गो॒दाः ॥ २१ ॥

भा०—हे (गोपते) पृथ्वीपालक ! राजन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमारे (गोत्रा) कुलों को (आदर्दृहि) आदरयुक्त कर, बढ़ा और (गाः आदर्दृहि) गौवों को प्रदान कर। (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वाजाः) वेगवान् अश्वादि और संग्राम और ऐश्वर्य भी (सनयः) सुखप्रद, भोग योग्य होकर (संयन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त हों। हे (वृषभ) बलवन् ! तू (दिवक्षाः) सूर्य के समान विज्ञान, प्रकाश आदि में व्यापक और (सत्यशुष्मः) सत्य और न्याय के बल और सच्चा बलवान् (असि) है। तू (गोदाः) वाणी आदि का दाता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मभ्यं) हमारे लाभ के लिये भी (सु बोधि) उत्तम ज्ञान कर और करा।

शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ । शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ सं॒जितं॒ धना॑नाम् ॥२२॥४॥

भा०—हम लोग (शुनं) उत्साही, शीघ्र कार्य करने वाले (मघवानम्) ऐश्वर्य के स्वामी, (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता, (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) ऐश्वर्य के दाता (भरे) संग्राम में (नृतमं) श्रेष्ठ नायक (उग्रम्) शत्रुओं को भयप्रद, (समत्सु) संग्रामों में (ऊतये) रक्षा के लिये (शृण्वन्तं) प्रजाओं की पुकार सुनने वाले और (वृत्राणि) बढ़े हुए शत्रुओं को (घ्नन्तं) विनष्ट करते हुए और (धनानाम् सञ्जितम्) धनों का विजय करने वाले पुरुष को (हुवेम) 'इन्द्र' इस आदरणीय पद से (हुवेम) बुलावें।

[३१] विश्वामित्र कुशिक एव वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट् पंक्तिः । ३, ६ भुरिक् पंक्तिः । २, ५, ६, १५, १७—२० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १०, १२, २१, २२ त्रिष्टुप् । ११, १३ स्वराट् त्रिष्टुप् । द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १ ॥

भा०—(वह्निः) कन्या को विवाह करने वाला पुरुष (दुहितुः) कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए (नप्त्यं) नाती को (गात्) प्राप्त होता है इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (ऋतस्य) धर्मशास्त्र या सत्य को (दीधितिं) धारण करने वाली व्यवस्था का (सपर्यन्) आदर करता हुआ (शासत्) ऐसा अनुशासन या व्यवस्था करे (यत्र) जिसमें (दुहितुः) कन्या का (पिता) पालक (सेकम्) सेचन से प्राप्य पुत्र को (ऋजन्) प्राप्त करता हुआ (शग्म्येन) सुखी (मनसा) चित्त से (सं दधन्वे) मान ले और कन्या का सम्बन्ध योग्य पुरुष से कर दे। कन्या का पिता जिसके पुत्र नहीं है, इस चिन्ता में रहता है कि कन्या का विवाह कर देने पर कन्या से उत्पन्न सन्तान को तो कन्या के साथ विवाहित पुरुष ले लेगा। तब वह 'ऋत' अर्थात् सत्य कानूनी व्यवस्थापक न्यायाधीश से व्यवस्था मांगे। तब जज (शासत्) ऐसी व्यवस्था दे जिससे कन्या का पिता कन्या से उत्पन्न (सेक) पुत्र को प्राप्त कर सके और सुखी चित्त से (सं दधन्वे) कन्या का सम्बन्ध दूसरे कुल से कर दे। वह यही व्यवस्था है कि अपुत्र पिता का नाती ही कन्या के पिता का वंशकर हो, वह नाना की जायदाद का ही हकदार हो। देखो मनु का पुत्र-पुत्रिका विधान (मनु अ० ९ । १२७ ॥)

न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥

भा०—(तान्वः) देह से उत्पन्न हुआ पुत्र (जामये) अन्यों के लिये पुत्र उत्पन्न करने वाली भगिनी को (रिक्थं) पिता का धन (न अरिक्) नहीं दे। प्रत्युत वह उसको (सनितुः) उसके भोक्ता, पाणिग्रहीता, पति के लिये (गर्भं निधानं चकार) गर्भ धारण करने योग्य (चकार) बनावे।

(यदि) यद्यपि (मातरः) माता पिता लोग (वह्निम् जनयन्त) पुत्र पुत्री दोनों को ही पुत्र या सन्तान रूप से उत्पन्न करते हैं तो भी उन दोनों में से (अन्यः) एक पुत्र ही (सुकृतोः) पिता के लिये सुखकारी पोषणादि का करने हारा होता है और (अन्यः) दूसरी कन्या (ऋन्धन्) केवल सु-सम्पन्न, सुभूषित होकर दूसरे को दे दी जाती है ।

अ॒ग्निर्ज॑ज्ञे जु॒ह्वा॒३ रेज॑मानो म॒हस्पु॒त्राँ अ॑रु॒षस्य॑ प्र॒यक्षे॑ ।
म॒हान्गर्भो॒ मह्या जा॒तमे॑षां म॒ही प्र॒वृद्धर्य॑श्वस्य य॒ज्ञैः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (जुह्वा) 'जुहू' ज्वाला से (रेजमानः) चमकता हुआ (अग्निः) अग्नि (जज्ञे) उत्पन्न होता है और वह (अरुणस्य) देदीप्यमान सूर्य के समान अपने (महः पुत्रान्) बड़े २ किरणों को (प्रयक्षे) उत्तम रीति से प्रसारित करता है । वह अग्नि ही (एषां महान् गर्भः) इन सब किरणों का बड़ा भारी धारक होता है और (एषां महि आजातम्) उनका बहुत बड़ा स्वरूप होता है, (हर्यश्वस्य) पीत किरणों से युक्त सूर्य की किरणें मिलने से उनकी (प्रवृत्) चेष्टा या प्रवृत्ति भी बहुत बड़ी होती है । वैसे ही (जुह्वा) वाणी के बल से (रेजमानः) आगे बढ़ता हुआ (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (जज्ञे) प्रकट होता है और वह (अरुषस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (महः पुत्रान्) बड़े २ पुत्रों को (प्रयक्षे) उत्तम पद पर पहुंचने, उत्तम रीति से सत्सङ्ग करने के लिये उत्पन्न करता है । उन पुत्र रूप शिष्यों का गुरु के अधीन रहना यह विद्वान् आचार्य का (महाम् गर्भः) बड़ा भारी गर्भ के समान विद्यागर्भ है जिसमें वह शिष्यों को धारण करता है । (एषाम् आजातम् महि) इनका इस प्रकार वेद ज्ञान में उत्पन्न होना भी बड़ा आदरयोग्य महत्वपूर्ण होता है और (हर्यश्वस्य) आकर्षणशील आत्मवान् महान् गुरु के (यज्ञैः) दिये विद्या दानों और सत्संगों से (एषां) इन शिष्यों की (प्रवृत्) चेष्टा भी (मही) बड़ी, उत्तम हो जाती है ।

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥

भा०—(स्पृधानं) शत्रु के साथ मुकाबला करने वाले वीर को प्राप्त कर (जैत्रीः) विजय करने वाली सेना और प्रजाएं (असचन्त) संघ बनाती हैं और उसको वे (तमसः) अन्धकार में मार्ग दिखाने वाली (महि ज्योतिः) बड़ी ज्योति, अन्धकार रात्रि से निकले सूर्य के समान ही (निर्-अजानन्) जानती हैं। (उषासः) प्रभात वेलाएं जैसे सूर्य का आश्रय लेकर ही ऊपर आती हैं वैसे ही (उषासः) शत्रुतापकारी सेनाएं, (उषासः) कमनीय वा उदयशील, प्रजाएं (जानतीः) जानती बूझती हुई (तं प्रति) उसको आश्रय करके (उत् आयन्) ऊपर उठती हैं। वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (गवाम् एकः पतिः अभवत्) भूमियों का अद्वितीय पालक होता है।

वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः ।
विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५॥५॥

भा०—(धीराः) विद्वान् जन (वीळौ) बल प्राप्त हो जाने पर (सतीः सप्त) बलवती सातों वृत्तियों या प्रकृतियों को (अतृन्दन्) मारते, उन पर वश करते हैं। (विप्राः) बुद्धिमान् उन (सप्त) सातों को (प्राचा) उत्तम पद की ओर जाने वाले (मनसा) मननशील चित्त, वा ज्ञान से (अहिन्वन्) उनको बढ़ाते, पुष्ट करते हैं और वे (विश्वाम्) समस्त (ऋतस्य पन्थाम्) सत्य का मार्ग (अविन्दन्) जान लेते हैं। (प्रजानन् इत्) ज्ञानवान् पुरुष ही (ताः) उन सातों को (नमसा) गुरुभक्ति, परमेश्वरोपासना और उत्तम आहार द्वारा (आ विवेश) उनमें प्रविष्ट होकर उनको दमन करता है। (२) राष्ट्र पक्ष में—स्वामी, अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और बल इन सातों प्रकृतियों को (धीराः = अधि ईराः) अध्यक्ष लोग वश करें। अपने (मनसा) वश करने वाले बल से उनको बढ़ावें, जो (ऋतस्य) सत्य न्याय के सब हित मार्ग को जानें।

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (यदि) जब (सरमा) वेग से ध्वनि करने वाली (विद्युत्) (अद्रेः) मेघ का (रुग्णम्) भंग (विदत्) कर देती है। तब वह (सध्र्यक्) साथ में ही विद्यमान (पूर्व्यं) पूर्व से सञ्चित (महि पाथः) बड़े भारी जलराशि को (कः) उत्पन्न करती है। वह (सुपदी) उत्तम वेग से जाने वाली विद्युत् (अक्षराणां) नीचे न गिरने वाले मेघस्थ जलों के (अग्रं) अग्र भाग में स्थित अंश को (नयत्) नीचे ले जाती है (प्रथमा) वह सबसे प्रथम या व्यापक होकर भी (अच्छा) खूब (रवं जानती गात्) ध्वनि करती हुई प्रकट होती है। वैसे ही (सरमा) वेग से जाने वाले वीर पुरुषों की बनी सेना (यदि अद्रेः रुग्णम् विदत्) जब अपने दीर्ण होने वाले प्रबल नायक का भङ्ग हुआ ज्ञान ले तो वह (पूर्व्यं) पूर्व के लोगों से किये (सध्र्यक्) साथ में विद्यमान (महि पाथः) बड़े भारी बल को (कः) उत्पन्न करे। वह (सुपदी) उत्तम पदों, संकेतों से युक्त होकर (अक्षराणां) अपने में से 'अक्षर', अविनाशी, शत्रु भय से न भागने वाले पुरुषों के (अग्रं) मुख्य भाग को (नयत्) आगे बढ़ावे और वह (प्रथमा) स्वयं श्रेष्ठ (रवं जानती) उनके संकेत ध्वनि को चाहती हुई (अच्छ गात्) आगे बढ़े।

अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥

भा०—(विप्रतमः) सबसे अधिक विद्वान् पुरुष (सखीयन्) सबको मित्र बनाने की इच्छा करता हुआ (अगच्छत्) प्राप्त होता है और (अद्रिः गर्भम्) जैसे मेघ अपने गर्भ में स्थित जल को (सुकृते असूदयत्) शुभ अन्नोत्पत्ति के लिये बरसा देता है और (अद्रिः गर्भम् सुकृते असूदयत्) जैसे पर्वत वा पाषाण खण्ड अपने भीतर के मणिमुक्ता आदि पदार्थ शिल्पी पुरुष के लाभ और कृषि के लिये दे देता है वैसे ही वह

विद्वान् भी (अद्रिः) मेघ और पर्वत के समान अचल होकर (सुकृते) अन्यों के सुख उत्पन्न करने के लिये (गर्भम्) अपने भीतर के ज्ञान को (असूदयत्) बहा दे। (मर्यः) उत्तम पुरुष (युवभिः) युवा, बलवान् पुरुषों सहित (मखस्यन्) ज्ञान यज्ञ का सम्पादन करता हुआ (ससान) ज्ञान का दान करे। (अथ) और (अंगिराः) अग्नि के समान होकर (सद्यः) शीघ्र ही (अर्चन्) अन्यों से पूजनीय (अभवद्) हो जाता है।

सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥

भा०—(पुरोभूः) सबके आगे होकर रहने वाला नायक (सतः-सतः) प्रत्येक बलवान् पुरुष का (प्रतिमानं) परिमाण करने वाला, सबसे अधिक बलशाली हो और (विश्वा) सब (जनिमा) उत्पन्न शत्रुओं को (वेद) जाने। वह (शुष्णम्) सबका पोषण करने वाले दुष्ट पुरुष को (हन्ति) मारे, वह (नः) हमें (दिवः) प्रकाश सुख ज्ञान की (पदवीः) पगडण्डियों पर (प्र अर्चन्) आगे बढ़ावे वह (गव्युः) गो, पृथिवी, उस पर रहने वाली प्रजा का हितेच्छु और (सखा) सबका मित्र होकर (सखीन्) मित्रों को (अवद्यात्) अकथनीय निन्दित पाप से (अमुञ्चत्) छुड़ावे।

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (गव्यता मनसा) वाणी के समान स्तुतिशील चित्त से (अमृताय) मोक्ष प्राप्त करने के लिये (अर्कैः) स्तुतियोग्य विद्वानों या मन्त्रों से (गातुम् कृण्वानासः) स्तुति को करते हुए (नि सेदुः) नियम से स्थिर होकर विराजें। (एषां) इन विद्वानों का (इदं चित् नु) यही उत्तम (भूरि) बहुत बड़ा (सदनं) आश्रय या प्रतिष्ठा है (येन) जिस (ऋतेन) सत्य, धर्माचरण के बल से (मासान्) मासों, काल के नाना भागों को (असिषासन्) विभक्त करते हैं।

सुरूपश्यमाना अभद्नन्नभि स्व पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥६॥

भा०—(रेतसः पयः दुघानाः) उत्तम वीर्य के उत्पादक दूध जैसे गौओं से दुहा जाता है वैसे ही (प्रत्नस्य) सनातन से चले आये (रेतसः) बल वीर्य, ब्रह्म ज्ञान के उत्पादक (स्वं) अपने आत्मा को (पयः) पुष्टिकारक ज्ञान रूप से (दुघानाः) पूर्ण या प्राप्त करते हुए और (स्वम् सम्पश्यमानाः) अपने आत्मा को सम्यक् दृष्टि से साक्षात् करते हुए (अभि अमदन्) खूब प्रसन्न और हर्षित होते हैं । (एषां) उनका (घोषः) उपदेश ही (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान समस्त स्त्री पुरुषों को (वि अतपत्) विविध प्रकार से तपाता, उज्वल करता है । वे विद्वान् (जाते) अपने पुत्र के समान शिष्य में ही (निःस्थाम् अदधुः) निष्ठा को धारण कराते और (गोषु) वाणियों, विद्याओं में (वीरान्) वीर्यवान् पुरुषों को (अदधुः) नियुक्त करते हैं ।

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥

भा०—(सः) वह बलवान् पुरुष (जातेभिः) बलशाली पुरुषों की सहायता से (वृत्रहा) बढ़ते शत्रुओं का नाश करने हारा होता है । (सः) वह (इत् उ) हो (हव्यैः) वेतनादि देने योग्य, उत्तम नाम पदों से व्यवहार करने योग्य (अर्कैः) पूज्य, स्तुत्य पुरुषों से (उस्रियाः) उर्वरा भूमियों को (असृजत्) युक्त करता है और (जेन्या गौः) विजय करने योग्य, वह भूमि (उरुची) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं (घृतवत् मधु) जलों से युक्त अन्न (स्वाद्म) उत्तम खाने योग्य स्वादु पदार्थ (भरन्ती) धारण करती हुई (दुदुहे) गौ के समान प्रदान करती है ।

पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।

विद्वान् भी (अद्रिः) मेघ और पर्वत के समान अचल होकर (सुकृते) अन्यों के सुख उत्पन्न करने के लिये (गर्भम्) अपने भीतर के ज्ञान को (असूदयत्) बहा दे । (मर्यः) उत्तम पुरुष (युवभिः) युवा, बलवान् पुरुषों सहित (मखस्यन्) ज्ञान यज्ञ का सम्पादन करता हुआ (ससान) ज्ञान का दान करे । (अध) और (अंगिराः) अग्नि के समान होकर (सद्यः) शीघ्र ही (अर्चन्) अन्यों से पूजनीय (अभवद्) हो जाता है ।

सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥

भा०—(पुरोभूः) सबके आगे होकर रहने वाला नायक (सतः-सतः) प्रत्येक बलवान् पुरुष का (प्रतिमानं) परिमाण करने वाला, सबसे अधिक बलशाली हो और (विश्वा) सब (जनिमा) उत्पन्न शत्रुओं को (वेद) जाने । वह (शुष्णम्) सबका पोषण करने वाले दुष्ट पुरुष को (हन्ति) मारे, वह (नः) हमें (दिवः) प्रकाश सुख ज्ञान की (पदवीः) पगडण्डियों पर (प्र अर्चन्) आगे बढ़ावे वह (गव्युः) गौ, पृथिवी, उस पर रहने वाली प्रजा का हितेच्छु और (सखा) सबका मित्र होकर (सखीन्) मित्रों को (अवद्यात्) अकथनीय निन्दित पाप से (अमुञ्चत्) छुड़ावे ।

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (गव्यता मनसा) वाणी के समान स्तुतिशील चित्त से (अमृताय) मोक्ष प्राप्त करने के लिये (अर्कैः) स्तुतियोग्य विद्वानों या मन्त्रों से (गातुम् कृण्वानासः) स्तुति को करते हुए (नि सेदुः) नियम से स्थिर होकर विराजें । (एषां) इन विद्वानों का (इदं चित् नु) यही उत्तम (भूरि) बहुत बड़ा (सदनं) आश्रय या प्रतिष्ठा है (येन) जिस (ऋतेन) सत्य, धर्माचरण के बल से (मासान्) मासों, काल के नाना भागों को (असिषासन्) विभक्त करते हैं ।

स्वरुपश्यमाना अमदन्नभि स्व पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥६॥

भा०—(रेतसः पयः दुघानाः) उत्तम वीर्य के उत्पादक दूध जैसे गौओं से दुहा जाता है वैसे ही (प्रत्नस्य) सनातन से चले आये (रेतसः) बल वीर्य, ब्रह्म ज्ञान के उत्पादक (स्वं) अपने आत्मा को (पयः) पुष्टि-कारक ज्ञान रूप से (दुघानाः) पूर्ण या प्राप्त करते हुए और (स्वम् सम्पश्यमानाः) अपने आत्मा को सम्यक् दृष्टि से साक्षात् करते हुए (अभि अमदन्) खूब प्रसन्न और हर्षित होते हैं । (एषां) उनका (घोषः) उपदेश ही (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान समस्त स्त्री पुरुषों को (वि अतपत्) विविध प्रकार से तपाता, उज्वल करता है । वे विद्वान् (जाते) अपने पुत्र के समान शिष्य में ही (निःस्थाम् अदधुः) निष्ठा को धारण कराते और (गोषु) वाणियों, विद्याओं में (वीरान्) वीर्यवान् पुरुषों को (अदधुः) नियुक्त करते हैं ।

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥

भा०—(सः) वह बलवान् पुरुष (जातेभिः) बलशाली पुरुषों की सहायता से (वृत्रहा) बढ़ते शत्रुओं का नाश करने हारा होता है । (सः) वह (इत् उ) हो (हव्यैः) वेतनादि देने योग्य, उत्तम नाम पदों से व्यवहार करने योग्य (अर्कैः) पूज्य, स्तुत्य पुरुषों से (उस्रियाः) उर्वरा भूमियों को (असृजत्) युक्त करता है और (जेन्या गौः) विजय करने योग्य, वह भूमि (उरुची) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं (घृतवत् मधु) जलों से युक्त अन्न (स्वाद्म) उत्तम खाने योग्य स्वादु पदार्थ (भरन्ती) धारण करती हुई (दुदुहे) गौ के समान प्रदान करती है ।

पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।

विष्कुभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥ १२ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (अस्मे पित्रे) इस सर्वपालक पुरुष के लिये ही (महि सद्म) बड़ा भारी गृह, भवन (त्विषीमत्) उत्तम दीप्ति से युक्त (चित्) बड़े आदर से (सं चक्रुः) बनाते हैं और (सुकृतः) उत्तम शिल्पकार लोग (हि) ही उसको (वि ख्यन्) विशेष रूप से देखते हैं। वे लोग (जनित्री) माता के समान उत्पन्न करने वाली भूमि आधार और शिखर भाग दोनों को (स्कम्भनेन) थामने वाले स्तम्भादि साधन से (वि-स्कम्नन्तः) विविध उपायों से थामते और दृढ़ करते हुए (ऊर्ध्वम् आसीनाः) शिखर पर बैठे हुए (रभसं) गृह को सब कार्यों का साधक (विमिन्वन्) विविध प्रकार से मापें और बनावें।

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३॥

भा०—(यदि) यदि (मही) भारी वाणी और प्रज्ञा तुम लोगों की (यस्मिन्) जिस परमेश्वर के विषय में (शिश्नथे) शिथिल हो जाय, तो भी वह (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी में भी (विभ्वं) विविध शक्तियों में विद्यमान व्यापक (सद्योवृधं) अति शीघ्र बढ़ा देने वाले उसी परमात्मा को (धात्) बतलाती है। (यस्मिन्) जिस परमेश्वर में (अनवद्याः) निन्दादि दोषों से रहित (विश्वाः) समस्त (गिरः) वाणियें (समीचीः) अच्छी प्रकार संगत होती हैं और वैसे ही (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् की ही (विश्वाः तविषीः) समस्त ये शक्तियां (अनुत्ताः) स्वयं चल रही हैं।

मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे परमेश्वर! हम लोग (ते) तेरे

(महि सख्यं) बड़े पूजनीय मैत्रीभाव को (आवविम) सदा चाहते हैं। (वृत्रघ्ने) बढ़ते शत्रुओं को नाशक और बाधक अज्ञान के नाशक, सूर्यवत् प्रकाशक तेरे ही अधीन (नियुतः) नियुक्त या लक्षों करोड़ों (पूर्वीः) पहले से चली आई, सनातन या पूर्ण (शक्तीः) सेनाएं शक्तियां (आ यन्ति) प्राप्त हों (सूरेः) ज्ञानवन्, प्रकाशक तेरे ही (स्तोत्रम्) स्तुति और (महि) बड़े भारी, पूज्य (अवः) ज्ञान और रक्षादि को हम लोग (आ अगन्म) प्राप्त हों। तू (अस्माकं) हमारा (गोपाः) रक्षक होकर (सु बोधि) उत्तम रीति से ज्ञानवान् हो, हमें भी प्रबुद्ध कर।

महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत्।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥७॥

भा०—(इन्द्रः) राजा, विद्वान् पुरुष (सखिभ्यः) समान ख्याति और दर्शन विज्ञान से युक्त मित्र जनों के उपकार के लिये ही (महि) बड़ा भारी, अति उत्तम (क्षेत्रं) रहने बीज अनाजादि बोने के और निवास करने के लिये खेत, पुत्रोत्पादक स्त्री और कार्य क्षेत्र और (पुरु-चन्द्रं) बहुत प्रकार के सुख आह्लादजनक धन (विविद्वान्) विविध उपायों से प्राप्त कराता हुआ (अत् इत्) अनन्तर (चरथं) जंगम सम्पत्ति और भोग्य अन्नादि सामग्री भी (सम् ऐरत्) प्रदान करे और वह (नृभिः साकं) अपने प्रधान नायक पुरुषों के साथ मिलकर (दीद्यानः) स्वयं तेजस्वी होकर विद्या के द्वारा (सूर्यं उषसं) सूर्य, उषा और (गातुम् अग्निम्) पृथिवी और अग्नि के समान (साकं) मिलकर माता पिता, पुत्र और पत्नी पति के जोड़े (अजनत्) उत्पन्न करे। वा (सूर्यम् उषसं) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष, उषा के समान कान्तियुक्त या शत्रुसंतापक सेना को और (गातुम्) पृथ्वी के समान विस्तृत राष्ट्र और (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी ब्राह्मण और अग्रणी पुरुषों को पैदा करे।

अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः।

मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥

भा०—(दमूनाः) मन और राष्ट्र को दमन करने में समर्थ पुरुष (अपः चित्) जलों के समान रोक लगा देने पर यथेष्ट दिशा में ले जाने योग्य (सध्रीचीः) अपने साथ सहयोग करने वाली (विश्व-चन्द्राः) सबको आह्लाद करने वाली, सब प्रकार के धन सुवर्णादि से समृद्ध (विभ्वः) विविध सुखों के उत्पादक विद्याओं और प्रजाओं को (प्र असृजत्) उत्तम रीति से उत्पन्न करे। वे विद्याएं और प्रजाएं (द्युभिः अक्तुभिः) दिन और रात, सदा ही (मध्वः) अन्न जल आदि मधुर, बलकारी पदार्थों को (पुनानाः) पवित्र करती हुई और (पवित्रैः) स्वयं पवित्र और अन्यों को भी पवित्र करने वाले, पंक्तिपावन (कविभिः) विद्वानों द्वारा (धनुत्रीः) सबको प्रसन्न करने वाली और स्वयं धन धान्य और बल रखने वाली होकर (हिन्वन्ति) स्वयं बढ़ें बढ़ावें।

अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७॥

भा०—(सूर्यस्य मंहना) जैसे सूर्य के महान् सामर्थ्य से (उभे) दोनों (कृष्णे) श्वेत और काली प्रकाशमय और अन्धकाररूप, (यजत्रे) परस्पर संगत दिन रात्रि तथा एक दूसरे का आकर्षण करने वाले आकाश और पृथिवी (अनु जिहाते) एक दूसरे का अनुसरण करते और अनुकूल रहते हैं और उसी के सामर्थ्य से दोनों (वसुधिती) वसने वाले लोकों को धारण करते हैं वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्! (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी, शासक तेरे (मंहना) महान् सामर्थ्य और दान से (कृष्णे) परस्पर आकर्षण वाले, एक दूसरे के प्रिय (यजत्रे) परस्पर आत्मार्पण करने वाले स्त्री पुरुष (उभे) दोनों (अनुजिहाते) एक दूसरे के अनुकूल व्यवहार करते हैं। तेरे ही सामर्थ्य से दोनों (वसुधिती) ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! (काम्या) कामना वाले (ऋजिप्याः) सरल, धर्मानुकूल व्यवहार

करने वाले (सखायः) मित्र गण (वृजध्यै) शत्रुओं का वर्जन करने के लिये (ते महिमानं) तेरे ही महान् सामर्थ्य को (परि) सब प्रकार से आश्रय लेते हैं।

पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८॥

भा०—हे (वृत्रहन्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी राजन्! हे शत्रुनाशक! सूर्य जैसे (विश्वायुः) सबको आयु, दीर्घ जीवन देने वाला, (वयोधाः) बल धारण कराने वाला, (वृषभः) मेघ से वृष्टि कराने वाला, (गिरां पतिः) अन्तरिक्षस्थ मेघ गर्जनाओं का स्वामी है वैसे ही तू (विश्वायुः) समस्त मनुष्यों का स्वामी, सबके जीवनों का रक्षक (वयोधाः) बल और विज्ञान-धारक (वृषभः) शान्ति, सुख का वर्षक (सूनृतानां गिरां) उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण वाणियों और उत्तम ज्ञान धन वा अन्नों से समृद्ध स्तुतिकर्त्ताओं का (पतिः भव) पालक हो। तू (शिवेभिः) कल्याणकारी, (सख्येभिः) मित्रता के भावों से और (महीभिः ऊतिभिः) बड़ी रक्षा करने वाली शक्तियों और रक्षा साधनों से (महान्) महान्, आदरणीय होकर (सरण्यन्) सबके जाने योग्य उत्तम मार्ग के समान, सबका चारा होता हुआ वा स्वयं उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता हुआ (नः) हमें (आगहि) प्राप्त हो।

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम्।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥१९॥

भा०—हे (अंगिरस्वन्) जलते हुए अंगारों के समान तेजस्विन्! वा तेजस्वी विद्वानों वा वीरों के स्वामिन्! राजन्! प्रभो! (तम्) उस (नव्यं) स्तुतियोग्य (पुराजाम्) पूर्व उत्पन्न, वयोवृद्ध तुमको (नमसा) नमस्कार और अन्नादि द्वारा (सपर्यन्) पूजा करता हुआ (सन्यसे) धनों का परस्पर विभाग करने वाले जनों के बीच न्यायानुकूल व्यवस्था वा उद्योग करने के लिये (कृणोमि) नियत करूं। तू (बहुलाः) बहुत सी

(द्रुहः) परस्पर द्रोह करने वाली (अदेवीः) ज्ञान प्रकाश युक्त से व्यवहारज्ञ विद्वान् वा राजा से रहित प्रजाओं को (वि याहि) विविध प्रकार से प्राप्त हो, ऐसी द्रोही और अदानशील शत्रु-प्रजा पर विविध उपायों से आक्रमण कर और (अदेवीः वि याहि) अविदुषी स्त्रियों और प्रजाओं को दूर कर, अर्थात् उनको विद्वान् बना। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (सातये) देने के लिये (स्वः) ऐश्वर्य (धाः) धारण करा।

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम्।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥

भा०—हे राजन् ! हे सेनापते ! हे विद्वन् ! प्रभो ! (पावकाः) अग्नियों की (मिहः) वर्षाएं (प्रतताः) दूर तक फैली हुई (अभूवन्) हों, तू (नः) हमें (आसाम् पारम्) उनके पार करके (स्वस्ति) सुखपूर्वक (पिपृहि) पालन कर। (नः) हमारे (आसाम्) इनके पालन सामर्थ्य को (स्वस्ति) सुखपूर्वक (पिपृहि) पूर्ण कर। इसी प्रकार राष्ट्र में (मिहः पावकाः) ज्ञान सेचक, परमपावन पुरुष दूर २ तक फैलें। उनसे हमें (आसाम् पारम्) उन शत्रु सेनाओं और विपत्तियों को पार कर, सुख को पूर्ण कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्व) तू (रथिरः) महारथी होकर (नः) हमें (रिषः) हिंसक पुरुष और जन्तु से (पाहि) बचा और (मक्षु मक्षु) अति शीघ्र (नः) हमें (गोजितः कृणुहि) जितेन्द्रिय बना।

अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात्।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१॥

भा०—जैसे (वृत्रहा) अन्धकार का नाशक (गोपतिः) किरणों का स्वामी सूर्य (गाः अदेदिष्ट) रश्मियों को दूर २ तक डालता, जगत् को प्रकाशित करता है और जैसे (कृष्णान् अन्तः) काले अन्धकारों के भीतर (अरुषैः धामभिः) देदीप्यमान प्रकाशों से (गात्) प्रवेश करता और

उनको व्याप लेता है और जैसे वह (ऋतेन) जलवर्षण द्वारा (सूनृता दिशमानः) अन्नों को प्रदान करता हुआ (स्वाः विश्वाः दुरः अवृणोत्) अपने सब अन्धकारवारक किरणों को दूर २ तक प्रकट करता है। वैसे ही राजा वा सेनापति (वृत्रहा) बढ़ते और घेरते हुए शत्रु का नाश करने हारा वीर पुरुष (गो-पतिः) समस्त भूमियों और आज्ञा वाणियों का स्वामी होकर (गाः अदेदिष्ट) भूमियों पर शासन करे और आज्ञाओं को प्रदान किया करे। ऐसे ही (वृत्रहा गोपतिः गाः अदेदिष्ट) आज्ञाओं या विघ्नों का नाशक, वेदवाणियों का पालक विद्वान् शिष्यों को वाणियों का उपदेश करे। सेनापति (अहंपैः धामभिः) देदीप्यमान तेजों से और प्रजाओं का वध न करने वाले राष्ट्र के पोषक उपायों से (कृष्णान् अन्तः गात्) कर्षणयोग्य, दबाने योग्य दुष्टों के भीतर प्रवेश करे और कर्षक किसान प्रजाओं के भीतर तक पहुँचे, उनका प्रिय बने।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२॥८॥

भा०—व्याख्या देखो ३ । ३ । २२ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३२] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ७—६, १७ त्रिष्टुप्। ११—१५ निचृत् त्रिष्टुप्। १६ विराट् त्रिष्टुप्। ४, १० भुरिक् पंक्तिः। ५ निचृत् पंक्तिः। ६ विराट् पंक्तिः। सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमपते) उत्तम ओषधि अन्नादि खाद्य रसों के पालक पुरुष! तू (सोमं पिब) उस अन्नादि ओषधि रस का पान कर। (यत्) जब (ते) तेरा (माध्यन्दिनं) दिन के मध्य काल का (सवनं) सवन अर्थात् यज्ञ, बलिवैश्वदेव (चारु) उत्तम रीति से हो चुके। हे (मघवन्) हे उत्तम धन युक्त! हे (ऋजीषिन्) सरल इच्छाओं और ऋजु, सादे

उत्तम इष् अर्थात् अन्न को उपभोग करने हारे! उस समय तू (शिप्रे) मुख के दोनों भागों को (प्रपुथ्य) अच्छी प्रकार भर करके और (हरी) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों को भोजन काल में (विमुच्य) विशेष रूप से शिथिल, बन्धन मुक्त करके (इह) इस उत्तम अन्न भोजन के समय (मादयस्व) अपने को अन्न से तृप्त कर।

गवाशिरं मुन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सुजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सूर्य के समान तेजस्विन्! जैसे (गवाशिरं शुक्रं पिबति) सूर्य किरणों से प्राप्त होने योग्य शुद्ध जल का पान करता है और (मारुतेन गणेन रुद्रैः सजोषाः वर्षति) वायुओं और गर्जते मेघों या विद्युतों से युक्त होकर जल बरसाता है वैसे ही तू भी (गवाशिरम्) इन्द्रियों और भूमि निवासी प्रजाओं के द्वारा भोग्य और प्राप्त करने योग्य (मन्थिनम्) शत्रुओं और दुष्टों के बल को मथन या दलन करने में समर्थ (शुक्रं) बल को और शीघ्रता से काम करने वाले सेनाबल को (पिब) प्राप्त कर और पालन कर। (ते) तेरे अधीन (मदाय) तेरे ही हर्ष को बढ़ाने और (मदाय = दमाय) उसको दमन, व्यवस्थापना करने के लिये (सोमं) अभिषेक द्वारा प्राप्त होने वाले राष्ट्रैश्वर्य के पालक पद को (ररिम) प्रदान करें। तू (ब्रह्मकृता) ब्राह्मणों के द्वारा शिक्षित (मारुतेन) मनुष्यों, शत्रु-मारक सैनिकों के (गणेन) संख्याबद्ध दल से, वा सुवर्ण के बने संख्या योग्य धन राशि से और (रुद्रैः) उपदेष्टा विद्वानों और दुष्ट शत्रु को रुलाने वाले वीर पुरुषों से (सजोषाः) प्रीतियुक्त होकर (तृपत्) पूर्ण होकर (आ वृषस्व) सब प्रकार से बलवान् समर्थ हो।

ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र॥ ३॥

भा०—जैसे (माध्यन्दिने) दिन के मध्य में होने वाले (सवने) काल

में सूर्य वायुओं से मिलकर (सोमं पिबति) जल का पान करता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुओं को दलन करने वाले पुरुष ! (ये) जो लोग (ते) तेरे (शुष्मं) शत्रुओं का शोषण करने वाले बल या सामर्थ्य को और (ये) जो (तविषीम्) बलवती सेना को (अवर्धन्) बढ़ाते हैं और जो (मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुष (अर्चन्तः) तेरा आदर करते हुए (ते ओजः) तेरे ओज को बढ़ाते हैं, हे (वज्रहस्त) शस्त्रों से सुसज्जित हाथों वाले सेना के स्वामिन् ! हे (सुशिप्र) शोभन मुख वाले ! तू सूर्य के समान ही (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न कालिक सूर्य के समान तेज होने पर या राष्ट्र के बीच में अभिषेक होने पर (रुद्रेभिः) शत्रु को रुलाने वाले वीरों सहित और (सगणः) अपने सैन्य गणों सहित राष्ट्र का पालन कर।

त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन्।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (मरुतः) वायुगण ही (इन्द्रस्य शर्धं) विद्युत् के बल को धारण करके (इन्द्रस्य मधुमत् शर्धः विविप्रे) सूर्य वा विद्युत् के बल से युक्त बल अर्थात् वर्षाकारी मेघ को सञ्चालित करते हैं और उन वायुओं से प्रेरित या उत्पन्न हुआ यह विद्युत् (वृत्रस्य मर्म विवेद) वृत्र अर्थात् मेघ के मर्म या मध्य भाग तक पहुँच जाता है वैसे ही (ये मरुतः) जो वीर पुरुष (इन्द्रस्य) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति के अधीन रहकर (आसन्) उसके मुख अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हैं वे ही (अस्य) ऐश्वर्यवान् राजा, या राष्ट्र के (मधुमत् शर्धः) शत्रु को कम्पा देने वाले बल को (विविप्रे) सञ्चालित करते हैं। (येभिः) जिससे (इषितः) प्रेरित और सैन्य युक्त होकर वह राजा (वृत्रस्य) अपने बढ़ते हुए और घेरने वाले (अमर्मणः) अज्ञात मर्म वाले वा हृदय-हीन (मन्यमानस्य) अभिमानी शत्रु के (मर्म) निर्बल, मृत्युकारी मर्मस्थल को (विवेद) जाने।

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय।

स आ वंवृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥९॥

भा०—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन्! (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों से युक्त (सवनं) राज्याभिषेक कार्य को (जुषाणः) प्रेम से स्वीकार करता हुआ तू (शश्वते वीर्याय) चिरकाल तक स्थिर रहने वाले वीर्य के लिये (सोमं) ओषधि रस के समान ही बलकारक राष्ट्रैश्वर्य का (पिब) उपभोग, पालन और पोषण कर। हे (हर्यश्व) बलवान् अश्वों और इन्द्रियों से युक्त! तू (सरण्युभिः) आगे बढ़ने के इच्छुक, (यज्ञैः) पूज्य सहायकों से (सः) वह तू (आ ववृत्स्व) सर्वत्र, व्यवहार कर। विद्युत् जैसे (अपः अर्णा सिसर्षि) अन्तरिक्ष और जलों के बीच गति करती है। वैसे ही हे वीर! (अपः) तू आप्त तथा (अर्णा) ज्ञानवान् प्रजाओं को (सिसर्षि) प्राप्त हो। इति नवमो वर्गः॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (देवी अपः वव्रिवांसं अदेवम् वृत्रं जघन्वान् अपः प्रासृजत्) स्वच्छ जलों को लिये हुए श्याम मेघ को विद्युत् या वायु आघात करता और बहाने के लिये जलों को उत्पन्न कर देता है। वैसे ही हे वीर सेनापते! (त्वम्) तू (यत् ह) जब भी (देवीः) उत्तम पुरुष की कामना करने वाली (अपः) आप्त प्रजाओं को (वव्रिवांसं) घेरने वाले (शयानम्) सोते हुए, प्रमादी, (अदेवम्) अदानशील स्वयं प्रजा को खा जाने वाले, उत्तम गुणों से हीन, पापाचारी (वृत्रं) विघ्नकारी शत्रु को (चरता वधेन) चलते हुए शस्त्र से (जघन्वान) मारता हुआ (आजौ सर्त्तवे) संग्राम में वेग से भागने के लिये (अत्यान् इव) जैसे घोड़ों को (प्र असृजः) आगे बढ़ाता है वैसे ही (सर्त्तवे) भाग निकलने और (अपः) जलों के समान वेग से शत्रु सेनाओं को निकल भागने के लिये (प्र असृजः) बाधित कर देता है।

यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।

यस्य॑ प्रि॒ये म॒मतु॑र्य॒ज्ञिय॑स्य॒ न रोद॑सी महि॒मानं॑ म॒माते॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस (यज्ञियस्य) सत्संगयोग्य, दानशील प्रजापति के (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (प्रिये रोदसी) कमनीय, प्रीतियुक्त माता पिता, स्वपक्ष और परपक्ष की प्रजाएं भी (न ममतुः) माप नहीं सकतीं और (न ममाते) निश्चय से जिसकी महिमा का पार नहीं पा सकते उस (वृद्धम्) अनुभव, आयु और ज्ञान में वृद्ध, (बृहन्तम्) बड़े (अजरम्) जरारहित, बलवान्, (युवानम्) बलिष्ठ, (ऋष्वम्) दर्शनीय पुरुष की हम (नमसा) आदर सत्कार, अन्नादि द्वारा (यजाम) पूजा करें।

इन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ सुकृ॑ता पु॒रूणि॑ व्र॒तानि॑ दे॒वा न मि॑नन्ति॒ विश्वे॑ ।
दा॒धार॒ यः पृ॑थि॒वीं द्यामु॒तेमां ज॒जान॒ सूर्य॑मु॒षसं॑ सु॒दंसाः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (द्याम् उत इमाम् पृथिवीम्) आकाश और इस भूमि को (दाधार) धारण करता और जो (सुदंसाः) उत्तम कर्मों का वा उत्तम रीति से समस्त संसार का कार्य करने हारा प्रभु (सूर्यम्) सूर्य और (उषसम्) उषा को अथवा (उषसं सूर्यम्) तापदायी अग्निमय और दीप्तिमय सूर्य को (जजान) उत्पन्न करता है उस (इन्द्रस्य) महान् परमेश्वर के (पुरूणि) बहुत से (सुकृता) उत्तम रीति से सम्पादित (कर्म) कर्मों और (व्रतानि) उत्तम रीति से पालन करने योग्य व्रतों को (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् लोग और तेजस्वी सूर्यादि भी (न मिनन्ति) उल्लंघन नहीं करते।

अद्रो॑घ स॒त्यं तव॒ तन्म॑हि॒त्वं स॒द्यो यज्जा॒तो अपि॑बो ह॒ सोम॑म् ।
न द्याव॑ इन्द्र त॒वस॑स्त॒ ओजो॒ नाहा॒ न मासाः॑ श॒रदो॑ वरन्त ॥९॥

भा०—हे (अद्रोघ) किसी से भी द्रोह न करने हारे! (तव) तेरा (तत्) वह अपरिमित (सत्यं महित्वं) सच्चा महान् सामर्थ्य है (यत्) जिससे तू (जातः) प्रकट होकर (ह) निश्चय से (सोमम्) समस्त ऐश्वर्य और सामर्थ्य को (अपिबः) पालन और उपभोग करता है। हे (इन्द्र)

ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (तवसः) बलशाली (ते) तेरे और (ते तवसः) तेरे बल के (ओजः) पराक्रम और प्रताप को (न द्यावः) न सूर्य आदि तेजस्वी लोक, न भूमिगत प्रजाएं, (न अहा) न दिन, न (मासाः) न मास और (न शरदः) न शरद् आदि ऋतु गण वा वर्ष ही (वरन्त) निवारण कर सकते हैं।

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन्।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥१०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! इन्द्रिय सामर्थ्यों के अधिष्ठाता जीवात्मन् ! (त्वं) तू (सद्यः) शीघ्र ही (जातः) उत्तम गुणों में प्रकाशित होकर (परमे) सबसे उत्कृष्ट (व्योमन्) विशेष रूप से सर्वत्र व्यापक परमेश्वर के आश्रय रहकर (मदाय) अति आनन्द लाभ करने के लिये (सोमम्) परमैश्वर्य और ब्रह्मानन्द रस को (अपिबः) उपभोग कर। इसी प्रकार हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (परमे व्योमन्) परम रक्षकस्वरूप में सदा प्रकट होकर (मदाय) परम आनन्द देने के लिये (सोमम् अपिबः) ज्ञानवान् जीव की रक्षा कर। (यत् ह) निश्चय से तू (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि में (अविवेशीः) व्यापक हो रहा है। इसी प्रकार जीव (द्यावापृथिवी) प्राण और अपान वा माता पिता के बीच प्रविष्ट रहता है। (अथ) और वह तू (कारुधायाः) समस्त जगदुत्पादक सामर्थ्यों को धारण करने वाला सबसे (पूर्व्यः) पूर्व ही (अभवः) विद्यमान है। इति दशमो वर्गः ॥

अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान्।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥११॥

भा०—जैसे सूर्य या विद्युत् (अर्णः परिशयानम्) जल में सब प्रकार व्यापक उससे पूर्ण (ओजायमानं अहिं अहन्) बलशाली जलधर मेघ को आघात करता है वैसे ही हे (तुविजात) बहुतसों में प्रसिद्ध एवं

बहुतरों को अपने समान उत्पन्न करने हारे वीर ! तू (तव्यान्) बहुत बलवान् होकर (अर्णः परिशयानम्) जल के समान शान्त स्वभाव, भयभीत प्रजाजन के चारों ओर घेरा डाल कर पड़े रहने वाले (ओजायमानम्) पराक्रम दिखलाने वाले (अहिम्) आक्रमणकारी शत्रु का (अहन्) विनाश कर । (यत्) जब तू (अन्यया) अपनी एक (स्फिग्या) शक्ति से (क्षाम्) भूमि निवासिनी प्रजा को (अव स्याः) व्यवस्थित, वशीभूत करे (अध) तब (द्यौः) ज्ञानप्रकाश से युक्त राजसभा भी (ते महित्वम्) तेरे महान् सामर्थ्य का (न अनु भूत्) अनुकरण नहीं कर सकती ।

यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (यज्ञः हि) निश्चय से यज्ञ अर्थात् हमारा नाना करादि का देना और त्याग ही (ते) तुझे (वर्धनः) बढ़ाने वाला (उत प्रियः) तृप्त करने वाला (सुतसोमः) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला और (मियेधः) सब दुःखों और संकटों को नष्ट करने हारा है । हे राजन् ! तू (यज्ञियः) पूजा, सत्संग और दान के योग्य (सन्) होकर (यज्ञेन) अपने त्याग, सत्संग और मैत्रीभाव से (यज्ञम्) प्रजा के त्याग, संगति और मैत्रीभाव की रक्षा कर । (ते यज्ञः) अर्थात् तेरा दान, त्याग और मैत्रीभाव ही (अहिहत्ये) अभिमुख खड़े शत्रु को विनाश करने के काम में (वज्रम्) शस्त्रास्त्र बल की (आवत्) रक्षा करता है ।

यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (पूर्व्येभिः) पूर्व किये गये, (मध्यमेभिः) बीच में किये गये और (नूतनेभिः) नवीन (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य वचनों, कर्मों और सैनिक सहायक दलों से (वावृधे) बढ़ता है (एनं) उस पुरुष को मैं

प्रजाजन स्वयं (यज्ञेन) अपने मित्रता, संगठन, प्रबन्ध और करादि दान; द्वारा और (अवसा) रक्षा आदि के निमित्त (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' रूप से (आ चक्रे) स्वीकार करूं, और (एनं) उसको (अर्वाक्) सबके समक्ष (नव्यसे सुम्नाय) नये से नये सुख, ऐश्वर्य आदि की वृद्धि के लिये ही (आ ववृत्याम्) वरण करूं ।

विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४ ॥

भा०—(यत्) जब (मा) मुझे यह (धिषणा) उत्तम बुद्धि (विवेष) प्राप्त हो और प्रकट हो जाय कि मुझे (पार्यात् अह्नः पुरा) पार लगाने वाले दिन से पूर्व ही (इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष की (स्तवै) स्तुति करना आवश्यक है तब (यथा) जैसे भी हो और (यत्र) जिस काल और जिस देश में भी होऊं वह (नः) हमें (अंहसः) पाप से (पीपरत्) रक्षा करता है और (नावा इव यान्तम्) नाव से जाते हुए यात्री को जैसे (उभये हवन्ते) दोनों तटों के लोग पुकारते हैं वैसे ही सबको तारने वाले प्रभु के आश्रय से जाने वाले पुरुष को भी (उभये) सांसारिक और पारमार्थिक दोनों क्षेत्रों के लोग (हवन्ते) पुकारते हैं ।

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥

भा०—(सेक्ता इव) सेचन करने वाला प्रभु जैसे (पिबध्यै) वृक्षादि को पानी पिलाने के लिये (कोशं सिसिचे) मेघ को बरसाता है और जैसे (कलशः आ पूर्णः) कलसा खूब भरा हुआ और दूसरा (सेक्ता) जल धारा सेचन करने वाला पुरुष (पिबध्यै) दूसरे को जलपान कराने के लिये (कोशं सिसिचे) जल प्रदान करता है वैसे ही (अस्य) इस प्रजाजन या राजा का (कलशः) कलश, राष्ट्र (स्वाहा) सुखजनक, कर आदि प्रदान से उत्तम ऐश्वर्यों से (आपूर्णः) खूब भरा हुआ हो । वह (पिबध्यै) स्वयं

और प्रजाजन को पालन और उपभोग करने के लिये (सेक्ता इव) मेघ या सूर्य के समान ही (कोशं सिसिचे) अपने खजाने को प्रजा के उपकारार्थ लगा दे। अथवा प्रजाजन भी (सेक्ता) अभिषेक करने वाला होकर (कोशं) खजाने के समान प्रजा पालक को ही (पिवध्यै) अपनी रक्षार्थ (सिसिचे) अभिषेक करे और (प्रियाः) उसके प्रिय (सोमासः) ऐश्वर्यवान् अन्य पदाधिकारी जन (इन्द्रम्) इस शत्रुहन्ता पुरुष के (अभि प्रदक्षि-णित्) चारों ओर घिरकर (मदाय) अपने हर्ष और स्तुति के लिये (उ) ही (सम् आवघृत्रन्) अच्छी प्रकार घेर लें।

न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळहं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुत से प्रजाजनों से रक्षार्थ पुकारे जाने योग्य वीर! (त्वां) तुझको (न गभीरः सिन्धुः) न गहरी नदी और (न अद्रयः) न पहाड़ ही (सन्तः) विद्यमान रहकर (परि वरन्त) दूर कर सकते या रोक सकते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (इत्था) इस प्रकार से सचमुच (सखिभ्यः) अपने प्रिय सुहृदों के उपकार के लिये (इषितः) चाहा जाकर (दृढम्) दृढ़ (गव्यं) पृथिवी के (ऊर्वम्) निरोधस्थान, रुकावट या (गव्यम् ऊर्वम्) पृथिवी के ऊपर के दृढ़ से दृढ़ हिंसक शत्रु को भी (अरुजः) तोड़ डालता है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१७॥११॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३०। २२ ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

[३३] विश्वामित्र ऋषिः ॥ नद्यो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः। स्वराट् पंक्तिः। ७ पंक्तिः। २, १० विराट् त्रिष्टुप्। ३, ८, ११, १२ त्रिष्टुप्। ४, ६, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। १३ उष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

भा०—(पर्वतानाम् उपस्थात्) पर्वतों के बीच में से जैसे दो नदियां (विपाट् शुतुद्री) अपने तटों को तोड़ती फोड़ती और अति वेग से बहती हुई (पयसा जवेते) जल से पूर्ण होकर वेग से जाती हैं और जैसे (उशती) परस्पर कामना करने वाली वेग से दौड़ती २ (अश्वे) दो घोड़ी, (हासमाने) एक दूसरे से स्पर्धा करती हुई (जवेते) वेग से दौड़ रही हों और जैसे (गावा इव शुभ्रे) धवल वर्ण की दो गौवें (रिहाणे) परस्पर एक दूसरे को चाटती, प्रेम करती हों वैसे ही स्त्री और पुरुष परस्पर विवाहित होकर दोनों (पर्वतानाम् उपस्थात्) अपने पालन करने वाले माता पिता गुरुजनों के समीप (उशती) एक दूसरे को हृदय से चाहते हुए, (विषिते) विशेष रूप से बन्धन में बद्ध, (हासमाने) एक दूसरे से गुणों, विद्या और शोभा में स्पर्धा करते हुए वा (हासमाने) एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए होवें, (शुभ्रे) शुद्ध वस्त्र और आचरण वाले, (मातरा) माता और पिता के पद पर विराजते हुए, (रिहाणे) उत्तम भोजनादि का आस्वाद लेते हुए (विपाट्) एक दूसरे के पास, ऋणादि के बन्धनों को दूर करने वाले, और (शुतुद्री) एक दूसरे के शोकों को दूर करने वाले होकर (पयसा) पुष्टिकारक अन्न दुग्धादि से बालकों के प्रति (जवेते) शीघ्र प्राप्त हों ।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २॥

भा०—जैसे (इन्द्रेषिते) सूर्य या मेघ वृष्टि द्वारा अति वेग से प्रेरित होकर (ऊर्मिभिः पिन्वमाने) तरंगों से तट प्रदेशों को सींचती हुई दो महानदियां एक दूसरे से मिलकर (समुद्रं याथः) समुद्र को पहुँच जाती है वैसे ही स्त्री पुरुष पति पत्नी दोनों (इन्द्रेषिते) 'इन्द्र' अर्थात् अज्ञान के नाश करने वाले विद्वान् पुरुष द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित होकर (प्रसवं

भिक्षमाणे) उत्तम सन्तान की एक दूसरे से याचना करते हुए (रथ्या इव) रथ में लगे दो अश्वों वा रथ में बैठे रथी सारथी के समान (अच्छा) परस्पर प्रेमयुक्त होकर (समुद्रं याथः) समुद्र के समान अपार काम्य सुख प्राप्त करें। वे दोनों (ऊर्मिभिः) प्रेम की उठी तरंगों से (समाराणे) परस्पर सुसंगत होकर वा एक दूसरे को अपने समान भाव से संप्रदान करते हुए और (पिन्वमाने) स्नेहों द्वारा एक दूसरे को सींचते हुए (शुभ्रे) मन, तन, वाणी से शुद्ध, स्वच्छ वा तेजस्वी होकर रहो और (वाम्) तुम दोनों से (अन्या) एक व्यक्ति (अन्याम्) दूसरे व्यक्ति को (अप्येति) अच्छी प्रकार ऐसे प्राप्त हो कि एक में एक समा जाय।

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥ ३ ॥

भा०—विपाट् माता का वर्णन। हम लोग (सुभगाम्) पति द्वारा उत्तम रीति से सुखपूर्वक सेवने योग्य, उत्तम सौभाग्य और ऐश्वर्यादि सुखों की देने वाली, (सिन्धुम्) पति को प्रेम-पाश में बांधने वाली (मातृतमाम्) उत्तम ज्ञानवती वा उत्तम माता के स्वभाव और रूप वाली (विपाशम्) पति को ऋणादि बन्धनों से छुड़ाने वाली, (उर्वीम्) भूमिस्वरूप विशाल हृदय वाली स्त्री को (अयासम्) मैं प्राप्त होऊं और ऐसी ही माता को हम सभी (अगन्म) प्राप्त करें: (मातरा) माता और पिता दोनों ही (वत्सं इव संरिहाणे) बछड़े को प्रेम से चाटती हुई गौओं के समान अति स्नेह से युक्त होकर प्रजा, सन्तति को (संरिहाणे) अच्छी प्रकार प्रेम करते हुए (समानं योनिम्) एक ही गृह में (अनु) आश्रय लेकर (सं चरन्ती) एक साथ रहते रहें।

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (पयसा पिन्वमानाः नद्यः) जल से भरी नदियां और

देशों को सींचती हुई (देवकृतं योनिम् अनु चरन्तीः) परमेश्वर के बनाये स्थान, समुद्र मार्ग को अनुसरण करती हुई जाती हैं। उनका (सर्गतक्तः प्रसवः) जलों के द्वारा सुप्रसन्न, वेग से गमन करना (न वर्त्तवे) फिर लौटने के लिये नहीं होता वैसे ही (वयम्) हम सभी स्त्री पुरुष (एना पयसा) इस अन्न और दूध से (पिन्वमानाः) स्वयं और औरों को पुष्ट करते हुए (देवकृतं योनिम्) परमेश्वर और विद्वान् द्वारा या प्रिय कामनायोग्य पति द्वारा बनाये गृह को ही (अनु चरन्तीः) अनुकूल होकर प्राप्त होते हैं। हमारा (सर्गतक्तः प्रसवः) सृष्टिनियम से विकसित सन्तान उत्पन्न करने का कार्य (न वर्त्तवे) कभी निवृत्त नहीं हो सकता। तब फिर (विप्रः) विद्वान् पुरुष (किंयुः) किस विशेष कामना को करता हुआ (नद्यः) गुणों और विद्याओं में समृद्ध, रूप-यौवन सम्पन्न युवतियों को (जोहवीति) स्वीकार किया करता है।

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥१२॥

भा०—हे (ऋतावरीः) ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान, न्याय और धन को वरण करने वाली प्रजाओ, सेनाओ! आप लोग (मुहूर्त्तम्) घड़ी भर (एवैः) अपनी उत्तम चालों से, गमनागमनादि विशेष व्यापारों से (मे) मेरे (सोम्याय वचसे) ऐश्वर्ययुक्त, राष्ट्र के हितकारी वचन के श्रवण करने और पालन करने के लिये (उप रमध्वम्) उपराम करो। (बृहती) बहुत बड़ी (मनीषा) मन के ऊपर वश करने वाली बुद्धिमती स्त्री (सिन्धुम् आ) सिन्धु के समान गम्भीर पुरुष को ही (अवस्युः) कामना करती हुई उसको (अच्छ) सन्मुख प्राप्त करके उसके साथ (प्र अह्वे) उत्तम रीति से गुणों, विद्याओं और शोभा में स्पर्धा करती है। ऐसे ही (कुशिकस्य) निष्कर्ष रूप विद्याओं के द्वारा उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष का (सूनुः) पुत्र के समान शिष्य ज्ञानवान् युवक भी (ताम् बृहतीं

अनीषां सिन्धुम्) उस बड़ी मनस्विनी महानदी के समान गंभीर, गति वाली, एवं गृहस्थ के बन्धनों में बांध लेने वाली स्त्री को ही (अवस्युः) प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ (प्र-अह्वे) उसको रूप-गुण-विद्या आदि में उत्तम स्पर्धा करे और उसे अपने समान जानकर आदरपूर्वक स्वीकार करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑रद॒द्वज्र॑बाहु॒रपा॑ह॒न्वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म्।
दे॒वो॑ऽनयत्सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) जैसे सूर्य या मेघ (वज्रबाहुः) विद्युत् को बाहु के समान आघातकारी शक्ति के समान धारण करके (नदीनां परिधिम्) नदियों को ऊपर तक परिपूर्ण करने वाले (वृत्रं अप अहन्) मेघ को आघात करता है और नदियों को (अरदत्) खन २ कर बना देता है (सुपाणिः सविता) उत्तम किरणों वाला मेघों का उत्पादक प्रेरक सूर्य ही (देवः) तेजस्वी और वृष्टि द्वारा जल देने वाला होता है (प्रसवे) उत्तम जलोत्सर्ग करने पर बड़ी २ नदियां चलती हैं। वैसे ही (वज्रबाहुः) शस्त्र को हाथ में धारण करने वाला क्षत्रिय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (अस्मान्) हमें समस्त प्रजाओं और सेनाओं को (अरदत्) लेखन करता, कर्षण या उत्पीड़न, शासन करता है, वही (नदीनां) समृद्ध प्रजाओं के या नाना प्रकार चिल्ल पुकार करने वाली प्रजाओं के (परिधिम्) सब ओर से रक्षक या घेरने वाले (वृत्रं) बढ़ते हुए शत्रु को भी (अप अहन्) मार कर दूर भगावे । वही (सुपाणिः) शुभ हाथों, उत्तम साधनों से युक्त (देवः) दानशील (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अस्मान्) हमको सन्मार्ग में (अनयत्) ले जावे। (तस्य प्रसवे) उसके शासन में (वयं) हम (उर्वीः) बहुत संख्या में समृद्ध होकर (यामः) चलें।

प्र॒वाच्यं॑ शश्व॒धा वी॒र्यं१॒॑ तदिन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ यदहिं॑ वि॒वृश्च॑त्।
वि वज्रे॑ण परि॒षदो॑ जघा॒नाय॒न्नापो॑ऽयन॑मि॒च्छमा॑नाः ॥ ७ ॥

भा०—(यद् अहिम् विवृश्चत्) सूर्य जैसे मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है वह उसका बड़ा भारी बल कार्य सदा ही उत्तम कहने योग्य है। वह (वज्रेण) विद्युत् द्वारा (परिषदः जघान) चारों तरफ स्थित मेघस्थ जलों को आघात करता और (आपः) जल आश्रय चाहते हुए (आयन्) नीचे आ गिरते हैं। वैसे ही (यत्) जो वीर पुरुष (अहिम्) अभिमुख स्थित शत्रु को (विवृश्चत्) विविध उपायों से काट गिराता है और (तत्) वह (इन्द्रस्य) इन्द्र ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती बलवान् पुरुष का (कर्म) काम और (वीर्यं) बल (शश्वधा) सदा काल ही (प्रवाच्यम्) सबसे उत्तम रूप से कथन करने योग्य है। वह वीर पुरुष ही (परिषदः) चारों ओर घेर के बैठी शत्रु-सेनाओं या छावनियों को (वज्रेण) शस्त्र बल से (वि जघान) विविध प्रकार से आघात करे और (अयनम् इच्छमानाः आपः) स्थान या शरण चाहने वाले प्रजागण (अयनम् इच्छमानाः) विशेष अधिकार चाहने वाले (आपः) समीपतम, आप्त पुरुष ही (आ अयन्) उन्नत पद प्राप्त करें।

एतद्वचो जरितुर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥

भा०—हे (जरितः) उपदेश करने हारे विद्वन्! (एतद् वचः) इस वचन को तू (मा अपि मृष्ठाः) कभी सहन मत कर (यत्) कि (ते) तेरे (उत्तरा युगानि) आने वाले वर्षों में (घोषान्) उद्घोषित घोषणाओं को (प्रति) पालन न करें। हे (कारो) क्रियाकुशल पुरुष! (उक्थेषु) उपदेशादि कर्मों में (नः) हमें, प्रजाओं और सेनाओं को (प्रति जुषस्व) अवश्य प्रेम कर और (नः) हमें कभी तू (पुरुषत्रा) पुरुषों के बीच (नि कः) निरादर मत कर। हम (नमः ते) तेरे प्रति आदर भाव दर्शाते हैं।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥

भा०—(ओ) हे (स्वसारः) अपने पति, पालक को स्वयं अपनी इच्छा से प्राप्त करने हारी उत्तम स्त्री जनो ! आप (कारवे) उत्तम क्रियाशील पुरुष के वचन (शृणोत) सुनो । वह (रथेन) वेग से चलने वाले (अनसा) शकट से (वः) तुमको (दूरात्) दूर देश से भी आकर (ययौ) प्राप्त होवे । आप लोग (सु नमध्वम्) उत्तम रीति से विनयपूर्वक झुक कर रहो । आप लोग (सुपाराः भवत) सुख से पालन करने योग्य होकर रहो और आप लोग विनय से (अधो अक्षाः) नीचे आंख किये हुए (स्रोत्याभिः) प्रवाहों से (सिन्धवः) बहने वाली नदियों के समान विनय से जाने वाली होकर रहो ।

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥१३॥

भा०—हे (कारो) क्रियाकुशल पुरुष ! हम प्रजागण, सैन्यदल (ते वचांसि) तेरे वचनों को (शृणवाम) सुनें । तू (अनसा रथेन) शकट और रथ से (दूरात्) दूर २ के देशों तक भी जाता और दूर से आ भी जाता है । (पीप्याना इव) जैसे खूब हृष्ट पुष्ट हुई (योषा) स्त्री (शश्वचै) आलिंगन करने के लिये (नि नंसै) प्रेम से झुकती है और जैसे (कन्या मर्याय इव) कमनीय कन्या पुरुष के (शश्वचै) आलिंगन के लिये लज्जाशील उत्सुकता से झुकती है और पुरुष के आलिंगन को उसके अनुकूल होकर सह लेती है वैसे ही हम लोग भी (ते) तेरे (शश्वचै) साथ सब प्रकार के सहयोग के लिये (नि नंसै) निरन्तर अनुकूल रहकर प्रेमपूर्वक साथ दें ।

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

भा०—(अङ्ग) हे अभिलाषा करने योग्य स्त्रि ! (भरताः) भरण पोषण करने में समर्थ पुरुष (यत्) जब (त्वा) तुझको (सम् तरेयुः) अच्छी प्रकार प्राप्त कर अपने मनोरथ में सफल हो जाते हैं तब (गव्यन्)

स्तुति, आशीष् वाणी कहता हुआ (इन्द्रः जूतः) विद्वान् पुरुषों से प्रेरित (ग्रामः) विद्वान् जनों का संघ (इषितः) इच्छुक होकर (अर्थात्) प्राप्त हो। (अह) और अनन्तर (सर्गतक्तः) जलों के समान सुप्रसन्न उत्तम सन्तति (अर्थात्) प्राप्त हो । मैं (यज्ञियानाम्) मैत्री भाव और सङ्ग करने के योग्य, उपादेय एवं अभिभावकों द्वारा देने योग्य (वः) तुम स्त्रियों की (सुमतिम्) शुभ मति को (आवृणे) अच्छी प्रकार स्वीकार करूं।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥

भा०—जैसे (गव्यवः) उत्तम भूमि के स्वामी (भरताः) प्रजा के पालक पुरुष (सम् अतारिषुः) नदियों को उत्तम उपाय से पार कर जाते हैं और जैसे (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नदीनां) उत्तम उपदेश करने वाली वाणियों के (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान को (सम् अभक्त) अच्छी प्रकार ग्रहण कर लेता है और जैसे (सुराधाः वक्षणाः) उत्तम रीति से बनाई गई जल बहाने वाली नदियां (इषयन्तीः) अन्न उत्पन्न करती हुई प्रजाओं को पुष्ट करती हैं और शीघ्रता से बहती हैं। वैसे ही (भरताः) पालन पोषण करने में समर्थ पुरुष (गव्यन्तः) अपने लिये योग्य क्षेत्र, स्त्री प्राप्त करके ही (सम् अतारिषु) इस संसार सागर के कर्त्तव्य-पथ से पार उतर जाते हैं। (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नदीनाम्) गुणों में सम्पन्न स्त्रियों की (सुमतिम्) धर्म बुद्धि को (सम् अभक्त) अच्छी प्रकार सेवन करता है। हे उत्तम स्त्रियो ! आप (इषयन्तीः) उत्तम अन्न बनाती हुई और (सुराधाः) उत्तम ऐश्वर्यवती होकर (प्र पिन्वध्वम्) अच्छी प्रकार बढ़ो बढ़ाओ ! (वक्षणाः आपृणध्वम्) अपने कोखों को सन्तानों से पूर्ण करो। (शीभम् यात) यथाशीघ्र पतियों को प्राप्त करो।

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
माऽदुष्कृतौ व्येनसाऽघ्न्यौ शूनमारताम् १३ ॥ १४ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्रियो! आप (आपः) उत्तम पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य और (शम्याः) कर्म कुशल होकर (योक्त्राणि) आचार्य द्वारा बांधी गयी मेखला आदि रज्जुओं का (उत् मुञ्चत) त्याग करो। (वः) आपका (ऊर्मिः) उत्साह, हृदय का उत्तम भाव (उत् हन्तु) ऊपर उठे। हे वर-वधू! आप दोनों (अदुष्कृता) दुष्टाचरण से रहित और (वि-एनसा) अपराधों से रहित शुद्ध चरित्र होकर (अघ्न्यौ) एक दूसरे को पीड़ित न करते हुए, सौंदर्य से (शूनम् आ अरताम्) सुख को प्राप्त करो। दुःख को (मा अरताम्) प्राप्त न होओ। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[३४] विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ११ त्रिष्टुप्। ४, ५, ७, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ६ विराट्त्रिष्टुप्। ३, ६, ८ भुरिक् पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे॥१॥

भा०—(पूर्भिद्) शत्रुनगरों को तोड़ने हारा (इन्द्रः) शत्रुनाशक सेनापति तेजस्वी होकर (अर्कैः) किरणों से अन्धकार के समान आदर-योग्य मन्त्रणाओं से (दासम्) अपने सेवक को (अतिरत्) बढ़ावे। वह (विदद्वसुः) बसने वाली प्रजाओं से बसे राष्ट्र को प्राप्त करके (दयमानः) प्रजा पर दया करता हुआ और (शत्रून् दयमानः) शत्रु जनों का नाश करता हुआ, (ब्रह्मजूतः) ब्राह्मण वर्ण और धनों से युक्त होकर (तन्वा) अपने शरीर और विस्तृत राष्ट्र बल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (भूरिदात्रः) बहुत अधिक दानशील और शत्रुनाशक होकर (उभे रोदसी) दोनों लोकों को सूर्य के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों का (आ अपृणात्) पालन करे।

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! मैं (अमृताय) चिरस्थायी सुख को लाभ करने के लिये (मखस्य) पूजा करने योग्य (तविषस्य) सर्वशक्तिमान् (ते) तेरी (जूतिम्) प्रेरणा और (वाचाम्) वाणी को (भूषन्) अलंकृत करता हुआ तुझको (इयर्मि) प्राप्त होता हूँ। हे प्रभो! (मानुषीणां) मननशील और (दैवीनां) दिव्य गुणों से युक्त (विशां) प्रजाओं और (क्षितीनाम्) राज्य में रहने वाली प्रजाओं में तू (पूर्वयावा) सबसे पूर्व आगे बढ़ने वाला पूर्वों के बनाये न्यायपथ पर चलने हारा है।

वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥ ३॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (शर्धनीतिः) सेना या दण्ड का सञ्चालक होकर (वृत्रम्) बढ़ते हुए विघ्नकारी को (अवृणोत्) दूर करे। वह (वर्पणीतिः) उत्तम पदार्थों को वश करने हारा (मायिनाम्) कपट मायावेशादि करने वालों की चाल को (प्र अमिनात्) अच्छी प्रकार नष्ट करे। (उशधक्) कान्ति या तेज से जलने वाला अग्नि जैसे (वनेषु) जंगलों में लग कर (वि अंसम्) विविध शाखा वाले वृक्ष को (अहन्) नाश कर देता है वैसे ही राजा भी (उशधक्) युद्ध की चाह करने वालों को भस्म कर देने वाला होकर (वनेषु) जंगलों में (व्यंसम्) विविध अंश, स्कन्ध अर्थात् स्कन्धावारों, छावनियों वाले शत्रु का (अहन्) विनाश करे और सूर्य जैसे (राम्याणाम्) रात्रियों के अन्धकारों के बीच से (धेनाः) धवल उषाओं या पक्षियों की वाणियों को प्रकट करता है वैसे ही वह (राम्याणाम्) रमणयोग्य प्रजाओं के बीच (धेनाः) अपनी शासनाज्ञाओं को (आविः अकृणोत्) प्रकट करे।

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय॥ ४॥

भा०—(इन्द्रः) वह वीर पुरुष (स्वर्षाः) सबको सुख साधन देता हुआ (अहानि जनयन्) दिनों को जैसे सूर्य उत्पन्न करता वैसे ही वह भी (अहानि) न नाश होने वाले सैन्यों को प्रकट करता हुआ (अभिष्टिः) सब ओर संगठन करता हुआ (उशिग्भिः) युद्ध की कामना वाली वीर सेनाओं से (पृतनाः) शत्रु सेनाओं को (जिगाय) विजय करे। वह (मनवे) मननशील राज्य की प्रजा के लाभ और रक्षा के लिये (अह्ना केतुम्) दिन के प्रकाशक सूर्य के समान ही (अह्नां केतुम्) बलवान् सैन्यों के ज्ञापक झण्डे के प्रति (प्र अरोचयत्) उनकी सबसे अधिक रुचि और प्रेम उत्पन्न करे और इस प्रकार (बृहते) बड़े भारी (रणाय) संग्राम विजय के लिये भी (ज्योतिः) प्रभाव को (अविन्दत्) प्राप्त करे।

इन्द्र॒स्तुजो॑ ब॒र्हणा॒ आ वि॑वेश नृ॒वद्दधा॑नो॒ नर्या॑ पु॒रूणि॑।
अचे॑तय॒द्धिय॑ इ॒मा ज॑रि॒त्रे प्रेमं वर्ण॑मति॒रच्छु॒क्रमा॑साम् ॥५॥१५॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुनाशक सेनापति (नृवत्) नायक के समान (पुरूणि) बहुत से (नर्या) नायकोचित सामर्थ्यों को धारण करता हुआ (तुजः) शत्रुओं को मारने में समर्थ, (बर्हणाः) बड़ी २ सेनाओं में भी (आ विवेश) उत्तम पद पर स्थित हो, [आङ् अध्यर्थः]। वह (जरित्रे) स्तुतिशील पुरुष की (इमाः) ये नाना प्रकार की (धियः) ज्ञान और कर्मों का (अचेतयत्) गुरु के समान ही ज्ञान करावे। वह (आसाम्) उनके (इमं) इस प्रकार (शुक्रं वर्णम्) उत्तम वर्ण और शीघ्र कार्य करने वाले योग्य कर्त्ता को (प्र अतिरत्) पार करे और बढ़ावे। इति पञ्चदशो वर्गः॥

म॒हो म॒हानि॑ पनयन्त्य॒स्येन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ सुकृ॑ता पु॒रूणि॑।
वृ॒जने॑न वृजि॒नान्त्सं पि॑पेष मा॒याभि॒र्दस्यूँ॑र॒भिभू॑त्योजाः ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) शत्रुदलनकारी वीर पुरुष के (पुरूणि) बहुत से (सुकृता) उत्तम रीति से किये गये, धार्मिक (महानि) बड़े २ (कर्म) करने योग्य कर्त्तव्यों और किये कार्यों की (पनयन्ति) प्रजाजन

प्रशंसा करते हैं। वह राजा (अभिभूत्योजाः) शत्रु पराजय करने वाले पराक्रम से युक्त वीर पुरुष (वृजनेन) बल से और (मायाभिः) विशेष २ अज्ञेय बुद्धि चातुर्यों से (वृजिनान्) पापाचारी (दस्यून्) प्रजानाशक दुष्ट पुरुषों को (सं पिपेष) एक साथ ही पीस दे।

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु-हन्ता पुरुष (देवेभ्यः) विद्वान् एवं ऐश्वर्य देने वाले प्रजाजनों के हित के लिये उनसे ही शिक्षा प्राप्त करके (सत्-पतिः) सज्जनों का पालक और (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा होकर (महायुधा) अपने महान् युद्ध बल से (वरिवः) बड़ा ऐश्वर्य (चकार) प्राप्त करे। (विप्राः कवयः) मेधावी पुरुष (उक्थेभिः) उत्तम २ प्रशंसनीय वचनों से (तानि) उन २ नाना कर्मों को (विवस्वतः सदने) सूर्य के समान तेजस्वी पद पर विराजने वाले उसको (गृणन्ति) उपदेश करें और उसके किये कर्मों की स्तुति या साधुवाद करें।

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (स्वः) सुख और दुष्टों का संतापकारी, प्रतापी और (देवीः अपः) दिव्य प्रजागणों को (ससान) धारण करता और अन्यों को देता है और (यः) जो (पृथिवीम् ससान) भूमि को अपने शासन से धारण करता और अन्यों में विभक्त करता है, (उत इमां द्याम्) और इस सबकी रक्षक राजसभा या भूमि को (ससान) धारण करता है उस (सत्रसहं) सत्य के बल पर और सत्वोद्वेग से शत्रुओं को पराजित करने वाले (वरेण्यम्) प्रजाओं द्वारा वरण करने और श्रेष्ठ मार्ग में प्रजा को ले चलने हारे (सहोदाम्) दुर्बलों को बल देने वाले (स्वः अपः देवीः च) तेज, विजयेच्छुक सेना और प्रजाओं के धारक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्

राजा को (अनु) प्राप्त करे। (धीरणासः) बुद्धिकौशल, कर्मकौशल से रक्षा करने वाले वीर और ध्यान स्तुति में रमण करने वाले बुद्धिमान् पुरुष (मदन्ति) हर्ष का अनुभव करते हैं।

स॒सानात्याँ॑ उ॒त सूर्यं॑ स॒सानेन्द्रः॑ स॒सान पु॒रु॒भोज॑सं॒ गाम्।
हि॒र॒ण्यय॑मु॒त भोगं॑ स॒सान ह॒त्वी दस्यू॒न्प्रार्यं॒ वर्ण॑मावत् ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अत्यान् ससान) अति वेग वाले अश्वों को श्रेणी में विभक्त करे। (उत) और वह (सूर्यम्) उनके प्रेरक, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ससान) पदों पर नियुक्त कर उनको वेतनादि प्रदान करे। वह (पुरुभोजसं गाम्) बहुत से प्रजाजनों का पालन करने वाली 'गौ' अर्थात् गाय आदि पशु, भूमि और वाणी का (ससान) विभाग एवं प्रदान करे। वह (हिरण्ययम्) सुवर्ण आदि से युक्त (भोगम्) उपभोग योग्य गृह, द्रव्य आदि सुख साधन को (ससान) नियमानुसार विभक्त करे। वह (दस्यून् हत्वी) प्रजा के नाशक को दण्डित करके (आर्यं वर्णम्) उत्तम गुण कर्म स्वभाव के श्रेष्ठ पुरुषों की (प्र आवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे।

इन्द्र॒ ओष॑धीरसनो॒दहा॑नि॒ वन॒स्पतीँ॑रसनोद॒न्तरि॑क्षम्।
बि॒भेद॑ ब॒लं नु॑नु॒दे विवा॒चोऽथा॑भवद्द॒मि॒ताभि॑क्रतूनाम् ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् पुरुष (अहानि) सभी दिनों (ओषधीः असनोत्) प्रजा में आरोग्य बढ़ाने के लिये औषधियों का वितरण करावे। वह (वनस्पतीः असनोत्) स्थान २ पर बड़े, छायादार, फलदार वृक्षों को लगावे। (अन्तरिक्षम् असनोत्) जल का प्रबन्ध करे, स्थान स्थान पर जलाशय, प्याऊ आदि बनवावे। (वलं बिभेद) बल अर्थात् सैन्य का विभाग करे, वह (विवाचः) विविध प्रकार की वाणियों और आज्ञाओं को (नुनुदे) दे, (अथ) और शत्रुओं का (दमिता) दमन करने वाला (अभवत्) हो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥१६

भा०—व्याख्या देखो (सू० ३३ । १७) ॥ इति षोडशो वर्गः ॥

[३५] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् पंक्तिः ॥ ५ स्वराट् पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (युज्यमाना) रथ में लगे (हरी) घोड़ों को वश करके (रथे आ तिष्ठ) रथ पर सवार हो । तू (वायुः न) वायु समान शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होकर (नः) हमारी (नियुतः) नियुक्त अश्वसेनाओं को वश करके (अच्छ) अच्छी प्रकार (याहि) युद्ध-यात्रा कर । तू (अभिसृष्टः) आक्रमण करता हुआ (अस्मे) हमारे (अन्धः) अन्नादि ऐश्वर्य को (पिबासि) पालन और उपभोग कर । हम यह सब (ते मदाय) तेरी प्रसन्नता के लिये तुझे (स्वाहा) उत्तम वाणी से (ररिम) प्रदान करें ।

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २ ॥

भा०—मैं (पुरुहूताय) बहुत सी प्रजाओं द्वारा बुलाने योग्य पुरुष के लिये (रथस्य) रथ को (हरी) वेग से ले जाने में समर्थ (सप्ती) उत्तम (अजिरा) वेग से जाने वाले अश्वों को (धूर्षु) रथ के धारक धुराओं में (उप युनज्मि) लगावें (यथा) जिससे वह रथ (द्रवत्) वेग से चले और वे दोनों अश्व (विश्वतः) सब प्रकार से (सम्भृतं) उत्तम युद्धादि साधनों से सुसज्जित (इमं यज्ञम्) इस उत्तम संग्राम और सुसंगति युक्त राष्ट्र

यज्ञ को (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता पुरुष को (चित्) उत्तम रीति से (उप आवहातः) ले जावें।

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः।
ग्रसेतामश्वा वि मुंचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलशालिन् ! हे (स्वधावः) उत्तम अन्न जल और आत्मशक्ति से सम्पन्न, मेघ के समान दानशील (त्वम्) तू (वृषणा) बलवान् (तपुष्पा) शत्रु संतापकारी शस्त्रों को पालन करने या शस्त्रघातों से रक्षा करने वाले दोनों अश्वों को (उप नयस्व उ) प्राप्त कर। (शोणा) रक्त वर्ण के दोनों (अश्वा) अश्वों को (इह वि मुच) यहां सुरक्षित स्थान में मुक्त कर और वे दोनों (ग्रसेतां) घास आदि सुख से खावें। तू भी (दिवे दिवे) दिन प्रतिदिन (धानाः) अग्नि से पकाये विशेष पुष्टिकारक अन्नों को (अद्धि) खा।

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सधमादे) एक साथ हर्षपूर्ण होने के समान संग्राम में मैं (ते) तेरे (आशू) शीघ्रगामी (सखाया) मित्रों के समान साथी (ब्रह्मयुजा) बहुत साधनैश्वर्य प्राप्त करने वाले (हरी) दो अश्वों को (ब्रह्मणा) जैसे अश्व घासादि से पुष्ट करके जोड़ा जाता है वैसे ही दो (हरी) सैन्य और राष्ट्र को सन्मार्ग पर ले जाने वाले दो प्रमुख पुरुषों को (ब्रह्मणा) बड़े ऐश्वर्य प्रदान द्वारा (युनज्मि) नियुक्त करता हूँ। तू (रथम्) रथ पर उसके समान रमण करने योग्य या वेग से जाने वाले राष्ट्र वा सैन्य बल पर (स्थिरं) स्थिरतापूर्वक और (सुखं) अनायास (अधितिष्ठन्) सध्यक्ष रूप से शासन करता हुआ (प्रजानन्) उत्तम ज्ञानवान् और (सोमम् विद्वान्) ऐश्वर्यप्राप्ति और राष्ट्र-शासन के कार्य को भलीभांति जानता हुआ (उप याहि) उसको प्राप्त कर।

९

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥१७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (अन्ये) अपने से भिन्न शत्रुगण (यजमानासः) मैत्री भाव करते हुए (ते) तेरे (वृषणा) बलवान् (वीतपृष्ठा) सुरक्षित पीठ वाले, कवचयुक्त (हरी) रथ के ले जाने वाले अश्वों और रथसैन्य के नायकों को भी (निरीरमन्) कभी निम्नश्रेणी के व्यसनों में न लुभा लेवें। तू (शश्वतः) चिरकाल से शत्रुता करने वालों को (अति आयाहि) अतिक्रमण करके आगे बढ़। (वयं) हम (ते) तेरे लिये (सुतेभि सोमैः) उत्पादित ऐश्वर्यों या निष्पन्न अभिषेकों द्वारा (अरं कृणवाम) खूब अन्नादि की वृद्धि करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य और शासन (तव) तेरा है। तू (अर्वाङ्) इसके नीचे, आश्रयरूप होकर (सुमनाः) शुभ चित्त और ज्ञान से युक्त होकर (अस्य) इसके (शश्वत्तमम्) अति स्थायी पद को (पाहि) सुरक्षित रख। (अस्मिन्) इस (यज्ञे) आदरणीय और सबके प्रति मित्रभाव से बरतने योग्य (बर्हिषि) वृद्धिशील परम आसन और प्रजामय राष्ट्र पर (निषद्य) स्थिरता से विराज कर (इमं) इसके (इन्दुम्) स्नेह से आर्द्र आहार के समान ही (जठरे) अपने उत्पादक शासन के भीतर (दधिष्व) धारण कर।

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम्।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥

भा०—जैसे सूर्य के समक्ष (बर्हिः) महान् आकाश या भूलोक (स्तीर्णम्) विस्तृत है। (सुतः सोमः) उस पर जल निषिक्त होता है।

सूर्य के (हरिभ्यां) प्रकाश ताप जलादि देने और लाने वाले किरणों से ही (अत्तवे) संसार के खाने योग्य (धानाः कृताः) अन्न, दाना उत्पन्न होते हैं, सूर्य का अपना स्थान दूर भी है तो वह (पुरुशाकाय) बहुत शक्तिशाली या बहुत से हरे शाकादि उत्पन्न करने वाला (वृष्णे मरुत्वते) वर्षणशील वायुओं का सञ्चालक होता है, वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा यह (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजामय राष्ट्रलोक (स्तीर्णम्) अति विस्तृत हो। (ते) तेरे लिये (सोमः) ऐश्वर्य वा अभिषेक भी (सुतः) किया जाय। (ते) तेरे (हरिभ्याम्) नायकों द्वारा (अत्तवे) उपभोग के लिये (धानाः) राष्ट्र को धारण करने वाले पुरुष वा पालने योग्य प्रजाएं भी (कृताः) अच्छी प्रकार सुशासित हों, (तदोकसे) उस उत्तम स्थान या गृह में निवास करने वाले (पुरुशाकाय) बहुत से सामर्थ्यों से सम्पन्न (वृष्णे) बलवान् राज्यप्रबन्धक (मरुत्वते) वायु तुल्य वीर सैनिकों के स्वामी (तुभ्यं) तेरे लिये ये (हवींषि) ग्रहण करने और देने योग्य अन्नादि ऐश्वर्य (राता) दिये हुए हैं।

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः॥८॥

भा०—(पर्वताः आपः गोभिः इमं मधुमन्तं अक्रन्) मेघ और जल धाराएं, नदियें जैसे भूमियों से मिलकर इस लोक को जल और अन्न से युक्त कर देते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! हे (ऋष्व) महान्! राजन्! (नरः) नायकगण (पर्वताः) पालन करने की शक्ति वाले और (आपः) आप्त पुरुष (तुभ्यम्) तेरे लिये, तेरे ही (इमं) इस राष्ट्र को (गोभिः) भूमियों, वाणियों द्वारा, (मधुमन्तम्) मधुर अन्न और ज्ञान से युक्त (सम् अक्रन्) सुसंस्कृत करें। तू (स्वाः) अपने (पथ्याः) हितकारी मार्गों को (विद्वान्) जानता हुआ (प्र जानन्) उत्तम ज्ञानवान् और (सुमनाः) उत्तम चित्त से युक्त होकर (तस्य पाहि) उस राष्ट्र का पालन कर।

याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥ ९ ॥

भा०—(यान् मरुतः) जिन वायु के समान बलवान् पुरुषों को तू (सोमे) अपने ऐश्वर्य की प्राप्ति और अभिषेक के कार्य (आ अभजः) अपने अधीन नियुक्त करे और जो (त्वाम् अवर्धन्) तुझे बढ़ावें वे (ते गणः) तेरा सहायक दल है (तेभिः) उनके साथ (सजोषाः) समान रूप से प्रीति-युक्त होकर (वावशानः) उनको खूब चाहता हुआ (अग्नेः जिह्वया) अग्नि की ज्वाला के समान अग्रणी नायक विद्वान् पुरुष की वाणी या सब ग्रस जाने वाली शक्ति से (इन्द्र) हे इन्द्र ! तू (सोमं पिब) राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर ।

इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! विद्वन् ! तू (स्वधया) अपने धारण और पोषण करने वाली शक्ति से (सुतस्य) निष्पन्न वा अभिषिक्त मुख्य पुरुष के और (अग्नेः वा) अग्नि के समान (जिह्वया) तीव्र वाणी से (सुतस्य पिब पाहि) प्राप्त हुए राज्य का पालन कर । हे (यजत्र) सत्कार और मैत्री योग्य पुरुष ! हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! तू (अध्वर्योः) अध्वर अर्थात् प्रजा के पीड़न से रहित योग्य पुरुष के (हस्तात्) हाथ और (होतुः) दानशील पुरुष के हाथ से (प्रयतं) अच्छी प्रकार सुसंयत (यज्ञं) और सुसंगत राष्ट्र की रक्षा कर और (हविषः) उत्तम अन्न को (जुषस्व) स्वीकार कर ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ११।१८

भा०—व्याख्या देखो सू० ३४ । ११ ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३६] विश्वामित्रः । १० घोर आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—

१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् पंक्तिः । स्वराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (शश्वत् शश्वत्) सदा ही (यादमानः) प्रार्थना किया जाकर (ऊतिभिः) रक्षाकारी पुरुषों और दुर्गादि रक्षा साधनों से (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) भरण-पोषण योग्य प्रजा को (सातये) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ही (सु धाः उ) अच्छी प्रकार, सुख-पूर्वक धारण-पोषण कर। तू (सुते सुते) राष्ट्र में उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ पर और प्रत्येक पदाभिषेक पर (महद्भिः) बड़े २ (वर्धनेभिः) वृद्धिकारक (कर्मभिः) कर्मों से (वावृधे) बढ़ और उनसे ही तू (सुश्रुतः) सुप्रसिद्ध (भूत्) हो।

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥ २ ॥

भा०—(प्रदिवः) उत्तम प्रकाश वाले, तेजस्वी, (सोमाः) सौम्य स्वभाव के शिष्यगण (विदानाः) ज्ञान लाभ करते हुए (इन्द्राय) अज्ञान-नाशक आचार्य की ही वृद्धि के लिये होते हैं (येभिः) जिनसे वह (विहायाः) विविध विद्याओं का दाता (वृषपर्वा) वर्षणशील मेघ के समान शिष्यों को पालन करने वाला गुरु ही (ऋभुः) सत्य ज्ञान से प्रकाशमान हो जाता है। हे (इन्द्र) विद्वन्! गुरो! (प्रयम्यमानान्) उत्तम रीति से यम-नियमों का पालने वाले विद्यार्थी जनों को (प्रतिगृभाय) अपने अधीन ले और (वृषधूतस्य) ज्ञानरूप जलों के सेचन करने वाले विद्वानों द्वारा अज्ञानों से रहित हुए (वृष्णः) वीर्यवान् शिष्य का (पिब) पालन कर।

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् आचार्य ! (प्रथमाः) पहले (उत) और (इमे) ये नये दोनों ही (सोमासः) सौम्यगुणयुक्त शिष्यजन (तव घ सुतासः) तेरे ही निश्चय से पुत्र के समान हैं। तू (पिब) उनका पालन कर और (वर्धस्व) शिष्य परम्परा से सन्तति से पिता के समान बढ़। हे (इन्द्र) विद्वन् ! (यथा) जैसे (पूर्व्यान् सोमान्) पूर्व के आये शिष्यों का तू (अपिबः) पालन करता रहा है। हे (पन्यो) उपदेष्टः ! (अद्य) आज तू (एव) वैसे ही (नवीयान् सोमान्) इन नये विद्यार्थिजनों को भी (पाहि) पालन कर।

महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४ ॥

भा०—(अमत्रः) शत्रुओं को पीड़ित करने वाला, (महान्) गुणों में महान्, (वृजने) दुःखदायी संकटों और अविद्यादि दोषों को दूर करने में (विरप्शी) अधीनों को विविध रूप से आज्ञा और उपदेश करने वाला पुरुष, (उग्रं) भयंकर (शवः) बल और (धृष्णुः) शत्रुपराजयकारी (ओजः) पराक्रम को (पत्यते) प्राप्त होता है। (यत्) जब (हर्यश्वम्) वेगवान् अश्वों के स्वामी को (सोमासः) ऐश्वर्य समूह और अभिषिक्त नायकगण (अमन्दन्) हर्षित करते हैं तब (एनं पृथिवी चन) समस्त पृथिवी, उसके निवासी भी (न अह विव्याच) उस तक नहीं पहुँचते।

महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन । इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(महान्) गुणों में महान् (उग्रः) बलवान् पुरुष (वीर्याय) वीर्य को बढ़ाने के लिये (वावृधे) और बढ़े, वह (वृषभः) बलवान्, ऐश्वर्यों

का दाता (काव्येन) विद्वानों के उपदेश किये शास्त्र से (सम् आचक्रे) अच्छी प्रकार सब कार्य सम्पन्न करे। वह (इन्द्रः) शत्रुहनन करने में समर्थ (भगः) सबके सेवा करने योग्य (वाजदाः) ज्ञान और बल को देने हारा हो। (अस्य) उसकी (गावः वाजदाः) गौएं दुग्धादि देने वाली, वाणियें ज्ञान देने वाली, भूमियें अन्न देने वाली (प्रजायन्ते) हों और (अस्य दक्षिणाः) उसकी ज्ञान, धन आदि दान-क्रियाएं भी (पूर्वीः) पूर्ण और (वाजदाः) ज्ञान, ऐश्वर्य देने वाली हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः॥६॥

भा०—(यथा) जैसे (सिन्धवः) जल (प्रसवम्) अपने उत्पादक मेघ या सूर्य को (प्र आयन्) प्राप्त होते हैं और (आपः) जल धाराएं (रथ्या इव) रथ में लगे अश्वों के समान ही (समुद्रं जग्मुः) वेग से बहते हुए समुद्र को प्राप्त होते हैं। (अतः चित्) इसी कारण से (इन्द्रः सदसः वरीयान्) सूर्य ही सबसे अधिक शक्तिशाली है। उसी के द्वारा (दुग्धः) दुहा गया या उत्पादित (अंशुः सोमः) सबके भोजनयोग्य खाद्य, ओषधिगण (ईम् पृणति) इस समस्त संसार को पालन करता है। वैसे ही (यत्) इसके (प्रसवं) उत्तम शासन को प्राप्त कर (सिन्धवः) वेग से जाने वाले अश्वसैन्य (प्र आयन्) आगे बढ़ते हैं और (आपः) आप्त, प्रजागण (समुद्रं) समुद्र के समान गम्भीर पुरुष को प्राप्त होते हैं। इसी कारण (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् पुरुष (सदसः वरीयान्) अपने सभाभवन से भी बहुत बड़ा है। (यद् दुग्धः अंशुः सोमः) जिस द्वारा दुहा या पूर्ण किया गया व्यापक ऐश्वर्य, सर्वोपभोग्य राष्ट्र (ईम् पृणति) इस समस्त प्रजागण को पालता है, या वह समस्त 'सोमः' ऐश्वर्य ही (ईम् पृणति) इस राजा को पूर्ण करे।

समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः।

अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥

भा०—(सिन्धवः) नदियें (समुद्रेण) समुद्र के साथ मिलकर (सोमं भरन्ति) जैसे उसमें जल भरती हैं और उसे पूर्ण करती हैं। वैसे ही (समुद्रेण) समुद्र के समान गम्भीर नायक पुरुष से मिलकर (यादमानाः) उससे ऐश्वर्य की याचना करते हुए (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को बढ़ाने के लिये (सु-सुतं) अच्छी प्रकार से पैदा किये ऐश्वर्य को (भरन्तः) प्राप्त करते हुए (हस्तिनः) सिद्धहस्त पुरुष (भरित्रैः) भरण पोषण करने के साधनों से (अंशुं दुहन्ति) सारयुक्त पदार्थ को पूर्ण करते हैं और (पवित्रैः मध्वः) जैसे अन्नों को छाजों से साफ किया जाता है और (धारया मध्वः) जैसे धारा से जलों को स्वच्छ किया जाता है वैसे ही (पवित्रैः) पवित्र आचरणों से और (धारया) उत्तम वाणी से (मध्वः) बलवान् पुरुषों को (पुनन्ति) पवित्र करें।

ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानाः समीं विव्याच सवना पुरूणि।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥८॥

भा०—(ह्रदाः इव सोमधानाः) जलाशय जैसे अपने भीतर जल रखते हैं, वैसे ही (कुक्षयः) मनुष्य की कोखें (सोमधानाः) सोम अर्थात् अन्नों को अपने भीतर रखती हैं उनके समान (कुक्षयः) इसी प्रकार सार भाग को रखने वाले जन वा कोश भी (सोमधानाः) ऐश्वर्य को धारण करने वाले हों। (यत् इन्द्रः) जो ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता विजिगीषु राजा (वृत्रं जघन्वान्) अपने बढ़ते हुए विघ्नकारी शत्रु को मारता हुआ (सोमं अवृणीत) ऐश्वर्य को अन्न के समान बलकारक रूप से प्राप्त करता है वह (पुरूणि प्रथमा सवना) बहुत से श्रेष्ठ और विस्तृत यशोजनक ऐश्वर्यों को (सं विव्याच ईम्) सब तरफ से अच्छी प्रकार सुरक्षित रूप से प्राप्त करे और (अन्ना) अन्नों के समान ही उन (अन्ना) उपभोग किये जाने पर भी न क्षीण होने वाले अक्षय ऐश्वर्यों को (वि आश) विविध प्रकार से उपभोग करे।

आ तू भ॑र॒ माकि॑रे॒तत्परि॑ ष्ठाद्वि॒द्मा हि त्वा॒ वसु॑पतिं॒ वसू॑नाम् ।
इन्द्र॒ यत्ते॒ माहि॑नं॒ दत्र॒मस्त्य॒स्मभ्यं॒ तद्ध॑र्यश्व॒ प्र य॑न्धि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (आ भर) ऐश्वर्य का संग्रह कर, और (तत्) तेरे इस ऐश्वर्य को (माकिः परि स्थात्) कोई भी न रोक रक्खे। (त्वा हि) तुझे ही (वसूनां वसुपतिं) समस्त ऐश्वर्यों और राष्ट्र में बसने वाले प्रजाओं का 'वसुपति', स्वामी (विद्म) जानते हैं। (यत् ते) जो तेरा (माहिनम्) आदरणीय (दत्रम् अस्ति) दान, शत्रुच्छेदन और प्रजा रक्षण का सामर्थ्य है तू (तत्) उसको हे (हर्यश्व) वेगवान् अश्व-सैन्यों के स्वामी! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (प्र यन्धि) अच्छी प्रकार प्रदान कर।

अ॒स्मे प्र य॑न्धि मघवन्नृजीषि॒न्निन्द्र॑ रा॒यो वि॒श्ववा॑रस्य॒ भूरेः॑ ।
अ॒स्मे श॒तं श॒रदो॑ जी॒वसे॑ धा अ॒स्मे वी॒राञ्छश्व॑त इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन् (ऋजीषिन्) सरल प्रवृत्ति वाले धार्मिक पुरुष! हे (शिप्रिन्) सुन्दर मुख नासिका वाले सौम्य पुरुष! हे तेजस्विन्! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! आप (भूरेः) बहुत से (विश्व-वारस्य) सबसे वरण योग्य, संकटों के वारक (रायः) ऐश्वर्य का (अस्मे प्रयन्धि) हमें अच्छी प्रकार दान और विभाग करो और (अस्मे) हमें (शतं शरदः) सौ बरसों तक (जीवसे) जीवन के लिये (धाः) धारण पोषण कर। या (अस्मे जीवसे शतं शरदः धाः) हमें जीने के लिये सौ बरस की आयु दे, और (अस्मे) (शश्वतः वीरान्) चिरस्थायी वीर पुरुष और वीर्यवान् पुत्र (धाः) प्रदान कर।

शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ ।
शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ सं॒जितं॒ धना॑नाम् ॥ ११ ॥ २० ॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्ववत्। सू० ३४। ११॥

[३७] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७ निचृद्गायत्री। २, ४—६, ८—१० गायत्री। ११ निचृदनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते! (त्वा) तुझको हम (वार्त्रहत्याय) विघ्नकारी या नगरों को घेरने वाले शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों के हनन करने और (पृतनासाह्याय) सेनाओं को पराजित करने में समर्थ (शवसे) बल को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये (आ वर्त्तयामसि) प्रवृत्त करते और सर्वत्र स्थापित करते हैं।

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्वी पुरुष! हे (शतक्रतो) अनेक उत्तम प्रज्ञाओं और कर्मों वाले! (वाघतः) जो वाणी द्वारा दोषों का नाश करने वाले और शास्त्रों और उत्तम उपायों को धारण करने वाले विद्वान् हैं (ते) वे (मनः) ज्ञान को और (चक्षुः) आंखों वा दर्शन शक्ति को (अर्वाचीन) अपने अभिमुख वृद्धिशील (कृण्वन्तु) करें।

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के उत्पादक! (शतक्रतो) बहुत सी प्रजाओं वाले! (अभिमातिषाह्ये) अभिमानी शत्रुओं को पराजय कराने वाले संग्राम में हम (ते) तेरे (नामानि) बहुत से सार्थक नामों को (विश्वाभिः गीर्भिः) सभी स्तुति रूप वाणियों से (ईमहे) सार्थक हुआ चाहते हैं।

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि।
इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

भा०—(पुरुस्तुतस्य) बहुतों से प्रशंसित (चर्षणीधृतः) प्रजाओं और शत्रुओं का पीड़न करने वाली सेनाओं के धारक (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष को हम (शतेन धामभिः) सैकड़ों नामों, सैकड़ों पदों से (महयामः) विभूषित करें।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे ।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(वृत्राय हन्तवे) विघ्नकारी, नगरादि को घेरने वाले, बढ़ते हुए शत्रु को दण्डित करने के लिये (भरेषु) संग्रामों और प्रजापोषणकारी कार्यों, यज्ञों में (वाजसातये) ऐश्वर्य के लाभ के लिये (पुरुहूतम्) बहुतों से प्रस्तुत (इन्द्रम्) शत्रुदल के विदारक पुरुष को मैं प्रजाजन (उपब्रुवे) चाहता हूँ। इत्येकविंशो वर्गः ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुदलनकर्तः! हे (शतक्रतो) सैकड़ों बुद्धियों वाले! (वृत्राय हन्तवे) शत्रु को दण्डित करने के लिये हम प्रजाजन (त्वाम् ईमहे) तुझ से प्रार्थना करते हैं। तू (वाजेषु) संग्रामों में (सासहिः) शत्रु-पराजय करने में समर्थ (भव) हो।

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (द्युम्नेषु) ऐश्वर्यों में (पृतनाज्ये) सेनाओं के द्वारा परस्पर संग्राम में (पृत्सु तूर्षु) सेनाओं और सामान्य प्रजाओं को परस्पर पीड़न के अवसरों में और (श्रवःसु च) अन्नादि प्रसिद्धि-कारक ऐश्वर्यों के निमित्त (अभिमातिषु) अभिमान करने और आक्रमण करने वाले शत्रुओं में तू (साक्ष्व) उन सबको परास्त कर।

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (शुष्मिन्तमम्) सबसे अधिक बलवान् (द्युम्निनं) यश और ऐश्वर्य वाले, (जागृविम्) सदा जागने वाले, अत्यन्त सावधान (सोमम्) अभिषिक्त पदाधिकारी, ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पाहि) रख। उसको रक्षार्थ नियुक्त कर।

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञावाले! (पञ्चसु जनेषु) तेरे पांचों जनों में (ते या इन्द्रियाणि) जो तेरे बल और ऐश्वर्य, तेरे सेवन योग्य प्रिय पदार्थ और शरीर में इन्द्रियों के समान राष्ट्र और परराष्ट्र के हिताहित देखने सुनने आदि का कार्य करने वाले शासक जन हैं हे (इन्द्र) वीर (ते) तेरे लिये (तानि आ वृणे) उनको मैं प्राप्त कराऊं। 'पञ्चजन'—चार वर्ण और पांचवें निषाद (सा०) अथवा—राज्यसेना, कोश, दूत, कर्म, न्यायशासन इन पदों पर नियुक्त पञ्चजन। (दया०)

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्।
उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन! तुझे (श्रवः) ज्ञान, यश और (बृहत्) भारी (द्युम्नं) ऐश्वर्य (अगन्) प्राप्त हों, तू (दुस्तरम् द्युम्नम्) अपार ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को (दधिष्व) धारण कर। हम भी (ते शुष्मं) तेरे शत्रुशोषणकारी बल को (उत् तिरामसि) उत्तम कोटि तक पहुँचा देवें।

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ११ ॥ २२ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! तू (अर्वावतः) समीप के और (परावतः) दूर के देश से (नः आगहि) हमें प्राप्त हो। हे (अद्रिवः) शत्रुनाशक आयुधधारी सैन्यों के स्वामिन्! (यः) जो भी (ते लोकः) तेरा स्थान है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! वीर! तू (ततः) वहां से ही (आ गहि) आ। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[३८] विश्वामित्रगोत्र वाचो वा पुत्रः प्रजापतिरुभौ वा विश्वामित्रो वा ऋषिः॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १० ॥ त्रिष्टुप्। २—५, ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ७ भुरिक् पंक्तिः। दशर्चं सूक्तम्॥

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः ॥१॥

भा०—(तष्टा इव मनीषाम्) चतुर शिल्पी जैसे अपने शिल्प में बुद्धि को प्रकाशित करता है और (पराणि प्रियाणि अभिमर्मृशत्) बहुत से उत्तम मनोहर पदार्थ बनाना विचारता है और जैसे (सुधुरः जिहानः वाजी अत्यः न) उत्तम रूप से रथ का धारक वेग से जाता हुआ अश्व (पराणि प्रियाणि अभिमर्मृशत्) दूर के प्रिय पदार्थों को प्राप्त करा देता है वैसे ही हे विद्वान् पुरुष! तू भी अपनी (मनीषाम्) मन की इच्छा शक्ति और प्रज्ञा को (दीधय) प्रकाशित कर और (सुधुरः) ज्ञान और अपने कार्यभार को धारण करता हुआ (जिहानः) आगे बढ़ता हुआ (वाजी) ऐश्वर्य से युक्त (अत्यः) निरन्तर आगे बढ़ने वाला होकर (पराणि) उत्कृष्ट (प्रियाणि) प्रिय हितों को (अभिमर्मृशत्) अच्छी प्रकार विचार करे और मैं (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिशाली होकर (संदृशे) तत्वार्थों को अच्छी प्रकार देखने के लिये (कवीन्) क्रान्तदर्शी पुरुषों को (इच्छामि) प्राप्त कर ज्ञान के प्रश्न करूं।

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।
इमा उ ते प्रण्यो३वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२॥

भा०—(कवीनां) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषों के (जनिम्) जन्मविषयक रहस्य को (इना पृच्छ) गुरुजनों से पूछे वे (मनोधृतः) मन को वश करने और ज्ञान को धारण करने वाले, (सुकृतः) उत्तम कर्मकर्त्ता लोग ही (धाम्) ज्ञानप्रकाश और अर्थ प्रकाशक वाणी को (तक्षत) प्रकट करते हैं। हे विद्वन्! आचार्य! (उत) और (इमाः) ये (ते) तेरे अधीन (प्रण्यः) उत्तम मार्ग पर स्वयं जाने और अन्यों को ले जाने वाली (वर्धमानाः) बढ़ने वाली (मनोवाताः) ज्ञान के द्वारा प्रेरित होकर उत्तम प्रजाएं वा सेनाएं (धर्मणि) सबके धारक पोषक राष्ट्र में और धर्म-मार्ग में (न) शीघ्र ही (ग्मन्) चलें।

नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३ ॥

भा०—(अत्र) इस लोक में विद्वान् लोग (सीम्) सब प्रकार के (गुह्या) छिपे विज्ञानों को (नि दधानाः) धारण करते हुए (क्षत्राय) अपने बल और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान, अध्यात्म में प्राण और अपान, राष्ट्र में स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों को (समञ्जन्) प्रकाशित करें। वे (मात्राभिः) सम्मान के साधनों से (सं ममिरे) सम्मान प्राप्त करें, (उर्वी) बड़े (मही) पूजनीय (सम्-ऋते) परस्पर सत्य व्यवहार से सम्बद्ध, उन दोनों को (संयेमुः) संयम में स्थिर करें, और (धायसे) एक दूसरे को पुष्ट करने के लिये (सं-धुः) एकत्र स्थापित करें।

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (स्वरोचिः) स्वयं प्रकाशमान सूर्य (श्रियः वसानः चरति) कान्तियों को धारण करता हुआ विचरता और (आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषन्) मध्य में विराजते को किरणें चारों ओर से भूषित करती हैं।

वैसे ही राजा, प्रतापी तेजस्वी वीर पुरुष (स्वरोचिः) स्वयं तेजस्वी (श्रियः) लक्ष्मियों, ऐश्वर्यों और अपने आश्रित प्रजा और भृत्य सेनाओं को (वसानः) आच्छादक वस्त्रों के समान शोभा और रक्षा के लिये धारण करता हुआ (चरति) विचरे और (आतिष्ठन्तं) राष्ट्र के ऊपर अध्यक्ष रूप से विराजते हुए को (विश्वे) सभी अधीनस्थ जन (परि अभूषन्) चारों ओर से उसको भूषित करें। (वृष्णः असुरस्य महत् नाम) जैसे वर्षणशील मेघ में बहुत अधिक जल हो और वह (विश्वरूपः) व्यापकरूप होकर (अमृतानि आतस्थौ) जलों को धारता है वैसे ही (वृष्णः) प्रजा पर ऐश्वर्यों और शत्रुजन पर आयुधों की वर्षा करने वाले (असुरस्य) दोषों और दुष्टों को उखाड़ने वाले और राष्ट्र के सञ्चालन करने वाले, बलवान् पुरुष का (तत् नाम महत्) अलौकिक शत्रुओं को नमाने, दमन करने का बहुत बड़ा सामर्थ्य हो। वह (विश्वरूपः) सब प्रकार के गौ आदि पशुओं का स्वामी होकर (अमृतानि) न मरने वाले, जीवित जागृत प्राणियों और सुखदायक ऐश्वर्यों पर (आतस्थौ) अधिष्ठित हो, उन पर शासन करे।

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे॥५॥२३॥

भा०—(पूर्वः वृषभः असूत) जल से पूर्ण मेघ जलधाराओं को उत्पन्न करता है। उसके सामर्थ्य से (शुरुधः) तृष्णादि को रोकने वाली जलधाराएं उत्पन्न होती हैं। ऐसे ही (पूर्वः) ऐश्वर्य से पूर्ण, एवं प्रजा का पालक (वृषभः) बलवान् (ज्यायान्) श्रेष्ठ होकर (असूत) शासन करे (अस्य) इसके शासन में (इमाः) ये (पूर्वीः) पूर्व, परम्परा से प्राप्त (शुरुधः) स्वयं वेग से बढ़कर शत्रुओं को रोकने वाली सेनाएं (सन्ति) हों। इस प्रकार राजा और प्रजा वा राजा और रानी दोनों ही (दिवः) कामनायोग्य (विदथस्य) प्राप्त करने योग्य राज्यैश्वर्य को (नपाता) न गिरने देने वाला, उसके रक्षक होकर (राजाना) अपने २ गुणों और

प्रतापों से एक दूसरे का मन-अनुरञ्जन करते हुए, तेजों से प्रकाशित होते हुए (धीभिः) धारण करने वाले कर्मों और बुद्धियों से (प्रदिवः) उत्तम कोटि के काम्य और प्रकाशयुक्त विज्ञानों वा ऐश्वर्यों और (क्षत्रं) बलवीर्य का (दधाथे) धारण करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजाना) उत्तम गुणों से प्रकाशमान, दिन रात्रि और सूर्य चन्द्र के समान उपकारक, राजा प्रजाजनो ! आप दोनों मिलकर (त्रीणि) तीन (पुरूणि) राष्ट्र के ऐश्वर्यों को पालने और पूर्ण करने वाली (विश्वानि) समस्त (सदांसि) सभास्थानों को (विदथे) ज्ञान और ऐश्वर्य के लाभ के लिये (परि भूषथः) ऐसे अलंकृत करो जैसे सूर्य, चन्द्र दोनों तीनों लोकों को अलंकृत करते हैं (अत्र) यहां इन सभाभवनों में (मनसा जगन्वान्) ज्ञान द्वारा आगे बढ़ता हुआ (व्रते) नियम में व्यवस्थित (वायु-केशान्) वायु में खुले अनावृत केशों वाले (गन्धर्वान्) वेदवाणी के धारक विद्वानों और भूमि के धारक शासकों को भी (अपश्यम्) देखूं।

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥

भा०—(अस्य वृषभस्य धेनोः तत् इत्) यह बरसने वाले सूर्य को ही रसपान कराने वाले इस मेघ का ही सामर्थ्य है कि उसके (नामभिः) जलों से कृषक लोग जैसे (गोः सक्म्यं ममिरे) पृथिवी से अन्न उत्पन्न करते हैं और भी (अन्यत् अन्यत्) नाना प्रकार के (असुर्यं) मेघ द्वारा उत्पन्न रूई, कपास आदि को (वसाना) पहनते हुए (मायिनः अस्मिन् रूपं नि ममिरे) बुद्धिमान् लोग इस लोक में नाना रूप या रुचिकर पदार्थ उत्पन्न करते हैं वैसे ही (अस्य) इस (वृषभस्य) बलवान् पुरुष की (धेनोः) वाणी रूप कामधेनु का ही (तद् इत् नु) वह अलौकिक सामर्थ्य है कि इसके

(नाभभिः) सबको नमाने वाले शासनों से (गोः) इस भूमि की प्रजाओं का (सकथं) संगठन (आ ममिरे) बनावें। वे (अन्यत् अन्यत्) भिन्न २ प्रकार के (असुर्यं) बलशाली पुरुषोचित राज्याधिकार को (वसानाः) धारण करते हुए (अस्मिन्) इस राष्ट्र में (मायिनः) बुद्धिमान् पुरुष (अन्यत् अन्यत् रूपम् नि ममिरे) नाना प्रकार के रूप या रुचिकर पदार्थों का निर्माण करते हैं।

तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥

भा०—(याम्) जिस (हिरण्ययीम्) सुवर्णादि धनैश्वर्ययुक्त (अमतिं) कान्ति को समस्त लोक (अशिश्रेत्) सेवन करता है (तत् इत् नु) वह सब निश्चय (मे सवितुः) मुझ सूर्य के समान तेजस्वी, सबके उत्पादक, शासकस्वरूप (मे) मेरी हो। उसको (नकिः) कोई और प्राप्त न कर सके और जैसे (योषा जनिमानि वव्रे) स्त्री उत्पन्न सन्तानों को स्वीकार करती और वस्त्रादि से ढांपती है। मैं सूर्य समान तेजस्वी पुरुष (सुस्तुती) उत्तम स्तुति या उपदेश से (विश्वमिन्वे) समस्त विश्व को अन्नादि से संतुष्ट करने वाले (रोदसी) सूर्य भूमि के समान स्त्री और पुरुषों को (आ वव्रे) आवरण करूं। शिष्य प्रजा पुत्रादि रूप से वरण करूं।

युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम्।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥

भा०—हे मित्र और वरुण! परस्पर स्नेही और एक दूसरे की रक्षा करने वाले! स्त्री पुरुषो! राजा प्रजावर्गो! (युवं) तुम दोनों (प्रत्नस्य) पूर्व से चले आये (महः) पूजनीय परमेश्वर के बतलाये धर्म की (साधथः) साधना करो (यत्) जिससे (दैवी स्वस्तिः) परमेश्वर और विद्वानों द्वारा सुख शान्ति हो। आप दोनों (नः) हमारे (परिस्यातम्) रक्षक रूप में इर्द गिर्द और कार्यों के ऊपर निरीक्षक रूप से रहो। (गोपाजिह्वस्य) भूमि

१०

वेद और वेदवाणी की रक्षा करने वाली जिह्वा अर्थात् वाणी या आज्ञा को धारण करने वाले (तस्थुषः) स्थित (मायिनः) बुद्धिमान पुरुष के (विरूपा कृतानि) विविध प्रकार के किये कर्मों और बनाये संसार के पदार्थों को (विश्वे मायिनः पश्यन्ति) सभी बुद्धिमान् देखते हैं।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥१०॥२४॥

भा०—व्याख्या देखो ३३। २२॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[३९] विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ६ विराट्त्रिष्टुप्।
३—७ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ८ भुरिक् पंक्तिः॥ नवर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य॥१॥

भा०—जैसे (वच्यमाना) उत्तम वचनों से प्रशंसित स्त्री (पतिं) पति को प्राप्त होती और उसी के गुणवाद करती है, वैसे ही (स्तोमतष्टा) स्तुति-मन्त्रों द्वारा सु-अलंकृत (वच्यमाना) मुख में उच्चारण करने योग्य (मतिः) स्तुति और प्रज्ञा (अच्छ) अपने लक्ष्यभूत (पतिम्) सर्वपालक, स्वामी परमेश्वर को (जिगाति) प्राप्त होती है। (या) जो (विदथे जागृविः) पति लाभ के निमित्त उत्सुक, जागृत प्रियतमा के समान (विदथे) लक्ष्य रूप प्रभु की प्राप्ति और ज्ञान के निमित्त (शस्यमाना) गुरु द्वारा उपदेश की जाती है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! (यत् ते जायते तस्य विद्धि) जैसे जो बाद में अपनी हो जाती है उत्तम पुरुष उसी को पत्नी रूप से प्राप्त करता है, वैसे ही हे स्वामिन्! (ते यत् जायते) तेरे ही गुण वर्णन के लिये जो स्तुति और मति (हृदः) हृदय से हो जाती है (तस्य विद्धि) तू उसे स्वीकार कर।

दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना।

भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥ २ ॥

भा०—जैसे स्त्री (दिवः चित्) पति की कामना से (आजायमाना) पूर्व विद्वानों से संस्कृत होकर 'जाया' हो जाती है और वह (शस्यमाना) पति के गुणों के सम्बन्ध में सखियों द्वारा कही गयी (विदथे जागृविः) पति को प्राप्त करने के निमित्त, जागती-सी रहती है, वह जैसे (अर्जुना भद्रा वस्त्राणि) कल्याणकारक सुन्दर वस्त्रों को धारण करती है और वह (सनजा) दानपूर्वक दूसरे की होकर भी (पित्र्या) विवाहकर्त्ता के वा स्व पिता माता की हितकारिणी और (धीः) विवाहकर्त्ता के द्वारा धारण पोषण करने योग्य हो जाती है। वैसे ही (पूर्व्या) हमसे पूर्व के विद्वानों से प्रकट हुई। (दिवः चित्) सूर्य से उषा के समान, ज्ञानप्रकाश से (आजायमाना) सब प्रकार से प्रकट होती हुई (विदथे) इष्ट देव के प्राप्त करने के निमित्त वा यज्ञ में (वि शस्यमाना) स्तुति की जाती हुई (भद्रा) कल्याणकारक, (अर्जुना) दोषरहित (वस्त्रादि) आच्छादक छन्दों को धारण करती हुई (सनजा) सनातन पुरुष से उत्पन्न हुई (पित्र्या) माता पिता गुरुजनों में स्थित (सा इयं) वह यह (धीः) धारण करने योग्य वाणी और सन्मति (अस्मे) हमें प्राप्त हो।

यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (यमसूः यमा असूत) जोड़ा उत्पन्न करने वाली स्त्री जोड़ा पैदा करती है (चित्) वैसे ही (यमसूः) संयमवान् ब्रह्मचारियों को उत्पन्न करने और विद्याधाराओं से स्नान कराने वाला आचार्य भी (अत्र) इस लोक में (यमा) पापमार्गों से उपरत जितेन्द्रिय नर-नारियों को (असूत) उत्पन्न करे। वह आचार्य (जिह्वायाः) सब ज्ञानों को अपने भीतर रखने वाली वेदवाणी के (अग्रं) सबसे उन्नत अंश को भी (पतत्) पहुंचे। (हि) वह (आ अस्थात्) सबसे ऊपर विराजे। नर और नारी

दोनों वर्ग (तमोहना) सूर्य चन्द्र वा दिन रात्रि के समान अज्ञान अन्धकार के नाशक होकर (तपुषः बुध्ने आ इता) तप के मूल आश्रय पर स्थिर होकर आगे बढ़ें। वे दोनों वर्ग बाद में (जाता) विद्या के गर्भ से स्नातक रूप से उत्पन्न होकर (मिथुना वपूंषि) जोड़े २ शरीरों को (सचेते) संगत करें। अर्थात् विद्वान् होकर बाद में गृहस्थ होकर रहें।

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥

भा०—(अस्माकं) हमारे बीच में से (ये पितरः) जो पालक, माता पिता के समान पूज्य पुरुष (गोषु) भूमियों को प्राप्त करने के लिये (योधाः) युद्ध करने हारे हैं (एषां) उनकी (निन्दिता) निन्दा करने वाला (नकिः) कोई न हो। (एषां) इनका (दृंहिता) दृढ़ करने वाला, शत्रुहन्ता वीर राजा ही (माहिनावान्) बड़े भारी बल सामर्थ्य का स्वामी हो और वह (दंसनावान्) उत्तम कर्म करने हारा, कुशल पुरुष ही उनके (गोत्राणि) वंशों को (उत् ससृजे) उन्नत करे।

सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५॥२५

भा०—(यत्र) जिस आश्रम में (नवग्वैः) नवीन २ ज्ञान वाणी में गति करने वाले, नवागत, (सखिभिः) एक समान नाम वाले व्रतधारी ब्रह्मचारियों सहित (अभिज्ञु, सत्वभिः) आगे को गोड़े किये पालोथी लगाकर बैठने वाले वा (सत्वभिः) ज्ञान और बल वीर्यशाली, व्रतधारी ब्रह्मचारियों से संगत होकर (इन्द्रा) अध्यात्म या प्रत्यक्ष तत्व को देखने वाला या विद्यार्थियों को, काष्ठों को अग्नि के समान दीप्त करने वाला आचार्य (गाः अनु ग्मन्) ज्ञानवाणियों का अनुगमन या अभ्यास करता रहता है (तत्) उसी आश्रम में वह विद्वान् (दशभिः दशग्वैः) दशों इन्द्रिय सामर्थ्यों से युक्त, दशों प्राणों से युक्त होकर (तमसि) अन्धकार

में (क्षियन्तं) विद्यमान (सूर्यं) सूर्य के समान उज्ज्वल (सत्यं) सत्य ज्ञान और सत्य बल को (विवेद) प्राप्त करे । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (उस्रियायाम्) दूध आदि उत्पन्न करने वाली गौ के समान ही अन्नादि उत्पन्न करने वाली भूमि में (सम्भृतम्) अच्छी प्रकार धारण किये हुए (मधु) अन्नादि सामग्री को और (पद्वत् शफवत्) पैरों और खुरों वाले पशु धन को भी (विवेद) प्राप्त करे और वह (गोः) भूमि के (गुहाहितम्) गुप्त स्थानों में रक्खे (गुह्य) गोपन योग्य (गूढम्) गुप्त धन को (अप्सु) आप्त जनों में (नमे) प्रदान करे और उसको (दक्षिणावान्) कुशल पुरुषों का स्वामी (दक्षिणे हस्ते) दांये बलशाली हाथ, अर्थात् प्रबल पुरुष के अधीन (दधे) सुरक्षित रक्खे ।

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥ ७ ॥

भा०—जैसे सूर्य उत्पन्न होकर (तमसः ज्योतिः वृणीते) अन्धकार से प्रकाश को पृथक् कर देता है वैसे ही (विजानन्) विशेष ज्ञानवान् पुरुष सदा (तमसः) अन्धकार से (ज्योतिः) प्रकाश को, अविद्या से विद्या को (वृणीत) सदा पृथक् कर, वरण करता रहे । हम लोग (दुरितात् आरे) दुष्टाचरण से पृथक् और (अभीके) भय रहित सत्याचरण में (स्याम) लगे रहें । हे (सोमपाः) ज्ञान और ऐश्वर्य को पान और पालन करने हारे हे (सोमवृद्ध) ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध और धनाध्यक्ष ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (पुरुतमस्य) बहुतों में श्रेष्ठ, बहुतों से शत्रुओं और विघ्नों के नाशक, (कारोः) क्रियाकुशल पुरुष की (इमाः गिरः) इन उपदेश वाणियों को (जुषस्व) प्रेम से ग्रहण कर ।

ज्योति॒र्य॒ज्ञाय॒ रोद॑सी॒ अनु॑ ष्यादा॒रे स्या॑म दुरि॒तस्य॒ भूरेः॑ ।
भूरि॑ चि॒द्धि तु॒ज॒तो मर्त्य॑स्य सुपा॒रासो॑ वसवो ब॒र्हणा॑वत् ॥ ८ ॥

भा०—(रोदसी अनु यज्ञाय ज्योतिः) परस्पर संगति के लिये जैसे आकाश और भूमि के बीच सूर्य रूप ज्योति है वैसे ही (यज्ञाय) परस्पर मिलने, और एक दूसरे का आदर सत्कार और ईश्वर-पूजा के निमित्त भी (रोदसी) राजा प्रजा, पुरुष और स्त्री दोनों को (ज्योतिः अनु स्यात्) ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो । हम लोग (भूरेः) बहुत से (दुरितात्) पापादि से (आरे स्याम) दूर ही रहें । हे (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनो ! (बर्हणावत्) वृद्धि से युक्त (भूरि) बहुत से ऐश्वर्य को (तुजतः मर्त्यस्य) पालन करने वाले मनुष्य के आप लोग भी (सुपारासः) उत्तम रीति से पालन करने वाले होकर रहो ।

शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ ।
शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ सं॒जितं॒ धना॑नाम् ॥९॥२६॥२

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३ । २२ ॥ इति षड्विंशो वर्गः । इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

[४०] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६—९ गायत्री । ५ निचृद्गायत्री । नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र॑ त्वा वृष॒भं व॒यं सु॒ते सोमे॑ हवामहे ।
स पा॑हि॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् हम (त्वा वृषभं) सुख ऐश्वर्यों के वर्षक, बलवान् तुझको, (सुते सोमे) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य, राज्य पर शासन के लिये (हवामहे) प्रार्थना करते हैं । (सः) वह तू (मध्वः) आनन्दप्रद, मधुर,

(अन्धसः) प्राणधारक खाने योग्य अन्न आदि ओषधिवर्ग का (पाहि) ओषधिरस के समान पालन और उपभोग कर।

इन्द्र॑ क्रतु॒विदं॑ सु॒तं सोमं॑ हर्य पुरुष्टुत।
पिबा वृ॑षस्व॒ तातृ॑पिम् ॥ २ ॥

भा०—हे (पुरुस्तुत इन्द्र) बहुतों से प्रशंसित! तू (सुतं) उत्पन्न हुए (क्रतुविदं) क्रियाशक्ति और बुद्धि को प्राप्त कराने वाले (सोमं) ओषधि अन्नादि को (हर्यं) चाह और (तातृपिम्) तृप्त करने वाले प्रिय अन्नादि का रस (पिब) पान कर (वृषस्व) और बलवान् हो।

इन्द्र॒ प्र णो॑ धि॒तावा॑नं य॒ज्ञं विश्वे॑भिर्दे॒वेभिः॑।
ति॒रः स्त॑वान विश्पते ॥ ३ ॥

भा०—हे (स्तवान) स्तुतियोग्य! हे (विश्पते) प्रजाओं के पालक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमारे (धितावानम्) अपने विभक्त करने योग्य धन को सुरक्षित रखने वाले, (यज्ञं) परस्पर के मेल, व्यवहार और मैत्रीभाव, संगठन को (विश्वेभिः देवेभिः) सब विद्वानों और वीर विजयेच्छुक पुरुषों द्वारा (तिरः) बढ़ा।

इन्द्र॒ सोमाः॑ सु॒ता इ॒मे तव॒ प्र य॑न्ति सत्पते।
क्षयं॑ च॒न्द्रास॒ इन्द॑वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सत्-पते) सज्जनों के पालक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे) ये (चन्द्रासः) प्रजा के मनोरञ्जन करने हारे, (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् हृदयों में प्रजा के प्रति स्नेहभाव रखने वाले (सोमाः) सौम्यगुण युक्त, प्रजा प्रेरक, (सुताः) नाना पदों पर अभिषिक्त हैं वे (तव क्षयं प्रयन्ति) तेरे ही स्थान पर उत्तम रीति से कार्य करते हैं।

द॒धि॒ष्वा ज॒ठरे॑ सु॒तं सोम॑मिन्द्र॒ वरे॑ण्यम्।
तव॑ द्यु॒क्षास॒ इन्द॑वः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (वरेण्यम्) श्रेष्ठ, (सुतम् सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य और शासन को, उत्तम उत्पन्न अन्नादि को (जठरे) उदर और अपने शासन में (दधिष्व) रख, ये (इन्दवः) ऐश्वर्य (तव) तेरे ही (द्युक्षासः) प्रकाश या तेज को धारण करने वाले हैं, या ये चमकने वाले ऐश्वर्य तेरे ही हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥ ६॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा प्रार्थना करने योग्य! तू (नः) हमारे (सुतं) उत्पादित ऐश्वर्यमय राष्ट्र की (पाहि) रक्षा कर। तू (मधोः) जलवत् ज्ञान की (धाराभिः) धाराओं से (अज्यसे) अभिषेक किया जाता है, उससे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यशः) यह सब यश, अन्नादि ऐश्वर्य (त्वादातम्) तुझ से ही सुशोभित हो।

भि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता।
पीत्वी सोमस्य वावृधे॥ ७॥

भा०—(वनिनः द्युम्नानि) जैसे किरणों से युक्त तेज सूर्य को प्राप्त हैं वैसे ही (वनिनः) सेवन योग्य ऐश्वर्य के स्वामी पुरुष के (द्युम्नानि) ऐश्वर्य (इन्द्रं) भूमि के धारक और शत्रुनाशक पुरुष को ही (अक्षिता) अक्षय होकर (सचन्ते) प्राप्त होते हैं और वह (सोमस्य पीत्वी) उस ऐश्वर्य वा राष्ट्र का पालन और उपभोग करके (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त करता है।

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्।
इमा जुषस्व नो गिरः॥ ८॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नकारी को मारने वाले! तू (नः) हमारे (अर्वावतः) समीप के और (परावतः च) दूर के देश से भी (नः आगहि) हमें प्राप्त हो। तू (नः) हमारी (इमाः गिरः जुषस्व) इन प्रार्थनाओं को स्वीकार कर।

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जब तू (अर्वावतं परावतं च अन्तरा) समीप और दूर के बीच के प्रदेश में भी (हूयसे) आदर से बुलाया जावे (ततः) वहां से तू (इह आगहि) यहां आ। इति द्वितीयो वर्गः॥

[४१] विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ यवमध्या गायत्री। २, ३, ५, ६ गायत्री। ४, ७, ८ निचृद्गायत्री ६ विराड्गायत्री॥ षड्जः स्वरः॥

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये
हरिभ्यां याह्यद्रिवः॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्रिवः) मेघों सहित सूर्य के समान तेजस्विन्! शस्त्रधारी सैन्य वा अखण्ड बल, शासन के स्वामिन्! तू (हुवानः) आदरपूर्वक बुलाया जाकर (सोमपीतये) अन्नों के पान समान ऐश्वर्यों के उपभोग, पालन के निमित्त (हरिभ्याम्) अपने दो अश्वों सहित (मद्र्यक्) मुझ प्रजाजन को लक्ष्य कर (आ याहि) आ, प्राप्त हो।

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक्।
अयुज्रन्प्रातरद्रयः॥ २ ॥

भा०—(ऋत्वियः होता) जैसे ऋतु अनुसार यज्ञ करने वाला होता, यज्ञकर्ता (आनुषक् बर्हिः स्तृणाति) साथ २ लगे कुशा बिछा देता है वैसे ही (सत्तः) उच्च सिंहासन पर विराजता हुआ राष्ट्र को अपने अधीन लेवे, (होता) अधीनस्थ भृत्यों को वेतनादि देने वाला पुरुष भी (ऋत्वियः) उत्तम 'ऋतु' अर्थात् ज्ञान, राजसभा के सदस्यों और राजभ्राताओं के बीच में मुख्य होकर (आनुषक्) अनुकूल होकर (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजाजनों वा राष्ट्र को (तिस्तिरे) विस्तृत करे। (प्रातः) प्रारम्भ में ही (अद्रयः) पर्वत के समान अविचल, सिद्धहस्त पुरुष (अयुज्रन्) नियुक्त हों।

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! हे (ब्रह्मवाहः) धन-ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को धारण करने हारे राजन् ! (इमा) ये (ब्रह्म) नाना धन और ऐश्वर्य (क्रियन्ते) किये जाते हैं, तू (बर्हिः) इस वृद्धिशील प्रजाजन पर (आसीद) अध्यक्ष होकर विराज । तू (पुरः) समक्ष रक्खे (पुरोडाशम्) आदर-पूर्वक प्रदान किये हुए राष्ट्र को (वीहि) प्राप्त हो और अन्न के समान उसका उपभोग, पथ्यापथ्य का विचार करके कर ।

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवन और स्तुति, प्रार्थना करने योग्य ! हे (वृत्रहन्) विघ्नकारी, शत्रुओं के नाश करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें और हमारे (एषु) इन (सवनेषु) अभिषेकों, ऐश्वर्यों और (स्तोमेषु) स्तुतियों और स्तुति योग्य (उक्थेषु) उत्तम वचनों और स्तुत्य कार्यों में (रारन्धि) स्वयं रमण कर और हमें रमा ।

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(मतयः) मननशील लोग (सोमपाम्) ऐश्वर्यों के रक्षक, (उरुं) महान्, (शवसस्पतिम्) बलों के पालक (इन्द्रं) शत्रुहन्ता पुरुष को (वत्सं मातरः न) बच्चे को जैसे माता गौएं (रिहन्ति) प्रेम में चाटती हैं वैसे ही (रिहन्ति) प्रेम करके सुखी होते हैं । इति तृतीयो वर्गः ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह तू (महे राधसे) बड़े भारी धनैश्वर्य लाभ करने

और कार्य साधने के लिये तू अपने आप (अन्धसः) अन्न आदि से (मन्दस्व) तृप्ति लाभ कर। तू (स्तोतारं) उपदेशप्रद विद्वानों को (निदे न करः) निन्दा वा निन्दनीय कार्य के लिये मत कर, उसे उसमें मत लगा।

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वयम्) हम (हविष्मन्तः) लेने और देने योग्य अन्नादि पदार्थों से युक्त होकर (त्वायवः) तेरी ही कामना करते हुए तेरी (जरामहे) स्तुति करते हैं। हे (वसो) सबको बसाने वाले (उत) और (त्वाम्) तू (अस्मयुः) हमारा प्रिय हो।

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ्याहि।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

भा०—हे (हरिप्रिय) अश्वों के प्रिय! (अस्मत्) हमें (आरे मा वि मुमुचः) दूर वा पास त्याग मत कर। (अर्वाङ् याहि) तू आगे बढ़। हे ऐश्वर्यवन्! हे (स्वधावः) स्वयं राष्ट्र को धारण करने की शक्ति के स्वामिन्! तू (इह मत्स्व) इसी राष्ट्र में हर्षित हो।

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (केशिना) केशों वाले दो अश्व (त्वां) तुझ (अर्वाञ्चम्) आगे बढ़ने वाले को (सुखे रथे) सुखपूर्वक जाने वाले रथ में लेकर (बर्हिः आसदे) प्रजा पर उत्तम शासनार्थ विराजने के लिये (वहताम्) ले चलें। वे दोनो (घृतस्नू) तेज को प्रसारित करने वाले हों। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४२] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ गायत्री। २, ३, ८, ९ निचृद्गायत्री। नवर्चं सूक्तम् ॥

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ सोम॑मिन्द्र॒ गवा॑शिरम् ।
हरि॑भ्यां॒ यस्ते॑ अस्म॒युः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमारे (गवाशिरम्) गौओं, जीवों के खाने योग्य (सुतम् सोमम्) उत्पन्न 'सोम' अर्थात् ओषधियों के समान (गवाशिरम्) प्रजाओं द्वारा उपभोग योग्य वा 'गौ' पृथिवी में स्थित (सुतम् सोमम्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य को (यः ते) जो तेरा (अस्मयुः) हमें चाहने वाला, हमारा हितकारी रथ आदि है उससे (हरिभ्यां) वेगवान् अश्वों से (नः आगहि) हमें प्राप्त हो ।

तमि॑न्द्र॒ मद॒मा ग॑हि बर्हिः॒ष्ठां ग्राव॑भिः सु॒तम् ।
कु॒विन्न्व॑स्य तृ॒ष्णवः॑ ॥ २ ॥

भा०—जैसे (ग्रावभिः सुतम्) मेघों से सींचे गये (बर्हिष्ठां) आकाशस्थ (मदं सुतम्) सर्व हर्षजनक जल को सूर्य पुनः आकर्षण कर लेता है और उस जल से बहुत से जन्तुगण तृप्त होते हैं वैसे ही (ग्रावभिः सुतम्) मेघों से सींचे गये (मदं तम्) सबके तृप्तिकारक वा हर्षजनक उस (सुतम्) उत्पन्न अन्न को यह सूर्य प्राप्त हो और (अस्य कुवित् नु तृष्णवः) इस अन्न से भी बहुत से तृप्त होते हैं ।

इन्द्र॑मि॒त्था गिरो॒ ममाच्छा॑गुरिषि॒ता इ॒तः ।
आ॒वृते॒ सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—(मम) मेरी (इत्था) इस प्रकार की (गिराः) उत्तम वाणियां (इषिताः) कही गईं (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् वा विद्वान् पुरुष को (आवृते) उत्तम रीति से सुरक्षित, आच्छादित स्थान, राष्ट्र या पुर में (सोमपीतये) शिष्य और राष्ट्रैश्वर्य की रक्षा के लिये (अच्छ अगुः) प्राप्त हों ।

इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॒ स्तोमै॑रि॒ह ह॑वामहे ।
उ॒क्थेभिः॑ कु॒विदा॒गम॑त् ॥ ४ ॥

भा०—हम (उक्थेभिः स्तोमैः) प्रशंसनीय उत्तम वचनों से (सोमस्य पीतये) ओषधि रस, अन्नादि के पान उपभोग आदि के लिये (इन्द्रं) उत्तम ऐश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुष को (हवामहे) बुलावें। वह (इह) हमारे पास (कुविद् आगमत्) बहुत २ बार आवे।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो।

जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वाजिनीवसो) बलवती सेना और अन्नवती भूमि के बसाने वाले! राजन्! (वाजिनीवसो) उषा को बसाने वाला सूर्य जैसे जलों को (जठरे) अन्तरिक्ष में धारण कर लेता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे) ये (सुताः) उत्पन्न (सोमाः) ऐश्वर्ययुक्त अन्नादि पदार्थ हैं। (तान्) उनको हे (शतक्रतो) कर्म और ज्ञानों वाले! तू (जठरे) अपने उदर में और वश से (दधिष्व) धारण कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे।

अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्! हे आज्ञापक! हम (त्वा) तुझको (वाजेषु) संग्रामों में शत्रुओं को (धृषं) पराजित करने वाला और (धनञ्जयं) धन को जीत कर लाने वाला ही (विद्म) जानते हैं। (अध) और इसी कारण (ते) तुझसे हम (सुम्नम्) सुखजनक धन की (ईमहे) याचना करते हैं।

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब।

आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वृषभिः सुतम्) मेघों से उत्पन्न जल (गवाशिरं) किरणों से ताप द्वारा गृहीत और (यवाशिरं) यव आदि अन्नों से ग्रहण किया जाता है उस जल को जैसे सूर्य पान करता है वैसे ही तू भी (वृषभिः सुतम्) बलवान् शासकों से उत्पन्न किये (गवाशिरं)

गौ, भूमि, मेघ से प्रजाओं द्वारा उपयुक्त और (यवाशिरम्) यव अर्थात् शत्रुओं के दूर करने वाले वीर सैन्यों से उपभोग्य (इमं) इस (नः) हमारे (सुतम्) उत्पन्न ऐश्वर्य, या राष्ट्र को (आगत्य) प्राप्त करके (पिब) पालन कर ।

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! आचार्य ! (तुभ्य इत् स्वे ओक्ये) तेरे अपने स्थान, आश्रम में ही मैं इस (सोमं) शिष्य को (पीतये) ब्रह्मचर्य के पालन के लिये (चोदामि) प्रेरित करता हूँ । (एषः) वह (ते हृदि) तेरे हृदय में (रारन्तु) रमण करे, तेरे चित्त के अनुकूल होकर रहे ।

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन् ! हम (कुशिकासः) सार-ग्रहण में कुशल (अवस्यवः) तेरे अधीन रक्षा, व्रत और प्रजा के पालन की कामना करते हुए (सुतस्य पीतये) उत्पन्न पुत्र वा शिष्य के पालन और पुत्रवत् प्रजा-युक्त राष्ट्र के रक्षण और ऐश्वर्य के लिये (प्रत्नं त्वां) पुरातन अनुभववृद्ध तुझको लोग (हवामहे) बुलाते हैं । इति षष्ठो वर्गः ॥

[४३] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् पंक्तिः । २, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७, ८ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ याह्यर्वाङुप बन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१॥

भा०—हे राजन् ! तू (बन्धुरेष्ठाः) बन्धनयुक्त प्रेम सम्बन्ध से स्थित रहकर (प्रदिवः अनु) अपने से उत्तम ज्ञान वाले पुरुष के अधीन (तव इत्) अपने ही (सोमपेयम्) ऐश्वर्य भोग को (उप आयाहि) प्राप्त हो

और (प्रिया सखाया) ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग दो प्रिय मित्रों को (बर्हिः) सामान्य प्रजा के समीप (उप विमुच) विविध कार्यों में नियुक्त कर। (इमे) ये (हव्यवाहः) अन्नादि पदार्थों के धारक प्रजाजन (त्वाम्) तुझको (उप हवन्ते) पुकारते हैं। क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः ॥ श० १।३।४।१० ॥ बर्हिः विश् प्रजाएं हैं और राजा के दो प्रिय सखा क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ग हैं। उनको न्याय और शासन के लिये प्रजाओं पर नियुक्त करे।

आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम्।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन्! तू (पूर्वीः) अपने से पूर्व और समृद्धियों से पूर्ण (चर्षणीः) प्रजाजनों को (अति आयाहि) अतिक्रमण करके प्राप्त कर, तू (अर्यः) स्वामी होकर (हरिभ्याम्) प्रजा के दुःखों को हरने वाले बलवान् पुरुषों द्वारा (नः) हमारे (आशिषः) उत्तम आशा सूचक वचनों को (उप आयाहि) प्राप्त कर। (सख्यम्) तेरी मित्रता को (जुषाणाः) प्रेम से सेवन करते हुए (स्तोमतष्टाः) उत्तम स्तुति-वचनों से परिष्कृत (इमा हि) ये (मतयः) मननशील विदुषी प्रजाएं और उनकी सभाएं (त्वा हवन्ते) तुझे पुकारें, आदरपूर्वक आमन्त्रित करें।

आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम्।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन्! तू (सजोषाः) प्रेमसहित (तूयम्) शीघ्र ही (हरिभिः) प्रजा के कष्टों को हरने वाले, तेजस्वी विद्वानों सहित (नः) हमारे (नमोवृधम्) अन्नादि पदार्थ तथा शत्रु को नमाने वाले सैन्यबल के वर्धक (यज्ञं) यज्ञ, संगतियुक्त राष्ट्र के प्रबन्ध को (आयाहि) प्राप्त हो। (घृतप्रयाः) जल और पुष्टिकारक अन्नादि से सत्कार करने हारा (अहं हि) मैं प्रजागण (मधुनां) मधुर पदार्थ अन्न और जलों के द्वारा

(सधमादे) एक साथ तृप्त होने के सहभोज आदि के समय (त्वा) तुझको (मतिभिः) मननशील पुरुषों सहित (आजोहवीमि) आदर से बुलाता हूँ ।

आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (एता हरी) बलवान् अश्व जैसे रथ या रथ में विराजते स्वामी को स्थान से स्थान पर पहुंचाते हैं वैसे ही (एता) विद्याओं में पारंगत या तेरे (आ-इता) अधीन आये हुए (वृषणा) वीर्यसेचन में समर्थ, जवान (हरी) एक दूसरे के बल को प्राप्त करने वाले, (सखाया) परस्पर मित्र (सुधुरा) गृहस्थादि भार को धारण करने वाले (सु-अङ्गा) उत्तम अंगों वाले स्त्री और पुरुष वर्ग (त्वाम् आवहातः) तुझे शासक रूप से प्राप्त करें और (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (सखा) सबका मित्र होकर (धानावत् सवनं) धारणयोग्य प्रजाओं से युक्त ऐश्वर्य का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (सख्युः) अपने मित्र प्रजागण के (वन्दनानि) स्तुति वचनों, उपदेशों और अभिवादन वचनों को (शृणवत्) सुना करे ।

कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५

भा०—हे विद्वन् ! तू (मां) मुझको (कुवित्) बड़े भारी (जनस्य) जनसमुदाय का (गोपां करसे) रक्षक बना । (ऋजीषिन्) सरल धर्म-मार्ग में चलने और चलाने हारे हे (मघवन्) धनसम्पन्न ! तू मुझको (कुवित् राजानं) बहुतों का राजा (करसे) बना । (मा) मुझको (ऋषिं) मन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वान् और (कुवित् सुतस्य पपिवांसं) बहुत से उत्पन्न पुत्र, ऐश्वर्य और राष्ट्र का पालक और भोक्ता बना और (मे) मुझे (कुवित्) बड़े (अमृतस्य) अमृतस्वरूप सुखद (वस्वः) सबमें बसने वाले आत्मा और ऐश्वर्य का (शिक्षाः) दान कर ।

आ त्वा बृहन्तो हर॑यो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (बृहन्तः) बड़े २ (हरयः) कार्यभार उठाने वाले विद्वान् पुरुष (युजानाः) योग या मनोयोग द्वारा समाहित चित्त होकर (सधमादः) एक साथ (त्वा) तुझको (अर्वाग) सबके सन्मुख (आवहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें। (ये) जो (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी (वृषभस्य) बलवान् पुरुष के (द्विता) दोनों ओर रहकर (मूराः) शत्रुओं को मारते हुए (सु-संमृष्टासः) उत्तम प्रकार से शुद्ध एवं विचारवान् होकर (आताः ऋञ्जन्ति) सब दिशाओं में जाते हैं और उनको विजय करते हैं।

इन्द्र पिब वृष॑धूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥ ७ ॥

भा०—(वृषधूतस्य वृष्णः) जैसे बलिष्ठ वायु सञ्चालित वर्षणशील मेघ या वृष्टिकारक जल को सूर्य पी लेता है (यं श्येनः आ जभार) जिसको शुभ्र किरणगण आहरण कर लेता है, जिसके बल पर वह सूर्य (कृष्टीः) जलों के आकर्षण करने वाले अपने किरणों को भूतल पर गिराता है, जिसके हर्ष या बल पर सूर्य (गोत्राः) पर्वतों को ढांपता, मेघों को दूर कर देता और भूमि को जल से और ओषधियों से ढंक देता है उस जल को सूर्य ही खैंचता है। वैसे ही हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन् ! शत्रुहन्तः ! तू (वृषधूतस्य) बलवान् पुरुषों को कंपाने वाले (वृष्णः) बलशाली प्रबल राष्ट्र का (पिब) पालन कर। (यं) जिसको (श्येनः) बाज पक्षी के समान शत्रुओं पर वेग से जा पड़ने वाला सेनानायक (उशते ते) राज्य की कामना करने वाले तेरे लिये (उत् जभार) शत्रु हाथों से उद्धार करता है और (यस्य मदे) जिसके प्राप्त कर लेने के हर्ष में (कृष्टीः) कर्षण या पीड़न करने योग्य शत्रु मनुष्यों को (प्र च्यावयसि) अपने पद से गिरा देता है

अथवा जिसके दमन करने में राजा (कृष्टीः) किसान प्रजाओं को (प्र) उत्तम रीति से (च्यावयसि) उत्साहित करता है और (यस्य मदे) जिसके लाभ के आनन्द होने पर (गोत्रा) भूमि को (अप ववर्थ) परास्त करता है या, (गोत्रा) पर्वत के समान स्थिर शत्रुओं को उखाड़ फेंकता है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥८॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३। मं० २२ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[४४] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती। ३, ५ बृहती। ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अयं) यह (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन (हर्यतः ते) कामनाशील तेरे लिये (हर्यतः अस्तु) स्वयं भी कमनीय वा कामना योग्य (अस्तु) हो जिसको (हरिभिः) वेगवान् अश्वादि साधनों तथा दुःखादि हरने वाले विद्वान् पुरुषों ने तेरे लिये (सुतः) उत्पन्न कर तुझे प्राप्त कराया है। ऐश्वर्यवन्! तू उसको (जुषाणः) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता हुआ (हरिभिः) उन वेगवान् अश्वों के समान धुरन्धर विद्वानों और शासकों के सहित (नः आगहि) हमें प्राप्त हो और (रथम्) रमण योग्य रथ के समान (हरितम्) मनोहर राष्ट्र पर (आतिष्ठ) शासन कर।

हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः।
विद्वाँश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥

भा०—हे (हर्यन्) अर्थ आदि की कामना वाले पुरुष! (उषसम् अर्चयः) प्रार्थनाशील पुरुष जैसे उषःकाल को प्राप्त कर अर्चना करता है वैसे ही तू भी (उषसम्) गुणों में कमनीय सहचारी को प्राप्त कर,

उसका आदर कर। हे राजन्! तू राज्य की कामना वाला होकर (उषसम्) उषा अर्थात् राष्ट्र को वश करने वाली तेजस्विनी और शत्रु को भस्म कर देने वाली सैन्यशक्ति का (अर्चयः) आदर कर। हे (हर्यन्) कामनाशील स्त्री तू भी (सूर्यम्) सूर्य समान तेजस्वी एवं सन्तानोत्पादन में समर्थ पुरुष को (अरोचयः) हृदय से चाह। हे (हर्यन्) ऐश्वर्य की कामना वाले प्रजाजन तुम भी (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी राजा को (अरोचयः) सदा चाहो। हे (हर्यश्व) वेगवान् अश्वादि साधनों से युक्त राजन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् और (विद्वान्) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारा होकर (विश्वा श्रियः अभि) समस्त लक्ष्मियों और सम्पदाओं तथा आश्रित प्रजाओं को प्राप्त करके (वर्धसे) वृद्धि को प्राप्त हो।

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम्।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत्॥ ३॥

भा०—(ययोः) जिन (हरितोः) हरणशील आकाश और पृथिवी दोनों के (अन्तः) बीच में (हरिः) जल हरण करने वाला सूर्य या वायु (भूरिभोजनं) बहुत सा खाद्य पदार्थ उत्पन्न करता और (चरन्) स्वयं विचरता है, उन दोनों को (इन्द्रः) सूर्य स्वयं (हरिधायसं) किरणों को धारण करने वाली (द्याम्) आकाश को और (हरिवर्पसम्) हरित वनस्पतियों से हरे रूप वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को भी वह (अधारयत्) स्वयं धारण करता है। वैसे ही (हरिः) शत्रुओं से धनादि अपहरण करने वाला प्रतापी पुरुष (ययोः अन्तः) जिन राष्ट्रों में (चरत्) स्वयं विचरता है उन दोनों के (भूरि भोजनम्) बहुत से ऐश्वर्य और पालन कार्यों को भी धारण करता है। इस प्रकार वह (हरिधायसं द्याम्) वेगवान् अश्वों को धारण करने वाली सेना या विद्वानों की राजसभा और (हरिवर्पसम्) सस्यादि से हरित रूप वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को भी (अधारयत्) धारण करे।

जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम्।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४ ॥

भा०—(हरितः वृषा) पीतवर्ण वा नीलवर्ण का, वर्षण करने वाला सूर्य जैसे (जज्ञानः) उदय होकर (रोचनं विश्वम् आभाति) समस्त चमकाकर विश्व को प्रकाशित करता है। वैसे ही (जज्ञानः) प्रकट होकर (हरितः) सबके मनों को हरने वाला, (वृषा) बलवान् पुरुष (विश्वं रोचनम् आभाति) समस्त रुचिकर राष्ट्र में चमकता है। वह (हर्यश्वः) सूर्य की किरणों के समान तीव्र वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी (हरितम्) दीप्तियुक्त, (हरिम्) शत्रुओं के प्राणों को हरण करने वाले (वज्रम्) शत्रुओं को दूर हटाने वाले, (आयुधं) सब ओर प्रहार करने वाले शस्त्र बल और सैन्य को (बाह्वोः) बाहुओं में हथियार के समान प्रजाजन को (धत्त) धारण करे।

इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम्।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्र) सूर्य जैसे (हर्यन्तम्) कान्तियुक्त (अर्जुनं) श्वेत (वज्रं) अन्धकार के निवारक (शुक्रैः अभवृतम्) किरणों से युक्त प्रकाश को (अप अवृणोत्) प्रकट करता है और जैसे (इन्द्रः) तीव्र वायु (हर्यन्तं) अति दीप्तियुक्त (अर्जुनं) पीड़ित करने वाले (शुक्रैः अभीवृतं) जलों से घिरे हुए (वज्रं) विद्युत् रूप वज्र को (अप अवृणोत्) प्रकट करता है वैसे ही (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (हर्यन्तं) प्रदीप्त (अर्जुनं) शत्रुहिंसक (शुक्रैः) शीघ्र कार्य करने वाले सैनिकों से व्याप्त (वज्रं) शत्रुनिवारक सैन्य को (अप अवृणोत्) प्रकट करे और जैसे (हरिभिः) किरणों और (अद्रिभिः) मेघों से सूर्य (सुतम्) सेचन करने वाले जल को प्रकट करता है वैसे ही राजा (हरिभिः) गतिशील शत्रु के धनों और प्रजा के मनों को हरने वाले अश्वसैन्यों और (अद्रिभिः) पर्वतों के समान

अचल तथा मेघों के समान शस्त्रवर्षी सैन्यों से (सुतम्) उत्पन्न ऐश्वर्यों को (अप अवृणोत्) प्रकट करे । वह (हरिभिः गाः) सूर्य जैसे जल-हरणशील किरणों से नीचे गिरने वाली जलधाराओं को बरसाता है वैसे ही राजा भी (हरिभिः) उत्तम मनुष्यों से (गाः) भूमियों को (आजत) शासन करे । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[४५] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः राजन् ! सेनापते ! सूर्य जैसे (मयूररोमभिः) मोर के रोओं के समान चित्र विचित्र हरित नील किरणों से व्यापता है वैसे ही तू भी (मयूररोमभिः हरिभिः) मोर के पंखों के समान नीली हरी कलगिएं लगाये (मन्द्रैः) मन्द गति से जाने वाले, (हरिभिः) वेगवान् मनुष्यों सहित (आ याहि) आगे बढ़ । (पाशिनः विं न) जालिये जैसे पक्षी को फांस लेते हैं वैसे ही (त्वा) तुझको (केचित्) कोई भी शत्रुजन (मा नि यमन्) न बांध लें । तू (तान्) उनको (धन्व इव) उत्तम धनुर्धर के समान (अति इहि) पार कर ।

वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥ २ ॥

भा०—जैसे (इन्द्र) सूर्य या वायु (वृत्रखादः) किरणों या वेग से मेघ को छिन्न भिन्न करता है (वलं-रुजः) मेघ पर आघात करता है, (अपां दर्मः) जलों को विदीर्ण करता है और (अजः) नीचे फेंकता है, (अभिस्वरः) जैसे विद्युत् या सूर्य तेजस्वी, गर्जनशील होकर (दृढा चित् आ रुजति) दृढ़ पर्वतों या घने मेघों को भी भेद डालता है वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा (वृत्रखादः) अपने विघ्नकारी, बाधक

शत्रुओं को खा जाने, या अन्न जल के समान अपने बल में ही पचा जाने वाला (बलं-रुजः) घेरने वाले शत्रु प्रबल आक्रमण से तोड़ फोड़ देने वाला, (पुरां दर्मः) शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाला, (अपाम् अजः) पास आये शत्रुओं को उखाड़ने और अपनी आप्त सेनाओं और प्रजाओं को सन्मार्ग में चलाने हारा, (हर्योः) दो घोड़ों के (रथस्य) रथ पर (स्थाता) बैठने वाला, उत्तम रथी, (अभिस्वरः) तेजस्वी, गर्जनावान्, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (दृढाचित्) दृढ से दृढ शत्रु का भी (आरुजः) अच्छी प्रकार संहार कर।

गुम्भीराँ उदुधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा ईव।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या ईवाशत ॥ ३ ॥

भा०—जैसे मेघ या सूर्य (सु-गो-पाः) उत्तम किरणों या भूमियों का पालक होकर वृष्टि जलों से (गम्भीरान् उदधीन्) गहरे समुद्रों को भी पुष्ट करता है वैसे ही (सुगोपाः) भूमि का पालक होकर तू (गम्भी-रान् पुष्यसि) गम्भीर पुरुषों को पुष्ट कर, और (क्रतुं पुष्यसि) अपने कर्म सामर्थ्य और बुद्धि को भी पुष्ट कर (सुगोपाः) उत्तम गौओं का रक्षक या उत्तम संगोप्ता व्रत पालक और यज्ञपालक पुरुष (क्रतुं पुष्यति) यज्ञ कर्म की रक्षा करता है, वैसे ही तू भी (सुगोपाः) इन्द्रियों का, वाणी का उत्तम पालक होकर (क्रतुम् प्रज्ञां पुष्यसि) अपने बल बुद्धि सामर्थ्य को पुष्ट कर, बढ़ा। जैसे (सुगोपाः) उत्तम गोपाल (गाः इव) गौओं को पुष्ट करता है वैसे ही तू भी (सुगोपाः) उत्तम भूमियों और प्रजाजनों का रक्षक होकर उन प्रजाओं, वाणियों और आज्ञाओं को पुष्ट कर। (धेनवः यवसं) जैसे गौएं चारे को (प्र अश्नन्ति) खाती हैं और जैसे (कुल्याः इव ह्रदं) छोटी २ जलधाराएं बड़े जलाशय को व्याप लेती हैं वैसे ही हे प्रजाजनो ! तुम भी अपने ऐश्वर्ययुक्त स्वामी को (प्र आशत) अच्छी प्रकार उपयोग करो और उसके पराक्रम को धारण करो।

आ नस्तुजं र॒यिं भ॑रांशं न प्रतिजान॒ते ।
वृ॒क्षं प॒क्वं फल॑म॒ङ्कीव॑ धूनु॒हीन्द्र॑ सम्पार॑णं॒ वसु॑ ॥ ४ ॥

भा०—जैसे पिता (प्रति जानते) व्यवहार जानने वाले बालिग पुत्र को उसका (अंशं न) अंश, जायदाद का भाग देता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू (नः) हमें और हममें से (प्रति जानते) तेरे कार्य करने की प्रतिज्ञा करने वाले को (तुजं रयिं आ भर) पालक ऐश्वर्य दान कर। (अङ्की इव) टेढ़ा अंकुशाकार बांस लिये हुए मनुष्य जैसे (वृक्षं) वृक्ष को और (फलं पक्वं) पके फल को (धुनोति) कंपा २ कर झाड़ लेता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू भी (वृक्षं) काट गिराने योग्य शत्रु को (धुनुहि) भारी सैन्यबल से कंपा और (पक्वं फलम् धुनुहि) परिपक्व परिणाम, धनैश्वर्य ले ले और उसे परास्त करके तू (सम्पारणं) प्रजा को उत्तम रीति से पालन करने वाले (वसु) ऐश्वर्य को (धुनुहि) ले ले।

स्व॒युरि॑न्द्र स्व॒राळ॑सि स्मद्दि॑ष्टिः॒ स्वय॑शस्तरः ।
स वा॑वृधा॒न ओज॑सा पुरुष्टुत॒ भवा॑ नः सु॒श्रव॑स्तमः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (स्वयुः) धन की कामना वाला, उसका स्वामी और (स्वराट् असि) 'स्व' अर्थात् अपने ही ऐश्वर्य और कर्म सामर्थ्य से प्रकाशित होने वाला है। (स्मद्दिष्टिः) कल्याणमार्ग का उपदेष्टा और (स्वयसस्तरः) बहुत अधिक यश, कीर्त्ति और अन्न से समृद्ध एवं उससे प्रजा को भी दुःखों से तारने वाला है (सः) वह तू हे (पुरुस्तुत) बहुतसी प्रशंसा के योग्य, (ओजसा वावृधानः) पराक्रम से बढ़ता हुआ (नः) हमारे बीच (सुश्रवस्तमः) उत्तम कीर्त्ति और ज्ञान में सबसे अधिक यशस्वी और बहुश्रुत (भव) हो। इति नवमो वर्गः ॥

[४६] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युध्मस्य॑ ते वृष॒भस्य॑ स्व॒राज॑ उ॒ग्रस्य॒ यूनः॒ स्थवि॑रस्य॒ घृष्वेः॑ ।
अजू॑र्य॒तो व॒ज्रिणो॑ वी॒र्या॒३॑णीन्द्र॑ श्रु॒तस्य॑ मह॒तो म॒हानि॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (युध्मस्य) युद्ध करने हारे, (वृषभस्य) प्रजाओं और शत्रुओं पर ऐश्वर्यों और शस्त्रों को मेघ के समान वर्षण करने वाले (स्वराजः) स्वयं तेज से प्रकाशमान और अपनों का मनोरञ्जन करने वाले (उग्रस्य) भयङ्कर, (यूनः) युवा, बलवान् (स्थविरस्य) ज्ञानादि में वृद्ध, अति स्थिर (घृष्वेः) शत्रुओं के साथ संघर्ष करने वाले, (अजूर्यतः) कभी हीनबल न होने वाले (वज्रिणः) शस्त्रास्त्र बल के स्वामी, (श्रुतस्य) जगत्-प्रसिद्ध (महतः) महान् शक्तिशाली (ते) तेरे (महानि वीर्याणि) बड़े २ बल के वीरोचित कार्य हों।

म॒हाँ अ॑सि महिष॒ वृष्ण्ये॑भिर्धन॒स्पृदु॑ग्र॒ सह॑मानो अ॒न्यान् ।
एको॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॒ स यो॒धया॑ च क्ष॒यया॑ च॒ जना॑न् ॥ २ ॥

भा०—हे (महिष) पूजनीय! तू (धनस्पृत्) ऐश्वर्यों का सेवन करने वाला, हे (उग्र) उत्कट! तू (वृष्ण्येभिः) बलवान् पुरुषों, वीर्यों, पराक्रमों से (अन्यान् सहमानः) शत्रुजनों को पराजित करता हुआ (महान् असि) सबसे बड़ा होकर रह। तू (एकः) अकेला, अद्वितीय (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त राष्ट्र का राजा हो! (सः) वह तू (जनान् योधय च) मनुष्यों को शत्रुओं से लड़ा और (क्षयय च) उनको अपने राष्ट्र में बसा, वा शत्रुओं का क्षय कर।

प्र मात्रा॑भी रिरिचे॒ रोच॑मानः॒ प्र दे॒वेभि॑र्वि॒श्वतो॒ अप्र॑तीतः ।
प्र म॒ज्मना॑ दि॒व इन्द्रः॑ पृथि॒व्याः प्रोरोर्म॒हो अ॒न्तरि॑क्षादृजी॒षी ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (देवेभिः) विजय की कामना करने वाले वीरों और विद्वानों सहित (रोचमानः) प्रकाशित होता हुआ (मात्राभिः) विशेष २ परिमाणों या राष्ट्र निर्मात्री प्रजाओं से (प्र रिरिचे)

सबसे अधिक बढ़े। वह (विश्वतः) सर्वत्र (अप्रति-इतः) किसी से भी पराजित न होकर (मज्महाना) शत्रुओं को डुबा देने वाले बल से (दिवः) सूर्य से भी (प्र रिरिचे) बढ़ जावे, (पृथिव्याः प्र रिरिचे) पृथिवी से भी बढ़े और वह (ऋजीषी) धार्मिक स्वभाव वाला होकर (उरोः महः अन्तरिक्षात्) बड़े भारी अन्तरिक्ष या वायु से भी (प्र रिरिचे) अधिक सामर्थ्यवान् हो जावे।

उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम्।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥४॥

भा०—(स्रवतः समुद्रं न) बहती नदियां जैसे समुद्र में (आविशन्ति) प्रवेश करती हैं वैसे ही (सुतासः सोमासः) अभिषिक्त शासक जन, (प्रदिवि) विजय कामना की पूर्त्ति के लिये (उरुं) महान्, (गभीरं) गूढ़ आशय वाले गम्भीर, (जनुषा) जन्म से (अभि उग्रम्) सब प्रकार से उग्र, अभिमुख व्यक्तियों के लिये भीतिप्रद, (विश्वव्यचसं) राष्ट्र में व्यापक प्रभाव वाले, (मतीनाम् अवतम्) मनन योग्य ज्ञानों और मननशील मनुष्यों के रक्षक, (इन्द्रं) शत्रुहनन में समर्थ पुरुष को (आ विशन्ति) प्राप्त होते हैं।

यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक राजन्! सेनापते! (यं) जिस (सोमं) राष्ट्र के प्रजागण ऐश्वर्य और जल, अन्नादि पदार्थों को (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों मिलकर (गर्भं माता न) गर्भ को माता के समान (त्वाया) तुम अपने स्वामी के साथ मिलकर (बिभृतः) विशेष रूप से धारण करती हैं (तं) उसी को (अध्वर्यवः) हिंसारहित प्रजापालन का कार्य करने वाले पुरुष (ते पातवा उ) तेरे द्वारा पालन करने या तेरे

ही उपभोग के लिये (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं और (ते) तेरे लिये ही वे उसको (मृजन्ति) शोधते हैं। इति दशमो वर्गः ॥

[४७] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, निचृत्त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! सेनापते! तू (मरुत्वान्) शत्रुओं को मारने में समर्थ पुरुषों का स्वामी और उत्तम प्रजाओं का राजा, (वृषभः) सभा द्वारा अग्रणी रूप से चुने जाने योग्य, ऐश्वर्यों और शस्त्रों को मेघ के समान प्रजाओं और शत्रुओं पर वर्षण करने वाला होकर (अनु-स्वधम्) अपनी धारण, पालन, पोषण करने की शक्ति, अश्वादि ऐश्वर्यों के अनुसार ही (रणाय) संग्राम विजय के लिये और (मदाय) आनन्द लाभ करने को भी (सोमम्) राष्ट्र की प्रजा को पुत्र के समान और राष्ट्र के ऐश्वर्य और जल अन्नादि को धन के समान (पिब) पालन कर और उपभोग कर और (जठरे मध्वः ऊर्मिम्) पेट में मधुर अन्न वा जल की बड़ी मात्रा के समान तू भी अपने (जठरे) अधीन राष्ट्र में (मध्वः ऊर्मिम्) जल की धारा और अन्न की अधिक मात्रा को (आसिञ्चस्व) सर्वत्र, सब ओर प्रवाहित कर। (त्वं) तू ही (प्रदिवः) सब दिनों (सुतानां) उत्पन्न प्रजाओं वा अभिषिक्त पदाधिकारियों के बीच में सबसे उत्कृष्ट (राजा असि) राजा है, सबसे अधिक प्रकाशमान है।

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु हिंसक सेनापते! राजन्! तू (सगणः) अपने सैन्यगणों सहित और (मरुद्भिः) वायु के समान तीव्र वेग से वृक्षों के

समान शत्रुगणों को कंपा देने वाले वीर पुरुषों के साथ (सजोषाः) समान प्रीतिमान् होकर (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का (पिब) उपभोग एवं पालन कर । हे (शूर) शूरवीर ! तू (वृत्रहा) मेघ के नाशक सूर्य के समान विघ्नों और बढ़ते फैलते हुए शत्रु का नाश करने वाला और (विद्वान्) उचित कर्त्तव्यों और नाना विद्याओं को जानने वाला होकर (शत्रून्) शत्रुओं को (जहि) मार, (मृधः) संग्रामों और संग्रामकारियों को (अप नुदस्व) दूर भगा और (नः) हमारे लिये (विश्वतः) सब प्रकार और सब तरफ से (अभयं कृणुहि) भयरहित कर ।

उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! जैसे (ऋतुपाः) ऋतुओं का रक्षक, पालक या ऋतुओं द्वारा संसार की रक्षा करने वाला सूर्य (ऋतुभिः सोमम् पाति) ऋतुओं द्वारा ही उत्पन्न एवं समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले जगत् और अन्नादि वनस्पति वर्ग और समस्त चेतन संसार को पालता और रक्षा करता है वैसे ही तू भी (देवेभिः सखिभिः) विजय कामनाशील, व्यवहारज्ञ मित्रों और (ऋतुभिः) ज्ञानवान् राजसदस्यों द्वारा (नः सुतम्) हमारे उत्पन्न किये (सोमं पाहि) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और पुत्र के समान प्रजागण को पालन कर । तू जिन (मरुतः) वीर्यवान् वायु के समान बलवान्, शत्रुओं के नाशक वीरों को (आभजः) प्राप्त करे और जो (त्वा अनु) तेरे अनुकूल सहयोगी होकर (वृत्रम् अहन) शत्रुओं का नाश करें वा दण्डित करें वे ही (तुभ्यम्) तेरे (ओजः) पराक्रम को (अदधुः) स्वयं धारण करें ।

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥४॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों और प्रजा के दुःखहारी अश्वारोही सैन्यों

के स्वामिन् ! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (त्वा) तुझको (अहिहत्ये) अभिमुख आये शत्रु के विनाशक संग्राम-कार्य में, मेघ के हनन या ताड़न कार्य में सूर्य या विद्युत् को किरणों के समान (अवर्धन्) बढ़ाते हैं और (ये) जो (शाम्बरे) मेघ के समूह पर सूर्य के समान ही (शाम्बरे) शान्ति के नाशक और प्रजाजन को घेरने और छलने हारे शत्रुजन के संग संग्राम कार्य में और (ये) जो (गविष्टौ) 'गो' अर्थात् वाणी और भूमि के लाभ और विजय के कार्य में (त्वा अवर्धन्) तेरे आदर और बल की वृद्धि करते हैं और (ये) जो (विप्राः) विद्वान् पुरुष (नूनम्) निश्चय से (त्वा अनु मदन्ति) तेरे साथ २ हर्षित होते हैं, उन (मरुद्भिः) बलवान्, शत्रुमारक वीर पुरुषों सहित (सगणः) सैन्य गण से युक्त होकर (सोमं पिब) ऐश्वर्य और पुत्रवत् राष्ट्र का पालन और उपभोग कर ।

म॒रुत्व॑न्तं वृष॒भं वा॑वृधा॒नमक॑वारिं दि॒व्यं शा॒समिन्द्र॑म् ।
वि॒श्वा॒साह॒मव॑से॒ नूत॑नायो॒ग्रं स॑हो॒दामि॒ह तं हु॑वेम ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हम (नूतनाय अवसे) सदा नवीन (अवसे) प्रजापालन और तृप्तिलाभ आदि कार्यों के लिये (मरुत्वन्त) वीर पुरुषों के स्वामी, (वृषभं) बलवान्, मेघ वा सूर्य के समान प्रजा पर सुखों और ऐश्वर्यों की तथा शत्रु पर शस्त्रों की वर्षा करने में समर्थ, (वावृधानम्) सब प्रकार से बढ़ने वाले (दिव्यम्) उत्तम व्यवहार और तेज से युक्त, सबसे कामनायोग्य (शासम्) उत्तम रीति से शासन करने वाले, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (विश्वासाहम्) समस्त शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ, (उग्रम्) शत्रुओं को भयदाता, (सहोदाम्) बलप्रद और सैन्य बल से शत्रुबल का खण्डन करने वाले, (तं) उस उत्तम पुरुष को हम सदा (हुवेम) आदर से बुलावें । इत्येकादशो वर्गः ॥

[४८] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४ त्रिष्टुप् । भुरिक् पंक्तिः ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥ १ ॥

भा०—जैसे (कनीनः) दीप्तिमान् (वृषभः) वर्षणशील सूर्य (जातः) प्रकट होकर (सुतस्य अन्धसः) उत्पन्न हुए वनस्पतिगण का (प्रभर्तुम् आवत्) पोषण करने में समर्थ होता है, वह (रसाशिरः सोम्यस्य साधोः पिबति) नाना जलों से अभिषिक्त ओषधिगण के हितकारी, सर्वोत्तम, सर्व कार्यसाधक जल को रश्मियों द्वारा पान करता है वैसे ही हे राजन्! तू भी (सद्यः) शीघ्र ही वा (सद्यः) सद् संसद्, परिषदादि में श्रेष्ठ, (जातः) सब गुणों में सम्पन्न होकर (वृषभः) बलवान् (कनीनः) कान्तिमान्, सबके कामना करने योग्य होकर (सुतस्य) पुत्र के समान प्रजागण को (प्रभर्तुम्) अच्छी प्रकार पोषण करने के लिये (अन्धसः आवत्) अन्न आदि पदार्थों को सुरक्षित करे और (प्रतिकामं) उत्तम अभिलाषा के अनुकूल (सोम्यस्य) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के हितकारी (साधोः) सन्मार्गस्थित, उत्तम (रसाशिरः) बल के धारक, जलादि के उपभोक्ता राष्ट्र की (प्रथमम्) सबसे प्रथम (पिब) पालना कर (यथा ते) जिससे तेरा ही उस पर यथेष्ट स्वामित्व हो ।

यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२॥

भा०—हे राजन्! तू (यत्) जब भी (जायथाः) उत्पन्न हो, गुणों से प्रकट हो (तत् अहः) उस दिन सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अस्य अंशोः) इस प्राप्त हुए राष्ट्र की (कामे) अभिलाषा के अनुसार इसके (गिरिष्ठाम्) वेद वाणी व व्यवस्था पुस्तक में विद्यमान, (पीयूषम्) हिंसक पुरुषों के नाशक ज्ञान और बल को (अपिबः) प्राप्त कर । (तं) उस बल को (ते) तेरी (माता) मान करने वाली, (योषा) तुझसे मिलकर रहने वाली (जनित्री) तुझ जैसे ऐश्वर्यवान् को उत्पन्न करने वाली

मातृवत् पृथिवी या राष्ट्रशक्ति (महः पितुः) बड़े भारी पालक राजा के (दमे) गृह के समान शरण में या राज्य के दमन कार्य में (अग्रे) सबसे पहले (आसिञ्चत्) सेचन करे, उक्त बल को पुष्ट करे।

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः॥ ३॥

भा०—पुत्र जैसे (मातरम् उपस्थाय अन्नम् ऐट्ट) माता को प्राप्त करके खाद्य पदार्थ दुग्ध आदि को मांग लेता है और (ऊधः अभि तिग्मं सोमम् अभि अपश्यत्) स्तन को प्राप्त कर उसमें से तीव्र वेग से प्रवाहित सोम या दुग्ध रस को देखता है, पाता है। वैसे ही (गृत्सः) ऐश्वर्य की आकांक्षा करने वाला राजा भी (मातरम्) पृथिवी को (उपस्थाय) प्राप्त करके (अन्नम् ऐट्ट) अन्न या भोग्य ऐश्वर्य की याचना करे। वह (ऊधः अभि) अन्तरिक्ष या मेघ के साथ (तिग्मं सोमम् अभि अपश्यत्) तीव्र वेग से प्राप्त होने वाले जल के समान अन्न को भी देखे अर्थात् संवत्सर की वृष्टि के अनुपात में ही प्रजा के बीच कृषि द्वारा उत्पन्न अन्नादि प्राप्ति की सम्भावना करे। (गृत्सः) ऐश्वर्य की कामना वाला होकर (अन्यान्) अपने से प्रतिकूल शत्रुओं को (प्र यवयन्) अच्छी प्रकार दूर करता हुआ (अचरत्) विचरे और (पुरुधप्रतीकः) बहुत सी प्रजाओं को धारण करने में सामर्थ्य से प्रसिद्धि पाकर (महानि) बड़े २ कार्य (चक्रे) करे।

उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु॥ ४॥

भा०—(एषः) वह राजा (उग्रः) भयङ्कर, (तुराषाट्) वेगवान् शत्रु का पराजयकर्ता (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं को पराजित करने वाले बल से युक्त (यथावशं) अपने वश करने के सामर्थ्य के अनुसार ही (तन्वं चक्रे) शरीर और राष्ट्र को विस्तृत करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (जनुषा) जन्म से ही–निसर्ग से ही (त्वष्टारम् अभिभूय) सूर्य को परा-

जित कर उससे भी तेजस्वी होकर (चमूषु) सेनाओं के बल पर (अमुष्य) दूरस्थ शत्रु के भी (सोमम् अपिबत्) राष्ट्रैश्वर्य को उपभोग करता है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥५॥१२॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३। २२ ॥ इति द्वादशो वर्गः ॥

[४९] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। पंचर्चं सूक्तम् ॥

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन्।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू उस (महान् इन्द्रम्) महान् इन्द्र की (शंस) स्तुति कर (यस्मिन्) जिसके आश्रय में रहकर (विश्वाः) समस्त (सोमपाः) विद्वान् शिष्य ओषधि वनस्पति अन्न और ऐश्वर्य के रक्षक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यादि जन और (कृष्टयः) कृषक प्रजाजन (कामम् आ अव्यन्) कामना योग्य यथेष्ट सुख प्राप्त करते हैं। (यं) जिस (सुक्रतुं) उत्तम धर्म कर्म में कुशल (विभ्वतष्टं) परमेश्वर से उत्पादित या सामर्थ्य से बने हुए बलवान् पुरुष को (धिषणे) नर नारी या आकाश भूमि के समान प्रजा-परिषत् और राज-परिषत् दोनों तथा (देवाः) व्यवहारज्ञ और युद्ध विजयी लोग (वृत्राणां घनं) बढ़ते हुए बाधक शत्रुओं को नाश करने में समर्थ (जनयन्त) बनाते हैं।

यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥

भा०—(द्विता) स्व और पर दोनों पक्षों के (पृतनासु) संग्रामों व वीर सेनाओं के बीच (स्वराजं) स्वयं सामर्थ्य से सूर्यवत् प्रकाशमान, स्वयं सबके चित्तों को रञ्जन करने वाले (नृतमं) सर्वश्रेष्ठ (हरिष्ठाम्) सक

मनुष्यों और अश्व सेनाओं पर अधिष्ठाता रूप से स्थित, जिस पुरुषोत्तम को (नकिः) कोई भी न (तरति) लांघ सके (थं ह) और जो (सत्वभिः) बलवान् वीर पुरुषों और (शूपैः) बलों या सैन्यों से (इनतमः) उत्तम स्वामी हो वह और (पृथुज्रयाः) बड़े वेग और शक्ति से सम्पन्न होकर (दस्योः) प्रजानाशक दुष्ट पुरुषों के (आयुः अभिनात्) जीवन का नाश करे ।

सुहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥

भा०—वह राजा (सहावा) बलवान्, (पृत्सु) स्पर्धायुक्त संग्रामों में मनुष्यों के बीच (तरणिः) सूर्य के समान तेजस्वी, (अर्वा न) अश्व के समान वेग से जाने हारा, (रोदसी) नर नारी दोनों के बीच (वि-आनशी) विशेष रूप से व्यापक, सबके हृदय में बसा, (मेहनावान्) उदारता से देने योग्य धनों से सम्पन्न, (कारे) कार्य के अवसर पर (भगः न) ऐश्वर्यवान् के समान (हव्यः) स्तुति करने योग्य, (मतीनां) मननशील पुरुषों के बीच उनका (पिता इव) पिता के समान, (चारुः) सर्वोत्तम पालक, (सुहवः) उत्तम रीति से, मान आदर पूर्वक बुलाने योग्य और (वयोधाः) सबको जीवन का देने वाला हो ।

धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४॥

भा०—वह राजा (दिवः) तेजस्वी, (रजसः) सभी लोगों का (धर्त्ता) धारक (पृष्टः) सबसे पूछने योग्य, (ऊर्ध्वः) सबके ऊपर अधिष्ठित, (रथः न) रथ के समान सब को सुरक्षित रूप में उद्देश्य तक पहुंचाने हारा (वायुः) वायु के समान बलवान् (वसुभिः) राष्ट्रवासी प्रजाजनों से ही (नियुत्वान्) नियुक्त सेनाओं का स्वामी, (क्षपां वस्ता) रात्रि के तुल्य राष्ट्र की नाशक शक्तियों को अपने तेज से आच्छादित करने वाला और

(सूर्यस्य) सूर्य के तुल्य सर्वप्रेरक व्यक्तित्व का (जनिता) उत्पादक (धिषणा इव) भूमि और सूर्य के समान (भागं) कर आदि और (वाजं) अन्न आदि का (विभक्ता) विभाग करने वाला है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥५॥१३॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३२। मं० २२ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५०] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ५ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥१॥

भा०—सूर्य जैसे वर्षणशील, वायुओं सहित, किरणों से व्यापक होकर उत्तम रीति से जल को प्राप्त करता और मेघरूप से बरस कर अन्नों से सब को पूर्ण तृप्त करता और अन्न से शरीर की अभिलाषा को पूर्ण करता है वैसे ही (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (यस्य) जिसके अधीन (सोमः) राष्ट्र का ऐश्वर्य और शासन है वह (तुम्रः) शत्रु को मारने में समर्थ, (वृषभः) बलवान्, (मरुत्वान्) मरने मारने वाले वीरों का स्वामी होकर (स्वाहा) उत्तम, सत्य, न्याय क्रिया के अनुकूल एवं आदरणीय रूप प्रजा के दिये में से (पिबतु) ऐश्वर्य का उपभोग करे। वह (उरुव्यचाः) बहुत अधिक गुण, शक्ति वाला होकर (एभिः) इन नाना प्रकार के (अन्नैः) खाद्य पदार्थों से (आपृणताम्) राष्ट्र को पूर्ण करे और (हविः) उत्तम अन्न ही (अस्य) उस पुरुष के (तन्वः) शरीर की (कामम्) सब प्रकार की अभिलाषा को (ऋध्याः) पूर्ण करे।

आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥२॥

भा०—हे राजन्! (सपर्यूं जवसे) जैसे रथ को वेग से चलाने के लिये उसमें दो वेगवान् अश्वों को लगाया जाता है वैसे ही (जवसे) वेग से कार्य करने के लिये मैं विद्वान् पुरुष (ते) तेरे अधीन (सपर्यूं) दो उत्तम सेवकों या स्त्री पुरुषों को सेवक रूप से (आ युनज्मि) नियुक्त करता हूँ। (ययोः अनु) जिनके अनुकूल रहकर तू (प्रदिवः) उत्तम ज्ञान प्रकाशों, उत्तम कामनाओं तथा उत्तम लोकों को और (श्रुष्टिम्) रथ के समान शीघ्र गति को भी (आ अवः) प्राप्त कर। हे (सुशिप्र) उत्तम मुख युक्त पुरुष! (हरयः) उत्तम विद्वान् पुरुष और वीर अश्वसैन्य के बल ही (त्वा) तुझे (इह) इस पद था राष्ट्र पर (धेयुः) स्थापित करें और (अस्य चारोः) इस सुन्दर उपभोग योग्य (सु-सुतस्य) उत्तम रीति से शासित, राष्ट्र का उत्तम सुसंस्कृत अन्न के समान (पिबतु) पालन कर।

गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३॥

भा०—(गृणानाः) उत्तम विद्वान् उपदेष्टा लोग (मिमिक्षुं) मेघ के तुल्य जलवत् सुखों की वृष्टि करने वाले, (सुपारं) उत्तम पालक और पूरक स्वयं तृप्त करने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष का ही (गोभिः) उत्तम वाणियों, उत्तम रश्मियों और उत्तम भूमियों द्वारा (धायसे) समस्त राष्ट्रवासी प्रजाजन को धारण करने के लिये ही (ज्यैष्ठ्याय दधिरे) बड़े और श्रेष्ठ पद के निमित्त स्थापित करते हैं उसको प्रधान पद प्रदान करते हैं। हे (ऋजीषिन्) 'ऋजीष' अर्थात् ऋजु मार्ग के प्रेरक विद्वानों के स्वामिन्! तू (सोमं पपिवान्) जलपानकर्त्ता सूर्य के तुल्य ही ऐश्वर्य का उपभोक्ता होकर (मन्दानः) खूब तृप्त प्रसन्न होकर (अस्मभ्यं) हमारे लाभ के लिये (पुरुधा) बहुत प्रकार से (गाः) उत्तम वाणियों, भूमियों और गौ आदि पशुओं तथा अधीनस्थ शासक रूप बागडोरों को भी किरणों को सूर्य के समान (सम् इषण्य) अच्छी प्रकार प्रदान कर।

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (इमं कामं) अपनी इस उत्तम अभिलाषा को (गोभिः) उत्तम वाणियों, गवादि पशुओं, किरणवत् शासकों से, (अश्वैः) अश्वसैन्यों से, (चन्द्रवता राधसा) सुवर्णादि धन से समृद्ध ऐश्वर्य से (पप्रथः) अपने को और बढ़ा, और स्वयं तथा अन्यों को भी (मन्दय) प्रसन्न कर । (स्वर्यवः) सुख की कामना वाले (वाहः) कार्यभार के धारक (कुशिकासः) कुशल, (विप्राः) विद्वान् पुरुष (मतिभिः) उत्तम बुद्धियों से (तुभ्यं इमं कामम् अक्रन्) तेरी इस अभिलाषा को सम्पादित करें ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥५॥१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३ । मं० २२ ॥ इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[५१] विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—४, ७—९ त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । १—३ निचृज्जगती । १०, ११ यवमध्या गायत्री । १२ विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ १ ॥

भा०—(बृहतीः गिरः) बड़े ज्ञानों का प्रतिपादन करने वाली, ज्ञानवर्धक वाणियां, वेद वाणियां भी (चर्षणीधृतम्) सब मनुष्यों के धारक, (मघवानम्) ऐश्वर्यवान् , (इन्द्रं) शत्रुहन्ता, (उक्थ्यम्) स्तुतियोग्य (दिवे दिवे) दिन प्रतिदिन (सुवृक्तिभिः) कुमार्ग से वर्जने वाले उत्तम वाक्यों और ऐश्वर्यों के उत्तम न्यायानुसार विभागों से प्रजा को (वावृधानं) बढ़ाने वाले, (पुरुहूतं) बहुतों से पुकारने योग्य, (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से

विशेष, (जरमाणं) स्तुतियोग्य वा सन्मार्ग के उपदेष्टा पुरुष वा परमात्मा की (अभि अनूषत) स्तुति करती हैं।

शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२॥

भा०—(मे गिरः) मेरी वाणियां, (शतक्रतुम्) सैकड़ों, अपरिमित प्रजाओं और उत्तम कर्मों वाले, (अर्णवम्) समुद्र के समान गम्भीर, (शाकिनम्) शक्तिमान्, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (वाजसनिम्) ऐश्वर्य आदि के दाता और संविभाग करने वाले, (पूर्भिदं) देहों और शत्रु के गढ़ों के भेदक (तूर्णिम्) शीघ्र वेग से जाने वाले (अप्तुरं) आप्तजनों, जलों को सूर्य या विद्युत् के समान प्रेरित करने वाले (धामसाचम्) तेज के धारक (अभिषाचं) साक्षात् प्राप्त होने वाले, (स्वर्विदम्) सबको सुख पहुंचाने वाले (नरं) तेजस्वी पुरुष, परमात्मा वा नायक को (विश्वतः) सब प्रकार से (उप यन्ति) प्राप्त होती हैं।

आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥

भा०—जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (जरिता) उत्तम २ उपदेश देता और (वसोः आकरे) धन के समूह के आश्रय में (पनस्यते) व्यवहार करता है और जो (अनेहसः) पापों से रहित (स्तुभः) स्तुति योग्य विद्वानों की (दुवस्यति) सेवा करता है और जो (विवस्वतः सदने) सूर्य समान तेजस्वी, एवं विशेष धनैश्वर्य से सम्पन्न राजा के गृह, या पद पर स्थित होकर (आ पिप्रिये हि) स्वयं प्रसन्न होता, अन्यों को भी प्रसन्न रखता है, हे विद्वान् पुरुष! तू भी (सत्रा-साहम्) सत्य के बल पर शत्रुओं को विजयी और (अभिमाति-हनम्) अभिमानी दुष्टों को दण्ड देने वाले राजा या वीर पुरुष के (स्तुहि) गुणों की स्तुति कर।

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! (नृणाम्) नायक पुरुषों के बीच (नृतमं) श्रेष्ठ नायक, (त्वा) तुझ (वीरम्) वीर को (सबाधः) शत्रुओं और विघ्नों की बाधा करने वाले विद्वान् भी (उक्थैः) उत्तम वचनों और (गीर्भिः) वाणियों से (अभि प्र अर्चत) स्तुति करें। वह राजा (पुरुमायः) बहुतसी प्रज्ञाओं से सम्पन्न होकर (सहसे) बल की वृद्धि के लिये (नमः संजिहीते) अन्न और शत्रु को नमाने के उत्तम साधन खड्ग अस्त्रादि बल को (संजिहीते) अच्छी प्रकार प्राप्त करे और वह (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश से युक्त ज्ञान व उत्तम कामना से युक्त (अस्य) इस राष्ट्र का (एकः) एक-मात्र सर्वोपरि (ईशे) स्वामी है।

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥१५॥

भा०—(अस्य) इस प्रसिद्ध राजा के (पूर्वीः) सनातन से चली आई वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादित (निषिधः) निषेध-आज्ञाएं, कार्यों को साधने वाली सेनाएं और चेष्टाएं (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच प्रवृत्त हों। (पृथिवी) पृथिवी उसके ही लिये (वसूनि पुरु) बहुत से ऐश्वर्यों को (बिभर्त्ति) धारण करती है और (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के लिये ही (द्यावः) सब प्रकाशमान पदार्थ, (ओषधीः) औषधियें (उत आपः) और नदियें समुद्र आदि (जीरयः) जीर्ण हो जाने वाले मनुष्य और (वनानि) वन, प्रान्त भी (पुरु वसूनि रक्षन्ति) बहुत से ऐश्वर्यों को रखते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्यापिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (हरिवः) मनुष्यों और अश्वादि सैन्यों के स्वामिन्! (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (गिरः) उत्तम स्तुति वाणियां और तेरे ही लिये (ब्रह्माणि) उत्तम वर्धनशील धनैश्वर्य (सत्रा दधिरे) सत्य ही से तुझे धारण करते हैं। तू उनको (जुषस्व) सेवन कर। तू ही (नूतनस्य) नये से नये, (अवसः) ज्ञान, अन्न, रक्षादि उपाय का (बोधि) ज्ञान कर और हे (वसो) सबको सुख शान्ति से वसाने वाले! हे (सखे) सबके मित्र! तू ही (जरितृभ्यः) विद्वान् पुरुषों का (आपिः) आप्त बन्धु होकर उनको (वयः-धाः) दीर्घ जीवन और बल दे।

इन्द्र॑ मरुत्व इ॒ह पा॑हि॒ सोमं॒ यथा॑ शार्या॒ते अपि॑बः सु॒तस्य॑।
तव॒ प्रणी॑ती॒ तव॑ शूर॒ शर्म॒न्ना वि॑वासन्ति क॒वयः॑ सु॒यज्ञाः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (मरुत्वः) वीर पुरुषों के स्वामिन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (सोमं) ऐश्वर्य और ऐश्वर्य के उत्पादक प्रजा का पालन कर। (यथा) जिससे (शार्याते) शत्रुहिंसक शस्त्रों के द्वारा प्रयाण योग्य संग्राम आदि के समय (सुतस्य) इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का पुत्रादिवत् (अपिबः) पालन कर और ऐश्वर्य का उपभोग कर। हे (शूर) शूर (तव) तेरे (प्रणीती) उत्तम न्याय से और (तव शर्मन्) तेरे सुखकारक शरण में रहते हुए (सुयज्ञाः) उत्तम सत्कार योग्य और दानशील (कवयः) विद्वान् लोग (आ विवासन्ति) सेवा सुश्रूषा करें।

स वा॑वशा॒न इ॒ह पा॑हि॒ सोमं॑ म॒रुद्भि॑रिन्द्र॒ सखि॑भिः सु॒तं नः॑।
जा॒तं यत्त्वा॒ परि॑ दे॒वा अभू॑षन्म॒हे भरा॑य पुरुहूत॒ विश्वे॑ ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जिस कारण से (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् और विजय की कामना वाले वीर (जातं त्वां) सब गुणों से प्रसिद्ध तुझको (महे भराय) बड़े संग्राम के लिये (परि अभूषन्) सुशोभित करते और (त्वा परि अभूषन्) तेरे ही इर्द गिर्द रह कर तेरा साथ देते हैं (पुरुहूत) बहुतों से आदरपूर्वक पुकारने योग्य! (सः) वह तू इस कारण से हे

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वावशानः) राज्यैश्वर्य और प्रजा की कामना करता हुआ (सखिभिः) अपने मित्र (मरुद्भिः) वीर बलवान् पुरुषों सहित सूर्य के समान तेजस्वी होकर (नः) हमारे (सुतम्) इस दिये हुए (सोमम्) राज्यैश्वर्य का (इह) यहां ही रहकर (पाहि) उपभोग कर।

अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे॥९॥

भा०—हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो ! (अप्तूर्ये) उत्तम कर्मों में प्रेरित करने और प्रजाओं के शासन कार्य में (एषः) यह राजा ही (आपिः) बन्धु के समान है। आप लोग (दातिवाराः) दान देने योग्य वेतनादि को प्रसन्नता से वरण या स्वीकार करने वाले, वा शत्रुओं की हिंसा का वारण करने वाले होकर (इन्द्रम् अनु अमन्दन्) ऐश्वर्यवान् नायक के साथ स्वयं हर्षित होओ। वह (वृत्रखादः) मेघ को स्थिर करने वाले सूर्य के समान ही बढ़ते शत्रु को अपने बाधक बल से खड़ा कर देने या आगे न बढ़ने देने वाला यह वीर नायक (तेभिः साकम्) उन उक्त वीर पुरुषों सहित (स्वे सधस्थे) अपने ही एकत्र रहने के स्थान नगर भवनादि में स्थित होकर (दाशुषः) ऐश्वर्य देने वाले प्रजाजन के (सुतम् सोमम्) प्राप्त ऐश्वर्य को (पिबतु) भोग करे और पालन करे।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते।
पिबा त्वस्य गिर्वणः॥ १०॥

भा०—हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों द्वारा प्रार्थना और स्तुति योग्य ! हे (राधानां पते) धनों के स्वामिन् ! तू (अस्य) इस राष्ट्र के (इदं) इस (सुतं) ऐश्वर्य और प्रजाजन का (ओजसा) अपने बल से (पिब तु) ओषधि रस के समान उपभोग कर या पुत्र के समान पालन कर।

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम्।
स त्वा ममत्तु सोम्यम्॥ ११॥

भा०—(यः) जो पुरुष (ते) तेरे (सुते) अभिषेक हो जाने पर, इस शासित राष्ट्र में (स्वधाम् अनु असत्) अन्न आदि स्वशरीरपोषक वेतनादि प्राप्त करके रहे (सः) वह (त्वा) तुझको (ममत्तु) सुखी करे। तू अपने (तन्वं) शरीर और विस्तृत राष्ट्र को भी (नि यच्छ) नियम में रख, और (सोम्यम् आचर) राष्ट्र के हितकारी कार्य कर।

प्र ते॑ अश्नोतु कु॒क्ष्योः प्रेन्द्र॒ ब्रह्म॑णा॒ शिरः॑।
प्र बा॒हू शू॑र॒ राध॑से ॥ १२ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! वह सोम, ऐश्वर्य और बल, शरीर में वीर्य के समान और बलकारी ओषधि रस के समान (ते) तेरे (कुक्ष्योः) दोनों कोखों में, अगल बगल, (प्र अश्नोतु) खूब व्यापे। (ब्रह्मणा) धनैश्वर्य वा ब्रह्म, ब्रह्मज्ञान, वा बड़े बल से (शिरः) सर्वोच्चपद को भी (प्र अश्नोतु) प्राप्त करे, हे (शूर) वीर! वह ऐश्वर्य (राधसे) धन की वृद्धि, शत्रु की साधना या वशीकरण के लिये (बाहू) शत्रुओं को पीड़ित करने वाले बाहुओं के समान सैन्य को (प्र अश्नोतु) अच्छी प्रकार प्राप्त हो। इति षोडशो वर्गः ॥

[५२] विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री। २ निचृद्गायत्री। ६ जगती। ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

धा॒नाव॑न्तं कर॒म्भिण॑मपू॒पव॑न्तमु॒क्थिन॑म्।
इन्द्र॑ प्रा॒तर्जु॑षस्व नः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे राजन्! तू (नः) हमारे बीच में से (धानावन्तं) पालन करने की शक्ति वा अन्न, धनादि ऐश्वर्य वाले, (करम्भिणम्) पुरुषार्थों से युक्त, (अपूपवन्तं) उत्तम त्यागी जितेन्द्रिय, इन्द्रियों के सामर्थ्य से युक्त और (उक्थिनम्) उत्तम प्रवचन-योग्य वेद-शास्त्र वेत्ता पुरुष को (प्रातः जुषस्व) प्रातःकाल ही सेवन कर।

पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च ।
तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन् ! (पुरोडाशं) तू आदरपूर्वक दिये गये (पचत्यं) सुपच अन्न का (जुषस्व) सेवन किया कर और (आ गुरस्व च) उद्यम किया कर । (तुभ्यं) तेरे ही लिये ये सब (हव्यानि) खाने योग्य उत्तम पदार्थ (सिस्रते) उत्पन्न होते हैं ।

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरंश्च नः ।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

भा०—(वधूयुः) वधू अर्थात् स्त्री की कामना वाला, स्त्री का स्वामी (इव) जैसे (पुरोडाशं योषणाम् घसत् जोषयासे च) आदरपूर्वक दी गई, स्त्री का उपभोग करता और उसको प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है, वैसे ही हे राजन् ! तू (नः) हमारे (पुरोडाशम्) आदरपूर्वक दिये अन्नादि ऐश्वर्य को (घसः) अन्नवत् उपभोग कर और (नः) हमें और हमारी (गिरः च) वाणियों को (जोषयासे) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर ।

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः ।
इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सनश्रुत) 'सन' अर्थात् सत्यासत्य के विवेचक शास्त्र-ज्ञान का श्रवण करने वाले (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! तू (प्रातः-सावे) प्रातः सवन अर्थात् शासन के प्रारम्भ-काल में (नः) हमारे (पुरोडाशम्) आदर पूर्वक दिये ऐश्वर्य को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर । (ते) तेरा (क्रतुः) प्रजा, बल और कर्म सामर्थ्य (बृहन्) बहुत बड़ा है ।

माध्यंन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५॥१७॥

भा०—(यत्) जब (स्तोता) उत्तम विद्वान् (जरिता) उपदेष्टा

(तूर्ण्यर्थः) शीघ्र ही अभिप्राय को प्रकट करने हारा होकर (वृषायमाणः) बलवान् पुरुष वा वर्षणशील मेघ के समान ज्ञान देता हुआ (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (उप ईट्टे) सबको उपदेश करे तब तू भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (माध्यन्दिनस्य) दिन के मध्यकाल के समान तीक्ष्ण तेज से युक्त समय पर होने वाले (सवनस्य) शासन और ऐश्वर्य को (धानाः) धारण करने वाली प्रजाओं और अधीन धारित सेनाओं को और (पुरोडाशम्) आगे दान मानपूर्वक दिये गये अन्न या राष्ट्र-भाग को (इह) इस राष्ट्र में (चारुम्) उत्तम (कृण्व) कर। इति सप्तदशो वर्गः॥

तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः॥६॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष! हे नायक! हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसा के योग्य! तू (तृतीये) तीसरे सर्वोत्तम (सवने) शासन में सायंकाल में अग्नि जैसे पुरोडाश को स्वीकार करता है वैसे ही (नः) हमारे (आहुतिम्) आदर पूर्वक दिये गये (पुरोडाशम्) अन्न आदि को (मामहस्व) स्वीकार कर और (धानाः) धारण योग्य प्रजाओं को भी अपना। हे (कवे) विद्वन्! हम लोग (प्रयस्वन्तः) प्रयत्नशील होकर (ऋभुमन्तम्) ज्ञान और सामर्थ्य से प्रकाशित शिष्यों और सहयोगियों के स्वामी, (वाजवन्तं) ज्ञानवान् तुझको (उप) प्राप्त होकर (धीतिभिः) उत्तम स्तुतियों से (शिक्षेम) ज्ञानैश्वर्य की याचना करें। (४—६) तीन सवन जीवन के तीन काल ब्रह्मचर्य यौवन और वार्धक्य। तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इनमें क्रतु अर्थात् ज्ञान और सामर्थ्य को बढ़ावे।

पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्॥७॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष! (पूषण्वते) सबको पुष्ट करने वाली पृथ्वी के स्वामी रूप तेरे लिये हम (करम्भम् चकृम) कर्म से युक्त क्षात्र-

बल का सम्पादन करें। (हरिवते) भूमि निवासी प्रजा, मनुष्यों के स्वामी और (हर्यश्वाय) आशुगामी रथादि और अन्नादि के स्वामी तेरे लिये (धानाः चकृम) राष्ट्र के धारण योग्य सेनाओं और ऐश्वर्य युक्त प्रजाओं को भी सुसम्पादित करें। हे शूर! तू (विद्वान्) विद्वान् और (वृत्रहा) शत्रुहन्ता होकर (सगणः) गणों सहित और (मरुद्भिः सह) वीरों से युक्त होकर (अपूपं) मालपुए के समान समृद्ध वा स्नेहयुक्त (सोमं) राष्ट्र का (पिब) उपभोग कर।

प्रति॑ धा॒ना भ॑रत॒ तूय॑मस्मै पु॒रो॒ळाशं॑ वी॒रत॑माय नृ॒णाम्।
दि॒वेदि॑वे स॒दृशी॑रिन्द्र॒ तुभ्यं॒ वर्ध॑न्तु त्वा सोम॒पेया॑य धृष्णो॥८॥१८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! हे प्रजाजनो! आप लोग (अस्मै नृणां वीरतमाय) सब नायकों में श्रेष्ठ इस वीर पुरुष के लिये (धानाः) अन्नों के समान ही परिपोषक शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं को (तूयम्) शीघ्र ही (प्रति भरत) प्राप्त कराओ। हे (धृष्णो) शत्रुओं का पराजय करने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (दिवे दिवे) दिनों दिन (सदृशीः) रूप गुणों में समान पत्नियां जैसे पतियों की वृद्धि करती हैं वैसे ही बलैश्वर्य में समान, तेरे अनुरूप प्रजाएं और सेनाएं भी (सोमपेयाय) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के पालक और उपभोगकर्त्ता (तुभ्यम्) तुझको प्राप्त हों और तुझे सन्तानादि से पत्नी के समान ही (वर्धन्तु) बढ़ावें। इत्यष्टादशो वर्गः॥

[५३] विश्वामित्र ऋषिः॥ १ इन्द्रापर्वतौ। २—१४, २१—२४ इन्द्रः। १५, १६ वाक्। १७—२० रथाङ्गानि देवताः॥ छन्दः—१, ५, ६, २१ निचृत्त्रिष्टुप् २, ६, ७, १४, १७, १९, २३,२४ त्रिष्टुप्। ३, ४, ८, १५ स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२, २२ अनुष्टुप्। २० भुरिगनुष्टुप्॥ १०, १६ निचृज्जगती। १३ निचृद्गायत्री। १८ निचृद्बृहती॥
चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्॥

इन्द्रा॑पर्वता बृह॒ता रथे॑न वा॒मीरिष॒ आ व॑हतं सु॒वीराः॑।

वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥

भा०—जैसे (इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीः सुवीराः इषः-आवहतः) इन्द्र, सूर्य या विद्युत् और पर्वत सर्व पालक मेघ दोनों रथ अर्थात् वेगवान् जल-धारा से उत्तम वृष्टियों वा अन्नादि को प्राप्त कराते हैं इसी प्रकार हे (इन्द्र-पर्वता) शत्रुहन्तः और हे पर्वतः! पोरु २ से बने सैन्य वर्ग के स्वामिन्! तुम दोनों (बृहता) बड़े (रथेन) वेगवान् रथसैन्य से (वामीः) सुन्दर (सुवीराः) वीरों से बनी (इषः) अन्नादि समृद्धियों और सेनाओं को (आवहतम्) धारण करो। आप दोनों (अध्वरेषु) हिंसा से रहित पालन आदि कार्यों में (हव्यानि) उत्तम अन्नादि पदार्थों का (वीतम्) उपभोग करो और (इडया) अन्न एवं सुन्दर वाणी से (मदन्तौ) हर्षित होते हुए (गीर्भिः) उत्तम वाणियों से (वर्धेथाम्) बढ़ो।

तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२॥

भा०—हे (मघवन्) धनों के स्वामिन्! तू (कं) सुख पूर्वक और (सु) आदर से (तिष्ठ) स्थिर होकर खड़ा रह। (मा परागाः) दूर मत जा, (त्वा नु) तुझे मैं (सुषुतस्य सोमस्य) उत्तम रीति से उत्पादित सोम अर्थात् ओषधि रस के समान उत्साहवर्धक ऐश्वर्य का (यक्षि) प्रदान करूं। (पुत्रः पितुः न) जैसे पुत्र पिता के (सिचम् आरभते) वस्त्र का स्पर्श करता है वा निषेक आदि द्वारा उत्पन्न सन्तान भाव का प्रारम्भ करता है। वैसे ही हे (शचीवः) शक्ति, सेना और उत्तम वाणी के स्वामिन्! (इन्द्र) शत्रुहन्तः एवं विद्वन्! मैं प्रजाजन भी (स्वादिष्ठया) अधिक स्वादु, मधुर (गिरा) वाणी से (ते सिचम्) तेरा राज्यपदाभिषेक (आरभे) करूं। (ते) तेरे (सिचम् आरभे) उज्ज्वल वस्त्र का स्पर्श करूं। तेरे वस्त्र प्रान्त को पकड़ूं, तेरा आश्रय ग्रहण करूं।

शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम्।

इदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) शत्रु द्वारा अपना हिंसन, पीड़न न होकर प्रजा के पालन की कामना करने वाले विद्वन् ! हम दोनों (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष की वृद्धि के लिये (शंसाव) उत्तम बातों का उपदेश करें। तू (मे प्रति गृणीहि) मेरा दिया ज्ञानोपदेश प्रत्येक व्यक्ति को उपदेश कर और (जुष्टम्) प्रेम से सेवन योग्य (वाहः) स्तुतिवचन को हम दोनों (कृणवाव) करें। (यजमानस्य) पूजा सत्कार करने वाले प्रजागण का (इदं बर्हिः) यह वृद्धिशील राष्ट्र और राज्यपदासन है। उस पर (आसीद) आ, विराज। (अथ च) और इसके अनन्तर (इन्द्राय) राजा को या राजा का (उक्थ्यम्) उत्तम उपदेश करने योग्य या स्तुत्य (शस्तं) अनुशासन (भूत्) हो।

जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥

भा०—(जाया इत्) स्त्री ही वास्तव में (अस्तं) घर है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (सा इत् उ योनिः) वही वास्तविक रहने का आश्रय स्थान है। (तत् इत्) वहां (युक्ताः हरयः) रथ में लगे अश्वों के समान, समाहित चित्त वाले प्रेमी विद्वान् (त्वा वहन्तु) तुझे ले जावें। हम लोग भी (यदा कदा च) जब कभी भी (सोमम्) अभिषेचनीय तुझको (सुनवाम) सम्पन्न, ईश्वर, स्वामी बनावें या अभिषेक करें तब (अग्निः त्वा) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक तेजस्वी पुरुष (दूतः) सन्देशहर एवं शत्रुओं को संताप देने हारा वीर पुरुष (त्वा) तुझको (अच्छ धन्वाति) प्राप्त हो।

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम्।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५॥१९॥

भा०—हे (मघवन्) पूजनीय धन के स्वामिन्! तू (परा याहि) दूर देश में गमन कर (च) और (आ याहि च) अपने देश में भी आ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ते) तेरे (उभयत्र) दोनों ही स्थानों में (अर्थम्) स्थित प्रयोजन को प्राप्त कर (यत्र) जहां (बृहतः रथस्य) बड़े रमण योग्य ऐश्वर्य का (निधानं) खजाना हो वहां (राजभस्य वाजिनः) अति हेषा रव करने वाले वेगवान् अश्व का (विमोचनम्) रथ से पृथक् करना या ढीली बागों से जाना उचित है। इत्येकोनविंश वर्गः॥

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत्॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सोमम् अपाः) उत्तम सोमादि ओषधि रस का पान कर। (अस्तं प्र याहि) घर को उत्तम रीति से जा। (ते गृहे) तेरे घर में (जाया) स्त्री (कल्याणीः) कल्याणकारिणी, सौभाग्यवती और (सुरणं) सुखपूर्वक रमण करने वाली हो और तेरे घर में (बृहतः रथस्य निधानं) बड़े रथ और रमणीय पदार्थों को रखने का स्थान, एवं खजाना हो और (वाजिनः विमोचनं) अश्व को खोलने का स्थान अस्तबल और (दक्षिणावत्) दक्षिणायुक्त उत्तम यज्ञ आदि हो।

इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः॥७॥

भा०—(इमे) ये (भोजाः) प्रजाओं के पालक, (अंगिरसः) देह में प्राणों के तुल्य, राष्ट्र में अंगारों के सदृश तेजस्वी (विरूपाः) विविध रूपों वाले (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (असुरस्य) बलवान् सेनानायक के (पुत्रासः) पुत्रों के तुल्य (वीराः) बलवान् पुरुष (सहस्रसावे) सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों के लाभ कराने वाले संग्राम में (विश्वामित्राय) सबके स्नेही और सब को मरने से बचाने वाले नायक को (मघानि) नाना प्रकार के ऐश्वर्य (ददतः) देते हुए (आयुः प्रतिरन्त) जीवन की वृद्धि करें।

रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (मघवा) प्रकाशमान सूर्य (स्वां तन्व परि) अपने ही पिण्ड से (माया कृण्वानः) नाना माया अर्थात् अद्भुत २ रचनाएं करता हुआ (रूपं रूपं) प्रत्येक रूप में (परि बोभवीति) व्यापता है। (यत्) जो (स्वैः मन्त्रैः) अपने स्तम्भन बलों का ज्ञान कराने वाले, प्रकाशमय किरणों से (यत्) जो (त्रि दिवः) दिन के तीनों काल (मुहूर्त्तम्) प्रतिमुहूर्त्त (परि अगात्) फैलता रहता है और (ऋतावा) अन्न और जल का स्वामी होकर भी (अनृतुपाः) विशेष ऋतु में ही नहीं, प्रत्युत सदा ही जलपान करता है वैसे ही (मघवा) ऐश्वर्यवान् पुरुष (स्वां तन्वं परि) अपनी शारीरिक रचना से (यत्) जो वह (अनृतुपाः) सदा एक समान (ऋतावा) सत्य ज्ञान को ग्रहण करता हुआ (स्वैः मन्त्रैः) अपने मननपूर्वक प्रकटित विचारों से (मुहूर्त्तम्) मुहूर्त्त भर (दिवः त्रिः) दिन में तीन वार (परि अगात्) परिज्ञान करता रहे। देह को (परि कृण्वानः) खूब अच्छी प्रकार परिष्कार और सुदृढ़ करता हुआ उसके उपरान्त (मायाः) नाना बुद्धियों को (परि कृण्वानः) परिष्कृत करता हुआ (रूपं रूपं) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ का (परि बोभवीति) अच्छी प्रकार ज्ञान करे।

महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जब (महान्) गुणों में महान् (ऋषिः) मन्त्रों और तत्वार्थों का द्रष्टा (देवजाः) विद्वानों द्वारा उत्पन्न, उनका शिष्य वा दानशील होकर प्रसिद्ध, (देवजूतः) विद्वानों द्वारा प्रेरित और (नृचक्षाः) समस्त नायकों पर अपनी आज्ञा करने और उनके ऊपर आंख रखने हारा, (विश्वामित्रः) सबका मित्र, (सुदासम्) उत्तम दानशील एवं शत्रु के नाशक वीर पुरुष को (अवहत्) सन्मार्ग पर ले जाता है तब वह

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (कुशिकेभिः) कुशल सहयोगियों सहित (अप्रि-यायात) सबको प्रिय लगने लगता है।

हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु॥१०॥२०

भा०—जैसे (हंसाः इव) हंस पक्षिगण (अद्रिभिः) मेघों सहित (मदन्तः) हर्षित होते हुए (श्लोकं कृण्वन्ति) शब्द करते हैं और (सोम्यं मधु पिबन्ति) मधुर जलपान करते हैं वैसे ही हे (हंसाः) परम हंसो! ज्ञानी पुरुषो! हे (विप्राः) विद्वान् पुरुषो! हे (ऋषयः) अतीन्द्रिय तत्वों के दर्शन करने वाले (नृचक्षसः) और सबके निरीक्षक, (कुशिकाः) निष्कर्ष निकालने वाले पुरुषो! आप लोग (हंसाः) अहंभाव का नाश करने हारे होकर (अद्रिभिः) अपने अविनाशी या मेघतुल्य सुखपूर्वक आत्माओं सहित और (गीर्भिः) वाणियों से (मदन्तः) प्रसन्न होते हुए (अध्वरे सुते) परस्पर हिंसा आदि से रहित यज्ञ के निष्पन्न होने पर उसमें (सोम्यं मधु) सोम ओषधि के रस से युक्त मधुर दुग्धादि के समान ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के परम ब्रह्मज्ञान रूप मधु का (देवेभिः सचा) विद्वान् दानशीलों सहित (पिबध्वम्) पान करो। इति विंशो वर्गः॥

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः॥११॥

भा०—हे (कुशिकाः) परराष्ट्र को पीड़ित करने हारे कुशल और (सुदासः) उत्तम शत्रुनाशक और दानशील पुरुषो! आप लोग (उप प्र इत) समीप २ रहकर आगे बढ़ते जाओ। (चेतयध्वम्) सावधान रहो और (राये) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (अश्वं) शीघ्र चलने हारे अश्व को (प्र मुञ्चत) आगे २ छोड़ो। (राजा) राजा (प्राग्, अपाग्, उदग्) पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में स्थित (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को, मेघ को सूर्यवत्

(जघनत्) दण्ड दे। (अथ) अनन्तर (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरे) सर्वश्रेष्ठ भाग में (आ यजाते) सब ओर से सबको एकत्र कर यज्ञ करे।

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्॥ १२॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर वा राजा (इमे) इन (उभे रोदसी) दोनों भूमि, सूर्य और उनके समान स्त्री-पुरुषों की (रक्षति) रक्षा करता है और जो (इदं) इस (ब्रह्म) ब्रह्माण्ड और धनैश्वर्य की और (भारतं जनं) जो वाणी के उपासक विद्वानों और (भारतं) मनुष्य समूह की (रक्षति) रक्षा करता है (तस्य) उस (विश्वामित्रस्य) सबके मित्र परमेश्वर और राजा के (इन्द्रम्) ऐश्वर्य की मैं (अतुष्टवम्) स्तुति करूं।

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
करदिन्नः सुराधसः॥ १३॥

भा०—(विश्वामित्राः) सबके मित्र लोग (वज्रिणे) बलवान् (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (ब्रह्म) बड़े धनैश्वर्य और ज्ञान के विषय में (अरासत) उपदेश करते हैं। वह (नः) हमें (सुराधसः) उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न (करद्) करे।

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः॥१४॥

भा०—(ते) वे (कीकटेषु) जो लोग कुत्सित कर्मों को करके जीते वा उत्तम कर्मों को तुच्छ समझते हैं वे देश 'किं कृत' वा 'कीकट' हैं उन देशों के (ते) वे निवासी लोग (गावः) गौओं का (किं कृण्वन्ति) क्या उपयोग लेते हैं, कुछ भी उपयोग नहीं लेते। क्योंकि वे (न) न तो (आशिरं) खाने पीने योग्य दूध आदि (दुह्रे) दुहते हैं और (न घर्मं तपन्ति) न घृत ही तपाते हैं। इस प्रकार हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (प्रमगन्दस्य)

अधिक धन प्राप्त हो इस आशा से अन्यों को देने वाले पुरुषों के (वेदः) धन को (नः आभर) हमें प्राप्त करा और (नः) हमारे बीच में जो (नैचाशाखं) नीचे की तरफ कुप्रवृत्तियों में अपनी शाखा, शक्तियों का दुरुपयोग करने वाले को तू (रन्धयः) वश कर। ऐश्वर्यवान् व्यापारी वा राजा का कर्त्तव्य है कि जिन देशों के लोग गौ आदि का उपयोग न करते हों उनकी गौएं व्यापार आदि द्वारा अपने देशों में लावें और उनका उत्तम उपयोग लेवें।

स॒स॒र्प॒रीर॑म॑तिं॒ बाध॑माना बृ॒हन्मि॑माय ज॒मद॑ग्निदत्ता।
आ सूर्य॑स्य दुहि॒ता त॑तान॒ श्रवो॑ दे॒वेष्व॒मृत॑मजु॒र्य॑म् ॥१५॥२१॥

भा०—जैसे (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य से उत्पन्न कन्यावत् उषा (ससर्परीः) सर्वत्र व्यापने वाली (जमदग्निदत्ता) प्रज्वलित अग्निमय किरणों से प्रदान की हुई (बाधमाना) अन्धकार को दूर करती हुई (बृहत् अमतिम् मिमाय) बड़े उत्तम रूप को प्रकट करती है वैसे ही (जमदग्निदत्ता) जमदग्नि अर्थात् चक्षु द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपने भीतर धारने वाली, (ससर्परीः) सर्वत्र दूर तक व्यापने वाली, (अमतिं) अज्ञान का नाश करने वाली वाणी (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान को (मिमाय) शब्द द्वारा उत्पन्न करती है। वह (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान प्रकाशक तेजस्वी पुरुष की सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली वाणी (देवेषु) ज्ञान की कामना करने वाले पुरुषों में (अमृतम्) अमृत, अविनश्वर (अजुर्यम्) कभी हानि को प्राप्त न होने वाले (श्रवः) श्रवणयोग्य ज्ञान को (आ ततान) विस्तृत करती है। इति इत्येकविंशो वर्गः ॥

स॒स॒र्प॒रीर॑भर॒त्तूय॑मे॒भ्योऽधि॒ श्रवः॒ पाञ्च॑जन्यासु कृ॒ष्टिषु॑।
सा प॒क्ष्या॒३॒॑ नव्य॒मायु॒र्दधा॑ना॒ यां मे॑ पलस्तिजमद॒ग्नयो॑ द॒दुः ॥१६॥

भा०—(यां) जिस वाणी को (मे) मुझे (पलस्तिजमदग्नयः) वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध, आत्माग्नि को प्रज्वलित करने वाले तेजस्वी पुरुष

(ददुः) देते हैं (सा) वह (पक्ष्या) पक्षों अर्थात् ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों का हित करने वाली, (ससर्परीः) सुख और ज्ञान को प्राप्त कराने वाली, शिष्य परम्परा से एक से दूसरे को प्राप्त होने वाली, (पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु) पांचों जनों में उत्पन्न मनुष्यादि प्रजाओं में (नव्यम्) नया (आयुः) जीवन (दधाना) धारण कराती हुई, (एभ्यः) इनको (तूयम्) शीघ्र ही (श्रवः) श्रवण योग्य ज्ञान (अधि-अभरत्) धारण कराती है।

स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥ १७ ॥

भा०—स्त्री और पुरुषो! राजा और प्रजाजन! दोनों (स्थिरौ) स्थिर, स्थितिमान् होकर भी (गावौ) एक दूसरे के पास जाने वाले एक दूसरे को प्राप्त (भवताम्) होओ। (अक्षः) रथ में लगे अक्ष, धुरा के समान चक्षु के समान द्रष्टा, पुरुष (वीडुः) बलवान् वीर्यवान् हो। (ईषा) रथ में लगे ईषा, दण्ड के समान आगे २ चलने वाली दर्शनीय स्त्री (मा वि बर्हिः) गृह से उखड़ न जाय। (युगम्) रथ के जुए के समान परस्पर का जोड़ा (मा वि शारि) एक दूसरे के विरुद्ध होकर नष्ट न हो। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (पातल्ये) गिरने वालों, मर्यादा से च्युत होने वालों को (शरीतोः) विनष्ट होने से पूर्व ही (ददताम्) योग्य जीवन सामग्री प्रदान करे। हे (अरिष्ट नेमे) 'अरिष्ट' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि से रहित शुभ मार्ग में ले जाने वाले नायक! (नः) हमें तू (अभिसचस्व) सदा प्राप्त हो।

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! तू (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (बलं धेहि) बल को धारण करा। (नः) हमारे (अनडुत्सु) गौ, बैल आदि प्राणि-वर्गों में (बलं धेहि) बल प्रदान कर। तू (नः) हमारे (तोकाय) पुत्र और (तनयाय) छोटे बालक और बड़े पुत्रादि, उनके और हमारे (जीवसे)

जीवन के लिये (बलं) बल दे। (त्वं हि) तू निश्चय से (बलदाः) बल का दाता (असि) है।

अ॒भि व्य॑यस्व खदि॒रस्य॒ सा॒रमोजो॑ धेहि स्पन्दने शिंश॒पाया॑म्।
अक्ष॑ वीळो वीळित वी॒ळय॑स्व॒ मा यामा॑द॒स्मादव॑ जीहिपो नः॥१९॥

भा०—हे (वीळो) वीर्यवान्! हे (वीळित) विविध प्रजाओं से प्रशंसित पुरुष! तू (खदिरस्य सारम्) खदिर वृक्ष के सार अर्थात् बल-युक्त, (खदिरस्य) शत्रुहिंसक सेना के (सारम्) प्रबल भाग को लक्ष्य करके (अभि वि अयस्व) विशेष रीति से व्यय कर और (स्पन्दने) चलने के अवसर में (शिंशपायाम्) शीशम के समान दृढ़ रथसैन्य पर स्थिर होकर (ओजः धेहि) पराक्रम कर। हे (अक्ष) अध्यक्ष! हे (वीळो) वीर्य-वान् पुरुष! तू (नः) हमें (अस्मात्) इस (यामात्) प्रहर से आगे या इस प्रकार के उत्तम प्रबन्ध से (मा अव जीहिपः) मत वञ्चित रख।

अ॒यम॒स्मान्वन॒स्पति॒र्मा च॒ हा मा च॑ रीरिषत्।
स्व॒स्त्या गृ॒हेभ्य॒ आव॒सा आ वि॒मोच॑नात्॥२०॥२२॥

भा०—जैसे 'वनस्पति' काष्ठ का बना रथ घर पहुंचने, यात्रा समाप्ति और अश्वादि मोचन तक साथ नहीं छोड़ता है, वैसे ही (अयम्) यह (वनस्पतिः) महावृक्ष के समान किरणों के पालक सूर्य के समान धन में समान भाग लेने वाले वा सेवा करने वालों का पालक, (अस्मान्) हमें (मा हाः) त्याग न करे। (मा च रीरिषत्) कभी विनाश न करे। वह (आ अवसे) कार्य समाप्ति तक और (आ विमोचनात्) अवकाश या छुट्टी के अवसर तक भी (आ गृहेभ्यः) घरों तक पहुंच जाने तक भी हमारा त्याग न करे। इति द्वाविंशो वर्गः॥

इन्द्रो॒तिभि॑र्बहु॒लाभि॑र्नो अ॒द्य या॑च्छ्रे॒ष्ठाभि॑र्मघवञ्छूर जिन्व।
यो नो॒ द्वेष्ट्यध॑र॒: सस्प॑दीष्ट॒ यमु॑ द्वि॒ष्मस्तमु॑ प्रा॒णो ज॑हातु॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (यातु-श्रेष्ठाभिः) शत्रु-हिंसा में उत्तम (बहुलाभिः) बहुतसी (ऊतिभिः) रक्षक सेनाओं से (नः) हमारा (जिन्व) विजय कर। हे (मघवन्) धनैश्वर्यन्! हे (शूर) वीर! (नः) हमसे (यः अधरः) जो नीचे रहकर (द्वेष्टि) द्वेष करता है (सः पदीष्ट) वह नीचे गिरे और (यम् उ) जिससे हम (द्विष्मः) द्वेष करें (तम् उ) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) त्याग दे।

परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥

भा०—(उखा चित्) जैसे डेगची (येषन्ती) उबलती हुई (प्रयस्ता) खूब सन्तप्त होकर (फेनम् अस्यति) फेन बाहर फेंकती है वैसे ही हे (इन्द्र) सेनापते! (उखा) शत्रु को उखाड़ कर फेंकने वाली सेना (येषन्ती) आगे बढ़ती हुई और (प्रयस्ता) अच्छी प्रकार प्रयास, उद्यम या प्रहार करती हुई (फेनम्) शत्रुहिंसक शस्त्र (अस्यति) शत्रु पर फेंके और (परशुं चित्) लोहार या अग्नि जैसे फरसे को तपाता है वैसे ही वह (परशुं) दूसरे शत्रु की शीघ्रगामिनी सेना को (वि तपति) विविध उपायों से पीड़ित करे। (शिम्बलं चित्) सेमर के वृक्ष, शाखा पुष्प वा पत्र के समान शत्रु को सुख से (विवृश्चति) विविध उपायों से काट दे।

न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥

भा०—(जनासः) जो मनुष्य (सायकस्य) शस्त्रादि के समान प्राणों का अन्त करने वाले के सम्बन्ध में (न चिकिते) कुछ भी नहीं जानते। वे (मन्यमानाः) अभिमान करते हुए अपने आपको (लोधं पशु) लोभवश हुए पशु के समान आगे ले जाते हैं। (वाजिना) ज्ञानैश्वर्य से युक्त पुरुष से कभी (अवाजिनम्) अज्ञानी पुरुष को लाकर (न हासयन्ति) हंसी नहीं कराते और बुद्धिमान् पुरुष (अश्वात् पुरः) घोड़े के समक्ष (गर्दभं न

नयन्ति) गधे को उसके मुकाबले पर नहीं लाते। युद्ध में जैसे प्राणान्तकारी शस्त्र बल को न जानकर भी अभिमानी सैनिक वेतन के लोभ में पड़कर अपने आपको आगे बढ़ाते हैं। वैसे ही मनुष्य प्रायः अन्तकारी मृत्यु के विषय में कुछ न जान कर केवल अभिमान से, अपने को भावी लोभ में पड़ कर आगे बढ़ाते हैं।

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४।२३।४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे) ये (भरतस्य) अपने भरण पोषण कारी स्वामी के (पुत्राः) पुत्र के समान भृत्य, सैनिक (चिकितुः न) ज्ञानवान् के समान (अपपित्वम्) भागना या पीछे हटना और (प्रपित्वम्) आगे बढ़ना, अपयान और प्रयाण (हिन्वन्ति) करते हैं और वे (अरणं) प्रेरित (अश्वं न) अश्व के समान (नित्यं) नित्य (आजौ) संग्राम में (ज्यावाजं) धनुष की डोरी का घोष (परि नयन्ति) आगे पहुंचाते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५४] प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः। १२ स्वराट् पंक्तिः। २, ३, ६, ८, १० ११, १३, १४ त्रिष्टुप्। ४, ७, १५, १६, १८, २०, २१ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। १७ भुरिक् त्रिष्टुप्। १९, २२ विराट् त्रिष्टुप् ॥

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥ १ ॥

भा०—विद्वान् लोग (महे) बड़े आदरणीय (विदथ्याय) ज्ञान और संग्रामकार्य में कुशल (ईड्याय) पूजनीय और ज्ञानी पुरुष के (शश्वत्) निरन्तर (इमं शूषं) इस बल का सम्पादन (प्रजभ्रुः) किया करें। वह (अग्निः) नायक (कृत्वः) कर्त्ता होकर (दम्येभिः अनीकैः) दमन करने

योग्य सेनाओं से युक्त हो, (नः) हमें (शृणोतु) सुने, हमारी प्रार्थनाएं सुने और (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (दिव्यैः) दिव्य तेजों और सैन्यों से (अजस्रः) कभी मारा न जाकर (नः शृणोतु) हमारी सुना करे।

महि॑ म॒हे दि॒वे अ॑र्चा पृथि॒व्यै कामो॑ म इ॒च्छञ्च॑रति प्रजा॒नन्।
ययो॑र्ह॒ स्तोमे॑ वि॒दथे॑षु दे॒वाः स॑प॒र्यवो॑ मा॒दय॑न्ते॒ सचा॒योः ॥२॥

भा०—(ययोः) जिनके (स्तोमे) स्तुति योग्य शासन में (विदथेषु) ज्ञानों और संग्रामों के निमित्त (सपर्यवः देवाः) सेवाकुशल विद्या और धन के अभिलाषी लोग (आयोः सचा) जीवन भर के सम्बन्ध से (मादयन्ते) प्रसन्न रहते हैं हे विद्वन्! तू (प्रजानन्) ज्ञानवान् होकर उन (महे दिवे) बड़े तेजस्वी सूर्य और (महे पृथिव्यै) पूजनीय पृथिवी के समान तेजस्वी और सर्वाश्रय राजा रानी दोनों का (महि अर्च) बड़ा आदर कर। उन में से (मे कामः) मुझ प्रजा का इच्छुक (इच्छन्) राजा मुझे चाहता हुआ (चरति) विचरता है।

यु॒वोर्ऋ॒तं रो॑दसी स॒त्यम॑स्तु म॒हे षु णः॑ सुवि॒ताय॒ प्र भू॑तम्।
इ॒दं दि॒वे नमो॑ अग्ने पृथि॒व्यै स॑प॒र्यामि॒ प्रय॑सा यामि॒ रत्न॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के उपकारक स्त्री पुरुषो! (युवोः) तुम दोनों का (ऋतम्) एक दूसरे को प्राप्त होने का कारण ज्ञान और धन, आचरण सब (सत्यम् अस्तु) सत्य हो। (नः) हमारे बीच आप दोनों (महे सुविताय) बड़े भारी ऐश्वर्य की प्राप्ति और (सु-इताय) पूजनीय आचार और सुखप्राप्ति के लिये (प्र सु भूतम्) अच्छी प्रकार उत्तम होकर रहो। हे (अग्ने) विद्वन्! (इदं) यह (नमः) आदर वचन, अन्न आदि (दिवे) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष और (पृथिव्यै) पृथिवी के समान आश्रयप्रद, उत्तम सन्तानजनक माता के लिये भी हो! मैं उन दोनों की (प्रयसा) अन्नादि से, वा प्रयत्नपूर्वक (सपर्यामि) सेवा

करूं और उनसे मैं (रत्नम्) उत्तम धन और सुख की (यामि) पुत्रवत् याचना करूं ।

उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋतावरी) सदा सत्य ज्ञान और धनैश्वर्य के स्वामी (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाले वा प्रजाजनों को धारा को तटों के समान व्यवस्था में रखने वाले विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (उतो हि) निश्चय से (पूर्व्याः) पूर्व के विद्वानों में कुशल (सत्यवाचः) सत्य वाणी वाले ऋषि लोग (वां) आप दोनों को (आविविद्रे) आदरपूर्वक प्राप्त करें । हे (पृथिवि) सबके आश्रय और उत्पादक पृथिवी के समान पूज्य देवि ! (शूरसातौ) वीर पुरुषों के प्राप्त करने योग्य (समिथे) संग्राम में (नरः चित्) सभी नेता (वां वेविदानाः) आप दोनों को प्राप्त करते हुए सदा (ववन्दिरे) अभिवादन करें ।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३ का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(इह) इस संसार में (अद्धा) साक्षात् यथार्थ (कः वेद) कौन जानता है और (कः) कौन (देवान्) विद्वान् और ज्ञान कामना करने वाले शिष्यों को (प्र वोचत्) प्रवचन द्वारा उपदेश करता है । (का) कौनसा (पथ्या) सन्मार्ग (सम् एति) भली प्रकार उद्देश्य तक पहुंचता है, ज्ञाता, प्रवक्ता और सन्मार्ग पथिक सभी दुर्लभ हैं । (परेषां) सर्वोत्कृष्ट सूक्ष्म (गुह्येषु) गुहा अर्थात् बुद्धि द्वारा जानने योग्य गूढ़ (व्रतेषु) कर्मों में (या) जो (अवमा) अन्तिम आधारभूत (सदांसि) आश्रय-स्थान, विद्यास्थान वा शास्त्रसिद्धान्त हैं वे (एषाम्) इन विद्वानों को ही (ददृश्रे) दिखाई देते हैं । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

क॒विर्नृ॒चक्षा॑ अ॒भि षी॑मचष्ट ऋ॒तस्य॒ योना॒ विघृ॑ते॒ मद॑न्ती ।
नाना॑ चक्राते॒ सद॑नं॒ यथा॒ वेः स॑मा॒नेन॒ क्रतु॑ना संविदा॒ने ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (ऋतस्य योनौ) जल के आश्रय आकाश में स्थित (नृचक्षाः) सबका द्रष्टा सूर्य (विघृते) विशेष रूप से प्रकाशमान्, विविध रूप से जलों को धारण करने वाली, (मदन्ती) उससे तृप्त करने वाले आकाश और पृथिवी को (अभि अचष्ट सीम्) सब प्रकार से प्रकाशित करता है (वेः सदनं यथा नाना चक्राते) पक्षी के घोंसले के समान वे दोनों गतिशील सूर्य के गृह के समान गमनस्थान बना रहे हैं और (समानेन क्रतुना) एक जैसे कर्म, जलदानादि, प्रजापालन आदि कार्य से (संविदाने) परस्पर एक दूसरे के साथ मिले रहते हैं वैसे ही (ऋतस्य योनौ) परम सत्कार के आश्रय में विद्यमान (विघृते) विशेष या विभिन्न २ प्रकार से ज्ञान और भौतिक तेज से प्रकाशित होने वाले (मदन्ती) एक दूसरे को सुख से तृप्त करते हुए जीव और प्रकृति को (कविः) क्रान्तदर्शी (नृचक्षाः) सब जीवों का द्रष्टा परमेश्वर (सीम्) सब प्रकार से (अभिचष्ट) साक्षात् देखता है। वे दोनों ही (वेः) गतिशील आत्मा के और (समानेन क्रतुना) समान कर्म और ज्ञान से (संविदाने) मिलकर (नाना सदनं) नाना प्रकार के स्थान या गृह के समान (चक्राते) बनाते हैं।

स॒मा॒न्या वियु॑ते दू॒रेअ॑न्ते ध्रु॒वे प॒दे त॑स्थतु॒र्जाग॒रूके॑ ।
उ॒त स्वसा॑रा युव॒ती भव॑न्ती॒ आदु॑ ब्रुवाते मिथु॒नानि॒ नाम॑ ॥७॥

भा०—स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य (समान्या) वे दोनों समान होकर एक दूसरे को प्रसन्न करने वाले, (वियुते) विशेप रूप, भिन्न प्रकृति होकर भी परस्पर संगत, (दूरे-अन्ते) दूर रहकर भी हृदय में समीप, (ध्रुवे पदे) स्थिर स्थान में (जागरूके) सदा जागृत सावधान (तस्थतुः) रहें। वे दोनों (युवती) युवावस्था को प्राप्त (स्वसारा) स्वयं एक दूसरे को प्राप्त होने वाले अथवा बहिन बहिन के समान परस्पर प्रेमयुक्त (भवन्ती) रहते हुए

(आत्) तदनन्तर (मिथुनानि नाम) परस्पर मिलकर रहने वाले जोड़ों २ के नाम (ब्रुवाते) कहते हैं, बतलाते हैं। अर्थात् नाना युगल नामों को धारण करते हैं।

विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद् ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥ ८ ॥

भा०—(एते) वे दोनों, आकाश और पृथिवी के समान स्त्री और पुरुष (विश्वा इत् जनिम) सभी प्रकार के प्राणियों का (संविविक्तः) सम्यक् रीति से विवेचन करें, अथवा (विश्वा जनिमा सं विविक्तः) अपने समस्त पूर्व जन्मों का विवेक करें। वे दोनों (महः देवान्) बहुत से दिव्य गुणों, विद्वान् पुरुषों को (बिभ्रती) धारण व पोषण करते हुए भी (न व्यथेते) कभी उद्विग्न, व्यथित या दुखी न हों। (एकम्) एक को तो (विश्वं) यह समस्त (एजत् ध्रुवं) जंगम और स्थावर (पत्यते) प्राप्त होता है और दूसरे को (पतत्रि) वेग से जाने वाला, (विषुणम्) सर्वत्र व्याप्त (जातम्) उत्पन्न संसार (विचरत्) विविध रूप से विचरता है या प्राप्त होता है।

सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्र) जिसमें (पनितारः) व्यवहार और उपदेश करने वाले (देवासः) विद्वान् वा कामनाशील पुरुष (एवैः) अपने ज्ञानों सहित (उरौ) बड़े भारी (व्युते पथि) खुले, विस्तृत मार्ग में रहकर भी (अन्तः तस्थुः) भीतर गृह में विराजते हैं। मैं उस (सना) सनातन, (पुराणम्) प्राचीन (नः) अपने (तत्) परम (महः) पूजनीय, (पितुः जनितुः जामि) पालक और उत्पादक माता पिताओं के परस्पर सम्बन्ध को (अधि एमि) सदा याद रक्खूं।

इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृण्वन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः १०।२५

भा०—हे (रोदसी) आकाश और भूमि के समान परस्पर उपकारक स्त्री पुरुषो ! मैं आप दोनों के कर्त्तव्य-विषय में ही (इमं स्तोमं) इस वेदोपदेश को (प्रब्रवीमि) अच्छी प्रकार उपदेश करता हूँ । (ऋदूदराः) सत्य को अपने भीतर धारण करने वाले अथवा (ऋदूदराः = मृदूदराः) भीतर से कोमल हृदय वाले, (अग्निजिह्वाः) अग्नि के तुल्य अज्ञान-अन्धकार में भी प्रकाशित करने वाली वाणी को धारण करने वाले (सम्राजः) एक समान कान्ति से शोभा देने वाले, (युवानः) युवा (आदित्यासः) सूर्यवत् तेजस्वी, अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले, (कवयः) क्रान्तदर्शी (प्रपथानः) सेवा, सन्तति द्वारा विस्तृत होने वाले और (मित्रः वरुणः) परस्पर मित्र, स्नेह भाव से रहने और एक दूसरे को वरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष स्त्री भी (शृणवत्) इस वेदोपदेश को श्रवण करें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११॥

भा०—हे (सवितः) ज्ञान और वीर्य द्वारा शिष्यों और पुत्रों के उत्पादक विद्वान् पुरुष ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! आप (देवेषु) विद्या, सुख की कामना करने वाले शिष्यों और पुत्रजनों के हित अथवा देवों, विद्वानों में विद्यमान, (श्लोकम्) वेद वाणी वा ज्ञान-वाणी को (अश्रेः) सेवन कर और (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (सर्वतातिम्) सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य (आ सुव) प्रदान कर । (सविता) सर्वप्रकाशक सूर्य जैसे (हिरण्यपाणिः) हाथों के समान तेजोयुक्त किरणों वाला होने से 'हिरण्य-पाणि' है वैसे ही तेजोमय धातु 'हिरण्य' को अपने हाथ में रखने वाला या उस धातु से लोक व्यवहार करने में समर्थ वा हित और रमणीय

वचनों को प्रस्तुत करने वाली वाणी से युक्त ही (सविता) शिष्य पुत्रादि का उत्पादक विद्वान् और पिता हो जो (सुजिह्वः) उत्तम वाणी वाला होकर (दिवः विदथे) ज्ञान प्रकाश के लाभ करने में (त्रिः) तीनों प्रकार से या ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों कालों में वा बाल, युवा, वार्धक्य तीनों दशाओं में (पत्यमानः) पति अर्थात् पालक के समान आचरण करता हो।

सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२ ॥

भा०—(सुकृत्) उत्तम कार्य करने वाला और कर्मों को उत्तम रीति से करने वाला, (सुपाणिः) सिद्धहस्त उत्तम पूजनीय व्यवहार और स्तुति वचनों वाला, (स्ववान्) धनैश्वर्य से युक्त और आत्मसामर्थ्य से युक्त, जितेन्द्रिय (देवः) तेजस्वी, दाता (त्वष्टा) सूर्य, विद्युत् के समान प्रकाशक होकर पुरुष (नः) हमारी (अवसे) रक्षा और तृप्ति के लिये (तानि) वे नाना पदार्थ (धात्) धारण करावें। हे (ऋभवः) सत्य वा धनैश्वर्य से प्रकाशित और सामर्थ्ययुक्त, तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पूषण्वन्तः) पृथिवी वा पोषक पदार्थों के पालक नायकों से युक्त होकर (नः मादयध्वम्) हमें प्रसन्न करो। (ऊर्ध्व-ग्रावाणः) उपदेष्टा पुरुष को ऊंचा रखने वाले और ग्रावा अर्थात् क्षत्रिय को अपने ऊपर नायक वा अध्यक्ष नियत करने वाले प्रजाजन (अध्वरम्) अपने में हिंसारहित समाज को (अतष्ट) बनावें।

विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥ १३ ॥

भा०—(विद्युत्-रथाः) विद्युत् शक्ति से युक्त रथ वाले वा विद्युत् के बल से जाने वाले, (मरुतः) वायुवत् बलवान् (ऋष्टिमन्तः) नाना ज्ञान, गतियों वा शत्रुहिंसक शस्त्रों को धारण करने वाले, (दिवः मर्याः) तेजस्वी

सूर्य के समान नायक सेनापति के अधीन मनुष्य, शत्रुमारक (ऋतजाताः) ज्ञान और धनादि से प्रसिद्ध, (अयासः) ज्ञानवान्, निरन्तर चलने वाले, (यज्ञियासः) परस्पर मैत्री आदि करके रहने वाले (तुरासः) वेगवान् पुरुष और (सरस्वती) ज्ञान वाली स्त्री और वेगवती सेना, ये सभी (शृण-वन्) ज्ञान ग्रहण करें और (सहवीरं रयिम्) वीर पुरुषों एवं पुत्रादि से युक्त ऐश्वर्य (धात) धारण करें।

विष्णुं स्तोमा॑सः पुरुद॒स्मम॒र्का भग॑स्येव का॒रिणो॒ याम॑नि ग्मन् ।
उ॒रु॒क्रमः॑ क॒कुहो॒ यस्य॑ पू॒र्वीर्न म॑र्धन्ति यु॒वत॑यो॒ जनि॑त्रीः ॥ १४ ॥

भा०—(स्तोमासः) स्तुतिशील, विद्वान् (अर्काः) सूर्य के समान तेजस्वी लोग (भगस्य इव कारिणः) धन के निमित्त कार्यकर्त्ता, भृत्य लोगों के समान (पुरुदस्मम्) बहुत से विघ्नों को नष्ट करने में समर्थ, (विष्णुम्) विस्तृत सामर्थ्य वाले पुरुष को (यामनि) राज्य के नियंत्रण के कार्य में (ग्मन्) प्राप्त करें (यस्य) जिस (उरुक्रमः) बड़े पराक्रमी पुरुष की (ककुहः) सर्व दिशावासी प्रजाएं (पूर्वीः) समृद्ध रहकर भी (युवतयः जनित्रीः) युवती स्त्रियों के समान (न मर्धन्ति) पीड़ित नहीं करतीं।

इन्द्रो॒ विश्वै॑र्वी॒र्यैः॑ पत्य॑मान उ॒भे आ प॑प्रौ॒ रोद॑सी महि॒त्वा ।
पु॒र॒न्द॒रो वृ॑त्र॒हा धृ॒ष्णुषे॑णः सं॒गृभ्या॑ न॒ आ भ॑रा॒ भूरि॑ प॒श्वः ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (विश्वैः वीर्यैः) सब प्रकार के बलों से (पत्यमानः) ऐश्वर्यवान् पति के समान स्वामी होता हुआ (महि-त्वा) महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (आ पप्रौ) सब प्रकार से पूर्ण करे। वह (पुरंदरः) शत्रुगण को तोड़ने और अपने पुर को धारने वाला (वृत्रहा) विघ्नकारी दुष्टों का नाशक (धृष्णु षेणः) शत्रु पराजयकारी सेना का स्वामी होकर तू (नः) हमें (संगृभ्य) अच्छी प्रकार संग्रह करके (भूरि पश्वः आभर) बहुत पशु सम्पदा दे। इति षड्विंशो वर्गः ॥

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥

भा०—(मे) मुझ प्रजाजन के (पितरौ) पिता के समान राजा और सेनापति और गृह में वर और वधू, पति और पत्नी प्रजा के पालक हों, वे दोनों (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले हों और (बन्धु-पृच्छा) सब मनुष्यों को बन्धु के तुल्य जान कर उनके सुख दुःख पूछने वाले हों। वे दोनों (अश्विनोः) सूर्य चन्द्र दोनों के (चारु नाम) उत्तम स्वरूप के तुल्य (सजात्यम्) जाति के अनुरूप ही नाम, रूप धारण करते हुए (युवं) तुम दोनों (नः) हमें (रयिदौ स्थः) ऐश्वर्य के दाता रहो। तुम दोनों (अकवैः) अकुत्सित उत्तम कर्मों से (अदब्धा) कभी पीड़ित न होते हुए (रयीणां दात्रं) ऐश्वर्यों के दान कर्म की (रक्षेथे) रक्षा करो।

महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥

भा०—हे (कवयः) क्रान्तदर्शी पुरुषो! (वः) आप लोगों का (तत्) वह (महत्) बड़ा (चारु) उत्तम (नाम) स्वरूप और नाम है (यत्) जो (विश्वे) आप सब लोग (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राजा वा अज्ञाननाशक आचार्य के अधीन रहकर (देवाः भवथ) धन और विद्या एवं विजय की कामनावान् हो। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसनीय! तू (प्रियेभिः) प्रिय (ऋभुभिः) सत्य, ज्ञान वा धनों से प्रकाशित पुरुषों वा शिष्यों सहित (सखा) सबका सुहृत् होकर रह। हे विद्वानो! तुम लोग (नः) हमें (इमां धियं) इस बुद्धि वा वाणी को (सातये) सत्यासत्य के विवेक और धनादि के लिये (तक्षत) प्रकट करो।

अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप (यज्ञियासः) परस्पर दान, मैत्री, पूजादि करने वाले होओ। (नः) हमारा (अर्यमा) सूर्य समान तेजस्वी, शत्रु को वश करने वाला, न्यायाधीश वा राजा (अदितिः) अखण्ड शासक हो। (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष के (व्रतानि) कर्म भी (अदब्धानि) हिंसित न हों। आप सब लोग (नः) हमारे (गन्तोः) गमन योग्य मार्ग से (अनपत्यानि) हमारे सन्तानों के अयोग्य पापादि कर्मों को (युयोत) दूर करो। (नः) हमारा (गातुः) भूमि और गृह (प्रजावान्) प्रजाओं से युक्त और (पशुमान् अस्तु) पशुओं से समृद्ध हो।

देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम् ॥ १९ ॥

भा०—(देवानां) ज्ञानों का प्रकाश और ऐश्वर्यों का दान करने और तेजस्वी प्रकाशमान् पदार्थों के बीच (दूतः) प्रतापी, ज्ञानवान् (पुरुध) बहुत से ज्ञानों, धनों को धारण करने वाला, (प्रसूतः) ज्ञानादि से अभिषिक्त होकर (अनागान् नः) अपराधों से रहित हम लोगों को (सर्वताता) सब प्रकार से (वोचतु) उपदेश करे। (पृथिवी) पृथिवी के समान माता, (द्यौः) आकाश के समान पिता, (सूर्यः) सूर्य के समान विद्वान् पुरुष, (नक्षत्रैः) नक्षत्रों सहित (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष के समान नित्य गुणों से विराजमान प्रभु (उत आपः) और जलों के समान शान्त स्वभाव के आप्तजन ये सब (नः) हमारी बात (शृणोतु) श्रवण करें।

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०॥

भा०—(वृषणः) मेघों के समान सुखों के वर्षक (पर्वतासः) पर्वतों के समान अचल प्रजाओं के पालक वा कामनाओं को मेघों के तुल्य पूर्ण करने वाले, (ध्रुवक्षेमासः) स्थिर होकर रक्षा करने वाले (इळया) उत्तम वाणी, भूमि और कामना से (मदन्तः) हर्षित विद्वान् (नः शृण्वन्तु) हमारे

व्यवहार का श्रवण करें। (अदितिः) माता, पिता के तुल्य अखण्ड शासन वाला राजा (आदित्यैः) अधीन शासकों सहित (शृणोतु) कार्य श्रवण करे। (मरुतः) शत्रुहन्ता वीर लोग (नः) हमें (भद्रम्) सुखकारक (शर्म) गृह (यच्छन्तु) प्रदान करें।

सदा॑ सु॒गः पि॑तु॒माँ अ॑स्तु॒ पन्था॒ मध्वा॑ देवा॒ ओष॑धीः॒ सं पि॑पृक्त।
भगो॑ मे अग्ने स॒ख्ये न मृ॑ध्या॒ उद्रा॒यो अ॑श्यां॒ सद॑नं पुरु॒क्षोः॥२१॥

भा०—राष्ट्र में हे (देवाः) विद्वान् लोगो! (पन्थाः) मार्ग (सदा) सदा (सुगः) सुखपूर्वक जाने योग्य और (पितुमान्) अन्न जल आदि प्रजापालक पदार्थों से युक्त (अस्तु) हो। हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (मध्वा) अन्न, जल और मधु के साथ (ओषधीः) ओषधियों को (संपिपृक्त) मिलाकर उपयोग करो। (मे भगः) मेरा ऐश्वर्य हो। हे (अग्ने) विद्वन्! हे नायक! (मे सख्ये) मेरे साथ मित्रता करने पर तू (न मृध्याः) मुझे नष्ट मत कर। स्वयं भी नष्ट न हो। मैं प्रजाजन (पुरुक्षोः) बहुत अन्न के स्वामी तेरे (रायः) ऐश्वर्यों और (सदनं) गृह या शरण को (उत् अश्याम्) उत्तम रीति से प्राप्त करूं और उपभोग करूं।

स्वद॑स्व ह॒व्या समिषो॑ दिदीह्यस्म॒द्र्य१॒॑क् सं मि॑मीहि॒ श्रवां॑सि।
विश्वाँ॑ अग्ने पृ॒त्सु ताञ्जे॑षि॒ शत्रू॑न॒हा विश्वा॑ सु॒मना॑ दीदिही नः॥२२॥२७

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! अग्नि के समान प्रकाशक! तू (हव्या) स्वीकार योग्य (श्रवांसि) अन्नों का (स्वदस्व) स्वाद ले। तू (हव्या श्रवांसि) ग्रहण और श्रवण योग्य उत्तम २ वचन उपदेश, (इषः) उत्तम कामनाएं और वृष्टि, अन्नादि और शक्ति (सं दिदीहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर, उनको (सं मिमीहि) भली प्रकार उपदेश कर। तू (पृत्सु) संग्रामों में (तान् विश्वान्) उन समस्त शत्रुओं को (जेषि) विजय कर। (सुमनाः) शुभ चित्त और ज्ञान से युक्त होकर (विश्वा अहा) सब दिनों (नः दीदिहि) हमें प्रकाशित कर। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[५५] प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ उषाः। २—१० अग्निः। ११ अहोरात्रौ। १२—१४ रोदसी। १५ रोदसी द्युनिशौ वा। १६ दिशः। १७—२२ इन्द्रः पर्जन्यात्मा, त्वष्टा वाग्निश्च देवताः॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ६—१२, १६, २२ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ८, १३, १६, २१ त्रिष्टुप्। १४, १५, १८ विराट्त्रिष्टुप्। १७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। ५, २० स्वराट् पंक्तिः॥

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥

भा०—जैसे (गोः पदे) आदित्य सूर्य के रूप में (महत् अक्षरं विजज्ञे) भारी अविनाशी सामर्थ्य प्रकट होता है (यत्) जिससे (अध) अनन्तर (पूर्वाः उषसः वि ऊषुः) पूर्वकाल की अनादि परम्परा से होने वाली उषाएं भी प्रकट होती रही हैं और (देवानां) विद्युत् आदि चमकने वाले पदार्थों और मेघादि जीवनप्रद पदार्थों के तथा जीवन, भोगादि के कामना वाले जीवों से भी सब (व्रता) कर्म (उप प्र भूषन्) उसी से होते रहते हैं वह (देवानाम्) सब दिव्य पदार्थों का (एकम्) एक (महत्) बड़ा (असुरत्वम्) प्राणों में रमने वाला सामर्थ्य है। वैसे ही (गोः पदे) वाणी के ज्ञान में (महत् अक्षरं) बड़ा भारी अविनश्वर ब्रह्म का ज्ञान है (यत्) जिससे (पूर्वा उषसः वि ऊषुः) प्रिय लगने वाली कान्तियां, ज्ञानदीप्तियां प्रकट होती हैं। जिस वाणी या अक्षर रूप ब्रह्म से (देवानां) अध्यात्म में प्राणों और विद्वानों के समस्त कर्म भी प्रकट होते हैं। वही विद्वानों का एक बड़ा भारी (असुरत्वम्) प्राणों के भीतर रमने वाला अद्वितीय ब्रह्म है।

मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) विजयादि के इच्छुक लोग, विलासी और आलसी

लोग (अत्र) इस लोक में (नः) हम पर (मो सु जुहुरन्त) कभी बलात्कार न करें। हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष! हे विद्वन् (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, (पितरः) पालक (पदज्ञाः) प्राप्तव्य उत्तम पद को जानने वाले पुरुष भी हम पर (मा जुहुरन्त) प्रहार वा बलात्कार न करें। (पुराण्योः सद्मनोः अन्तः), सनातन से चले आये आकाश और भूमि के समान राजसभा और प्रजा-जनसभा दोनों के बीच (केतुः) कार्य-व्यवहारों के जानने और जनाने हारे सूर्य वा ध्वजा के समान तेजस्वी और उच्च पद पर स्थित माननीय पुरुष ही (देवानां) सब विद्वानों के बीच (एकम्) एक मात्र (असुरत्वम्) बलवान् पुरुषों के शौर्य का (महत्) सबसे बड़ा अद्वितीय उपलक्षण हो।

वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३ ॥

भा०—(मे) मेरी (कामाः) अभिलाषाएं (पुरुत्रा) आत्मा को तृप्त एवं प्रिय सुखों द्वारा प्रसन्न करने वाली इन्द्रियों वा प्रिय पदार्थों में (वि पतयन्ति) विविध रूपों से जाती हैं। तो भी मैं (पूर्व्याणि) पूर्व विद्वानों द्वारा उपदिष्ट कर्मों को (अच्छ) साक्षात् (दीद्ये) करके प्रकाशित होऊं। हम लोग (समिद्धे अग्नौ) नायक के अच्छी प्रकार तेजस्वी ज्ञानवान् रूप में प्रकट होने पर, उसके प्रकाश में रहकर सदा (ऋतम्) उस सत्य आचार और ज्ञान और परमेश्वर तत्त्व का (वदेम) उपदेश करें जो (देवानाम्) विद्वानों के लिये (महत्) बड़ा भारी (एकम्) एक अद्वितीय (असुरत्वं) प्राणों में बल उत्पन्न करने वाला है।

समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (राजा) सूर्य सर्वत्र (समानः) समान भाव से प्रकाशित होने वाला, (शयासु) अव्यक्त रूप में व्यापक दिशा में (शये) व्यापता है। (वना अनुप्रयुतः) किरणों के अनुसार सब दिशाओं में फैलता, आ-

काश और भूमि में से एक (द्यौः) माता के समान उसको (भरति) अपनी कोख में धारण करती (क्षेति) एक उसके साथ रहती है अर्थात् प्रकाश लेती है। वह सब (देवानां) तेजस्वी पिण्डों के बीच एक अद्वितीय भारी अन्धकार को दूर करने वाला बल है और जैसे अग्नि प्रकाशमान नाना पदार्थों में विद्यमान शान्त जलादि पदार्थों में अप्रकट रूप से मानो सोता सा है, (वना अनु प्रयुतः) काष्ठों में विशेष रूप से प्रकट होता, उसको एक द्यौ या सूर्य धारण करता, माता पृथिवी उसको अपने भीतर रखती है। ऐसे ही (राजा) सबमें तेजस्वी (समानः) समस्त प्रजाओं में एक समान व्यवहारकारी ज्ञानसम्पन्न (पुरुत्रा) नाना प्रजाओं के बीच (विभृतः) विविध प्रकार से धारण किया जाता है। वह (शयासु) प्रसुप्त या शान्तभाव से विद्यमान प्रजाओं के बीच में (शये) स्वयं भी शान्तभाव से रहे और वह (वना अनु) ऐश्वर्यों के अनुसार बन के तुल्य विभक्त सैन्य-दलों के ऊपर नायक रूप में (प्रयुतः) नियुक्त हो। उसके नीचे दो सभाएं हों जिनमें से (अन्या) एक उस (वत्सं) वन्दना योग्य सभापति को (वत्सं) बालक को माता के समान (भरति) पुष्ट करती है। दूसरी (माता) प्रजाजन सभा वा भूवासिनी प्रजा उसको (क्षेति) बसाती है। वह (देवानां) तेजस्वी राजाओं वा वीरों के बीच में (एकं महद् असुरत्वम्) एक बड़ी भारी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सत्ता है।

आ॒क्षित्पूर्वा॒स्वप॑रा अनू॒रुत्स॒द्यो जा॒तासु॒ तरु॑णीष्व॒न्तः ।
अ॒न्तर्व॑तीः सुवते॒ अप्र॑वीता म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥५॥२८॥

भा०—जो राजा (पूर्वासु) पहले प्राप्त हुई प्रजाओं में (आक्षित्) निवास करता है और (अपराः) वह अन्य प्रजाओं को भी (अनुरुत्) वश करने की कामना करता है, वह (सद्यः) शीघ्र ही नयी (जातासु) प्राप्त हुई प्रजाओं में और (तरुणीषु) तरुण, शक्ति से पूर्ण प्रजाओं के (अन्तः) बीच रहे जो प्रजाएं (अप्रवीताः) अभी अच्छी प्रकार रक्षित नहीं हैं वे भी (अन्तर्वतीः) राष्ट्रसीमा के भीतर होकर (सुवते) ऐश्वर्य से

युक्त हो जाती हैं। यह सब (देवानाम्) विजयी पुरुषों का ही (एकम्) एकमात्र (असुरत्वम्) शत्रु को उखाड़ फेंकने का (महत्) बड़ा भारी सामर्थ्य है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६ ॥

भा०—राजा (द्विमाता) राजसभा और प्रजासभा दोनों को मातृवत् उत्पादक रखकर (परस्तात्) दूर देश में भी (द्विमाता वत्सः एकः) दो माता पिता के बीच एक बच्चे के समान बिना प्रतिबन्ध के विचरे। अथवा 'द्विमाता' एक ज्ञान कराने वाली माता, राजसभा, दूसरी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेना दोनों का स्वामी, अथवा स्वराष्ट्र परराष्ट्र, मित्र शत्रु दोनों को मापने वाला, दोनों को अपने वश करने वाला राजा दूर देश में भी (शयुः) सुखपूर्वक शयन करता हुआ, निर्बन्ध होकर विचर सकता है। (मित्रस्य वरुणस्य) सब प्रजा के मित्र, प्रजा को मरण से बचाने वाले सर्वश्रेष्ठ, सर्वशत्रुवारक, सबसे प्रेमपूर्वक वरण करने योग्य पुरुष के (ता व्रतानि) वे नाना कर्म. वह सब (देवानाम् एकम् महत् असुरत्वम्) विजयकामी, वीरों का एक अद्वितीय शत्रुच्छेदक बल है।

द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ७ ॥

भा०—(द्विमाता) भूमि और आकाश दोनों, इह और पर दोनों लोकों का बनाने वाला, (होता) सबको अपने में धारण करने और सब ऐश्वर्यों का देने वाला, (विदथेषु) यज्ञों, संग्रामों और विज्ञान करने योग्य पृथिव्यादि लोकों में (सम्राट्) सम्राट् के समान सबका स्वामी (बुध्नः) सबका आधार होकर (अनु अग्रम्) हरेक पदार्थ की चोटी २ तक में (चरति) विद्युत् के समान व्यापता और (क्षेति) निवास करता है। उसी को लक्ष्य करके (रण्यवाचः) रमणीय वाणी वाले विद्वान् (रण्यानि) मनो-

हर वाणियां (प्र भरन्ते) प्रस्तुत करते हैं। वही (देवानां महत् एकम् असुरत्वम्) बड़ा भारी एक सर्वप्रेरक बल है।

शूर॑स्येव यु॒ध्य॑तो अन्त॒मस्य॑ प्रती॒चीनं॑ ददृशे॒ विश्व॑मा॒यत् ।
अ॒न्तर्म॒तिश्च॑रति नि॒ष्षिधं॒ गोर्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ८ ॥

भा०—(अन्तमस्य शूरस्य इव युध्यतः) अति समीपस्थ युद्ध करते हुए वीर पुरुष के आगे जैसे (विश्वम् आयत् प्रतीचीनं ददृशे) जो कोई भी आता है वह उससे पराजित होकर जाता है वैसे ही (अन्तमस्य) व्यापक परमेश्वर के (अन्तः) भीतर यह समस्त (विश्वम्) विश्व (आयत्) आता और (प्रतीचीनं दृश्यते) उसके पीछे उत्पन्न हुआ दिखाई देता है। वह परमेश्वर (मतिः) ज्ञानस्वरूप, सबका ज्ञाता, मेधावी (चरति) सर्वत्र व्यापता है। वह (देवानाम्) देवों, पृथिव्यादि लोकों, विद्वानों के बीच (एकम्) एकमात्र अद्वितीय, (महत्) सबसे बड़ा (गौः निष्षिधम्) वेद वाणी का निर्गमस्थान, संसार का प्रभव और (असुरत्वम्) जीवन शक्ति देने वाला तत्व है।

नि वे॑वेति पलि॒तो दू॒त आ॑स्व॒न्तर्म॒हाँश्च॑रति रोच॒नेन॑ ।
वपूं॑षि॒ बिभ्र॑द॒भि नो॒ वि च॑ष्टे म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (पलितः इव आसु) वृद्ध राजदूत इन प्रजाओं के बीच आता और (रोचनेन महान् चरति) प्रकाश, तेज वा सर्वप्रियता से पूज्य होकर विचरता है और जैसे सूर्य (पलितः) सबका पालक, (दूतः) सन्तापक होकर (नि वेवेति) व्यापता, (आ अन्तः महान् रोचनेन चरति) इन दिशाओं के बीच महान् सामर्थ्यवान् होकर प्रकाश से सर्वत्र व्यापता है। वह (वपूंषि बिभ्रद् नः अभि विचष्टे) हमारे शरीरों को पुष्ट करता हुआ हम सबको प्रकाशित करता है वैसे ही परमेश्वर (पलितः) सबका पालक वा पूर्ण (दूतः) सबसे उपासना करने योग्य (नि वेवेति) सबके भीतर व्यापक है। वह (आसु अन्तः) इन सब प्रजाओं के बीच (महान्)

सबसे बड़ा (रोचनेन चरति) प्रकाशरूप होकर व्यापता है, वह (नः) हम सबके (वपूंषि) देहों को (विभ्रद्) पोषण करता और (नः अभि विचष्टे) हमें उपदेश करता है। वह (देवानां एकम् महत् असुरत्वम्) देवों के बीच एक महान् दोषनाशक, जीवनप्रद तत्व परमेश्वर है।

विष्णुर्गोपाः पर॒मं पा॑ति॒ पाथः॑ प्रि॒या धामा॑न्य॒मृता॒ दधा॑नः।
अ॒ग्निष्टा विश्वा॒ भुव॑नानि वेद म॒हद्दे॒वाना॑मसु॒र॒त्वमेक॑म् ॥१०.२९॥

भा०—परमेश्वर (विष्णुः) सर्वत्र व्यापक (गोपाः) सबका रक्षक, सूर्यवत् सब गमनशील लोकों का पालक होकर (परमं पाथः पाति) सबसे उत्कृष्ट पाथस्, अन्न पृथिवी आदि लोक वा परम पद का पालन करता है और जो (प्रिया धामानि) प्रिय धाम, तेजों को (अमृता) नाश-रहित प्रकृति, आकाशादि और जीवों को (दधानः) धारण करता हुआ (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी स्वयं प्रकाश हो, (ता) उन (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों को (वेद) जानता है वह (देवानाम्) समस्त जीवों और पृथिव्यादि लोकों के बीच (महत् एकम् असुरत्वम्) बड़ा अद्वितीय सबका सञ्चालक, प्राणप्रद तत्व है। एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

नाना॑ चक्राते य॒म्या॒३॒॑ वपूं॑षि॒ तयो॑र॒न्यद्रोच॑ते कृ॒ष्णम॒न्यत्।
श्यावी॑ च॒ यदरु॑षी च॒ स्वसा॑रौ म॒हद्दे॒वाना॑मसु॒र॒त्वमेक॑म् ॥११॥

भा०—(श्यावी च यत् अरुषी च) कृष्ण वर्ण की रात्रि और तेजोमयी उषा दोनों जैसे (स्वसारौ) स्वयं गति करने वाली, दो बहनों के समान (यम्या) यम, सूर्य से उत्पन्न या प्राणियों को जागृति और निद्रा में बांधने वाली, (नाना वपूंषि चक्राते) नाना रूप प्रकट करती हैं। (तयोः अन्यत् रोचते) उन दोनों में एक तेज से चमकती और (अन्यत् कृष्णम्) दूसरी कृष्ण अर्थात् अन्धकार स्वरूप है यह सब उस सूर्य के ही किरणों का बड़ा महत्व है। वैसे ही (श्यावी) तमोमयी, राजस भाव से संचलित प्रकृति और (अरुषी) सत्ययुक्त अन्तःकरण वाली जीव या

चित् सत्ता, दोनों (स्वसारौ) दो बहिनों या भाई बहनों के समान स्वयं अपने सामर्थ्य से गति करते हैं, अनादि होकर (यम्या) यम, सर्वनियन्ता परमेश्वर के अधीन रह कर (नाना वपूंषि) देहों और विकृत पञ्चभूतादि रूपों को उत्पन्न करते हैं। (तयोः) उन दोनों में से (अन्यत्) एक (रोचते) स्वयं प्रकाश आत्मा है और (अन्यत्) दूसरा प्रकृति तत्व (कृष्णम्) तमोमय वा जीव को भोगार्थ अपनी तरफ आकर्षण करने वाला है। इन सब देवों या जीवों के बीच वही महान् प्राणप्रद तत्व की सत्ता है।

माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १२ ॥

भा०—(यत्र) जिसके आश्रय पर (माता च दुहिता च) पृथिवी और आकाश दोनों माता और कन्या के समान हैं वैसे ही आकाश या सूर्य मेघादि का उत्पादक और वृष्टि, अन्न आदि द्वारा प्राणियों को जीवन देने से सबकी माता और सूर्य किरणों द्वारा भूमि जल को क्षीरवत् पान करने से 'दुहिता' कन्यावत् है। वे दोनों ही (धेनू) गौओं के समान दुग्धवत् अन्न, वृष्टि आदि रस प्रदान करती और प्राणियों का पालन करती हैं। वे दोनों (सबर्दुघे) क्षीरवत् रसों को दोहन करती हुई (समीची) मिलकर एक दूसरे को (धापयेते) रस पिलाती हैं। ऋतस्य सदसि अन्तः) ऋत गतिमान् सूर्य, संसार वा जल और अन्न का आश्रय अन्तरिक्ष के बीच यह सब (देवानां) किरणों के बड़े अद्वितीय बल का ही परिणाम है जिसको मैं (ईळे) वर्णन करता हूँ।

अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १३ ॥

भा०—(धेनुः) गौ के समान रस बरसाने वाली आकाश या द्यौः (कया भुवा) जलमय भूमि के द्वारा (ऊधः) मेघ को (नि दधे) धारण करती है। उस समय वह जैसे (अन्यस्याः) अपने से भिन्न, दूसरी पृथिवी

के (वत्सं) बछड़े के समान पृथिवी तल से उत्पन्न मेघ को (रिहती) बछड़े को गौ के समान चाटती हुई उसी के समान वह (मिमाय) विद्युद्-गर्जन रूप से ध्वनि करती है। तब (सा इळा) वह भूमि (ऋतस्य पयसा) सूर्य से उत्पन्न या अन्न के उत्पादक और पोषक जल से (अपिन्वत) खूब सींचती है। यह सब (देवानाम्) सूर्य की किरणों का ही (एकं महत् असुरत्वम्) एक बड़ा भारी जीवनदान करने का विशेष धर्म है।

पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥

भा०—(पद्या) पैरों से जाने योग्य या सूर्य के किरणों से प्रकाशित होने योग्य भूमि जो (पुरुरूपा) नाना रूपों के (वपूंषि) शरीरों, शरीरधारियों को (वस्ते) अपने ऊपर धारण करती है और (ऊर्ध्वा) ऊपर की दिशा, आकाश (त्र्यविं) तीनों लोकों के रक्षक और प्रकाशक सूर्य का (रेरिहाणा) स्पर्श करता हुआ (तस्थौ) स्थिर रहती है तो यह सब (देवानाम्) सूर्य की किरणों का (महत् एकं) एक बड़े भारी (असुरत्वम्) जल प्रक्षेपक धर्म ही है। उसको ही मैं (ऋतस्य) जल, अन्न का और सत्य प्रकाशक तेज का (सद्म) परम आश्रय विद्वान् (वि चरामि) जानता हुआ प्राप्त होऊं।

पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत्।
सध्रीचीना पथ्या३ सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥३०॥

भा०—आकाश और भूमि दोनों (पदे इव) मानों दो चरणों के समान (निहिते) स्थिर हैं। वे दोनों (दस्मे) दर्शनीय, अद्भुत हैं। (तयोः अन्तः) उन दोनों में (अन्यत्) एक आकाश तो (गुह्यम्) गुहा अर्थात् अन्तरिक्ष में व्यापक है और दूसरा पद 'भूमि' (आविः) सर्व प्रकट और सबका रक्षक है। इन दोनों में से एक भूमि (सध्रीचीना) सब प्राणियों

के साथ रहती और (पथ्या) अन्नादि देने से हितकारिणी वा सदा सूर्य के साथ पतिपरायणा पत्नी के समान रहने वाली और (पथ्या) धर्म पथ से न अतिक्रमण करने वाली सती साध्वी के समान 'पथ्या' स्वक्रान्तिपथ से न विचलित होने वाली है और (सा) वह आकाश (विषूची) समस्त पदार्थों में व्यापक है। यह सब (देवानाम् एकं महत् असुरत्वम्) सूर्य की किरणों या दिव्य सूर्यादि पिण्डों का बड़ा भारी सामर्थ्य या महिमा है। इति त्रिंशो वर्गः ॥

आ धेनवो धुनयन्तामशिंश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १६ ॥

भा०—जैसे (धेनवः) गौओं के समान सौम्य स्वभाव की (नव्याः नव्याः) नयी नयी, मनोहर देह वाली कन्याएं (युवतयः भवन्तीः) युवति दशा को प्राप्त होती हुई (अशिश्वीः) बालक न रहकर (सबर्दुघाः) सुख से पूर्ण करती हुई (अप्रदुग्धाः) अन्य से अभुक्त, ब्रह्मचारिणी रहकर (शशयाः) निश्चिन्त रहकर शयन करती हुई (आ धुनयन्ताम्) इधर उधर जातीं, या हृदय में आकर्षण उत्पन्न करती हैं यह (देवानां) उनकी कामनावाले पतियों के लिये (एकं महत्) एक बड़ा भी (असुरत्वम्) जीवनप्रद कार्य होता है। ऐसे ही दिशाएं (धेनवः) मेघ द्वारा रस या जल वर्षा कर लोकों को रस पालन कराती हुई दुधार गौवों के समान हैं। वे (अशिश्वीः) विस्तृत (सबर्दुघाः) जलों, रसों को दोहन पूर्ण और प्रदान करने वाली (शशयाः) व्यापक (अप्रदुग्धाः) किसी द्वारा पूर्णतया न दुही गईं, (नव्याः नव्याः) सदा नई, (युवतयः) लोकों को संग्रह और विभिन्न विभिन्न करने वाली होकर रहतीं (देवानां महत् एकं असुरत्वं) सूर्य की किरणों के एक बड़े महान् सामर्थ्य को (आधुनयन्ताम्) प्रकट करतीं, वा सर्वत्र नदी के समान जल धारा रूपों में प्रेरित करतीं वा बहाती हैं।

यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः ।

स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७॥

भा०—(यत्) जो (वृषभः) वर्षणशील मेघ (अन्यासु वृषभः) गौओं के बीच महा वृषभ के समान (अन्यासु) अन्य दिशाओं में (रोरवीति) गर्जता है और (अन्यस्मिन्) दूसरे ही (यूथे रेतः) जो यूथ में वीर्य निषेक करते हुए वृषभ के समान ही अन्य दिक्-समूह में (रेतः) जल को (नि दधाति) बरसाता है। (सः हि) वह निश्चय से (क्षपावान्) जल क्षेपण शक्ति से युक्त रात्रिवत् अन्धकार करने वाला (स भगः) सबके सेवन और भजन करने और सुख कल्याण करने वाला (स राजा) वह विद्युत् से प्रकाशित या लोक मनोरञ्जन करने वाला है वह भी सूर्य किरणों का एक बड़ा सामर्थ्य ही है।

वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥

भा०—हे (जनासः) मनुष्यो! हम लोग (वीरस्य) शूरवीर, बलवान् पुरुष के (स्वश्व्यं) उत्तम अश्व या उत्तम अश्वारोही होने की बात का (नु) भी (प्र वोचाम) अच्छी प्रकार वर्णन करें, उसको वैसा होने का उपदेश करें। वे (षोळ्हा युक्ताः) छः छः लग कर भी (पञ्च पञ्च) पांच पांच होकर (आ वहन्ति) रथ को धारण करते हैं। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस रहस्य को (विदुः) जानते हैं। (२) वह वीर 'इन्द्र' आत्मा है। इन्द्रियें घोड़े हैं। मन सहित वे छः हैं। ज्ञान करने के लिये वे पांच ही प्रकार का ज्ञान करते हैं। यह सब (देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम्) इन्द्रियों का एक बड़ा भारी प्रेरक बल भी उसी इन्द्र आत्मा का है।

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १९ ॥

भा०—(त्वष्टा) सबका प्रकाशक (देवः) स्वयं प्रकाशमान, सब सुखों का दाता, (सविता) सबका उत्पादक, (विश्वरूपः) सब प्रकार के जीवों

और सब लोकों का उत्पन्न करने वाला होकर (प्रजाः) उत्पन्न प्रजाओं को (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (पुपोष) पोषण करता और (पुरुधा) बहुत विध (जजान) उत्पन्न करता है (इमा च) और ये (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक भी (अस्य) इसके बनाये हैं। (देवानाम्) सब सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थों के बीच वही (एकम्) अद्वितीय (महत्) सबसे बड़ा (असुरत्वम्) प्रेरक बल है।

मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥

भा०—(वीरः) वह सबका प्रेरक, परमेश्वर (समीची) परस्पर संगत (चम्वा) सब जगत् को अपने भीतर लेने वाली, (मही) बड़ी, आकाश और भूमि दोनों को दो सेनाओं को वीर नायक के समान (सम् ऐरत्) एक साथ चला रहा है। (ते उभे) वे दोनों (अस्य) उसके (वसुना) प्राणियों और लोकों को बसाने के सामर्थ्य और ऐश्वर्य से (नि-ऋष्टे) खूब पूर्ण, व्याप्त हैं। वह सब प्रकार के (वसूनि) ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ (शृण्वे) सर्वत्र सुना जाता है। वह ही (देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम्) सूर्यादि देवों का एकमात्र अद्वितीय बल है।

इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २१ ॥

भा०—जो परमेश्वर (विश्वधायाः) विश्व का धारक (नः) हमारी (इमां च) इस (पृथिवीं) पृथिवी और महान् आकाश को (हितमित्रः) हितैषी मित्रों वाले (राजा न) राजा के समान (हितमित्रः) जीवों को मरने से बचाने वाले वायु, सूर्य, मेघादि को धारण करने वाला, तेजस्वी होकर (उप क्षेति) सर्वत्र स्वयं व्यापता और जीवों को बसाता है। उसके अधीन (पुरः-सदः) आगे जाने वाले और (शर्मसदः) गृहों में रहने वाले (वीराः न) राजा के वीर पुरुषों के समान ही (वीराः) विविध गतियों में जाने

वाले जीव गण (पुरः सदः) सबके आगे चलने वाले और (शर्मसदः) देह रूप गृहों में रहने वाले हैं। वह प्रभु (देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम्) सब सूर्यादि लोकों का एक अद्वितीय सञ्चालक बल है।

नि॒ष्षिध्व॑रीस्त॒ ओष॑धीरु॒तापो॑ र॒यिं त॑ इन्द्र पृथि॒वी बि॑भर्ति।
सखा॑यस्ते वाम॒भाजः॑ स्याम म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥२२।३१।३॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! (पृथिवी) पृथिवी (निः-षिध्वरी) रोगों को दूर करने और सुख मङ्गल करने वाली (ओषधीः) ओषधियों को (बिभर्त्ति) पालती है। (उत) और (आपः) जलधाराएं भी (ते) तेरे (रयिम्) ऐश्वर्य को धारण करती हैं। (देवानाम्) पृथिवी आदि में तेरा (एकम् महत् ऐश्वर्यम्) एक बड़ा ऐश्वर्य है। हम (ते सखायः) तेरे मित्र तेरे (वामभाजः) उत्तम कर्म और ऐश्वर्यादि गुणों का धारक (स्याम) हों। इत्येकत्रिंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[५६] प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषयः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—१, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ७ त्रिष्टुप्। २ भुरिक् पंक्तिः॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

न ता मि॑नन्ति मा॒यिनो॒ न धीरा॑ व्र॒ता दे॒वाना॑ प्रथ॒मा ध्रु॒वाणि॑।
न रोद॑सी अ॒द्रुहा॑ वे॒द्याभि॒र्न पर्व॑ता नि॒नमे॑ तस्थि॒वांसः॑ ॥ १ ॥

भा०—(देवानां) दिव्य पदार्थों, विद्वानों और वीर पुरुषों के मध्य जो (प्रथमा) पहले (ध्रुवाणि) नित्य (व्रता) कर्त्तव्य-कर्म और नियम हैं (ता) उनको (न मायिनः) न कुटिल मायावी और (न धीराः) न धीर, प्रज्ञावान् पुरुष ही (मिनन्ति) उल्लंघन कर सकते हैं और (अद्रुहा) परस्पर द्रोह न करने वाली (रोदसी) आकाश और भूमि के तुल्य परस्पर

प्रेम युक्त स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य, प्रजा राजा भी उनको नहीं तोड़ें और (न) न (तस्थिवांसः) स्थायी रूप से रहने वाले (पर्वताः) पर्वतों के समान अचल एवं प्रजाओं के पालन में समर्थ पुरुष भी (वेद्याभिः) प्राप्त करने योग्य प्रजाओं सहित (निनमे) विनय से स्वीकार करने के अवसर में उन व्रतों, कर्मों और धर्मों का अल्लंघन न करें।

षड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥ २ ॥

भा०—जैसे (एकः) एक सूर्य (अचरन्) स्वयं न चलता हुआ भी स्थिर रहकर (षट भारान् बिभर्त्ति) सबके पालक पोषक छः ऋतुओं का धारक करता है। (वर्षिष्ठन् ऋतम्) और खूब वर्षाने वाले जल को (गावः उप आ अगुः) किरणें प्राप्त करती हैं और (अत्याः उपराः) व्यापनशील मेघ (तिस्रः महीः आ तस्थुः) तीनों लोकों को आच्छादित करते हैं और (द्वे गुहा निहिते) तीनों लोकों में से दो अन्तरिक्ष में अदृश्य हो जाती हैं और (एका) एक यह पृथिवी ही (दर्शि) दिखाई देती रहती है। वैसे ही एक (अचरन्) स्वयं स्थिर आत्मा (षड्भारान्) विषयों को हरण करने और ज्ञानों के धारक पांच इन्द्रिय और छठा मन इन छः साधनों को (बिभर्त्ति) धारता है। (गावः) ये इन्द्रियां विषयों तक जाने से 'गौ' हैं। वे सब (वर्षिष्ठम्) सबसे अधिक बड़े, सूर्यवत् तेजस्वी (ऋतम्) ज्ञानमय आत्मा को (उप आगुः) प्राप्त होती हैं। (अत्याः) व्यापने वाले या गतिशील (उपराः) विषयों में रमण करने वाले संकल्प विकल्प (तिस्रः महीः) चित्त की तीनों भूमियों को व्यापते हैं। (द्वे गुहा निहिते) दो भूमियां बुद्धि में ही स्थित रहती हैं और एक भूमि अर्थात् जाग्रत् दशा (दर्शि) सर्व प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३॥

भा०—जैसे (वृषभः) वर्षणशील सूर्य ही (त्रिपाजस्यः) तेज, विद्युत् और अग्नि, अथवा अप्, तेज, वायु तीनों के बलों को धारण करता है। वह (त्रि-उधाः) तीनों प्रकार के मेघों को उत्पन्न करता, सबको पालता है। वह (त्रि-अनीकः) तीनों प्रकार की जीवन शक्ति, या ग्रीष्म, वर्षा, शरत् तीन ऋतुओं का स्वामी होकर महान् सामर्थ्य युक्त होकर (पत्यते) पति के समान होता है। (शश्वतीनां रेतोधा) वह बहुत सी भूमियों पर जल-प्रद होता है वैसे ही परमेश्वर (त्रिपाजस्यः) अग्नि, वायु, जल तीनों बलों को धारण करता है, (वृषभः) सब सुखों का वर्षक, (विश्वरूपः) समस्त विश्व के रूप का धारक, सब जीवों का उत्पादक और (त्र्युधाः) तीनों लोकों को रस देने वाले स्तनवत् धारण पोषण करने वाला, (प्रजावान्) प्रजाओं का स्वामी (पुरुध) बहुत से लोकों को धारण करता है। वह (माहिनावान्) महान् सामर्थ्यों का स्वामी (त्र्यनीकः) प्रकृति के तीनों गुणों को धारण करने वाला (पत्यते) प्रकृति के पति के समान है। (सः) वह (रेतोधा) प्रकृति में अपना वीर्य धारण कराने वाला होकर (शश्वतीनां) सनातन से चली आई प्रजाओं का उत्पादक है।

अभीकं आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥४॥

भा०—(आसाम्) इन प्रजा और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं में (अभीके) अति समीप, उनमें व्यापक रहकर (पदवीः) उनमें गति उत्पन्न करने वाला और प्रजाओं को प्राप्तव्य उत्तमाधम पद प्राप्त कराने वाला (आदित्यानां) सूर्यादि लोकों का भी सञ्चालक परमात्मा मासों के बीच सूर्य के समान ही (अबोधि) जानने योग्य है। मैं उसके (चारु नाम) सुन्दर नाम का उच्चारण करूं। (अस्मै चित् आपः) सूर्य के कारण जैसे जलधाराएं मेघ से निकलती हैं वैसे ही (अस्मैचित्) इस परमेश्वर के बल से (देवीः आप) दिव्य गुणों वाली प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु (अरमन्त) गति करते हैं और सब लोक समूह भी (पृथक्) पृथक् २ अपने

अपने मार्ग पर (व्रजन्तीः) गमन करते हुए (सीम्) सब प्रकार से उसी परमेश्वर को (परि अवृञ्जन्) आश्रय किये रहती हैं।

त्री षुधस्था सिन्धवुस्त्रिः कुवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सुम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥५॥

भा०—परमेश्वर (त्री सधस्था) तीनों लोकों को रचता है। हे (सिन्धवः) जल धाराओं के समान प्रवाह से गति करने वाली प्रजाओ! (कवीनाम्) सब विद्वानों के बीच में (त्रिः) तीन २ प्रकार से (विदथेषु) जानने योग्य पदार्थों में (त्रिमाता) जन्म, स्थान और नाम तीनों का रचने वाला है। वही (सम्राट्) बड़े राजा के समान सम्यक् प्रकाशमान, तेजस्वी स्वामी है। वह (ऋतावरीः) 'ऋत' सत्य को धारण करने वाली (पत्यमानाः) पति की कामना करने वाली (योषणाः) साध्वी स्त्रियों के समान (तिस्रः) तीन (दिवः) भूमियों को (अप्याः) अन्तरिक्ष में प्राणों या जीवों के उपयोगी (त्रिः) तीनों प्रकार से (विदथे) वश में किए हुए है।

त्रिरा दिवः सवितुर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥६॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक परमेश्वर! राजन्! तू (दिवे-दिवे) दिनों दिन (नः) हमें सूर्य के समान (दिवः) आकाश से वृष्टि के समान (दिवः) उत्तम व्यवहार में से (वार्याणि) वरणयोग्य ऐश्वर्यों को (अह्नः त्रिः) दिन में तीन २ बार (आसुव) प्राप्त कराओ। हे (भग) ऐश्वर्यवन्! आप (रायः) ऐश्वर्य का (त्रिधातु) तीनों धातु सुवर्ण, रजत, लोह से बने धन को (आसुव) दें। हे (त्रातः) रक्षक! हे (धिषणे) बुद्धिमति राजसभे! तू (नः) हमें (वसूनि) ऐश्वर्य (सातये) प्राप्त करने के लिये (धाः) धारण कर।

त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७॥

भा०—(सविता) परमेश्वर और राजा (दिवः) ज्ञानप्रकाश से (राजाना) प्रकाशमान, (मित्रावरुणा) स्नेही और परस्पर वरण करने वाले (सुपाणी) उत्तम हाथ, व्यवहार और वाणी वाले स्त्री पुरुषों को (त्रिः) तीन २ बार (सोषवीति) प्रेरित किया करें। (अस्य) उससे (आपः चित्) आप्तजन (रोदसी चित्) आकाश और पृथिवी के समान स्त्री पुरुष और (उर्वी) भूवासिनी प्रजा भी (सवितुः) प्रेरक राजा के (सवाय) अभिषेक के लिये (रत्नं) रमण योग्य ऐश्वर्य की (भिक्षन्त) याचना करते हैं।

त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः॥८॥१॥

भा०—(असुरस्य) सबको जीवन देने वाले, परमेश्वर और राजा के (त्रिः उत्तमा) तीन उत्तम (दूनशा) अनश्वर (रोचनानि) प्रकाशमान तत्व, सूर्य, विद्युत् और अग्नि हैं। वे तीनों (वीराः) वीरों के तुल्य ही (राजन्ति) प्रकाशित होते हैं। (देवाः) विद्वान् और विजयेच्छु लोग सूर्य किरणों के समान (ऋतावानः) सत्य, न्याय रूप प्रकाश और शान्ति रूप जल से युक्त (इषिराः) इच्छावान् (दूळभासः) दूर तक प्रकाश देने वाले, अहिंसक (दिवः) दिन में (त्रिः) तीन बार (विदथे) ज्ञान प्राप्ति और (विदथे) संग्राम में (आ सन्तु) सफल हों। इति प्रथमो वर्गः॥

[५७] विश्वामित्र ऋषिः॥ विश्वे देवा देवता॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्। २, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम्।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः॥१॥

भा०—(अगोपाम्) अरक्षित (धेनुं) गौ के समान (प्रयुतां) असंख्य ज्ञानों वाली (धेनुं) वाणी को (चरन्तीं) व्याप्त होने वाली (मे मनीषां) मेरी उत्तम प्रज्ञा या मति को (विविक्वान्) विवेकी पुरुष (प्र अविदन्)

अच्छी प्रकार प्राप्त करें (या) जो (सद्यः) शीघ्र ही (धासेः) धारण करने वाले को (भूरि) बहुत सुख (दुदुह्रे) देती है और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अग्निः) विनयशील और (पनितारः) स्तुति और व्यवहार के विज्ञ लोग (अस्याः) इस वाणी के (तत्) धारक उस ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम्॥२॥

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त प्रकाशमान किरण जैसे (अस्यां) इस पृथिवी पर (रणयन्त) रमण करते हैं वे (दिवः न) सूर्य प्रकाशों के समान (प्रीताः) प्रिय, एवं जल द्वारा आकाश को पूर्ण करने वाले होकर (शशयं) आकाश में व्यापक मेघ को उत्पन्न करते हैं। ऐसे ही (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् और (पूषा) सर्व पोषक पृथिवी (वृषणा) जल वृष्टि करने वाले और (सुहस्ता प्रीताः) सुखपूर्वक, एक दूसरे से प्रसन्न हो (शशयं दुदुह्रे) मेघ और अन्न को उत्पन्न करते हैं। (वसवः) सब प्राणिगण जैसे उन किरणों का सुख प्राप्त करते हैं वैसे ही (यत् देवाः) जो विद्वान् पुरुष (अस्यां) इस वाणी में (रणयन्त) रमण करते हैं वे (दिवः न प्रीताः) सूर्य प्रकाशों के समान प्रसन्न होकर (शशयं सुम्नम् सु दुदुह्रे) अन्तर्हृदयाकाश में व्याप्त सुख को प्राप्त करते हैं और (इन्द्रः) विद्वान् वा परमेश्वर और (पूषा) सर्व पोषक, आचार्य दोनों (वृषणा) ज्ञान की वृष्टि करने वाले (सुहस्ता) उत्तम दानशील हाथों से युक्त होकर (शशयं सुम्नं दुदुह्रे) सूर्य पृथिवी के समान ही अन्तर्व्याप्त सुख उत्पन्न करते हैं और हे (वसवः) आचार्य के अधीन निवास करने वाले विद्वान् जनो और घरों में बसे गृहस्थ जनो! (वः) आप लोगों के (सुम्नम्) उत्तम ज्ञान और सुख को मैं (अत्र) यहां (अश्याम्) उपभोग करूं।

या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन्।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि॥ ३॥

भा०—जैसे (जामयः) वर्षा में उत्पन्न ओषधियां (वृष्णः शक्तिम् इच्छन्ति) वर्षने वाले मेघ या सूर्य के सेचन सामर्थ्य को चाहती हैं और (अस्मिन् गर्भम् जानते) इसके आश्रय ही अपने भीतर पुष्प, फलादि धारण रूप गर्भ हुआ जानती हैं वैसे ही (जामयः) जिन स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न हो सके ऐसी (याः) जो युवतियां (वृष्णः) बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष की (शक्ति) पुत्रोत्पादन सामर्थ्य को (इच्छन्ति) प्राप्त करना चाहती हैं वे (नमस्यन्तीः) विनय से उसका सत्कार करती हुईं (अस्मिन्) उसके अधीन रहकर ही (गर्भम्) गर्भ धारण करने की (जानते) अनुमति दें। (धेनवः) गौएं जैसे (वावशानाः) कामना करती हुईं वीर्य-सेचक वृषभ की कामना करतीं और उसके द्वारा गर्भ धारण करतीं और उत्तम बछड़ा जनती हैं, वैसे ही (वावशानाः) कामना करती हुईं स्त्रियें भी (वपूंषि बिभ्रतं) उत्तम शरीरावयवों को धारण करने वाले (महः) बड़े उत्तम (पुत्रं) पुत्र को (चरन्ति) प्राप्त करती हैं।

अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषी।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥ ४ ॥

भा०—मैं (मनीषा) उत्तम बुद्धि से (अध्वरे) हिंसारहित कार्य में (ग्राव्णः) उपदेष्टा, लोगों को (युजानः) संयुक्त करता हुआ (सुमेके) उत्तम रीति से वीर्य निषेकादि करने में समर्थ (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान युवा स्त्री पुरुष दोनों को (अच्छ विवक्मि) अच्छी प्रकार उपदेश करता हूँ। हे पुरुष! (ते मनवे) तुझ मननशील के लिये (इमाः) ये स्त्रियें (भूरिवाराः) बहुत प्रकार के सुख धनादि चाहती हुईं (दर्शताः) उत्तम रूप वाली (यजत्राः) मैत्री करने वाली (ऊर्ध्वाः) अग्नि ज्वालाओं के समान ऊपर रहने वाली (भवन्ति) होती हैं।

या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वान् स्त्री वा पुरुष ! हे परमेश्वर ! (या) जो (ते) तेरी (जिह्वा) वाणी और (मधुमती) मधुर वचनों से युक्त, (सुमेधा) उत्तम मननशक्ति से युक्त, (उरूची) बहुत से ज्ञानों को धारण करने वाली (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के बीच (उच्यते) कही जाती है (तया) उस वाणी और प्रज्ञा से तू (विश्वान्) समस्त (यजत्रान्) सत्संग योग्य पुरुषों को (अवसे) ज्ञान और रक्षा के निमित्त (असादय) प्राप्त कर और उनको (मधूनि) मधुर रसों के समान मधुर वाणी का रस (पायय) पिला।

या ते॑ अग्ने॒ पर्व॑तस्येव॒ धारा॒सश्च॑न्ती पी॒पय॑द्देव चि॒त्रा ।
ताम॒स्मभ्यं॒ प्रम॑तिं जातवेदो॒ वसो॒ रास्व॑ सुम॒तिं वि॒श्वज॑न्याम् ॥६॥२॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! हे विद्वन् ! (पर्वतस्य इव धारा) पर्वत से निकलती नदी या मेघ से निकलती धारा या गर्जना जैसे (असश्चन्ती) निःसङ्ग रहती हुई, (चित्रा) अद्भुत मार्ग से गति करती हुई (पीपयत्) अन्नादि ओषधियों को पुष्ट करती है वैसे ही (या) जो (पर्वतस्य) पालन करने वाले, या पर्वों अध्यायों से युक्त ग्रन्थ के समान ज्ञानवान् (ते) तेरी (धारा) ज्ञान धारण करने वाली (चित्रा) आश्चर्यकारिणी अद्भुत वाणी मति (पीपयत्) सबको तृप्त करती है (ताम्) उस (प्रमतिं) उत्तम कोटि के ज्ञान से युक्त (विश्व-जन्याम्) समस्त जनों की हितकारिणी (सुमतिं) मति या ज्ञानमयी वाणी को (देव) हे विद्वन् ! हे ज्ञानदातः ! हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे ! हे (वसो) अपने अधीन प्रजाओं और शिष्यों को बसाने हारे ! तू (अस्मभ्यं रास्व) हमें दे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[५८] विश्वामित्र ऋषिः ॥ अश्विनो देवते ॥ छन्दः—१, ८, ९ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

धे॒नुः प्र॒त्नस्य॒ काम्यं॒ दुहा॑ना॒न्तः पु॒त्रश्च॑रति॒ दक्षि॑णायाः ।
आ द्यो॑त॒निं व॑हति शु॒भ्रया॑मो॒षसः॒ स्तोमो॑ अ॒श्विना॑वजीगः ॥१॥

भा०—जैसे (धेनुः दुहाना) गौ दूध देती है और (दक्षिणायाः अन्तः

पुत्रः चरति) दक्षिणा में देने योग्य गौ के साथ बछड़ा भी दक्षिणा के बीच में ही जाता है और जैसे उषा (धेनुः) सबको रात्रि के अवसान में तुषार बिन्दु रूप रस पिलाने हारी (प्रत्नस्य) अति पुरातन सूर्य के (काम्यं) कमनीय रूप को (दुहाना) उत्पन्न करती हुई उषा, प्रभातवेला होती है। वैसे ही वाणी रूप कामधेनु (प्रत्नस्य) पुरातन परमेश्वर के (काम्यं) कामना योग्य, ज्ञानमय स्वरूप एवं हिताहित प्राप्ति परिहारादि के ज्ञान को (दुहाना) प्रदान करती रहती है और (दक्षिणायाः) 'रस' अर्थात् कर्म और ज्ञान की स्वामिनी ज्ञानप्रद उस वाणी के (अन्तर) भीतर ही (पुत्रः) उससे पुत्रवत् उत्पन्न ज्ञानावबोध उषा के भीतर से उत्पन्न या प्रकट सूर्य-प्रकाश के समान (चरति) प्रकट होता है और जैसे (शुभ्रयामा) शुक्ल श्वेत पक्ष की रात्रि (द्योतनिं) चमकती चांदनी को (आवहति) धारण करती है और जैसे (शुभ्रयामा) भासमान, चमकते प्रहरों वाला दिन या उषा (द्योतनिं) सूर्य की दीप्ति को (आवहति) सर्वत्र फैलाता है वैसे ही (शुभ्रयामा) अर्थों को भासित करने वाले विस्तार या पदसंनिवेश से युक्त वाणी (द्योतनिं) अर्थप्रकाश से युक्त विद्या को (आवहति) स्वयं धारती और दूसरे तक पहुंचाती है। जैसे (उषसः स्तोमः) उषाकालिक स्तुति-पाठ (अश्विनौ) दिन और रात्रि दोनों को (अजीगः) प्रकट करता है वैसे ही (उषसः स्तोमः) कान्तियुक्त तेजस्विनी पापदाहक पवित्र वेदमयी वाणी (अश्विनौ) सूर्य, चन्द्र वा दिन रात्रि तुल्य नरनारियों को (अजीगः) जगावे, प्रबुद्ध करे।

सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥ २ ॥

भा०—(सुयुक् प्रति) जैसे रथ में जुड़े घोड़े (ऋतेन) गतिमान् रथ से (प्रति वहन्ति) स्वामी को स्थानान्तर पर ले जाते हैं। वैसे ही (सुयुग्) उत्तम रीति से नियुक्त विद्वान् वा उत्तम वाणियें हे स्त्री पुरुषो! (वाम् प्रति) तुम दोनों के प्रति (ऋतेन) सत्य के द्वारा (वहन्ति) ज्ञान प्राप्त

करावें। (मेधाः) प्रज्ञाएं और प्रज्ञावान् पुरुष (वाम् प्रति) तुम दोनों के प्रति (पितरा इव) माता पिता के समान ही (ऊर्ध्वाः) उच्च पद के योग्य, आदरणीय (भवन्ति) होते हैं। आप दोनों भी (अस्मत्) हमें (पणेः) व्यवहारकुशल और विद्वान् पुरुष की (मनीषाम्) बुद्धि का (विःजरेथाम्) विविध उपदेश करो। हम लोग (युवोः) आप दोनों की (अवः) रक्षा और ज्ञान की वृद्धि वा तृप्तिकारक अन्न प्रदान करें। आप (अर्वाक् आयातम्) दोनों हमारे पास आइये।

सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥ ३॥

भा०—हे (दस्रौ) कष्टों और अज्ञानों के नाशक स्त्री पुरुषो! (सुयुग्भिः) उत्तम रीति से जुड़े हुए (अश्वैः) घोड़ों और (सुवृता) उत्तम चक्र वाले (रथेन) रथ से जैसे आप दोनों (अवर्त्ति प्रति गमिष्ठा) दूर देश को प्राप्त होते हो वैसे ही (अङ्ग अश्विना) हे दिन रात्रि वा सूर्य चन्द्रवत् विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (सुयुग्भिः) उत्तम रीति से समाहित (अश्वैः) विषयों के भोक्ता, अनुगामी इन्द्रियों और (सुवृता) उत्तम आचार व्यवहार युक्त (रथेन) देह वा आत्मा से आप लोग (अवर्त्ति गमिष्ठा) अप्राप्य पद को भी प्राप्त करने वाले होकर (अद्रेः) मेघ के समान सब प्रकार ज्ञान की वर्षा करने वाले वा अविनाशी वेद की (इमं श्लोकं) इस पुण्य वाणी का (शृणुतम्) श्रवण किया करो और ध्यान रक्खो कि (वां प्रति) आप दोनों के प्रति (पुराजाः) पूर्व के उत्पन्न (विप्रासः) विद्वान् (किम् आहुः) क्या २ उपदेश करते हैं।

आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे॥४॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामीवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनों को (विश्वे जनासः) सभी मनुष्य (आ हवन्ते) आदरपूर्वक

बुलावें और (कत् चित्) कभी २ आप दोनों (एवैः) उत्तम ज्ञानयुक्त पुरुषों द्वारा (आ मन्येथाम्) उत्तम २ ज्ञानों का अभ्यास किया करो और (कत् चित्) कभी २ (एवैः) उत्तम गमन साधन रथों से (आ गतम्) आया जाया करो। (अग्रे) सबसे प्रथम (उस्रः) सूर्य की किरणों के समान उत्तम पद पर पहुंचे हुए विद्वान् पुरुष (मित्रासः) तुम्हारे मित्रों के सदृश (वां) तुम दोनों का (इमा) इन (गोऋजीका) गाय के दूध से मिले हुए (मधूनि) अन्नों के समान ही (गोऋजीका) उत्तम वाणियों से विनय, धर्म मार्ग, (मधूनि) मधुर ज्ञान (ददुः) दें।

तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वयुक्त सैन्य के स्वामी, राजा रानी के समान विद्या में व्यापक स्त्री पुरुषो! हे (मघवाना) ऐश्वर्य के स्वामियो! (जनेषु) मनुष्यों में (वां) तुम दोनों का (आङ्गूषः) घोष या उपदेश (रजांसि तिरः) सब लोकों को प्राप्त हो और (वां आंगूषः रजांसि तिरः) तुम दोनों का उपदेश राजस विकारों को दूर करे और आप दोनों (देवयानैः पथिभिः) विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्गों से (इह आ यातम्) इस पृथिवी पर आओ। हे (दस्रौ) अज्ञानादि के नाशको! (वां) तुम्हारे लिये ही (इमे) ये (मधूनां) मधुर ज्ञान व अन्नादि पदार्थों के (निधयः) सब खजाने हैं। इति तृतीयो वर्गः॥

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६॥

भा०—हे (नरा) नायको! दोनों उत्तम स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों का परस्पर (सख्यम्) मित्रता (पुराणम् ओकः) अपने पुराने गृह के समान (शिवं) कल्याणकारक हो। (युवोः) तुम दोनों का (द्रविणम्) ऐश्वर्य ज्ञान भी (जह्नाव्याम्) त्यागी पुरुष की दान करने की शैली में

व्यय होकर (शिवं) कल्याणकारी हो। हम लोग भी (सख्या) अपने मित्रता के भावों को (पुनः) बार २ (शिवानि) कल्याणयुक्त, सुखकर (कृण्वानाः) करते हुए (मध्वा) उत्तम अन्न जल से (समाना) एक दूसरे के समान होते हुए (मदेम नु) आनन्द हर्ष को प्राप्त करें।

अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू॥ ७॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् इन्द्रियों को अश्वों के समान वश करने वाले जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों (सुदक्षा) उत्तम ज्ञान और कर्म से युक्त, (वायुना) प्राणवायु और (नियुद्भिश्च) नियमित नियुक्त अश्वों, इन्द्रियों द्वारा (सुदक्षा) उत्तम बलशाली, (युवाना) जवान, (सजोषसा) समान प्रीतियुक्त, (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, (अस्रिधा) एक दूसरे के देहों और मानसभावों की हिंसा न करने वाले, (सुदानू) उत्तम वचन, धनादि को देने वाले होकर (तिरः-अह्न्यम्) विगत या वर्त्तमान में प्राप्त दिन के कमाये (सोमं) ऐश्वर्य का अन्न जलवत् (पिबतम्) उपभोग करो।

अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः॥८॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र पालन या अश्वमेध के करने वाले स्त्री पुरुषो! (वाम्) तुम दोनों की (इषः) उत्तम कामनाएं और सेनाएं (पुरूचीः) बहुत से पदार्थों और देशों तक पहुंचाने वाली और (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (यतमानाः) कर्म में प्रवृत्त हुई (अमृध्राः) कभी तिरस्कृत न होकर (परि ईयुः) सब तरफ जावें और (वाम्) तुम दोनों का (ऋतजाः) वेग से उत्पन्न (अद्रिजूतः) पर्वतादि विषम स्थलों में भी वेग से जाने वाला (रथः) विमान, अग्नियान आदि (सद्यः) शीघ्र ही (द्यावापृथिवी परि याति) आकाश और भूमि में भी चले और (ऋतजाः)

सत्य के परिष्कृत (अद्रिजूतः) स्थिर, अविनाशी परमेश्वर की तरफ ले जाने वाला (वां रथः) तुम दोनों का रस रूप आत्मा प्राण अपान दोनों से परे है।

अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९॥४॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामिजनो ! नायक, सेनापतियो ! (युवाकुः) तुम्हें प्राप्त होने वाला, पृथक् २ वा सम्मिलित (सोमः) ऐश्वर्य, प्रजा आदि तुम दोनों के लिये (मधुसुत्तमः) रस, अन्न, अभिषेक आदि उत्पन्न करने में सब से उत्तम सिद्ध हो। आप दोनों उसको (पातम्) पालन करो। आप दोनों (दुरोणे) घर में (आगतम्) आइये। (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (वर्पः) वरण करने योग्य (भूरि) बहुत सा ऐश्वर्य (करिक्रत्) उत्पन्न करे और वह (सुतावतः) ऐश्वर्य वाले के (निष्कृतम् आगमिष्ठः) घर में प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५९] विश्वामित्र ऋषिः ॥ मित्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, त्रिष्टुप् । निचृत्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् पंक्तिः । ६, ९ निचृद्गायत्री । ७, ८ गायत्री । नवर्चं सूक्तम् ॥

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥

भा०—(मित्रः) जो पुरुष स्नेह से सब की रक्षा करे वह पुरुष 'मित्र' कहाता है। वह ही (जनान्) सब मनुष्यों को (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (यातयति) नाना प्रकार के पुरुषार्थ आदि कराता है। वह (मित्रः) सबका स्नेही, सूर्य के समान महान्, परमेश्वर वा राजा (पृथिवीम् उत द्याम्) भूमि और आकाश को (दाधार) धारण करता है। (मित्रः) सूर्य के समान वह (कृष्टीः) कृषकों वा सामान्य मनुष्यों को भी (अनिमिषा)

रात दिन (अभिचष्टे) देखता है। उस (मित्राय) प्रजा के पालक, स्नेही, त्राता के लिये (घृतवत् हव्यं) घृत तेज से युक्त अन्न और अन्य ग्राह्य पदार्थ (जुहोत) प्रदान करो।

प्र स मि॑त्र॒ मर्तो॑ अस्तु॒ प्रय॑स्वा॒न्यस्त॑ आदित्य॒ शिक्ष॑ति व्र॒तेन॑ ।
न ह॑न्यते॒ न जी॑यते॒ त्वोतो॒ नैन॒मंहो॑ अश्नो॒त्यन्ति॑तो॒ न दू॒रात् ॥२॥

भा०—हे (मित्र) आप्तजन! आचार्य! राजन्! परमेश्वर! (यः) जो पुरुष (ते) तेरे सिखाये (व्रतेन) नियम कर्म से (शिक्षति) स्वयं शिक्षा ग्रहण करता वा अन्यों को शिक्षा, वा अन्नादि देता है (सः) वह (मर्त्तः) मनुष्य (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील, उत्तम अन्न और ज्ञान का स्वामी (अस्तु) होता है। (त्वा ऊतः) तेरे द्वारा सुरक्षित पुरुष (न हन्यते) न कभी मारा जाता और (न जीयते) न कभी अन्यों से पराजित होता है। (एनम्) इसको (न अन्तिमः) न पास से और (न दूरात्) न दूर से ही कभी (अंहः अश्नोति) पाप व्यापता है।

अ॒न॒मी॒वास॒ इळ॑या॒ मद॑न्तो मि॒तज्ञ॑वो॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्याः ।
आ॒दि॒त्यस्य॑ व्र॒तमु॑पक्षि॒यन्तो॑ व॒यं मि॒त्रस्य॑ सुम॒तौ स्या॑म ॥ ३ ॥

भा०—(अनमीवासः) रोगों से रहित (इलया) उत्तम वाणी और भूमि के राज्य से (मदन्तः) आनन्द लाभ करते हुए (मितज्ञवः) परिमित जानु वाले, सभ्यतापूर्वक टांगे सिकोड़ कर बैठने वाले, विवेकी पुरुष (पृथिव्याः वरिमन्) भूमि के बड़े भारी, श्रेष्ठ, विस्तृत देश में हम लोग (आदित्यस्य) भूमि के उपकारक स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा विद्वान् पुरुष के उपदिष्ट (व्रतम्) ब्रह्मचर्य आदि आश्रमधर्म, नियमों और व्रतादि के अधीन (उप क्षियन्तः) रहते हुए (वयं) हम सब (मित्रस्य) मृत्यु से बचाने वाले सर्व स्नेही परमेश्वर, गुरु वा राजा के (सुमतौ) शुभ ज्ञान के अधीन (स्याम) रहें।

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (मित्रः) प्रजा को मृत्यु से बचाने वाला (नमस्यः) आदरयोग्य (राजा) तेज से प्रदीप्त, (सुक्षत्रः) उत्तम क्षात्रबल से सम्पन्न, (वेधाः) कर्मों के विधान करने में दक्ष, (अजनिष्ट) हो। (तस्य) उस (यज्ञियस्य) सत्संग और मैत्री के योग्य महा पुरुष की (सुमतौ) उत्तम मति और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) शुभचित्तता के अधीन (वयं) हम (स्याम) रहें।

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—(महान्) गुणों में महान् (आदित्यः) अदिति पृथिवी का पालक, स्वामी, वा अदिति अर्थात् उत्तम माता पिता और राष्ट्रभूमि का उत्तम पुत्र कहाने योग्य, (नमसा) आदरपूर्वक, (उपसद्यः) प्राप्त होने योग्य (यातयज्जनः) प्रजाजनों को अपने २ कार्य व्यापारों में लगाने हारा, सूर्य के समान (सुशेवः) उत्तम सुखदाता पुरुष (गृणते) अनुशासन करे। (तस्मै) उस (पन्यतमाय) सर्वोत्तम स्तुति करने योग्य (मित्राय) सबको मृत्यु से बचाने वाले, सत्सङ्ग योग्य, शत्रुनाशक के लिये (जुष्टम्) प्रेम पूर्वक स्वीकार करने योग्य (हविः) उत्तम ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थ (अग्नौ) ज्ञानी और अग्नि तुल्य तेजस्वी होने के निमित्त ही (आजुहोत) आदर से प्रदान करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥

भा०—(चर्षणीधृतः) मनुष्यों के धारक (देवस्य) दानशील (मित्रस्य) रक्षक, स्नेही पुरुष का (चित्रश्रवस्तमम्) अद्भुत अन्नादि रस तथा

उत्तम श्रवणयोग्य, कीर्त्ति और ज्ञान से युक्त (द्युम्नं) ऐश्वर्य और तेज (सानसि) सबके सेवन करने और सबको सुख देने वाला हो।

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः।

अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥

भा०—(मित्रः) अन्धकार के नाशक, सूर्य के समान (यः) जो सर्व सुहृत् राजा, प्रभु (महिना) महान् सामर्थ्य से (दिवम्) आकाश तुल्य विस्तृत, एवं विजय कामना वाली सेना और व्यवहारकारिणी प्रजा को (अभि बभूव) वश करने में समर्थ होता है वह (सप्रथाः) प्रसिद्ध कीर्ति और विस्तृत राष्ट्र के सहित रहता हुआ (श्रवोभिः) यशों और अन्नों से सम्पन्न (पृथिवीं) पृथिवी को भी (अभि-बभूव) वश करता है।

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे।

स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥ ८ ॥

भा०—(अभिष्टिशवसे) सब ओर शासन में समर्थ (मित्राय) सर्व रक्षक के लिये ही (पञ्च जनाः) पांचों प्रकार के प्रजाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पांचवां निषाद वर्ग जो राजा द्वारा शासन पदों पर विराजे, ये पांचों वर्ग (येमिरे) उद्यम करें। (सः) वह (देवान् विश्वान्) किरणों को सूर्य के समान, समस्त विद्वानों और वीरों को (बिभर्ति) पालता है।

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे।

इषं इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—(मित्रः) सर्वरक्षक पुरुष (देवेषु) विद्वानों, व्यवहार-कुशलों और (आयुषु) आदरपूर्वक एकत्र संगत सभासदों व प्रजा पुरुषों के बीच (वृक्तबर्हिषे) धान्य, कुशाओं के काट लेने में समर्थ कृषक जन, याज्ञिक लोग और कुशल पुरुष तथा कुशादिवत् कण्टक रूप शत्रुजनों को काटने

वाले वीर (जनाय) जन के बढ़ाने के लिये (इषः) इच्छाओं और प्रेरित सेनाओं को (इष्टव्रताः) अभीष्टकर्म करने में समर्थ (अकः) करे। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६०] विश्वामित्र ऋषिः ऋभवो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३ जगती। ४, ५ निचृज्जगती। ६ विराड्जगती ॥ ७ भुरिग्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥

भा०—हे (नरः) नेता लोगो (उशिजः) ऐश्वर्यों और पदार्थों की आकांक्षा वाले लोग (बन्धुता) परस्पर बन्धु रहते हुए (वः) आप लोगों के (मनसा) चित्त और ज्ञान से और (वः वेदसा) आप लोगों के धनैश्वर्य से (इह-इह) इस राष्ट्र या जगत् में, स्थान २ पर (तानि) उन नाना ऐश्वर्यों को (अभिजग्मुः) प्राप्त करें और वे (याभिः) दूर तक जाने वाली (मायाभिः) ज्ञानकारिणी बुद्धियों से युक्त होकर (प्रतिजूतिवर्पसः) शत्रुओं के प्रति प्रतिबल से युक्त शरीरों वाले, दृढ़ (सौधन्वनाः) उत्तम धनुर्धारी लोगों के अधीन सैनिक जन, उत्तम अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ के उपासक कृषकादि, वा मेघ तुल्य सर्व ज्ञानप्रद उत्तम विद्वन् (यज्ञियं भागं) राजा के द्वारा ग्रहण योग्य कर को वा परस्पर सत्संग, मैत्री वा आदर से प्राप्त होने वाले अंश को (आनश) प्राप्त करें।

याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥

भा०—(ऋभवः) खूब प्रकाश से चमकने वाले सूर्य-किरण जैसे (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (चमसान् अपिंशत) मेघों को रूपवान् बनाते अर्थात् उत्पन्न करते हैं और वे (गाम् अरिणीत) पृथिवी को आच्छादित कर लेते हैं और दिन और रात्रि उत्पन्न करते हैं और जैसे (ऋभवः)

ज्ञानपूर्वक कर्म करने में समर्थ शिल्पी लोग (शचीभिः) औजारों से (चमसान्) खाने के पात्र थाली, कटोरे, चमचे आदि (अपिंशत) सुन्दर रूप में बनाते हैं और वे (धिया) बुद्धि से चर्म के बने जूते से (गाम् अरिणीत) पृथ्वी पर चलने का उपाय करते हैं। (मनसा) ज्ञान से अश्वों को सधाते वा शिष्य द्वारा रथ के अश्वस्थानी यन्त्र बनाते हैं, इससे वे भी (देवत्वम्) विद्वान्, पूज्य पद को प्राप्त करते हैं वैसे ही (ऋभवः) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले (याभिः) जिन (शचीभिः) बुद्धियों, वाणियों और सेना आदि शक्तियों से (चमसान्) मेघ के सदृश शस्त्रास्त्र वर्षा करने वाले वीरों वा राष्ट्र के उपभोक्ता अध्यक्षों को (अपिंशत) रूपवान् करते और (चमसान्) भूमि और प्रजा को खा जाने वालों को (अपिंशत) टुकड़े २ कर देते हैं और (यया धिया) जिस राष्ट्र धारण शक्ति और बुद्धि से (चर्मणः) चर्म की बनी जिह्वा या तांत से (गाम्) वाणी को उच्चारण करते हैं वा (चर्मणः गाम् अरिणीत) चर्म की बाग फेंकने वाली डोरी बनाते हैं और (येन मनसा) जिस मन से (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन (हरी) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों प्रकार के देह-रथ में लगे अश्वों को (निर् अतक्षत) प्रकट करते हैं, हे विद्वान् लोगो! उन्हीं शक्तियों, बुद्धियों से आप लोग (देवत्वम्) विद्वान् के पद को (सम् आनश) प्राप्त करो।

इन्द्र॑स्य स॒ख्यमृ॒भवः॒ समा॑नशु॒र्मनो॒र्नपा॑तो अ॒पसो॑ दधन्विरे।
सौ॒ध॒न्व॒नासो॑ अमृत॒त्वमेरि॑रे वि॒ष्ट्वी शमी॑भिः सु॒कृतः॑ सुकृ॒त्यया॑ ॥३॥

भा०—(ऋभवः) सत्य ज्ञान और सत्य न्याय से प्रकाशित, सामर्थ्यवान् विद्वान् पुरुष (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर वा समृद्ध राजा के (सख्यं) मित्रता को (सम् आनशुः) भली प्रकार प्राप्त करें और (मनोः नपातः) मननशील और चित्त को न गिरने देने वाले मनुष्य (अपसः) उत्तम कर्मों को (दधन्विरे) धारण करें। वे (सौधन्वनासः) उत्तम ज्ञानवान्

पुरुष के पुत्र वा शिष्य होकर (सुकृत्यया) उत्तम क्रिया व आचरण से (सुकृतः) सदाचारवान् होकर (शमीभिः) शान्तिदायक कर्मों से (विष्ट्वी) परमेश्वर के परमपद को प्रवेश करके (अमृतत्वम्) मोक्ष पद को (एरिरे) प्राप्त करें।

इन्द्रे॑ण याथ स॒रथं॑ सु॒ते सचाँ॒ अथो॒ वशा॑नां भवथा स॒ह श्रि॒या।
न वः॑ प्रति॒मै सु॑कृ॒तानि॑ वाघतः॒ सौध॑न्वना ऋभवो वी॒र्या॑णि च ॥४॥

भा०—हे (वाघतः) ज्ञान के धारक! (सौधन्वनाः) उत्तम शक्ति-सम्पन्न! हे (ऋभवः) सत्यज्ञान से प्रकाशमान विद्वानो! जैसे रश्मियां प्रकाशमान सूर्य के साथ जातीं और दीप्तियों से युक्त होती हैं। वैसे ही आप लोग (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा वा ऐश्वर्य के साथ (सरथं) एक समान रथ में, वा रथादि सम्पन्न राज्य सेनादि को प्राप्त कर (सुते) उत्पन्न ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में (सचा) एक साथ (याथ) प्रयाण करो। (अथो) और (वशानाम्) वश करने वाले, वशी मनुष्यों के बीच वा कान्तिमान् सूर्यादि की (श्रिया) लक्ष्मी, कान्ति और (वः सुकृतानि) तुम्हारे उत्तम कार्यों और (वीर्याणि च) तुम्हारे सामर्थ्यों का कोई भी (प्रतिमै न) मुकाबला न कर सके।

इन्द्र॑ ऋ॒भुभि॒र्वाज॑वद्भिः॒ समु॑क्षितं सु॒तं सोम॒मा वृ॑षस्वा॒ गभ॑स्त्योः।
धि॒येषि॒तो म॑घवन्दा॒शुषो॑ गृ॒हे सौ॑धन्व॒नेभि॑ः स॒ह म॑त्स्वा॒ नृभि॑ः ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (ऋभुभिः वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोमं गभस्त्योः) सूर्य जैसे वेगवाले प्रकाशमय किरणों से संसिक्त जल को या ओषध्यादि को किरणों द्वारा पुष्ट करता है वैसे ही तू (वाजवद्भिः ऋभुभिः) ज्ञानवान् बलवान् विद्वानों और वीर पुरुषों से (समुक्षितं) अच्छी प्रकार सेचित, परिपालित (सुतं सोमम्) शासित ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (गभस्त्योः) वश करने में समर्थ बाहुओं के बल पर (आवृषस्व) सब प्रकार से परि-पुष्ट कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (धिया) बुद्धि से (इषितः) प्रेरित

होकर (दाशुषः) दानशील करप्रद प्रजा के (गृहे) ग्रहण करने हारे, राजपद पर स्थित होकर (सौधन्वनेभिः) उत्तम ज्ञान और धनुष आदि शस्त्र-बल से सम्पन्न होकर (नृभिः) वीर विद्वान् नेताओं सहित (मत्स्व) आनन्द लाभ कर।

इन्द्र॑ ऋभुमान्वाज॑वान्मत्स्वेह नो॑ऽस्मिन्त्सव॑ने शच्या॑ पुरुष्टुत।
इमानि॒ तुभ्यं॒ स्वस॑राणि येमिरे व्र॒ता दे॒वानां॒ मनु॑षश्च॒ धर्म॑भिः॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (पुरुष्टुत) बहुत से प्रशंसा करने योग्य! सूर्य जैसे प्रकाशमान और अन्नवान् होकर सबको आनन्दित करता है वैसे ही तू भी (ऋभुमान्) विद्वान् ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी और (वाजवान्) ऐश्वर्य और बल से युक्त होकर (इह) इस राष्ट्र में (नः) हमारे (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य में अपनी (शच्या) शक्ति-शालिनी बुद्धि और सेना से (नः मत्स्व) हमें हर्षित कर। (इमानि) ये (स्वसराणि) दिन जैसे (देवानां व्रतानि) सूर्य की किरणों के द्वारा करने योग्य होते हैं वैसे ही (इमानि) ये (स्वसराणि) स्वयं 'स्व' धन के निमित्त आगे बढ़ने वाले (देवानां) विद्यार्थी पुरुषों और (मनुषश्च) मननशील पुरुषों के (व्रता) कर्त्तव्य कर्म (धर्मभिः) धारण करने योग्य राष्ट्र के धारक राज्य नियमों सहित (तुभ्यं) तेरे ही लिये (येमिरे) राष्ट्र को नियन्त्रित करने वाले हों।

इन्द्र॑ ऋभुभि॑र्वा॒जिभि॑र्वा॒जय॑न्नि॒ह स्तोमं॑ जरि॒तुरुप॑ याहि य॒ज्ञिय॑म्।
श॒तं केते॑भिरिषि॒रेभि॑रा॒यवे॑ स॒हस्र॑णीथो अध्व॒रस्य॒ होम॑नि॥७॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (ऋभुभिः) सत्य ज्ञानों और बलों से चमकने वाले (वाजिभिः) बलवान् पुरुषों से युक्त होकर किरणों से सूर्य के तुल्य (वाजयन्) बलवान् होकर (जरितुः) उपदेष्टा वा आज्ञापक के (यज्ञियं) सत्कार मान प्रतिष्ठा मैत्रीभाव के योग्य (सोमं) स्तुत्य पद को (उपयाहि) प्राप्त कर और (केतेभिः) प्रजाओं

और प्रज्ञावान् पुरुषों, (इषिरेभिः) इष्ट मित्रों और प्रजा को सन्मार्ग दिखलाने वालों द्वारा तू (आयवे) मनुष्य के हितार्थ (अध्वरस्य) हिंसा-रहित और अविनाशी न्याय आदि के (होमनि) स्वीकार योग्य कार्य में (सहस्रनीथः) अनेकों से प्राप्त एवं अनेक आज्ञाओं और आज्ञापकों द्वारा सहस्र वाणियों से युक्त होकर (शतं) सौ वर्ष के जीवन को (उपयाहि) प्राप्त हो। इति सप्तमो वर्गः ॥

[६१] विश्वामित्र ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभात के समान कान्तियुक्त! हे (वाजिनि) बल और अन्न समृद्धि से युक्त! हे (मघोनि) ऐश्वर्यसम्पन्न तू (प्रचेताः) उत्तम चित्त वाली और उत्तम ज्ञान से युक्त होकर (गृणतः) उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुष के (स्तोमं) स्तुति वचन को (जुषस्व) सेवन कर। हे (देवि) देवि! तू (पुराणी) नवयौवन वाली (युवतिः) युवती और (पुरन्धिः) बहुत से शुभ गुणों, वा पुर के समान गृह को वा पालक पति को धारण करने वाली होकर हे (विश्ववारे) सब से उत्तम वरण करने योग्य! तू (अनुव्रतं चरसि) अनुकूल व्रताचरण करने वाली हो।

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

भा०—हे (उषः देवि) कमनीय कान्ति वाली देवि! तू (सूनृता) शुभ सत्य वचनों को (ईरयन्ती) बोलती हुई (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से ऊपर, असाधारण होकर (चन्द्ररथा) चन्द्र के समान कान्तिमान रथ में बैठकर, चन्द्र तुल्य आह्लादक पति को रमण रूप से प्राप्त करके (विभाहि) विशेष कान्ति से चमक। (सुयमासः अश्वाः) उषा के व्यापक

किरणों के समान उत्तम नियन्त्रित अश्व (त्वा आवहन्तु) तुझे दूर स्थान में ले जावें। (ये) जो (पृथुपाजसः) बहुत बड़े बल वाले हैं वे (सुयमासः अश्वाः) उत्तम जितेन्द्रिय अश्व के समान गृहस्थ रथ को उठाने में समर्थ पुरुष ही (सुयमासः) प्रतिज्ञाबद्ध होकर (हिरण्यवर्णां) सुवर्ण के समान हित एवं रमणीय वर्ण वाली (त्वा आवहन्तु) तुझे विवाह द्वारा प्राप्त करें।

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (विश्वा भुवनानि प्रतीची ऊर्ध्वा अमृतस्य केतुः) समस्त भुवनों को व्यापती हुई उषा जीवमात्र को ज्ञान देने वाली सबसे ऊपर रहती है वह (समानम् अर्थं चरणीयमाना चक्रम् आवर्त्तते) एक समान मार्ग में चलती हुई, बार बार चक्रवत् आती है वैसे ही हे (उषः) कान्ति-मति कन्ये! तू (प्रतीची) आदर योग्य पुरुष का सत्कार करती हुई वा प्रत्यक्ष सबके समक्ष आती हुई (विश्वा भुवनानि) सब मनुष्यों के (ऊर्ध्वा) ऊपर स्थित होकर (अमृतस्य केतुः) अमृत के तुल्य जीवन और उत्तम अन्न और जल के गुणों को जानने वाली हो। हे (नव्यसि) सबसे अधिक नवीनतम! तू अपने पति के साथ (समानम्) आदर सहित, समान (अर्थं) उद्देश्य, गृहस्थ जीवन के मार्ग को चलने में (चरणीयमाना) चरण के तुल्य आचरण करती हुई रथ में लगे दो पहियों में से (चक्रम् इव) एक चक्र के समान (आववृत्स्व) वर्त्ताव किया कर।

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥

भा०—(उषा स्वसरस्य पत्नी स्यूमा इव अवचिन्वती) तन्तु उत्पन्न करने वाली चर्खे की तकली जैसे (स्व-सरस्य पत्नी सती अवचिनोति) आपसे आप निकलने वाले सूत की रक्षिका होकर उसको एकत्र करती हुई गति करती है वैसे ही (उषा) प्रभात वेला भी (मघोनी) प्रकाशयुक्त

होकर (स्वसरस्य पत्नी) स्वयं कालगति से चलने वाले दिन की मालिकन सी होकर (अवचिन्वती) प्रकाश किरणों का सञ्चय करती हुई (स्वः जनन्ती) प्रकाशमान सूर्य को उत्पन्न करती हुई (सुभगा) उत्तम सेवने योग्य, (सुदसा) दर्शनीय (दिवः पृथिव्याः आ अन्तात् पप्रथे) आकाश और पृथिवी की सीमा तक फैल जाती है। वैसे ही स्त्री (मघोनी) ऐश्वर्य-युक्त, (उषा) कमनीय गुणों से युक्त, (स्वसरस्य) सुख सञ्चारित करने वाले पुरुष की (पत्नी) पत्नी होकर (स्यूमा इव) तन्तु उत्पन्न करने वाली तकली के समान सन्तान रूप तन्तु उत्पन्न करने वाली होकर (अव चिन्वती) विनम्र भाव से गुणों का सञ्चय करती हुई (स्वः जनन्ती) पति को सुख उत्पन्न करती हुई, (सुभगा) उत्तम रूप से सुख से सेवनीय, सौभाग्यवती, (सुदंसा) उत्तम कर्म करने वाली, (दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः आ अन्तात्) आकाश और पृथिवी की परली सीमा तक (पप्रथे) प्रख्यात हो।

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

भा०—(मधुधा दिवि पाजः अश्रेत्) जैसे 'मधु' आदित्य को धारण करने वाली उषा आकाश में तेज को धारण करती और वह (रण्वसंदृक्) रम्यदर्शना, (रोचना रुरुचे) प्रकाशवती होकर चमकती है वैसे ही (मधुधा) पति के निमित्त मधुपर्क को लाती हुई, मधुर वचनों और रूप गुण, स्वभाव को धारण करती हुई उत्तम (पाजः) अन्न जल को (अश्रेत्) धारण करे (दिवि) कामना के योग्य पति के आश्रय रहकर (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर (रण्वसंदृक्) सौम्यलोचना होकर (रोचना) सबके हृदय को अच्छी लगती हुई (रुरुचे) सबके मनोनुकूल वर्त्ते। हे विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों के बीच में ऐसी (देवीं) दिव्य गुणों से युक्त, (उषसं) पति की कामना करने वाली, (सुवृक्तिम्) उत्तम रीति से दुर्गुणों से बचने वाली, (विभातीं) विशेष रूप गुणों से चमकने वाली कन्या वा स्त्री को

(वः) आप लोग (अच्छ) सबके समक्ष (नमसा) सत्कार और अन्नादि से (प्र भरध्वम्) खूब पुष्ट करो ।

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (ऋतावरी) प्रकाश से युक्त उषा (दिवः अर्कैः अबोधि) सूर्य के तेजों से जगती है वह (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी में (आ अस्थात्) सर्वत्र व्याप जाती है (आयतीम् विभातीं उषसं प्राप्य भिक्षमाणः अग्निः द्रविण एति) उस व्यापक प्रकाश वाली उषा काल को प्राप्त होकर याचना करता हुआ विनयशील भक्त दूत, रसमय ज्ञान को प्राप्त होता है वैसे ही (ऋतावरी) सत्य ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्यवती स्त्री (दिवः) कामनावान् पति के (अर्कैः) अर्चना योग्य गुणों और प्रशंसा वचनों से ही (अबोधि) जानी जाती है वह (रेवती) गुणों से सम्पन्न कन्या वा स्त्री (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान अपने माता पिता वा पितृकुल और मातृकुल दोनों में (आ अस्थात्) आदर से प्राप्त हो । हे (अग्ने) विद्वन् ! हे नायक ! तू (वामं) प्राप्त करने योग्य, (द्रविणं) ऐश्वर्य के समान (आयतीं) आती हुई, (विभाती) विशेष गुणों से चमकती हुई (उषसम्) कान्तिवती कन्या को (भिक्षमाणः) उसके पिता से प्रार्थना करता हुआ (एषि) उसे प्राप्त हो ।

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥७॥८॥

भा०—(ऋतस्य) प्रकाश और (उषसाम्) उषा या प्रभात वेलाओं के (बुध्ने) मूल में विद्यमान (मही रोदसी) भारी आकाश और पृथ्वी दोनों को (इषण्यन्) प्रेरित करने हारा (वृषा) वृष्टिकर्त्ता सूर्य जैसे (आविवेश) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच प्रवेश करता है वैसे ही (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और (उषसाम्) कमनीय कन्याओं के

(बुध्ने) आश्रय रूप में इनको (इषण्यन्) चाहता हुआ (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष (मही) पूजनीय (रोदसी) माता पिता दोनों को (आ विवेश) आदर पूर्वक प्राप्त हो। जैसे (मित्रस्य वरुणस्य मही माया) मित्र अर्थात् दिन और वरुण अर्थात् रात्रि दोनों की यह बड़ी शक्ति है कि यह उषा (चन्द्रा इव भानुं) सुवर्णपुञ्जों के समान सूर्य को (पुरुत्रा) बहु रूप या बहुत से देशों में (विदधे) फैला देती है। वैसे ही (मित्रस्य) स्नेह और (वरुणस्य) परस्पर एक दूसरे के वरण करने वाले वर वधू की यह (मही माया) पूज्य, उत्कृष्ट बुद्धि है कि वह (पुरुत्र) बहुतों के बीच में (चन्द्रा इव) आह्लादकारिणी कन्या के समान ही (भानुं) कान्तिमान् पुरुष को भी (विदधे) बना देती है। इत्यष्टमो वर्गः॥

[६२] विश्वामित्रः। १६—१८ विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषिः॥ १—३ इन्द्रावरुणौ। ४—६ बृहस्पतिः। ७—९ पूषा। १०—१२ सविता। १३—१५ सोमः। १८—१८ मित्रावरुणौ, देवते॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्॥ २ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५, १०, ११, १६ निचृद्गायत्री। ६ त्रिपादगायत्री। ७, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १७, १८ गायत्री॥ पंचदशर्चं सूक्तम्॥

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन्।
क्व१त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः॥१॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) विद्युत् के तुल्य तेजस्विन्! हे सबके आवरण करने वाले रात्रि के तुल्य सबको वश करने वाले श्रेष्ठ क्षत्रिय! (इमाः) ये (ऊ) ही (वां) तुम दोनों की (मन्यमानाः) जानी गई (भृमयः) भ्रमण की क्रियाएं हैं जो (युवावते) तुम दोनों की रक्षा करने चाहने वाले सज्जन के हित के लिये कभी (तुज्याः न अभूवन्) नाश होने योग्य नहीं हैं। हे (इन्द्रा वरुणा) सूर्य और मेघ के समान राजन्! सेनापते! (त्वां) तुम लोगों का (त्यत् यशः क) वह यश कहां स्थित है (येन) जिससे

आप दोनों (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सिनं) परस्पर प्रेम बांधने वाले बल और अन्न को पुष्ट करते हो।

अ॒यमु॑ वां पुरु॒तमो॑ र॒यीय॑ञ्छश्वत्त॒मम॑व॑से जोहवीति।
स॒जोषा॑विन्द्रावरुणा म॒रुद्भि॑र्दि॒वा पृ॑थि॒व्या शृ॑णुतं॒ हवं॑ मे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) सूर्य और मेघ के तुल्य ऐश्वर्यवान् सब दुःखों के वारक स्त्री पुरुषो! (अयम्) यह (वां) तुम दोनों के (रयीयन्) ऐश्वर्य को चाहने वाला (पुरुतमः) बहुत संख्या वाला है जो (शश्वत्तमम्) सदा तुम दोनों को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (जोहवीति) पुकारता है। आप दोनों (सजोषौ) प्रीतियुक्त होकर (मरुद्भिः) वायुगणों के तुल्य बलवान् पुरुषों सहित (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी दोनों के तुल्य उत्पादक और आश्रय होकर (मे हव) मेरे वचन को (शृणुतं) श्रवण करो।

अ॒स्मे तदि॑न्द्रावरुणा॒ वसु॑ ष्याद॒स्मे र॒यिर्म॑रुतः॒ सर्व॑वीरः।
अ॒स्मान्वरू॑त्रीः शर॒णैर॑वन्त्व॒स्मान्होत्रा॒ भार॑ती॒ दक्षि॑णाभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) दिन, रात्रि व सूर्य मेघ के तुल्य नायक जनो! (अस्मे) हमें (तत्) वह अलौकिक (वसु) ऐश्वर्य (स्यात्) प्राप्त हो। हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो! (अस्मे) हमें (सर्ववीरः) सब वीरों से युक्त (रयिः) पशु, हिरण्यादि हो। (वरूत्रीः) शत्रुओं से बचाने वाली सेनाएं (शरणैः) शत्रुनाशक साधनों, अस्त्रों और शस्त्रों से (अवन्तु) रक्षा करें और (अस्मान्) हमको (होत्रा) देने योग्य और (भारती) विद्वानों की सर्वपालक वाणी (दक्षिणाभिः) उत्तम दानों और उदार वाणियों द्वारा (अवन्तु) रक्षा करें।

बृह॑स्पते जु॒षस्व॑ नो ह॒व्यानि॑ विश्वदेव्य।
रास्व॒ रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) वेदवाणी के पालक विद्वान् ! हे ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! तू (नः) हमारे (हव्यानि) दान देने और स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर और (दाशुषे) दानशील पुरुष को (रत्नानि) रमणीय धन (रास्व) दे ।

शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत ।
अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अर्कैः) उत्तम सत्कारमन्त्रों और विचारों से (शुचिम्) पवित्र (बृहस्पतिम्) वेदवाणी के पालक विद्वान् वा ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर को (अध्वरेषु) यज्ञ, विद्याप्राप्ति आदि अहिंसनीय कार्यों के अवसरों पर (नमस्यत) नमस्कार करो । मैं उससे ही (अनामि) कभी न झुकने वाले (ओजः) पराक्रम की (आ चके) प्रार्थना करूं । इति नवमो वर्गः ॥

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् ।
बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६ ॥

भा०—(चर्षणीनां) मनुष्यों में (वृषभम्) समस्त सुखों की वर्षा करने वाले, (अदाभ्यम्) किसी से न मारने योग्य, (वरेण्यम्) श्रेष्ठ वा श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाले (बृहस्पतिम्) वेदवाणी के पालक विद्वान् और ब्रह्माण्ड के स्वामी (विश्वरूपं) समस्त पदार्थों के निर्माता, विश्वरूप परमेश्वर को (नमस्यत) नमस्कार करो ।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी ।
अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥

भा०—हे (आघृणे) सुखों की वर्षा करने वाले मेघवत् सुखवर्षक ! हे (पूषन्) अन्न वा पृथ्वी के समान सर्वपोषक ! (ते) तेरी (इयं) यह

(नव्यसी) नवीन, सदा स्तुति योग्य, (सुस्तुतिः) उत्तम स्तुति है। (अस्माभिः) हमसे (तुभ्यं) तेरे लिये यह (शस्यते) सदा कही जाय।

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम्।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८ ॥

भा०—(वधूयुः) वधू की कामना करने वाला पुरुष जैसे (वाजयन्ती) ऐश्वर्य को चाहने वाली (योषणाम्) स्त्री को प्रेम से स्वीकार करता है वैसे ही हे विद्वन्! हे परमेश्वर! (वाजयन्ती) सत्यासत्य विवेक वाली (मम) मेरी (तां) उस (गिरं) वाणी और (धियं) धारणावती बुद्धि को विचारमय भावना से (जुषस्व) स्वीकार कर।

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति।
स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (अभि विपश्यति) प्रत्यक्ष विचित्र प्रकार से देखता है और (भुवना) समस्त लोकों को (सं पश्यति च) अच्छी प्रकार सम्यग् दृष्टि से देखता है (सः) वह (नः) हमारा (पूषा) पोषक और (अविता) रक्षक है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरणा करता है (सवितुः) सर्वोत्पादक उस (देवस्य) सर्वप्रकाशक परमेश्वर के (तत्) उस अनुपम (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (भर्गः) पापों को भूनने वाले, तेज को (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें।

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः।
कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयन्त्सविता याभिरेति ॥ अथर्व०॥

वेद, छन्द (मन्त्र) उसी सर्वोत्पादक परमेश्वर के वरण करने योग्य श्रेष्ठ सर्व पापनाशक तेज हैं जिसको सर्वप्रकाशक परमेश्वर का कवि विद्वान् लोग 'अन्न' अर्थात् अक्षय ऐश्वर्य बतलाते हैं। कर्म ही धी है यही मैं तुझे उपदेश करता हूँ कि जिससे सर्वोत्पादक प्रभु सूर्यवत् प्रेरणा करता हुआ सब जीवों वा लोकों को प्राप्त होता है। इति दशमो वर्गः ॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या।
भगस्य रातिमीमहे ॥ ११ ॥

भा०—(वयं) हम लोग (देवस्य) सर्वैश्वर्यप्रद (सवितुः) प्रेरक और उत्पादक (भगस्य) भजने और सेवने योग्य परमेश्वर की (रातिम्) दान समृद्धि की, (वाजयन्तः) बल और ऐश्वर्य की कामना करते हुए (पुरन्ध्या) धारण सामर्थ्ययुक्त बुद्धि से (ईमहे) याचना करते हैं।

देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः।
नमस्यन्ति धियेषिताः ॥ १२ ॥

भा०—(विप्राः नरः) विद्वान् लोग (धियेषिताः) बुद्धि और उत्तम कर्मों से प्रेरित होकर, (सुवृक्तिभिः) दोषों को उच्छेदन करने में समर्थ (यज्ञैः) सत्संग, दान आदि पुण्य कर्मों से (देवं) सर्वप्रकाशक (सवितारं) सर्वप्रेरक परमेश्वर को ही (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं।

सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम्।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ १३ ॥

भा०—(सोमः) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष (देवानां) प्रकाश देने वाले, ज्ञानी पुरुषों की (गातुवित्) प्रशंसा, उत्तम मार्ग को प्राप्त करके (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (योनिम्) आश्रय और (आसदम्) आकर बैठने के स्थान को (जिगाति) जाता है। वह (निष्कृतं) शुद्ध ज्ञान को और सत्य के आश्रय प्राप्तव्य को भी (एति) प्राप्त करता है।

सोमो॑ अ॒स्मभ्यं॑ द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे च प॒शवे॑।
अ॒न॒मी॒वा इषं॑स्करत् ॥ १४ ॥

भा०—(सोमः) चन्द्र के समान रसादि ओषधियों को बनाने वाला पुरुष (अस्मभ्यम्) हमारे (द्विपदे) दो पाये भृत्यों (चतुष्पदे च पशवे) और चौपाये पशुओं के लिये (अनमीवाः इषः) रोग रहित अन्न (करत्) उत्पन्न करे।

अ॒स्माक॒मायु॑र्व॒र्धय॑न्न॒भिमा॑तीः॒ सह॑मानः।
सोमः॑ स॒धस्थ॒मास॑दत् ॥ १५ ॥

भा०—(अस्माकम्) हमारे (आयुः) जीवनों को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (अभिमातीः) शत्रुओं के समान देह के शत्रु रूप रोगों का (सहमानः) विनाश करता हुआ (सोमः) वायु, चन्द्र, ओषधिरस और उपदेष्टा (सधस्थम्) हमारे साथ, एक साथ (आसदत्) आकर रहे।

आ नो॑ मित्रावरुणा घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षतम्।
मध्वा॒ रजां॑सि सुक्रतू ॥ १६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर स्नेह करने और एक दूसरे का वरण करने वाले विवाहित स्त्री पुरुषो! आप दोनों (नः) हमारे बीच में (सुक्रतू) उत्तम कर्म और ज्ञान को करते हुए (घृतैः) जलों के समान स्नेहयुक्त आचार विचारों से (गव्यूतिम्) ज्ञान वाणियों के सत्संग को और (मध्वा) मधुर वचनों से (रजांसि) लोकों को (उक्षतम्) सेचन करो।

उ॒रु॒शंसा॑ नमो॒वृधा॑ म॒ह्ना दक्ष॑स्य राजथः।
द्राघि॑ष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ १७ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों (शुचिव्रता) शुद्ध कर्म करते हुए (उरुशंसा) बहुत प्रशंसा और प्रशस्त विद्याओं से युक्त (नमोवृधा) 'नमः',

परस्पर आदर और अन्नादि से बढ़ते बढ़ाते हुए दोनों (द्राघिष्ठाभिः) अधिक पुरुषार्थ से युक्त क्रियाओं से वा विस्तार वाली सम्पदाओं से और (दक्षस्य महा) ज्ञान के महान् सामर्थ्य से (राजथः) प्रकाशित होओ ।

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
पातं सोममृतावृधा ॥ १८ ॥ ११ ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (जमदग्नि) प्रज्वलित अग्नि के समान सत्य के प्रकाशक विद्वान् (गृणाना) उपदेश करते हुए आप दोनों ! (ऋतस्य योनौ) अन्न से पूर्ण गृह के समान सत्य के आश्रय में (सीदतम्) विराजो । दोनों (ऋतवृधा) अन्न के तुल्य सेवनीय धन वा सत्य के बल से बढ़ते हुए (सोमं) उत्पन्न सन्तान का (पातं) पालन करो । इत्येकादशो वर्गः । इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

❀ इति तृतीयं मण्डलं समाप्तम् ❀

—o—

अथ चतुर्थं मण्डलम्

[१] वामदेव ऋषिः ॥ १, ५—२० अग्निः । २—४ अग्निर्वा वरुणश्च देवता ॥ छन्दः—स्वराड्तिशक्वरी । २ अतिज्जगती । ३ अष्टिः । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ५, १८, २० स्वराट् पंक्तिः । ७, ९, १५, १७, १९ विराट्त्रिष्टुप् । ८, १०, ११, १२, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १३, १४ त्रिष्टुप् । विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

त्वां ह्यग्ने सद॒मित्स॑म॒न्यवो॑ दे॒वासो॑ दे॒वम॑र॒तिं न्ये॑रि॒र इति॒ क्रत्वा॑ न्येरि॒रे । अम॑र्त्यं यजत॒ मर्त्ये॒ष्वा दे॒वमादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसं॒ विश्व॒-मादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (अग्ने) नायक ! (समन्यवः) ज्ञान-वान् और शत्रु को विजय करने के लिये विशेष क्रोध से युक्त (देवासः) विद्यादि ऐश्वर्यों की कामना वाले शिष्य वा वीर जन (देवं) विद्यादाता, विजयेच्छुक और (अरतिं) प्राप्त होने योग्य, सबसे अधिक मतिमान्, (त्वां) तुझको (हि) ही निश्चय से, (सदम् इत्) अपने शरण वा आश्रय जानकर (नि एरिरे) प्राप्त होते हैं और प्राप्त हों (इति) इस प्रकार (क्रत्वा) उत्तम आचरण और ज्ञान से ही वे (नि-एरिरे) नियम से सर्वथा तुझे प्राप्त हों । हे विद्वान् लोगो ! आप (मर्त्येषु) मनुष्यों, वा शत्रुओं को मारने वाले वीर भटों में, (अमर्त्यं) असाधारण मनुष्य और (देवं) ऐश्वर्य दाता विजिगीषु राजा की (आ यजत) सब प्रकार से पूजा करो, और (आदेवं) सब ओर प्रकाश वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (प्रचेतसं) उत्कृष्ट ज्ञानी पुरुष को (जनत) उत्पन्न करो और (विश्वम्) सभी (आदेवं) सर्व प्रकाशक (प्रचे-तसम्) ज्ञानवान् पुरुष को (आजनत) अपने में से अधिक प्रसिद्ध करो ।

स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम्। ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) सेनानायक ! विनीत शिष्य ! (सः) वह तू (वरुणम्) दोषों, शत्रुओं और पापों को दूर करने वाले, श्रेष्ठ, वरण योग्य (भ्रातरम्) भाई के समान पालक, प्रजा के भरण में समर्थ पुरुष को (आ ववृत्स्व) आदर पूर्वक स्वीकार कर और (देवान्) दानशाली, तेजस्वी पुरुषों की (सुमती) शुभ मति से (अच्छ) प्राप्त करे और (यज्ञवनसं) मैत्री और दान के देने वाले (ज्येष्ठं) सबसे उत्तम (यज्ञवनसं) पूजनीय पद को प्राप्त, (ऋतावानम्) न्यायाचरण, ऐश्वर्य, अन्नादि के स्वामी, (आदित्यं) सूर्य समान तेजस्वी और प्रजा के उपकार के लिये करादि लेने वाले, (चर्षणीधृतम्) समस्त मनुष्यों को धारण करने में समर्थ, (राजानं) सबका मनोरञ्जन करने वाले और (चर्षणीधृतम्) तत्वद्रष्टा पुरुषों द्वारा स्थापित पुरुष को (आववृत्स्व) प्राप्त होकर उसके अधीन रह ।

सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या। अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु। तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ ३ ॥

भा०—हे (सखे) सखे ! हे (दस्म) शत्रुनाशक नायक ! (रथ्या) रथ के योग्य (रंह्या) वेग से जाने वाले घोड़े (आशुं चक्रं न) जैसे चक्र को वेग से (आ वर्त्तयतः) चलाते हैं वैसे ही तू भी (आशुं) वेग से काम करने वाले (चक्रं) क्रियावान् को (अभि आववृत्स्व) सब प्रकार से प्राप्त कर। हे (अग्ने) अग्रणी ! तू (वरुणे) श्रेष्ठ, वरण योग्य, शत्रुओं के निवारक पुरुष के अधीन और (विश्वभानुषु) समस्त विश्व में सूर्य के समान तेजस्वी (मरुत्सु) मनुष्यों के बल पर ही (सचा) संयोग और समवाय

बल से (मृळीकं) सुखकारी ऐश्वर्य और ज्ञान (विदः) प्राप्त कर। हे (शुशुचान) देदीप्यमान! तू (तोकाय) पुत्रवत् (तुजे) पालने योग्य सन्तान, प्रजा के हित (शं कृधि) कल्याण कर और हे (दस्म) दर्शनीय, दुःख नाशक! तू (अस्मभ्यं शं कृधि) हमारे लिये शान्ति दे।

त्वं नो॑ अग्ने॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान्दे॒वस्य॒ हेळोऽव॑ यासिसीष्ठाः।
यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषां॑सि॒ प्र मु॑मुग्ध्य॒स्मत् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे ज्ञानवान् पुरुष! तू (नः विद्वान्) हम में से विद्वान् है। तू (देवस्य) ज्ञान और ऐश्वर्य के दाता (वरुणस्य) श्रेष्ठ, आचार्य, राजा और परमेश्वर के सम्बन्ध में हमारे (हेळः) क्रोध के भाव को (अव यासिसीष्ठाः) दूर कर। तू (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य, (वह्नितमः) कार्य का भार सहने में श्रेष्ठ, (शोशुचानः) प्रकाशमान होकर (अस्मात्) हम से (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के द्वेष के भावों को (प्र मुमुग्धि) दूर कर।

स त्वं नो॑ अग्नेऽव॒मो भ॑वो॒ती नेदि॑ष्ठो अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ।
अव॑ यक्ष्व नो॒ वरु॑णं॒ ररा॑णो वी॒हि मृ॑ळी॒कं सु॒हवो॑ न एधि ॥५॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान्! प्रभो! (सः) वह (त्वं) तू (नः) हमारे बीच (ऊती) ज्ञान पालन आदि कर्मों द्वारा (अवमः) हमारे समीप और (अस्याः उषसः) इस प्रभात वेला के समान कमनीय, पाप नाशक वेला के (वि उष्टौ) विशेष रूप से प्रकट होने पर तू हमारे (नेदिष्ठः) समीपतम (भव) हो। तू (नः) हमें (वरुणं) वरण योग्य श्रेष्ठ पदार्थ, उत्तम पुरुष और पापनिवारक बल (रराणः) देता हुआ (नः) हमें (अव यक्ष्व) अपने अधीन सत्संग और मैत्रीभाव से जोड़े रख। (नः) हमारे (मृळीकं) सुखकारी ज्ञान प्रकाश को (वीहि) प्रकाशित कर। (नः) हमारे लिये (सुहवः) उत्तम पदार्थों का दाता, सुख से पुकारने योग्य, शरण (एधि) हो। इति द्वादशो वर्गः॥

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य) इस (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् (देवस्य) मेघ के समान दानशील और सूर्य समान तेजस्वी पुरुष के (मर्त्येषु) वीर प्रजा-जनों के बीच (श्रेष्ठा) उत्तम और (चित्रतमा) अति आश्चर्यजनक कर्म और (संदृक्) सम्यक् दृष्टि हो। (देवस्य) अभिलाषी पुरुष को जैसे (अघ्न्यायाः) गौ का (शुचि) शुद्ध पवित्र (तप्तं) गरम (घृतं) दूध वा तपा घी और (धेनोः मंहना इव) दानाभिलाषी को जैसे गो-दान (स्पार्हा) अति अभिलाषा योग्य होता है वैसे ही (देवस्य) उस सूर्यवत् तेजस्वी राजा को भी अपनी (अघ्न्यायाः) कभी न मारने योग्य, गोवत् पालन योग्य प्रजा का (शुचि) ईमानदारी से प्राप्त, (तप्तं) शत्रुओं का संताप जनक (घृतं) तेज और (धेनोः) गाय के समान सबकी पोषक पृथिवी के (मंहना) दिये नाना ऐश्वर्य भी उसको (स्पार्हा) चाहने योग्य हों।

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७॥

भा०—(अग्नेः त्रिः परमा सत्या जनिमा) अग्नि के तीन प्रकार के परम, सत्य, सर्व हितकारी, बलवान् स्वरूप हैं, अग्नि, विद्युत् और सूर्य उसी प्रकार (अस्य देवस्य) इस ज्ञान और ऐश्वर्य के दाता विद्वान् पुरुष और तेजस्वी राजा के भी (त्रिः) तीन प्रकार के (ताः) वे नाना (परमा) उत्तम कोटि के, (सत्या) सत्य, (स्पार्हा) उत्तम, चाहने योग्य, (जनिमानि) स्वभावसिद्ध रूप हैं, प्रथम (अनन्ते अन्तः) वह अनन्त आकाश में सूर्य के समान अनन्त परमेश्वर के बीच में (परिवीतः) सब प्रकार से प्रकाशित और प्रविष्ट हो। दूसरे, वह (शुक्रः) तेज से युक्त, विद्युत् के समान, (शुचिः) स्वयं शुद्ध, अन्यों को शुद्ध करने वाला (आ गात्) सर्वत्र जाना

जाय। तीसरे, वह (रोरुचानः) अग्नि के तुल्य कान्तिमान् (अर्हः) सबका स्वामी हो।

स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८॥

भा०—(सः) वह विद्वान्, उत्तम नायक, (दूतः) शत्रुओं का संतापक, सज्जनों का सेवक, (विश्वा सद्मा अभि वष्टि) सूर्य वा अग्नि के समान ही सब लोकों और पदों को चमकाता है, वह (हिरण्यरथः) सुवर्णादि के बने रथ वाला, रमणीय, रूपवान्, (रंसुजिह्वः) मधुर वाणी बोलने हारा, (रोहित्-अश्वः) रक्त वर्ण के वेगवान् घोड़ों वा अग्नि आदि साधनों वाला, (वपुष्यः) उत्तम देह, रूपवान् (विभावा) कान्तिमान्, (सदा) नित्य (रण्वः) रमणीय, सुन्दर और (पितुमती इव) पालक सभापति से समृद्ध (संसत्) सभा के समान सबका पालक हो।

स चैतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह (यज्ञबन्धुः) दान, सत्संग और मैत्री आदि कर्मों द्वारा सबका बन्धु होकर (मनुषः) मनुष्यों को (चेतयत्) ज्ञानवान् करे। (तं) उसको विद्वान् लोग (रशनया) लगाम से जैसे अश्व को सन्मार्ग पर चलाते हैं वैसे ही (मह्या) बड़ी पूजनीय (रशनया) राष्ट्र में व्यापक नीति वा भृत्य परम्परा सहित (प्र नयन्ति) उत्तम रीति से ले जावें। (सः) वह (देवः) तेजस्वी राजा (अस्य) इस राष्ट्र के (दुर्यासु) राज्य गृहों में वा शत्रु निवारक सेनाओं के बीच (क्षेति) निवास करे और (साधन्) कार्यों को सिद्ध करता हुआ, (मर्तस्य) मनुष्य समूह के लिये (सधनित्वम्) ऐश्वर्यवान् पुरुषों से युक्त राज्य पद को (आप) प्राप्त करे।

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) नायक, राजा, विद्वान् (यत्) जो

(अस्य) इस संसार का (देवभक्तं) देव, विद्वान् और अभिलाषक जीव के सेवन करने योग्य (अच्छ रत्नं) रमणीय ऐश्वर्य, जीवन सुख आदि पदार्थ है उसकी ओर (प्रजानन्) अच्छी प्रकार ज्ञानवान् है, वह (नः) हमें (तु नयतु) शीघ्र ही ले जावे। जिसको (विश्वे अमृताः) समस्त जीवगण (धिया अकृण्वन्) बुद्धिपूर्वक विचार करते हैं (द्यौः) ज्ञान प्रकाश से युक्त (पिता) पालक, आचार्य (जनिता) उत्पन्न करने वाली माता और पिता के तुल्य शिष्य को उत्पन्न करने वाला आचार्य भी जिसको (सत्यम्) सत्य ज्ञान से (उक्षन्) बढ़ावें। इति त्रयोदशो वर्गः॥

स जा॑यत प्रथ॒मः प॒स्त्या॑सु म॒हो बु॒ध्ने रज॑सो अ॒स्य योनौ॑।
अ॒पाद॑शी॒र्षा गु॒हमा॑नो॒ अन्ता॒योयु॑वानो वृष॒भस्य॑ नी॒ळे॥ ११॥

भा०—(सः) वह नायक (प्रथमः) मुख्य होकर (पस्त्यासु) गृहों में रहने वाली प्रजाओं के बीच, मुख्य पुरुष के समान ही (जायत) रहे। वह (अस्य) इस (महः रजसः) बड़े लोक जन-समूह के (योनौ) आश्रय स्थान (बुध्ने) उसके बांधने या नियन्त्रण करने के पद पर विराजे। वह (अपात्) स्वयं सबका आश्रय होने से पैर के समान अन्य आश्रय की अपेक्षा न करता हुआ, (अशीर्षा) स्वयं सब से मुख्य होकर शिर के तुल्य, अन्य शिर की अपेक्षा न करता हुआ (गुहमानः) सबके बीच अप्रकट रूप से विचार करने वाला, (अन्ता) अपने सिद्धान्तों या परिणत कार्यों को (वृषभस्य नीळे) अन्नादि के दाता सूर्य के उत्तम तेजस्वी पद पर स्थित होकर (आयोयुवानः) रश्मियों के समान कार्य में नियुक्त करता हुआ (जायत) रहे।

प्र शर्धं आर्त प्रथ॒मं वि॑प॒न्यॉं ऋ॒तस्य॒ योना॑ वृष॒भस्य॑ नी॒ळे।
स्पा॒र्हो युवा॑ वपु॒ष्यो॑ वि॒भावा॑ स॒प्त प्रि॒यासो॑ऽजनयन्त॒ वृष्णे॑॥१२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष! तू प्रथम, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (योना) गृह में, आचार्य के घर में और (वृषभस्य नीळे) ज्ञान को मेघ के समान

वर्षाने वाले गुरु के आश्रय में रहकर (विपन्या) विशेष उपदेश योग्य वेद वाणी के द्वारा (प्रथमं शर्धः) श्रेष्ठ, ज्ञान, ब्रह्मचर्य को (प्र आर्त) अच्छी प्रकार प्राप्त कर। ऐसे ही हे राजन्! नायक! तू (ऋतस्य योना) धनैश्वर्य और ऋत अर्थात् सत्य न्याय के पद और (वृषभस्य नीळे) अर्थात् राज्य प्रबन्ध के शकट को उठाकर ले चलने वाले वृषभ तुल्य प्रधान पद पर स्थित होकर (विपन्या) विविध आज्ञा और व्यवहार चलाने वाली वाणी और नीति से सर्वोत्तम बल को प्राप्त कर। वह तू (स्पार्हः) सबके चाहने योग्य, सर्व प्रिय, (युवा) बलवान्, (वपुष्यः) शरीर धारण करने वाला, (विभावा) विशेष कान्तिमान् हो और (सप्त) सात (प्रियासः) प्रिय बन्धुजन (वृषणे) उस बलवान् पुरुष के हित के लिये (शर्धः अजनयन्त) बल और सुख उत्पन्न करें।

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३॥

भा०—(अत्र) इस लोक वा राष्ट्र में जो (अस्माकम्) हमारे बीच में हमारे (पितरः) पालन करने वाले और (मनुष्याः) मननशील पुरुष (ऋतम्) ब्रह्मचर्य, वीर्य और धनैश्वर्य को (आशुषाणाः) प्राप्त करते हुए (अभि प्र सेदुः) सदा प्रसन्न रहते हैं, वे (हुवानाः) ज्ञान का दान और प्रतिग्रह करते हुए (अश्मव्रजाः) मेघ समान ज्ञानवर्षक लोगों की शरण जाने वाले, (सुदुघाः) उत्तम ज्ञान का दोहन करने वाले, (वव्रे अन्तः) आवृत स्थान में स्थित गौओं के समान ही वरण योग्य परमेश्वर के भीतर ही (उषसः) पापों को दग्ध करने वाली (उस्राः) रश्मियों, दीप्तियों और वाणियों को (उत् आजन्) प्राप्त करते हैं। अर्थात् जैसे उत्तम गो-पालक (अश्मव्रजाः वव्रे अन्तः स्थिताः उस्राः उद् आजन्) पत्थर की बनी गोशालाओं के बीच में विद्यमान उत्तम दोहने योग्य, बाड़े में स्थित गौओं को हांकते हैं, बाहर करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग (अश्मव्रजाः) परमेश्वर

की तरफ जाने वाली (सुदुघाः) उत्तम सुख प्रदान करने वाली (उस्राः उषसः) स्वयं उत्पन्न होने वाली प्रातः उषा के तुल्य दीप्ति वाली (वव्रे अन्तः) अन्तःकरण के भीतर स्थित वाणियों को (उत् आजन्) प्रकट करें।

ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन्।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४॥

भा०—(ते) वे विद्वान् (अद्रि) मेघ को रश्मियों के समान, अभेद्य अज्ञान को (ददृवांसः) विदारण या छिन्न भिन्न करते हुए (मर्मृजत) अपने को शुद्ध करते रहें (एषाम्) इनमें से ही (अन्ये) कुछ विद्वान् लोग (अभितः) सब ओर (तत्) उस परमात्मा और आत्मा का (वि वोचन्) विविध प्रकार से उपदेश करें। (पश्वयन्त्रासः) देखने वाले यन्त्रों से युक्त या उनका साक्षात् करने वाले, जितेन्द्रिय होकर (कारम् अभि) विश्व निर्माता परमेश्वर को साक्षात् करके (अर्चन्) उसकी स्तुति करें। और (धीभिः) बुद्धियों से (ज्योतिः विदन्त) दूरस्थ नक्षत्रादि ज्योति वा ज्ञानमय ज्योति को (विदन्त) प्राप्त करें और (धीभिः) बुद्धियों और कर्मों से ही (चकृपन्त) काम करने में समर्थ हों।

ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम्।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५॥१४॥

भा०—(गव्यता मनसा) उत्तम ज्ञान-वाणियों को प्राप्त करने की इच्छा वाले चित्त से (दृध्रम्) शिष्यों को बढ़ाने वाले, (उब्धम्) स्वयं उक्त प्रकार के ज्ञान से पूर्ण (गाः येमानम्) किरणों को सूर्य के तुल्य, वाणियों और इन्द्रियों को नियम में रखने वाले (सन्तम्) सत्स्वभाव (अद्रिम्) मेघ के समान ज्ञानवर्षक, (दृढं) दृढ़, (गोमन्तं) सूर्यवत् ज्ञानरश्मियों और वेदवाणियों के स्वामी, (व्रजं) परम गन्तव्य वा सर्व विद्या मार्गों में जाने में समर्थ विद्वान् आचार्य को (ते नरः) वे शिष्य जन (उशिजः) ज्ञानों की कामना करते हुए (दैव्येन वचसा) ज्ञानदाता के

योग्य वचन से आदर पूर्वक (परि वव्रुः) चारों ओर से घेर कर उसके समीप रहें और उसे (वि वव्रुः) विविध प्रकार से अपनावें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

ते म॑न्वत प्र॒थ॒मं नाम॑ धे॒नोस्त्रिः स॒प्त मा॒तुः प॑र॒माणि॑ विन्दन् ।
तज्जा॑न॒तीर॒भ्य॑नूषत॒ व्रा आ॒विर्भु॑वदरु॒णीर्य॒शसा॒ गोः ॥ १६ ॥

भा०—(ते) वे विद्वान् (मातुः) सबकी माता (धेनोः) सबकी धारक पोषक, गाय के समान मधुर रस पिलाने वाली वाणी के (नाम) नाम वा स्वरूप को, माता के नाम को बालकों के समान (प्रथमं) सबसे प्रथम, श्रेष्ठ करके (त्रिः मन्वत) श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन प्रकारों से ज्ञात करें और वे (मातुः) समस्त ज्ञानों की उपदेष्टा वाणी या परमेश्वरीय शक्ति के (सप्त) सात वा सर्वव्यापक (परमाणि) सर्वोत्कृष्ट रूपों का (विन्दन्) ज्ञान करें। वाणी के ७ रूप, सात प्रकार के छन्द। परमेश्वरी शक्ति से युक्त सर्वजननी प्रकृति के सात रूप, पांच भूत, महत् तत्व और अहंकार। अथवा (त्रिः सप्त परमाणि विन्दन्) वे वाणी के २१ रूपों का ज्ञान करते हैं। वेदवाणी के २१ रूप, गायत्री आदि सात, अति जगती आदि सात और कृति आदि सात (जानतीः) ज्ञान से युक्त (व्राः) परमेश्वर को वरण करने और उसको संभजन कीर्त्तन करने वाली वाणियें (अरुणीः) रक्त गुण वाली उषाओं के समान ज्ञान प्रकाश वाली होकर (तत्) उसी परमेश्वर की (अभि अनूषत) सब प्रकार से स्तुति करती हैं और वह आत्मा (गोः) वाणी के (यशसा) बल और तेज से ही, रश्मि के बल से सूर्य के तुल्य, इन्द्रियों के बल से जीव आत्मा के तुल्य और भूमि के यश से राजा के तुल्य ही (आविः भुवत्) प्रकट होता है।

नेशत्तमो॒ दुधि॑तं॒ रोच॑त॒ द्यौरुद्दे॒व्या उ॒षसो॑ भा॒नुर॑र्त ।
आ सूर्यो॑ बृह॒तस्ति॑ष्ठ॒दज्राँ॑ ऋ॒जु मर्ते॑षु वृ॒जिना॑ च॒ पश्य॑न् ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! जैसे सूर्योदय के होने पर (दुधितं तमः) आकाश में फैला हुआ अन्धकार भी (नेशन्) नष्ट हो जाता है और (द्यौः रोचत) सूर्य चमकने लगता है और (देव्याः उषसः) प्रकाश वाली उषा का (भानुः) प्रकाश भी (उत् अर्त्त) उदय को प्राप्त होता है। (सूर्यः) सूर्य (बृहतः) बड़े २ (अज्रान्) दूर २ तक फेंके गये, किरणों को (आतिष्ठति) सर्वत्र थामता है और उन पर विराजता है, वैसे ही वाणी के उदय होने पर अन्तःकरण में पूर्ण अज्ञान का तिमिर नष्ट होता है, ज्ञान का प्रकाश चमक जाता है और पापनाशक उषा देवी आत्मशक्ति का उदय होता है, भीतरी आत्मा वा विद्वान् सूर्य के तुल्य होकर बड़े २ (अज्रान्) ज्ञान साधनों का अनुष्ठान करता है और तब वह (मर्त्तेषु) मनुष्यों या जड़ देहों के बीच (ऋजु) सरल सत् तत्व और (वृजिना) नाना प्रेरक बलों को (पश्यन्) देखने लगता है।

आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम्।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥

भा०—जैसे सूर्योदय के पश्चात् जागते हुए लोग विविध पदार्थों को देखते हैं और चमक से युक्त रत्नादि पदार्थ को रख लेते हैं, सभी किरणें सभी गृहों में आ जाती हैं और सब पदार्थ सत्य देखने और प्रयोग में आता है वैसे ही (आत् इत्) इसके अनन्तर और (पश्चा) पीछे भी (बुबुधानाः) निरन्तर बहुत ज्ञान वाले, (वि अख्यन्) विविध प्रकार से ज्ञानों का दर्शन करें और अन्यों को उसका उपदेश करें। (आत् इत्) और अनन्तर (द्युभक्तम्) इच्छापूर्वक प्राप्त (रत्नम्) रमणीय ज्ञान को (धारयन्त) धारण करें। (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् (विश्वासु दुर्यासु) सब ही घरों में विराजमान हों। हे (मित्र) स्नेहवान्, प्रजारक्षक! हे (वरुण) सर्वदुःखवारक! श्रेष्ठ राजन्! (धिये) ज्ञान धारण करने और कर्म करने के लिये (सत्यम्) सत्यज्ञान (अस्तु) प्राप्त हो।

अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (शुशुचानम्) सूर्य के समान दीप्तिमान् (अग्निम्) अग्नि तुल्य कान्तिमान्, (विश्वभरसं) समस्त विश्व के पालक (यजिष्ठं) दानशील, सबसे अधिक पूज्य परमेश्वर को मैं (अच्छ वोचेय) साक्षात् कर उसका अन्यों को उपदेश करता हूँ। वह प्रभु (गवां शुचि ऊधः न) किरणों के बने पवित्र कान्तिमान् प्रभात और गौओं के स्तन मण्डल के समान पवित्र है और (अतृणत्) सब प्रकार के उत्तम रस को देता है, (अन्धः न) सोम रस या अन्न के समान (पूतं) पवित्र और (अंशोः) सूर्य के तेज से (परिषिक्त) सब प्रकार सेचित और परिवर्धित, व्याप्त है।

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥२०॥१५॥

भा०—वह परमेश्वर (विश्वेषाम् यज्ञियानां) समस्त पूजनीय पदार्थों में (अदितिः) अविनश्वर नित्य है। वह (विश्वेषां) समस्त (मानुषाणाम्) मनुष्यों में (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सबका अधिष्ठाता है। वह (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और प्रकाशस्वरूप (देवानां) सब प्रकाशमान पृथिव्यादि लोकों और विद्वान् प्रार्थियों को (अवः) रक्षा, पालन, शरण और ज्ञान (आवृणानः) देता हुआ (जातवेदाः) सब उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता (सुमृळीक भवतु) सबको उत्तम सुख देने वाला हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १६ पंक्तिः । १२ निचृत्पंक्तिः । १४ स्वराट् पंक्तिः । २, ४—७, ६, १३, १५, १७, १८, २० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, १६ त्रिष्टुप् । ८, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप् ॥

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) देहों, मूर्तिमान् पदार्थों के बीच (अमृतः) कभी नाश को प्राप्त न होता (ऋतावा) सत्य ज्ञानमय, (देवः) सबका प्रकाशक (देवेषु) सब कामनावान् जीवों और सूर्यादि तेजस्वी लोकों के बीच (अरतिः) ज्ञानवान्, स्वामी रूप से (निधायि) विद्यमान है वह परमेश्वर (होता) सब सुखों का दाता, (यजिष्ठः) पूज्य, (अग्निः) अग्रणी, विश्व के अंग २ में विद्यमान होकर (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (हव्यैः) ग्रहणयोग्य ज्ञानों और अन्नादि पदार्थों से (मनुषः) मनुष्यों को (शुचध्यै) पवित्र और तेजोयुक्त करने और (ईरयध्यै) प्रेरित करने में समर्थ है।

इह त्वं सू॑नो सहसो नो अ॒द्य जा॒तो जा॒ताँ उ॒भयाँ॑ अ॒न्तर॑ग्ने।
दू॒त ई॑यसे युयुजा॒न ऋ॑ष्व ऋजुमु॒ष्कान्वृष॑णः शु॒क्रांश्च॑ ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (सहसः सूनो) समस्त शक्ति के उत्पन्न करने और चलाने हारे ! हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! (इह) इस संसार में (त्वं) तू (जातः) प्रकट होकर (नः) हम (जातान्) उत्पन्न हुए (उभयान्) स्थावर, जंगम, व पक्ष प्रतिपक्ष, व स्त्री पुरुष दोनों के (अन्तः) बीच में (दूतः) दो राजपक्षों के बीच दूत के समान साक्षी और दुष्टों का सन्तापक होकर (ईयसे) जाना जाता है। तू (ऋष्वः) महान् होकर (ऋजुमुष्कान्) सरल धर्ममार्ग से परिपुष्ट होने वाले (वृषणः) बलवान् (शुक्रांश्च) शीघ्र कार्य करने में समर्थ पुरुषों को भी (युयुजानः) योगाभ्यास द्वारा समाहित करता है।

अत्या॑ वृध॒स्नू रोहि॑ता घृ॒तस्नू॑ ऋ॒तस्य॑ मन्ये॒ मन॑सा जवि॑ष्ठा।
अ॒न्तरी॑यसे अरु॒षा यु॑जा॒नो यु॒ष्मांश्च॑ दे॒वान्विश॒ आ च॒ मर्ता॑न् ॥३॥

भा०—महारथी (अत्या युजानः) वेगवान् दो घोड़ों को रथ में लगाता हुआ (विशः अन्तः ईयते) प्रजाओं में प्रवेश करता है वैसे ही हे आत्मन् ! (अत्या) सदा गतिशील, (वृधस्नू) शरीर की वृद्धि करने

वाले, (रोहिता) रक्त वर्णवत् तेजस्वी, (घृतस्नू) तेज का सञ्चार कराने वाले, (मनसा जविष्ठा) मन के बल से अधिक वेग वाले, (अरुषा) कान्तिमान् प्राण और अपान दोनों को, (युजानः) योगाभ्यास द्वारा वश करता हुआ (युष्मान् देवान्) तुम सब अर्थात् स्वरूप से भिन्न २ ज्ञानप्रकाशक और ग्राह्य विषय के अभिलाषी, इन्द्रियगत प्राणों और (विशः) प्रवेश योग्य (मर्त्तान् च) मरणधर्मा शरीरों को भी (आ) व्याप कर (अन्तः) उनके भीतर (ईयसे) गति करता है। उसको मैं (मन्ये) ज्ञान करता और आत्मा मानता हूँ।

अ॒र्य॒मणं॒ वरु॑णं मि॒त्रमे॑षा॒मिन्द्रा॒विष्णू॑ म॒रुतो॑ अ॒श्विनो॒त।
स्व॒श्वो॑ अग्ने सु॒रथः॑ सु॒राधा॒ एदु॑ वह सुह॒विषे॒ जना॑य ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे विद्वन्! तू (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्य और वेगवान् वाहन का स्वामी और (सुरथः) उत्तम रथों का स्वामी, (सुराधाः) सुखजनक ऐश्वर्य का स्वामी होकर (सुहविषे जनाय) उत्तम अन्न से समृद्ध प्रजाजन के उपकार के लिये (अर्यमणं) शत्रुओं को वश करने वाले, (वरुणं) श्रेष्ठ, (मित्रम्) प्रजा को मरण से बचाने वाले और (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् व्यापक सामर्थ्य वाले और (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वेगवान् (उत अश्विना) और अश्वों के स्वामी, वा सूर्य चन्द्रवत्, वा दिन रात्रिवत् एक दूसरे के साथ जीवन मार्ग को बिताने वाले स्त्री पुरुषों या उत्तम वैद्य इन सबको (आवह इत्) प्राप्त करा।

गोमाँ॑ अ॒ग्नेऽवि॑माँ अ॒श्वी य॒ज्ञो नृ॒वत्स॑खा॒ सद॒मिद॑प्रमृ॒ष्यः।
इळा॑वाँ ए॒षो अ॑सुर प्र॒जावा॑न्दी॒र्घो र॒यिः पृ॑थुबु॒ध्नः स॒भावा॑न् ॥५॥१६

भा०—हे (असुर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे वीर! हे प्राणों में रमण करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष! तू (गोमान्) भूमि गौ आदि सम्पदा और उत्तम वाणियों और सूर्यवत् रश्मि रूप अधीन पुरुषों का स्वामी हो। हे (अग्ने) नायक! तू (अविमान्) प्राणों और राष्ट्र के रक्षक पुरुषों

व भेड़ आदि पशुओं का स्वामी (अश्वी) अश्वों और राष्ट्र में अपने भोक्ता प्राणों व इन्द्रियों का स्वामी हो। तू (यज्ञः) सत्सङ्ग करने योग्य, दान-शील, (नृवत्सखा) नायकों से युक्त सैन्यों का परम सुहृत् और (सदम् इत्) सदा ही (अप्रमृष्यः) शत्रु द्वारा कभी पराजित न होने वाला, (इळावान्) वाणी और भूमि का स्वामी, (प्रजावान्) प्रजा का स्वामी, (दीर्घः) विस्तृत साधनों वाला, दूर तक शत्रुओं का नाश करने वाला, (रयिः) ऐश्वर्यों का दान और प्रतिग्रह करने वाला, (पृथुबुध्नः) आकाश के समान महान् प्रबन्धक, (सभावान्) और सभा का स्वामी हो। इति षोडशो वर्गः ॥

यस्त इ॒ध्मं ज॒भर॑त्सिष्विदा॒नो मू॒र्धानं॑ वा त॒तप॑ते त्वा॒या।
भु॒वस्तस्य॒ स्वत॑वाँः पा॒युर॑ग्ने॒ विश्व॑स्मात्सीमघाय॒त उ॑रुष्य ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! (यः) जो पुरुषः (सिष्विदानः) सबको स्नेह करता हुआ और सबको बन्धन से छुड़ाता हुआ (ते) तेरे (इध्मं) दीप्तिमान् तेज को (जभरत्) धारण करता है, (वा) और जो (त्वाया) तेरी कामना से ही (मूर्धानं) शिर के समान उच्चकोटि के जनसमूह नायक पद को (ततपते) संतप्त करता है तू (स्वतवान्) स्वयं अपने बल से बलशाली होकर (तस्य पायुः भुवः) उसका पालक होता है और (विश्वस्मात्) सब ओर के (अघायतः) पापाचरण करने वालों से उसकी (सीम्) सब प्रकार से (उरुष्य) रक्षा कर।

यस्ते॒ भरा॒दन्नि॑यते चि॒दन्नं॑ नि॒शिष॑न्म॒न्द्रमति॑थिमु॒दीर॑त्।
आ दे॑व॒युरि॒नध॑ते दुरो॒णे तस्मि॑न्र॒यिर्ध्रु॒वो अ॑स्तु॒ दास्वा॑न् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन्! (यः) जो पुरुष (ते) तेरे लिये (अन्नियते) भोजन करने के निमित्त समय में वा अन्न की कामना करने वाले तेरे लिये (अन्नं) अन्न को (चित्) आदरपूर्वक (निशिषत्) नाना व्यञ्जनों से

विशेष गुणकारी बनाता हुआ उस (मन्द्रम्) सुखकारी अन्न को (ते) तेरे उपभोग के लिये (भराव्) लावे और (अतिथिम्) अतिथि को पूज्य जान कर (उद् ईरत्) उत्तम रीति से उठे वा आदरपूर्वक वचन कहे, वह पुरुष (देवयुः) विद्वानों का प्रिय सूर्यवत् उत्तम प्रिय जनों का स्वामी होकर (इनधते) उसको स्वामिवत् धारण करने वाले (तस्मिन्) उस (दुरोणे) घर में (रयिः) ऐश्वर्य युक्त (ध्रुवः) स्थिर और (दास्वान्) दानशील (अस्तु) हो ।

यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! (यः) जो पुरुष (हविष्मान्) अन्न, चरु, दान, सामग्री और भक्ति आदि से युक्त होकर (दोषा) रात्रि में, सायंकाल और (यः) जो (उषसि) प्रभात वेला में (त्वा प्रशंसात्) तेरी स्तुति करता है (वा) और (त्वा) तेरे को लक्ष्य कर (प्रियं) तेरे वा अन्यों को प्रिय, तृप्तिकारक कार्य (कृणवते) करता है। तू (स्वे दमे) अपने घर में (हेम्यावान्) जल से शीतल रश्मि से युक्त चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाला और (हेम्यावान् अश्वः न) सुवर्ण से मढ़ी 'सुन्दर कक्षबंधनी' रज्जु वा लगाम आदि से युक्त अश्व के समान स्वयं सुवर्णादि सम्पदा से युक्त होकर (तं दाश्वांस्) उस दानशील पुरुष को (अंहसः) पाप से (आ पीपरः) सब प्रकार से बचाता है।

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (यः) जो पुरुष (अमृताय तुभ्यम्) मोक्षस्वरूप तेरे लिये (दाशत्) अपने आप को सौंप देता है और जो (यतस्रुक्) स्रुच् के समान इन्द्रियों को वश करके (त्वे) तेरी (दुवः कृणवते) स्तुति करता है (सः) वह (शशमानः) शान्ति का निरन्तर

अभ्यास करता हुआ (राया) धनैश्वर्यं से (न वि यौषत्) कभी वियुक्त नहीं होता और (एनं) उसको (अघायोः) दूसरे पर अत्याचार वा पापाचरण करने की इच्छा वाले दुष्ट पुरुष का (अंहः) पाप कभी (न परिवरत्) स्पर्श नहीं करता।

यस्य॒ त्वम॑ग्ने अध्व॒रं जुजो॑षो दे॒वो मर्त॑स्य॒ सुधि॑तं॒ ररा॑णः।
प्री॒तेद॑स॒द्धोत्रा॒ सा य॑वि॒ष्ठासा॑म॒ यस्य॑ विध॒तो वृ॒धासः॑ ॥१०॥१७॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे परमेश्वर! (त्वं देवः) तू प्रकाशक होकर (यस्य मर्तस्य) जिस मनुष्य के (सुधितम्) उत्तम रूप से धारण योग्य ऐश्वर्यं को (रराणः) देता हुआ तू (अध्वरं) यज्ञ या आत्मा को (जुजोष) प्रेम करता है, हे (यविष्ठ) बलवन्! और हम लोग (विधतः) विधान या जगत् निर्माण करने वाले (यस्य) जिसके (वृधासः) बढ़ाने हारे हों उस पुरुष की (सा) वह (होत्रा) वाणी (प्रीता इत् असत्) अवश्य सबको प्रसन्न करती है। इति सप्तदशो वर्गः॥

चित्ति॒मचि॑त्तिं चिनव॒द्वि वि॒द्वान्पृ॒ष्ठेव॑ वी॒ता वृ॑जि॒ना च॒ मर्ता॑न्।
रा॒ये च॑ नः स्वप॒त्याय॑ देव॒ दितिं॑ च॒ रास्वादि॑तिमुरुष्य ॥ ११ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (वीता पृष्ठा इव) जैसे अपने पास आयी भार उठाने में समर्थ पृष्ठों को वा, सेचन पोषण करने वाले अन्न जलादि पदार्थों को (वि चिनवत्) विशेष रूप से संग्रह करता है उसी प्रकार (विद्वान्) विद्वान् राजा (चित्तिम् अचित्तिम्) संगृहीत और असंगृहीत सञ्चित और असञ्चित शक्तियों को (वि चिनवत्) विशेष रूप से सञ्चय करे। उनको पृथक् २ रक्खे। ऐसे ही (वृजिना च) अपने शत्रुवारक बलों या सैन्यों को और (मर्त्तान् च) साधारण मनुष्यों को भी विविध रूप से रक्खे। हे (देव) दानशील पुरुष! (नः) हमें (स्वपत्याय) उत्तम सन्तान से युक्त (राये) ऐश्वर्यं को प्रयोग में लाने के लिये (दितिं च रास्व) दानशीलता या दानयोग्य पदार्थ या खण्डित होने वाले नश्वर पदार्थ भौतिक ऐश्वर्यं

प्रदान कर और साथ ही (अदितिम्) न नाश होने योग्य पदार्थों की (उरुष्य) रक्षा कर ।

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥ १२ ॥

भा०—(अदब्धाः) अविनाशी (कवयः) विद्वान् पुरुष (आयोः) मनुष्य के (दुर्यासु) घरों में (निधारयन्तः) नित्य नियम से व्रतादि धारण कराते हुए (कविम्) विद्वान् पुरुष को (शशासुः) उत्तम उपदेश करते हैं। (अतः) इसलिये हे (अग्ने) नायक! विद्वन्! (त्वं) तू (अर्यः) स्वामी, सबका पालक है। तू (एतान् दृश्यान्) दर्शन योग्य (अद्भुतान्) अद्भुत विद्वान् पुरुषों को (पड्भिः) पैरों से या (एवैः) रथादि यानों से प्राप्त होकर (पश्येः) देखा कर उनसे सत्संग किया कर।

त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! हे (यविष्ठ) सबसे अधिक बलयुक्त! हे (घृष्वे) दीप्तियुक्त पदार्थों को घर्षण करके विद्युतादि उत्पन्न करने हारे! (त्वम्) तू (सुप्रणीतिः) उत्तम रीति से सबसे बढ़कर नीतिमान्, (पृथुः) विस्तृत बल और राज्य का स्वामी, (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाला होकर (सुतसोमाय) ज्ञान और ऐश्वर्य एवं औषधि रसादि को उत्पन्न करने वाले, विद्वान्, (विधते) सेवा करने वाले और (शशमानाय) सबके दुःखों को या सबकी सीमाओं को लांघने वाले, सबसे अग्रगण्य पुरुष को तू (रत्नम्) रमणीय द्रव्य (भर) प्रदान कर। (अवसे) उसकी रक्षा के लिये (चन्द्रम्) सुवर्णादि धन दे।

अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४॥

भा०—(अध ह) बनाने वाले शिल्पी लोग (न) जैसे (भुरिजोः अपसा) बाहुओं के कर्म या बल से (रथं) रथ बनाते हैं और (सुध्यः) उत्तम बुद्धिमान्, (आशुषाणाः) तीव्र गति देने हारे लोग (ऋतम् येमुः) रथ के वेग को नियमित करते हैं वैसे ही हे (अग्ने) नायक ! विद्वन् ! (यत्) जब हम (त्वाया) तेरी हितकामना से (पड्भिः) पैरों, (हस्तेभिः) हाथों से और (तनूभिः) अपने शरीरों से (चकृमा) कार्य करें तब (सुध्यः) उत्तम बुद्धिमान्, कर्मकुशल जन (आशुषाणाः) शीघ्र ही अपनी शक्ति, धन का उचित विभाग करते हुए (भुरिजोः) धारण पोषण करने में समर्थ बाहुओं और उनके तुल्य राजा प्रजा वा क्षात्रबल के (अपसा) कर्म सामर्थ्य से (क्रन्तः) कर्म करते हुए (रथं) वेगवान् रथ के तुल्य (ऋतम्) न्यायाचरण और राष्ट्ररूप रथ का (येमुः) प्रबन्ध करें ।

अधा॑ मा॒तुरु॒षस॑: स॒प्त विप्रा॒ जाये॑महि प्रथ॒मा वे॒धसो॒ नॄन् ।
दि॒वस्पु॒त्रा अङ्गि॑रसो भवे॒माद्रिं॑ रुजेम ध॒निनं॑ शु॒चन्त॑: ॥१५॥१८॥

भा०—(अध) और (उषसः सप्त विप्राः) जैसे उषा से सात प्रकार के, वा फैलने वाले जगद्व्यापी किरण उत्पन्न होते हैं वैसे ही हम लोग भी (मातुः) प्रथम माता से (अध) और अनन्तर (उषसः) पाप नाशक विद्या की दीप्ति से युक्त अग्नि के तुल्य तेजस्वी (मातुः उषसः) ज्ञानवान् आचार्यरूप माता से हम (सप्त) सातों प्रकार के (विप्राः) विद्वान्, विविध प्रकार से राष्ट्र के पदों को पूर्ण करने वाले, (प्रथमा) प्रथम, मुख्य (वेदसः) ज्ञानवान् (जायेमहि) उत्पन्न हों । वे हम (नॄन्) नायक पुरुषों को प्राप्त करें और हम लोग (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी के (पुत्राः) किरणों के समान बहुतों के रक्षक, पुत्र (अङ्गिरसः) अङ्गारों या अग्नि के समान तेजस्वी (भवेम) होवें और (धनिनं) धनैश्वर्य के स्वामी के प्रति (शुचन्तः) कार्य व्यवहारों में शुद्ध, ईमानदार रहते हुए (अद्रिं) पर्वत के तुल्य अभेद्य शत्रु को (रुजेम) तोड़ डालें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥१६

भा०—(यथा) जैसे (पितरः) जलों का पान करने वाले सूर्य के किरण (ऋतम् आशुषाणाः) जल को वाष्परूप से विभक्त करते हुए (शुचि दीधितिम् अयन्) शुद्ध तेज और दीप्ति को प्राप्त करते हैं और (क्षाम भिन्दतः) अन्धकार को छिन्न भिन्न करते हुए (अरुणीः) रक्त वर्ण की उषाओं को (अपव्रन्) प्रकट करते हैं, वैसे ही (नः) हमारे (पितरः) पालक जन (परासः) पालन करने में कुशल, या बाद में आये और (प्रत्नासः) वृद्ध जन, (ऋतम् आशुषाणाः) सत्य ज्ञान, वेद, न्याय और अन्न, जल, धनैश्वर्य का विभाग और दान प्रतिदान करते हुए (उक्थशासः) उत्तम उपदेश करते हुए (शुचि इत् अयन्) ज्ञान और कर्म को प्राप्त करें और (दीधितिम्) सबके धारक नायक को प्राप्त करें। वे (क्षाम भिन्दतः) अन्न प्राप्त करने के लिये कृषि, कूप, कुल्या निर्माणादि द्वारा पृथिवियों को तोड़ते हुए (अरुणीः) उत्तम भूमियों को (अप व्रन्) प्रकट करें।

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥ १७ ॥

भा०—(सुकर्माणः) उत्तम कर्म करने हारे (सुरुचः) उत्तम कान्ति वाले, (देवयन्तः) देव अर्थात् तेजस्वी प्रभु की कामना करते हुए (देवाः) विद्वान्, विद्याभिलाषी पुरुष (अयः न) सुवर्ण या लोह को (धमन्तः) अग्नि में जैसे सुनार धौंकते और स्वच्छ करते हैं वैसे ही अपने (जनिम) जन्म अर्थात् उत्पन्न होने वाले शरीर को वा शरीरस्थ आत्मा को (धमन्तः) अग्नि रूप आचार्य के अधीन धमन अर्थात् 'शब्द', उपदेश ग्रहण करते और ब्रह्मचर्यादि द्वारा तप से तप्त करते हुए (शुचन्तः) स्वयं को सुवर्ण के समान कुन्दन बनाते हुए, (अग्निं) ज्ञानवान् आचार्य को (ववृधन्तः)

बढ़ाते हुए और (ऊर्वं) अज्ञान के नाशक (इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् गुरु वा प्रभु के (परिषदन्तः) चारों ओर भक्ति पूर्वक विराजते वा उपासना करते हुए (गव्यं) राजा से भूमिसमूह, वा सूर्य से रश्मि समूह के प्रकाश के तुल्य वेदवाणियों के ज्ञान को (अग्मन्) प्राप्त करें ।

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ १८ ॥

भा०—हे (उग्र) बलशालिन् ! राजन् ! विद्वन् ! (यत्) जब (अन्ति) समीप में (देवानां) ऐश्वर्य के अभिलाषी और विजिगीषु लोगों का (जनिम) जन्म होता है तब (क्षुमति) अन्न से समृद्ध पुरुष के अधीन जैसे (पश्वः यूथा इव आ अख्यत्) पशुओं के जत्थे के जत्थे दिखाई देते हैं वैसे ही तेरे अधीन पशुवत् भृत्यों के भी (यूथा) समूह दिखाई दें । (मर्त्तानां) शत्रु को मारने वाले मनुष्यों की (चित्) उत्तम २ (उर्वशीः) जंघाओं से लांघने वाली सेनाएं (अकृप्रन्) समर्थ हों और (अर्यः) स्वामी वा वैश्य जन (चित्) भी (उपरस्य आयोः) वपन किये बीजों के सस्य सम्पत्ति रूप में देने वाले मेघ के कारण जैसे वैश्य (वृधे) बढ़ता है वैसे ही (उपरस्य) शत्रु सेना के वपन अर्थात् छेदन करने वाले (आयोः) मनुष्यों का (अर्यः) स्वामी राजा भी (वृधे) बढ़ता है ।

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! हम (ते) तेरे अधीन (सु-अपसः) उत्तम कर्म करने वाले (अभूम) होकर रहें । (विभातीः उषसः) दीप्ति-युक्त प्रभात वेलाओं को प्राप्त कर जैसे लोग (ऋतं) प्रकाश प्राप्त करते हैं वैसे ही (विभातीः) विशेष कान्ति युक्त, (उषसः) कामनानुकूल स्त्रियों को प्राप्त करके हम (ऋतम् अवस्रन्) धर्ममय जीवन व्यतीत करें । ऐसे ही, हे राजन्! हम (विभातीः उषसः) तेजस्विनी सेनाएं प्राप्त करके भी (ऋतम्)

सत्य ज्ञान का (अवज्रन्) अनुसरण करें। और (अग्निं) अग्नि के समान तेजस्वी नायक को भी हम (अनूनं) किसी बात में न्यून न रहने देकर पूर्ण (अकर्म) करें और उसको (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (सुश्चन्द्रं अकर्म) उत्तम आह्लाददायक और सुवर्णादि ऐश्वर्य से युक्त करें और (मर्मृजतः देवस्य) राष्ट्र के कण्टक शोधन और सत्यासत्य विवेक करने हारे राजा वा राजा द्वारा नियुक्त पुरुष के (चक्षुः) चक्षु को हम (चारु) उत्तम निष्पक्ष (अकर्म) बनाये रक्खें।

एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि २०।१९

भा०—हे (वेधः) कार्य विधान करने हारे विद्वन्! हे नायक! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (ते) तुझ (कवये) चतुर पुरुष के हितार्थ (एता) ये (उचथानि) उत्तम वचन हम (अवोचाम) सदा कहें और तू (नः) हमारे (ता) उनको (जुषस्व) स्वीकार कर। तू (उत् शोचस्व) उत्तम रीति से सब पर प्रकाशित हो। (नः) हमें (वस्यसः) बसने वालों में सबसे उत्कृष्ट (कृणुहि) बना। हे (पुरुवार) बहुतों से वरण योग्य और बहुतों का वारण करने हारे! तू (नः) हमें (महः) भारी (रायः) ऐश्वर्य (प्र यन्धि) दे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३] वामदेव ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ५, ८, १०, १२, १५ निचृत्त्रिष्टुप्। २, १३, १४, विराट् त्रिष्टुप्। ३, ७, ९ त्रिष्टुप्। ४ स्वराड् बृहती। ६, ११, १६ पंक्तिः॥ षोडशर्चं सूक्तम्॥

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥ १॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप (वः) अपने (अध्वरस्य) न नष्ट होने-वाले राज्य के (राजानम्) तेजस्वी (रुद्रं) दुष्टों को रुलाने वाले (होतारं) युद्ध से शत्रुओं को ललकारने और भृत्यादि को वेतनादि देने वाले

(रोदस्योः) भूमि और आकाश के बीच सूर्य के समान स्व और पर-पक्षों वा वादी प्रतिवादी के बीच (सत्ययजं) न्याय देने वाले वा दोनों को मिलाने वाले, (अग्निं) अग्रणी नायक, (हिरण्यरूपम्) हित और रमणीय रूप वाले पुरुष को (अवसे) राष्ट्र रक्षा के लिये (अचित्तात्) बिना चित्त के, (तनयित्नोः) गर्जनावाले सैन्य-बल को उत्पन्न करने के (पुरा) पूर्व ही (कृणुध्वम्) स्थापित करो ।

अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! (ते) तेरे रहने के लिये (यं) जिस घर को (वयम्) हम (चकृम) बनावें (अयं) वह (योनिः) घर (पत्ये) पति के हित के लिये (उशती) कामना वाली (सुवासाः) उत्तम वस्त्रों से सुशोभित (जाया इव) स्त्री के समान कान्तिमान् और सुख से रहने योग्य हो और वह गृह (अर्वाचीनः) आगे से बढ़ा हुआ और (परिवीतः) सब ओर से सुरक्षित हो । (उ स्वपाक) स्वयं परिपक्व या संतापक और बल से युक्त होकर भी (इमाः) इन (ते) अपनी (प्रतीचीः) विपरीत जाने वाली वा विशेष रूप से तेरे अभिमुख स्थित प्रजाओं को भी प्राप्त कर, उन पर (निषीद) आधिपत्य कर ।

आशृण्वते अदृपिताय मन्मं नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वेधः) मेधाविन् ! (आशृण्वते) आदर से सुनने वाले (अदृपिताय) विनीत (नृचक्षसे) अपने नायक, ज्ञान-मार्ग प्रवर्त्तक गुरु को सौम्य वा उत्सुक दृष्टि से देखने वाले, (सुमृडीकाय) उत्तम सुखप्रद, (देवाय) ज्ञान की कामना करने वाले, (अमृताय) शिष्य वा पुत्र रूप से विद्यमान व्यक्ति को (शस्तिम्) उपदेश (शंस) दे । जो (ग्रावा इव)

वाणी के उपदेष्टा के समान (सोता) सन्मार्ग में ले जाने हारा (मधुपुत्) मधुर वचन बोलने हारा हो, (यम्) जिसकी (ईळे) सभी लोग प्रशंसा करते हैं।

त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (ऋतचित्) न्यायप्रकाश और ऐश्वर्य को सञ्चय करने और ज्ञान करने हारा (स्वाधीः) उत्तम रीति से धारण और पोषण करने हारा है। अतः (त्वं चित्) तू ही (नः) हमारे में से (अस्याः) इस प्रजा के (शम्याः) कर्म के (ऋतस्य) यथार्थ ज्ञान को (बोधि) जान और अन्यों को जना। हे विद्वन्! तू बतला कि (उक्था) उत्तम वचन योग्य वाणियां, (सधमाद्यानि) एक साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करने योग्य अवसर (कदा ते) तेरे सम्बन्ध में कब २ होने सम्भव हैं और (ते) तेरे (गृहे) गृह पर (सख्या) मित्रों के सत्संग (कदा) कब २ होने वाले हैं।

कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५॥२०॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तू इस बात का भी ज्ञान रख कि (वरुणाय) प्रजा के वरण योग्य पुरुष के लिये (कथा ह) कैसे, किस हेतु से (तत् ब्रवः) उस परम तत्व का उपदेश करे, (दिवे कथा) ज्ञान के इच्छुक के लिये (कथा ब्रवः) कैसे उपदेश करे। (नः) हमारे (आगः) अपराध की कब और क्यों (गर्हसे) तू निन्दा करता है। (मित्राय) सबके मित्र, मृत्यु आदि से बचाने वाले और (मीढुषे) मेघवत् सब पर सुखों के वर्षक और (पृथिव्यै) पृथिवी और उस पर विशेष रूप से बसने वाली प्रजा को (कथा) कैसे उपदेश करे। (अर्यम्णे, भगाय) और ऐश्वर्य से युक्त पुरुष

के लिये (कत् कत् ब्रवः) कब २ किस २ प्रकार उपदेश करे। इति विंशो वर्गः ॥

कद्धिष्ण्या॑सु वृध॒सा॒नो अ॑ग्ने॒ कद्वाता॑य॒ प्रत॑वसे शु॒भं॒ये ।
परि॑ज्मने॒ नास॑त्याय॒ क्षे ब्रव॒: कद॑ग्ने रु॒द्राय॑ नृ॒घ्ने ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू (धिष्ण्यासु) धिष्णा, बुद्धि में श्रेष्ठ प्रजाओं वा सभाओं में (वृधसानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वाताय) वायु के समान (प्रतवसे) प्रबल, (शुभंये) कल्याणमार्ग में चलने वाले और अश्वों को चलाने वाले पुरुष के लिये (कत्) कैसे और कब (ब्रवः) उपदेश करे, (परिज्मने) सब ओर विद्यमान भूमि के स्वामी, (नासत्याय) सदा असत्याचरण से पृथक् और (क्षे) भूमि के स्वामी (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने और सज्जनों के उपदेष्टा और (नृघ्ने) शत्रु के नायकों को मारने वाले के लिये (कत् ब्रवः) कैसे और कब कहे ।

क॒था म॒हे पु॑ष्टिम्भ॒राय॑ पू॒ष्णे कद्रु॒द्राय॒ सुम॑खाय हवि॒र्दे ।
कद्विष्ण॑व उरुगा॒याय॒ रेतो॒ ब्रव॒: कद॑ग्ने॒ शर॑वे बृह॒त्यै ॥ ७ ॥

भा०—(महे) बड़े पूज्य (पुष्टिम्भराय) पोषणकारी सम्पदा अन्न आदि के धारक (पूष्णे) पोषक पुरुष के वा भूमि के उपकार के लिये (कथा) कैसे (रेतः) जल के समान धनधान्य वर्धक वचन वा बात कहे। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले वा शिष्यों को उपदेश करने वाले (सुमखाय) उत्तम यज्ञशील और (हविर्दे) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के दाता पुरुष के हितार्थ (कत्) कब और कैसे शान्तिमय वचन (ब्रवः) कहो। (वृष्णवे) शक्तिशाली, (उरुगायाय) बहुतों से प्रशंसित पुरुष के लिये (कत् रेतः ब्रवः) कब वा कैसे जल के समान शीतल और शान्तिदायक वचन कहो और हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे नायक ! (बृहत्यै) बड़ी भारी (शरवे) शत्रुनाशक सेना को (कत् ब्रवः) कैसे वा कब कहो, ये सब जानना चाहिये ।

कृथा शर्धाय मरुतामृतायं कृथा सूरे बृहते पृच्छयमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ८ ॥

भा०—हे (जातवेदः) धनों के स्वामिन् ! हे ज्ञानों के ज्ञातः ! तू इस बात का ज्ञान कर कि (मरुताम्) शत्रुओं को मारने वाले, वायु के समान बलवान् पुरुषों के (शर्धाय) बल वृद्धि और मनुष्यों के (ऋताय) ज्ञान प्रसार और सत्य, न्याय तथा ऐश्वर्य, अन्न, जलादि को प्राप्त करने के लिये (कथा) कैसे (प्रति ब्रवः) कहे और (बृहते सूरे) बड़े भारी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के लिये (पृच्छयमानः) पूछा जाकर (कथा) किस रीति से (प्रति ब्रवः) प्रत्युत्तर देवे । (तुराय) अति शीघ्रकारी, (अदितये) माता, पिता, पुत्र, अखण्ड शासन वाले पुरुष को (कथा प्रति ब्रवः) कैसे प्रत्युत्तर देवे । तू (चिकित्वान्) इन सब बातों का ज्ञान करता हुआ (दिवः) सूर्य के समान गुरु से वा समस्त कामना योग्य व्यवहारों को (साध) भली प्रकार कर ।

ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (गोः) पृथिवी से उत्पन्न (ऋतेन ऋतम्) अन्न या जल द्वारा (अन्नं) अन्न (नियतम्) नियम से प्राप्त किया जाता है, अर्थात् भूमि पर अन्न का बीज बोकर, जल सेचन करके उससे अन्न प्राप्त किया जाता है वैसे ही (गोः) वाणी के (ऋतेन) सत्य ज्ञान द्वारा (नियतम्) नियम से विद्यमान (ऋतम्) सत्याचरण को भी मैं (आ ईळे) आदर-पूर्वक प्राप्त करूं । हे (अग्ने) विद्वन् ! आचार्य ! नायक ! (आमा) जो ज्ञान आदि अपरिपक्व है वह (सचा) परस्पर सत्संग से कालान्तर में (मधुमत्) मधुर गुण सहित (पक्वम्) परिपक्व हो, उसे मैं प्राप्त करूं (कृष्णा सती रुशता धासिना पयसा पीपाय) जैसे काली गौ श्वेत पुष्टि-कारक दूध से बच्चे को पुष्ट करती है वैसे ही (एषा) यह (कृष्णा) कृषि

योग्य भूमि, (सती) हमें प्राप्त होकर (रुपता) कान्तिमान् (धासिना) धारक सूर्य के साथ मिलकर (जामर्येण पयसा) उत्पन्न होने वाले प्राणियों को प्राप्त होने और जीवन देने वाले, वा 'जाम' भोजन को प्राप्त होने वाले पुष्टिकारक जल, अन्न से (पीपाय) सबको पुष्ट करती है।

ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥२१॥

भा०—जैसे (ऋतेनः अक्तः वृषभः) जल से पूर्ण बरसने वाला बादल (पृष्ठ्येन पयसा अस्पन्दमानः अचरत्) वर्षण योग्य जल से मन्द मन्द चलता हुआ जाता है वह (वयोधाः) अन्नपोषण करता हुआ (वृषा) वर्षणशील मेघ (शुक्रं दुदुहे) जल को देता है और (ऊधः) उसका दोहन योग्य स्तनमण्डल तुल्य (पृश्नि) अन्तरिक्ष होता है और जैसे (ऋतेन अक्तः वृषभः) तेज से युक्त वृष्टिकारक सूर्य (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी होकर (पयसा) आकाश या भूतल पर के जल से युक्त होकर (पयोधा) किरणों, बलों वा अन्नों का धारक होकर (अस्पन्दमानः अचरद्) स्वयं न चलता हुआ भी व्याप्त हो जाता है, वह बलवान् (वृषा) सूर्य (शुक्रं दुदुहे) देदीप्यमान तेज और शुद्ध जल देता है उस समय तेज के दोहन के लिये (ऊधः पृश्निः) रात्रि या उषा तेज वर्षाने वाली और 'पृश्नि' आदि सूर्य स्वयं उसमें तेजप्रद होता है (चित्) वैसे ही (वृषभः) श्रेष्ठ मेघ के समान ज्ञान वा सुखों की वर्षा करने वाला (पुमान्) पुरुष और (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (ऋतेन) न्यायप्रकाश वा ऐश्वर्य से (अक्तः) प्रकाशित होकर (पृष्ठ्येन) आधार में विद्यमान (पयसा) पुष्टिकारक अन्न वा बलवीर्य से युक्त होकर (अस्पन्दमानः) धर्म मार्ग से विचलित न होकर (वयोधाः) दीर्घ जीवन को धारण करता हुआ, (वृषा) सुखों का वर्षक होकर स्वयं (पृश्निः) जल सेचक मेघ वा पृथ्वी के समान और (ऊधः) अन्तरिक्ष वा रात्रि के समान (शुक्रं दुदुहे) तेज का दोहन करे। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११ ॥

भा०—(अङ्गिरसः) सूर्य की किरणें या वायुगण जैसे (ऋतेन अद्रिं वि असन्) जल से युक्त मेघ को त्रिविध प्रकार से फेंकते हैं और (भिदन्तः) उसको छिन्न भिन्न करते हुए (गोभिः) सूर्य के व्यापक प्रकाशों से (नवन्त) उसे व्यापते हैं (उषासं परिषदन्) वे किरण उषाकाल में सर्वत्र फैलते और (अग्नौ जाते स्वः आविः अभवत्) सूर्य के उत्पन्न होने पर प्रकाश और ताप उत्पन्न होता है ऐसे ही (अङ्गिरसः) अंगारों के समान तेजस्वी और ज्ञानी पुरुष (ऋतेन) न्याय-प्रकाश से (अद्रिम्) मेघ के समान प्रकाश को ढक लेने वाले आवरण को (वि असन्) विशेष रूप से दूर करें और (भिदन्तः) उसे छिन्न भिन्न या विश्लेषण करते हुए (गोभिः) ज्ञानवाणियों से (नवन्त) सत्य का उपदेश करें।

ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥ १२ ॥

भा०—जैसे (मधुमद्भिः) मधुर गुण वा मधु अर्थात् अन्नों से युक्त (अर्णोभिः) जलों से (आपः) प्राणगण (स्रवितवे) चलने के लिये (सदम् प्र दधन्युः) अपने आश्रयभूत देह को अच्छी प्रकार धारण करते हैं वैसे ही (अमृक्ता) रज आदि से युक्त हुई (देवीः आपः) प्राप्त शुभ गुणों से कान्तिमती स्त्रियें (ऋतेन) सत्य के बल से (अमृताः) सुखजनक होकर (मधुमद्भिः) मधुर गुणों और अन्नादि समृद्धि से युक्त (अर्णोभिः) जलों के तुल्य शान्तिदायक पुरुषों के संग से (स्रवितवे) संसार चलाने के लिये (सदम्) गृहाश्रम को (प्र दधन्युः) धारण करें और (सर्गेषु) जलों के बीच (वाजी न) वेगवान्, विद्युत् जैसे (प्रस्तुभानः) विशेष गर्जना करता है वैसे ही (वाजी) ऐश्वर्यवान्, बलवान् पुरुष भी (प्रस्तुभानः) अच्छी

प्रकार अर्चित होकर (सर्गेषु) सर्गों और सन्तानों के हेतु (सदम् इव प्र दधन्यात्) गृहाश्रम को धारण करे।

मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! नायक! तू (कस्य) किसी भी (दुरः) बलात्कार करने वाले के (यक्षम्) आदर के आडम्बर को और (सदम्) घर को भी (मा गाः) मत जा। तू (प्रमिनतः) हिंसाकारी (वेशस्य) पड़ोसी के (सदम् यक्षं च) घर और संगति (मा गाः) मत प्राप्त कर। ऐसे ही हिंसक (मा आपेः) बन्धुजन के भी गृह, संगति आदि मत कर। (अनृजोः) कुटिल (भ्रातुः) भाई के (ऋणं मा आ) धन का भोग मत कर और (अनृजोः सख्युः) कुटिलाचारी मित्र के भी धन को मत ले और हम (अनृजोः रिपोः) कुटिल शत्रु के (दक्षं) बल का (मा भुजेम) उपभोग न करें।

रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥१४॥

भा०—हे (सुमख) उत्तम यज्ञ करने हारे विद्वन्! राजन्! (अग्ने) हे अग्रणी! तू (तव रक्षणेभिः) अपने रक्षा साधनों से (रारक्षाणः) रक्षा करता हुआ (प्रीणानः) सबको प्रसन्न करता हुआ (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर और (वीडु अंहः) प्रबल पाप को (प्रति स्फुर, विरुज) विविध रीति से भंग कर और (वावृधानम्) निरन्तर बढ़ते हुए (महि रक्षः) बड़े विघ्नकारी को (जहि) नष्ट कर।

एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान्।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे राजन्! तू (एभिः अर्कैः) इन मन्त्रों

और सत्कारयोग्य विद्वानों से (सुमनाः) ज्ञान और चित्त वाला (भव) हो। हे (शूर) वीर! (इमान् वाजान्) तू इन ऐश्वर्यों को (मन्मभिः) मनन योग्य गुणों के साथ (स्पृश) ग्रहण कर। हे (अंगिरः) तेजस्विन्! तू (ब्रह्माणि) वृद्धिशील धनों को (जुषस्व) स्वीकार कर। (ते) तेरी (देववाता) विद्वान् पुरुषों द्वारा की गई (शस्तिः) स्तुति (सं जरेत) अच्छी प्रकार की जाय।

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥२२॥

भा०—हे (वेधः) विशेष धारणावान् कवे! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (तुभ्यं विदुषे) तुझ विद्वान् के लिये (एता) ये (विश्वा) सब (नीथा) सन्मार्ग पर ले जाने वाले (निण्या) निश्चित तत्वार्थ बतलाने वाले, (वचांसि) वचन हैं। इन (काव्यानि) विद्वानों के बनाये संदर्भों को मैं (कवये) क्रान्तदर्शी तेरे लिये (मतिभिः) मननयोग्य (उक्थैः) वचनों द्वारा (अशंसिषम्) कहूँ। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[४] वामदेव ऋषिः ॥ अग्नि रक्षोहा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ८ भुरिक् पंक्तिः। ९ स्वराट् पंक्तिः। १२ निचृत् पंक्तिः। ३, १०, ११, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ७, १३ त्रिष्टुप्। १४ स्वराड् बृहती ॥
पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥

भा०—हे नायक! तू (प्रसितिम्) उत्तम प्रबन्ध से युक्त पृथ्वी के समान दृढ (पाजः) बल (कृणुष्व) सम्पादन कर। तू (राजा इव अमवान्) राजा के समान सहायक पुरुषों से युक्त होकर (इभेन) हस्ति बल के साथ वा निर्भय गण के साथ (याहि) प्रयाण कर। तू (तृष्वीम्)

प्यासी मृगी के पीछे भागते शिकारी के समान (तृष्वीम्) वेग से जाने वाली वा (तृष्वीम्) ऐश्वर्य की चाहने वाली, तृष्णालु (प्रसिति) सूत्र के समान परस्पर बन्धी हुई, सेना के पीछे (द्रूणानः) आता हुआ, (तपिष्ठैः) अत्यधिक सन्तापजनक शस्त्रास्त्रों से (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का (अस्ता असि) उखाड़ फेंकने वाला हो और (विध्य) उनकी ताड़ना कर।

तव॑ भ्र॒मास॑ आशु॒या प॑त॒न्त्यनु॑ स्पृश धृष॒ता शोशु॑चानः।
तपूं॑ष्यग्ने जु॒ह्वा॑ पत॒ङ्गानस॑न्दितो॒ वि सृ॑ज॒ विष्व॑गु॒ल्काः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (भ्रमासः आशुया) जैसे अग्नि के भ्रमणशील, वेग से जाने वाले किरण बड़ी तीव्र गति से दूर तक जाते हैं वैसे ही (तव) तेरे (भ्रमासः) भ्रमणशील शस्त्रास्त्र और सैनिक (आशुया) अति वेग से (पतन्ति) जावें। तू (धृषता) शत्रु का पराजय करने वाले बल से (शोशुचानः) खूब देदीप्यमान होता हुआ (अनु स्पृश) शत्रुओं के पीछे २ जा और (जुह्वा) अपनी वाणी से ही (असंदितः) स्वयं बन्धन रहित रहता हुआ तू (विश्वक्) सब ओर (तपूंषि) तापजनक अस्त्र शस्त्र (विसृज) चला और (पतङ्गान्) अग्निज्वाला से निकले तापों और स्फुलिङ्गों के समान (पतङ्गान् विसृज) वेग से जाने वाले बाणों को छोड़ और (उल्काः) आकाश से गिरने वाले चमकते तारों के समान तू सब ओर अपने चमकते अग्नि-अस्त्र (विसृज) छोड़।

प्रति॒ स्पशो॒ वि सृ॑ज॒ तूर्णि॑तमो॒ भवा॑ पा॒युर्वि॒शो अ॒स्या अद॑ब्धः।
यो नो॑ दू॒रे अ॒घशं॑सो॒ यो अन्त्य॑ग्ने॒ माकि॑ष्टे॒ व्यथि॒रा द॑धर्षीत् ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! राजन्! तू (तूर्णितमः) शीघ्रकारी, आलस्य रहित होकर अपने (स्पशः) चरों और सत्यासत्य को विवेकपूर्वक देखने वाले पुरुषों को (प्रति विसृज) अपने शत्रु-गृहों और प्रत्येक स्थान में भेज। तू स्वयं (अदब्धः) किसी प्रकार पीड़ित न होकर (अस्याः विशः) इस अधीन प्रजा का (पायुः) पालक (भव) हो। (यः) जो (अघशंसः) पाप-

चार का प्रशंसक वा पापाचार करने की धमकी देने वाला है (नः दूरे) वह हमसे दूर हो या (यः) जो (अन्ति) समीप में (व्यथिः) प्रजा पीड़क भेड़िये के तुल्य पुरुष है वह (ते) तुझे (माकिः आदधर्षीत्) कभी भी पराजित न कर सके।

उद॑ग्ने तिष्ठ॒ प्रत्या त॑नुष्व॒ न्य१॒॑मित्राँ॑ ओषतात्तिग्महेते।
यो नो॒ अरा॑तिं समिधान च॒क्रे नी॒चा तं ध॑क्ष्यत॒सं न शुष्क॑म् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) सैन्यनायक! तू (उत् तिष्ठ) खड़ा हो, शत्रुविजय के लिये उद्यत हो। (प्रति आ तनुष्व) शत्रु के प्रति सैन्य-बल को विस्तृत कर। हे (तिग्महेते) तीक्ष्ण शस्त्रों के धारक (अमित्रान्) शत्रुओं को (नि ओषतात्) तू खूब संतप्त कर। हे (समिधान) तेजस्विन्! (यः) जो (नः) हमारे बीच में हमसे (अरातिं) शत्रु भाव (चक्रे) करे (तं) उसको (नीचा) नीचे गिरा कर (शुष्कं अतसं न) सूखे काठ के समान अग्निवत् (धक्षि) जला डाल।

ऊ॒र्ध्वो भ॑व॒ प्रति॑ वि॒ध्याध्य॒स्मदा॒विष्कृ॑णुष्व॒ दैव्या॒न्यग्ने।
अव॑ स्थि॒रा त॑नुहि यातु॒जूनां॑ जा॒मिमजा॑मिं॒ प्र मृ॑णीहि॒ शत्रू॑न् ॥५॥२३॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! राजन्! तू (अधि अस्मत्) हम सबसे (ऊर्ध्वः) ऊपर (भव) हो और (दैव्यानि) विद्वानों, व्यवहार-कुशलों के योग्य उत्तम कार्यों और देव, जल, अग्नि आदि के बने अस्त्र शस्त्रों वा सैन्यों को (आविः कृणुष्व) प्रकट कर। (स्थिरा) स्थिर सैन्यों को (अव तनुहि) अपने अधीन रख और (यातुजूनां) प्रयाण करने में वेग से जाने वाले लोगों में (जामिम् अजामिम्) अपने बन्धु और अबन्धु को जान। अथवा—(यातुजूनां) चढ़ाई के निमित्त वेग से आने वाले शत्रुओं के बीच में (शत्रून्) शत्रुओं को चाहे वे (जामिम् अजामिम्) अपने बन्धु या अबन्धु हों उनका (प्रमृणीहि) खूब विनाश कर और (प्रति विध्य) मुकाबले पर स्थित होकर ताड़ित कर। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

स ते॑ जानाति सु॒म॒तिं य॑विष्ठ॒ य ईव॑ते॒ ब्रह्म॑णे गा॒तुमैर॑त् ।
विश्वा॒न्य॑स्मै सु॒दिना॑नि रा॒यो द्यु॒म्नान्य॒र्यो वि दुरो॑ अ॒भि द्यौ॑त् ॥६॥

भा०—हे (यविष्ठ) उत्तम युवावस्थायुक्त विद्वन् ! प्रभो ! (यः) जो (ईवते) ज्ञानवान् (ब्रह्मणे) वेदज्ञ विद्वान् को (गातुम् ऐरत्) उत्तम वाणी कहता उसका आदर सत्कार करता है वा जो (ईवते) इस जगत् का सञ्चालन करने वाली शक्ति के स्वामी (ब्रह्मणे) महान् परमेश्वर के (गातुम्) प्राप्त करने के मार्ग को (ऐरत्) उपदेश करता है (सः) वह (ते) तेरे (सुमतिं) उत्तम ज्ञान को (जानाति) जानता है । (अस्मै) उसके (विश्वानि सुदिनानि) सब दिन सुखकारी होते हैं । उसको (रायः) सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । (द्युम्नानि) सब प्रकार यश और भोग्य अन्न प्राप्त होते हैं वह (अर्यः) स्वामी वा वैश्य के समान (दुरः) अपने सब गृहों को, शत्रु और बाधा को वारण करने वाली सेनाओं, प्रजाओं तथा ज्ञान के द्वाररूप वाणियों को भी (वि अभिद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करे ।

सेद॑ग्ने अस्तु सु॒भगः॑ सु॒दानु॒र्यस्त्वा॒ नित्ये॑न ह॒विषा॒ य उ॒क्थैः ।
पिप्री॑षति॒ स्व आयु॑षि दुरो॒णे विश्वेद॑स्मै सु॒दिना॒ सास॑दि॒ष्टिः ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) हे राजन् ! हे परमेश्वर ! (यः) जो पुरुष (नित्येन) न नष्ट होने वाले (हविषा) ग्रहणयोग्य वेद द्वारा वा अन्न से और (यः) जो (उक्थैः) उत्तम वचनों से (त्वा) तुझको (स्वे) अपने (आयुषि) जीवन में, (दुरोणे) घर या राष्ट्र में (पिप्रीषति) प्रसन्न करने का यत्न करता है (सः इत् सुभगः अस्तु) वह ही उत्तम ऐश्वर्ययुक्त और वह ही (सुदानुः) उत्तम दानशील हो । (अस्मै विश्वा इत्, सुदिना) उसके ही सब दिन सुखकारक होते और (सा) उसकी वही (इष्टिः) उत्तम संगति, दान, मैत्री आदि सफल होते हैं ।

अर्चा॑मि ते सुम॒तिं घोष्य॒र्वाक्सं ते॑ वा॒वाता॑ जरतामि॒यं गीः ।

स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! मैं प्रजाजन (ते) तेरी (सुमतिं) उत्तम मति वाले, ज्ञानी पुरुष का (अर्चामि) आदर करूं। (इयं) यह (गीः) वाणी (घोषी) उत्तम शब्दयुक्त होकर (वावाता) सब अज्ञानों का नाश करती हुई (ते अर्वाक्) तेरे प्रति (सं जरताम्) अच्छी प्रकार उपदेश वा स्तुति करे और (इयं गीः वावाता) यह शत्रुपक्ष को निगल जाने वाली शत्रु पक्ष का निरन्तर विनाश करती हुई सेना (घोषी) सिंहनाद करती हुई (अर्वाक् संजरताम्) तेरे समक्ष शत्रु के जीवन का नाश करे। हम लोग (स्वश्वाः) उत्तम अश्वों, (सुरथाः) उत्तम रथों वाले होकर (त्वा मर्जयेम) तुझे सुशोभित करें और (अस्मे) हमारे लिये तू (अनुद्यून्) सब दिनों (क्षत्राणि) क्षात्रबल और ऐश्वर्य धारण कर और करा।

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून्।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! (इह) इस राष्ट्र में (दोषावस्तः) दिन रात (त्वां दीदिवांसम्) देदीप्यमान (त्वा) तुझको प्राप्त करके (भूरि) बहुत अधिक (त्मन्) स्वयमेव (उप आचरेत्) तेरी सेना श्रेष्ठाचार करे और (अनुद्यून्) दिनों दिन हम भी (सुमनसः) शुभ चित्त वाले होकर (क्रीडन्तः) खेलते हुए बालकों के समान (त्वा अभिसपेम) तुझे प्राप्त हों और (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (द्युम्ना अभितस्थिवांसः) यशों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करके तेरे समीप स्थित रहते हुए तुझे प्राप्त हों।

यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन। तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! हे प्रभो ! (यः) जो पुरुष (सु-अश्वः) उत्तम अश्व और (सुहिरण्यः) उत्तम धनैश्वर्य से युक्त (वसुमता रथेन)

धन धान्यसम्पन्न रथ से (त्वा उपयाति) तुझे प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे (आतिथ्यम्) आतिथ्य को (अनुषक्) अनुकूल रूप से स्वपद-मानानुसार (जुजोषत्) स्वयं स्वीकार करता है तू (तस्य) उसका (त्राता) रक्षक और (तस्य सखा) उसका मित्र (भवसि) होकर रह। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

म॒हो रु॑जामि ब॒न्धुता॒ वचो॑भि॒स्तन्मा॑ पि॒तुर्गोत॑मा॒दन्वि॑याय।
त्वं नो॑ अ॒स्य वच॑सश्चिकिद्धि॒ होत॑र्यविष्ठ सुक्रतो॒ दमू॑नाः॥ ११॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान और ऐश्वर्य के दातः! हे (यविष्ठ) बलशालिन् (वचोभिः) वचनों द्वारा प्राप्त होने वाला जो (बन्धुता) सम्बन्ध है उससे मैं (महः) बड़े शत्रुबल तथा अज्ञान को (रुजामि) नष्ट करने में समर्थ हूँ। (तत्) वह सम्बन्ध (पितुः) पिता माता के तुल्य ही (गोतमात्) ज्ञानियों में श्रेष्ठ आचार्य वा भूमियों में श्रेष्ठ राजा के पास से शिष्य वा प्रजाजन रूप (मा) मुझको (अनु इयाय) क्रम से प्राप्त हो। हे विद्वन्! राजन्! (त्वं) तू (दमूना) अपने चित्त, इन्द्रियों को दमन करने और प्रजा को दमन करने में मनोयोग देने हारा होकर तू (नः) हमें (अस्य वचसः) इस वचन का (चिकिद्धि) ज्ञान करवा।

अस्व॑प्नजस्त॒रण॑यः सु॒शेवा॒ अत॑न्द्रासोऽवृ॒का अश्र॑मिष्ठाः।
ते पा॒यवः॑ स॒ध्र्य॑ञ्चो नि॒षद्या॑ग्ने॒ तव॑ नः पान्त्वमूर॥ १२॥

भा०—हे (अमूर) मूढ़ता आदि दोषों से रहित राजन्! वे (अस्वप्नजः) कभी न सोने वाले, सावधान, (तरणयः) नित्य तरुण, जवान, (सुशेवाः) उत्तम सुख देने वाले (अतन्द्रासः) कभी विषयों के प्रमाद में न पड़ने वाले, (अवृकाः) भेड़िये के स्वभाव से रहित (अश्रमिष्ठाः) कभी न थकने वाले हों। (ते) वे (पायवः) पालक गण (सध्र्यञ्च) सदा एक साथ काम करने वाले सहयोगी होकर (निपद्य) अपने २ पदों पर विराज कर (तव) तेरे अधीन जन (नः) हम प्रजा जनों की (पान्तु) रक्षा करें।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३॥

भा०—(ये) जो (ते) तेरे (पायवः) नियुक्त रक्षक गण स्वयं (मामतेयं) ममता के भाव से अपनाये हुए (अन्धं) लोचनहीन अज्ञानी प्रजाजन को स्वयं (पश्यन्तः) यथार्थ ज्ञान से देखते हुए (दुरितात्) दुष्टाचरण और दुःखमार्ग में जाने से (अरक्षन्) बचा लेते हैं (विश्ववेदाः) सर्वज्ञ सर्वैश्वर्य का स्वामी तू (तान्) उन (सुकृतः) शुभ कर्मकारी लोगों को (रक्ष) सुरक्षित रख। जिससे (दिप्सन्तः) हिंसा करने के इच्छुक (रिपवः) शत्रुगण (इत्) भी (न अह दिभुः) कभी प्रजा का नाश न करें।

त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान्।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥ १४ ॥

भा०—हे (सत्यताते) सत्य के विस्तारक! (वयं) हम लोग (त्वया) तेरे द्वारा (सधन्यः) समान धन के स्वामी होकर (त्वा ऊताः) तेरे द्वारा सुरक्षित (तव प्रणीती) तेरे बनाये विधान, उत्तम नीति से (वाजान् अश्याम) ऐश्वर्यों को भोगें। हे सत्य रक्षक! हे (अह्रयाण) लज्जारहित निर्भीक तू (उभा शंसाः) दोनों वादियों को (अनुष्ठुया) अपने मनोनुकूल करते हुए (सूदय) सञ्चालित कर।

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् १५ २५।४

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे राजन्! हम लोग (अया) इस (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाली वाणी द्वारा (शस्यमान) प्रशंसा योग्य (स्तोमं) स्तुति-वचन वा उपदेश (ते विधेम) तेरे हितार्थ विधान करें। तू उसको (प्रति गृभाय) ग्रहण कर। तू (अशसः) प्रजाओं

को खा जाने वाले, (रक्षसः) विघ्न करने वाले पुरुष से (अस्मान् पाहि) हमें बचा। हे (मित्रमहः) मित्रों द्वारा पूजनीय ! सूर्य वा वायुवत् तेजस्विन् ! तू (द्रुहः) देश और प्रजा के द्रोही, (निदः) निन्दनीय (अवद्यात्) घृणित पुरुष से भी (पाहि) हमारी रक्षा कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५] वामदेव ऋषिः। वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २, ५, ६, ७, ८, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ९, १२, १३, १५ त्रिष्टुप्। १०, १४ भुरिक् पंक्तिः॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः॥ १॥

भा०—जो (बृहद्भाः) सूर्य समान तेज वा महान् ज्ञानप्रकाश से युक्त, (अनूनेन) किसी से भी न कम, (बृहता) बहुत बड़े (वक्षथेन) कार्य भार को धारण करने के सामर्थ्य से (रोधः न) जलों के तट के समान (उपमित्) इस जगत् को स्वयं जानने, बनाने और चलाने हारा होकर (उप स्तभायत्) संभालता है उस (वैश्वानराय) समस्त जगत् के सञ्चालक, सब मनुष्यों के नायक राजा और विद्वान् (मीळ्हुषे) सूर्य वा मेघ के तुल्य आनन्द ऐश्वर्य सुखों के वर्षक (अग्नये) अग्नि के तुल्य ज्ञानप्रकाशक, मार्गदर्शक के लिये हम (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (कथा दाशेम) कैसे आत्मसमर्पण करें, करादि दें?

मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान्।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः॥२॥

भा०—(यः) जो (देवः) सूर्यसमान प्रकाशक और मेघ के (स्वधा-

वान्) अन्न और जल से युक्त होकर (मर्त्याय मह्यं) मुझ (पाकाय) परिपक्व ज्ञानी मनुष्य को (इमां रातिं ददौ) इस प्रत्यक्ष दान, ज्ञान, धनादि प्रदान करता है उसकी (मा निन्दत) निन्दा मत करो । वह (गृत्सः) उपदेष्टा गुरु, (अमृतः) मृत्यु से रहित, (विचेताः) विविध ज्ञानों का ज्ञाता (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में प्रकाशमान, (नृतमः) सब मनुष्यों, जीवों में श्रेष्ठ, (यह्वः) महान् (अग्निः) नायक, तेजस्वी, स्वप्रकाश है ।

साम॑ द्विबर्हा॑ महि॑ ति॒ग्मभृ॑ष्टिः स॒हस्र॑रेता वृष॒भस्तुवि॑ष्मान् ।
प॒दं न गोरप॑गूळ्हं विवि॒द्वान॒ग्निर्मह्यं॒ प्रेदु॑ वोचन्मनी॒षाम् ॥ ३ ॥

भा०—(सहस्ररेताः वृषभः) अनेक जलों से युक्त वर्षणशील मेघ वा सूर्य (द्विबर्हाः) आकाश भूमि दोनों को बढ़ाने वाला, (तिग्मभृष्टिः) तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त होकर जैसे (गोः अपगूळ्हं पदं विविद्वान्) किरणों के स्वरूप प्राप्त करता हुआ चेतना वा ज्ञान देता है वैसे ही (द्विबर्हाः) विद्या और विनय दोनों से बढ़ने द्वारा वा ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दोनों से बढ़ा हुआ वानप्रस्थ कुलपति वा दोनों लोकों से महान् (तिग्मभृष्टिः) तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त, (सहस्ररेताः) अतुल वीर्य सम्पन्न, (वृषभः) सर्वश्रेष्ठ, (तुविष्मान्) बलवान्, (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष, अग्रणी नायक या परमेश्वर, (गोः) वाणी और पृथिवी के (अपगूळ्हं पदं) अप्रकट रूप, ज्ञान को (विविद्वान्) विशेष रूप से जानता हुआ, (मह्यं) मुझ प्रजा-जन को (मनीषाम्) मन की प्रेरक बुद्धि या ज्ञान का (प्रवोचत् इत्) उपदेश करे ।

प्र ताँ अ॒ग्निर्ब॑भसत्ति॒ग्मज॑म्भ॒स्तपि॑ष्ठेन शो॒चिषा॒ यः सु॒राधाः॑ ।
प्र ये मि॒नन्ति॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ प्रि॒या मि॒त्रस्य॒ चेत॑तो ध्रु॒वाणि॑ ॥४॥

भा०—(ये) जो (वरुणस्य) सबसे वरणयोग्य, श्रेष्ठ और (मित्रस्य) प्रजा को मरने से बचाने वाले (चेततः) ज्ञानी पुरुष के (ध्रुवाणि) स्थिर, (प्रिया) प्रिय (धाम) स्थान, नाम, देह आदि का (प्रमिनन्ति) नाश करें

(तान्) उनको (यः) जो (सुराधाः) उत्तम ऐश्वर्यवान् (अग्निः) नायक (तिग्मजम्भ) हिंसक आयुधों से सम्पन्न है वह अपने (तपिष्ठेन) संताप-दायक (शोचिषा) तेज से (बभसत्) पीड़ित करे ।

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५॥१॥

भा०—जैसे (अभ्रातरः योषणः न) पालक भाई वा पति से रहित स्त्रियें (दुरेवाः) दुःखदायी पति पाकर (गभीरं पदं) गहरे संकट स्थान पैदा कर लेती हैं और जैसे (जनयः पतिरिपः) पालक पति की भूमिस्वरूप होकर भी पतिद्वेषिणी स्त्रियें (दुरेवाः) दुष्टाचारिणी होकर (पापासः अनृताः) पापयुक्त असत्यभाषिणी और (असत्याः) सत्याचरण से रहित होकर (गभीरं पदं अजनत) गहरा संकट पैदा कर लेती हैं ऐसे ही (व्यन्तः) विपरीत मार्ग में जाते हुए, (पापासः) पापाचारी, (अनृताः) असत्यवादी, (असत्याः) असदाचारी लोग भी जीवन-मार्ग में (इदं) इस प्रत्यक्ष (गभीरं पदम् अजनत) गहरे स्थान, अधःपतन को प्राप्त करते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) हे तेजस्विन् ! हे (पावक) पवित्र करने हारे ! तू (मे) मुझ (कियते) अल्पशक्ति, (अमिनते) व्रत भंग न करने वाले शिष्य के उपकार के लिये ही (कियते गुरुं भारं न) स्वल्प बल वाले के उपकार के लिये बहुत अधिक भार के समान (गुरुं) उपदेश करने योग्य (भारं) पोषणकारक (मन्म) मनन करने योग्य (बृहत्) बहुत बड़ा (गभीरं) अति गंभीर (यह्वं) महान् (पृष्ठं) प्रश्नों द्वारा जानने योग्य, (सप्तधातु) सुवर्णादि सात धातुओं से युक्त धन के तुल्य सात प्रकार के छन्दों द्वारा

धारण करने योग्य वेद-विज्ञान को (धृषता) प्रगल्भ (प्रयसा) उत्तम प्रयत्न और प्रसन्न-चित्त से (दधाथ) आप धारण करावें ।

तमिन्न्वे॑३॒व स॑म॒ना स॑मा॒नम॒भि क्रत्वा॑ पुन॒ती धी॒तिर॑श्याः ।
स॒सस्य॒ चर्म॒न्नधि॒ चारु॒ पृश्ने॒रग्रे॑ रु॒प आरु॑पितं॒ जबा॑रु ॥ ७ ॥

भा०—हे शिष्यगण ! तू (समना) समान चित्त होकर (पुनती क्रत्वा) पवित्र ज्ञान और कर्म के अभ्यास द्वारा (समानम्) अपने तुल्य मित्रवत् (तम् इत् नु एव) उस गुरु को ही (धीतिः सन्) धारणाशील वा अध्ययनशील होकर (अश्याः) प्राप्त कर । (पृश्नेः ससस्य) पृश्नि नाम मृग के (चर्मन् अधि) चर्म पर स्थित होकर उसके तुल्य ही (ससस्य) ऊपर उठते हुए (पृश्नेः) सूर्य के (चर्मन् अधि) आचरण या व्रत में रह कर (रुपः) ज्ञानांकुर बीजों के रोपने वाले गुरु से तू (आरुपितं) प्रेम-पूर्वक वपन किये (जबारु) वेग से या उपदेश पूर्वक बढ़ने वाले ज्ञान को (रुपः आरुपितं जबारु) अंकुरवती भूमि से शीघ्र वृद्धिशील अन्न के तुल्य ही (अश्या) प्राप्त कर ।

प्र॒वा॒च्यं॑ वच॑सः॒ किं मे॑ अ॒स्य गुहा॑ हि॒तमुप॑ नि॒णिग्व॑दन्ति ।
यदु॒स्रिया॑णा॒मप॒ वारि॑व॒ व्रन्पाति॑ प्रि॒यं रु॒पो अग्रं॑ प॒दं वेः ॥ ८ ॥

भा०—(अस्य) इस आचार्य के (वचसः) वचन के सम्बन्ध में (मे) मेरे लिये (किम् प्रवाच्यं) क्या अद्भुत वा कितना प्रवचन करने योग्य है जिसे (गुहा हितम्) बुद्धि में स्थित और (निणिक्) शुद्ध और शिष्यादि की बुद्धि को विमल करने वाला (उपवदन्ति) बतलाते वा विद्वान् जन उपदेश करते हैं । (उस्रियाणां वाः इव) किरणों या मेघ की जलधाराओं या नदियों के जल के समान (उस्रियाणाम्) स्वयं उठने वाली वाणियों के (यत्) जिस साररूप ज्ञान को विद्वान् लोग (अप व्रन्) प्रकट करते हैं वही (रुपः वेः) बीजोत्पादक पृथिवी और कान्तिमान् सूर्य इन दोनों के तुल्य (रुपः) सन्तति उत्पादक स्त्री और (वेः) कमनीय कामना-

वान् पुरुष माता वा पिता दोनों के (प्रियं) प्रिय (अग्रं) मुख्य (पदं) आदरणीय स्थान को (पाति) पालन करता है।

इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥ ९ ॥

भा०—(इदम् उ) यह ही (त्यत्) वह परम (महि) भारी (महाम्) बड़ों के भी बीच में (अनीकं) बलवान् सूर्य रूप तेजःपुञ्ज है (यत् पूर्व्यं) सबसे पूर्व विद्यमान कारणों से उत्पन्न जिसको (उस्रिया गौः) दुधार गौ के तुल्य जलप्रद रश्मि (सचते) प्राप्त है और जिसको (ऋतस्य पदे) सूक्ष्म जल के आश्रयस्थान आकाश के भी (अधि) ऊपर (दीद्यानं) देदीप्यमान (गुहा) अन्तरिक्ष में (रघुष्यत्) वेग से जाता हुआ (रघुयत्) अति वेग से गमन करने वाले पिण्ड के तुल्य (विवेद) विद्वान् जानता है।

अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१०॥२॥

भा०—(अध) और जैसे (द्युतानः) प्रकाशमान सूर्य (पित्रोः सचा) जगत् के पालक आकाश और भूमि दोनों के बीच स्थिर होकर (पृश्नेः) अन्तरिक्ष की (गुह्यं) गुहा में स्थित (चारु) व्यापक जल को (आसा) विक्षेपक बल से (अमनुत) ग्रहण करता है और (मातुः परमे पदे) अन्तरिक्ष के दूरवर्ती स्थान में विद्यमान (वृष्णः) जलवर्षी (शोचिषः) प्रकाशमान (प्रयतस्य) शक्तिशाली सूर्य की (गोः) किरणों की (जिह्वा) जल ग्रहण करने की शक्ति (अन्ति सत्) समीप विद्यमान जल को ग्रहण कर लेती है वैसे ही (द्युतानः) प्रकाशमान शिष्य (पित्रोः सचा) माता पिता के साथ रहकर भी (पृश्ने) प्रश्न करने योग्य गुरु के (गुह्यं चारु) बुद्धि स्थित ज्ञान को (अमनुत) जान ले, (मातुः परमे पदे) माता के समान उत्तम ज्ञाता के भी परम पद पर स्थित (वृष्णः) ज्ञानवर्षक (शोचिषः) तेजस्वी (प्रयतस्य) उत्तम जितेन्द्रिय गुरु के (अन्ति सत्) समीप रहकर उसकी (गोः)

वाणी के (चारु गुह्यं) उत्तम गुप्त विज्ञान का भी (जिह्वा) वाणी द्वारा (अमनुत) ज्ञान कर ले। इति द्वितीयो वर्गः ॥

ऋतं वो॑चे॒ नम॑सा पृ॒च्छ्यमा॑न॒स्तवा॒शस॑ा जातवे॒दो यदी॒दम्।
त्वम॒स्य क्ष॑यसि॒ यद्ध॒ विश्वं॑ दि॒वि यदु॒ द्रवि॑णं॒ यत्पृ॑थि॒व्याम् ॥११॥

भा०—मैं (मनसा) आदरपूर्वक (आशसा) प्रशंसित रूप से (पृच्छ्यमानः) पूछा जाऊं तो अवश्य हे (जातवेदः) विद्वन्! (यदि इदम्) यह जो भी कुछ है सब (तव) तुझे (ऋतम् वोचे) सत्य ही बतलाऊं। हे प्रभो! (यत् विश्वम्) जो भी समस्त विश्व है, (यद् उ) जो कुछ (दिवि) आकाश में और (यत्) जो भी (पृथिव्याम्) पृथिवी में (द्रविणं) ऐश्वर्यादि और तेज गतिशील, सूर्यादि लोक और जल वायु आदि तत्व और ज्ञान है (अस्य) इसमें (त्वम् क्षयसि) तू ही सर्वत्र बस रहा है।

किं नो॑ अ॒स्य द्रवि॑णं॒ कद्ध॒ रत्नं॒ वि नो॑ वोचो जातवेदश्चिकि॒त्वान्।
गुहाध्व॑नः पर॒मं यन्नो॑ अ॒स्य रेकु॑ प॒दं न नि॑दा॒ना अग॑न्म ॥ १२ ॥

भा०—हे (जातवेदः) विद्वन्! हे परमेश्वर! (अस्य) इस संसार का (नः) हमारे उपयोगी (किं द्रविणं) क्या धन वा यश है? (कत् रत्नं) किस २ प्रकार का रमण करने योग्य पदार्थ है? तू (चिकित्वान्) सब कुछ जानता हुआ ही (नः विवोचः) हमें विविध प्रकार से उपदेश कर। (अस्य अध्वनः) इस महान् मार्ग के गन्तव्य प्रभु का (गुहा) बुद्धि में स्थित (परमं) सर्वोत्कृष्ट (यत्) जो (पदम्) ज्ञातव्य स्वरूप (रेकु) संशयास्पद सा है उसको हम (निदानाः) परस्पर की निन्दा करते हुए (न अगन्म) नहीं प्राप्त होते हैं।

का म॒र्यादा॑ व॒युना॒ कद्ध॑ वा॒मम॒च्छा॑ गमेम र॒घवो॒ न वाज॑म्।
क॒दा नो॑ दे॒वीर॒मृत॑स्य॒ पत्नीः॒ सूरो॒ वर्णे॑न ततनन्नु॒षासः॑ ॥ १३ ॥

भा०—(का मर्यादा) क्या मर्यादा है (का वयुना) कौन २ से करने योग्य कर्त्तव्य और जानने योग्य ज्ञान हैं (रघवः वाजं न) वेगवान् अश्व

जैसे संग्राम को जाते हैं और शीघ्रकर्त्ता अनालसी लोग जैसे ज्ञान विज्ञान को प्राप्त करते हैं वैसे ही (रघवः) ज्ञानी होकर (कद् ह) कब (वामं वाजं) प्राप्त और सेवन करने योग्य ज्ञानैश्वर्य को (गमेम) प्राप्त करेंगे। (सूरः) सूर्य जैसे (वर्णेन) उत्तम प्रकाश से (देवीः अमृतस्य पत्नीः उषासः ततनन्) प्रकाश वाली, सन्तान की पालक पत्नियों के समान प्रभात वेलाओं को विस्तारित करता है वैसे ही हे विद्वन्! आप (सूरः) प्रेरक होकर (नः) हमारे लिये (कदा) कब (अमृतस्य पत्नीः) अमृत आत्मा की पालक (देवीः) दिव्य प्रकाश से युक्त (उषासः) पापदाहक प्रज्ञाओं को और सत्यपालक वाणियों को (ततनन्) हमारे प्रति प्रकट करेंगे।

अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम्॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! परमेश्वर! (अनिरेण) मन को सुन्दर न लगने वाले, (फल्ग्वेन) व्यर्थ, (प्रतीत्येन) विरुद्ध ज्ञान वाले, (कृधुना) स्वल्प (वचसा) वचन से (अतृपासः) न तृप्त होने वाले लोग (इह) इस लोक में (ते) तेरे (किम्) किस ज्ञान की (आ वदन्ति) चर्चा करें। वे (अनायुधासः) हथियार के साधनों से रहित, (असता) असत् ज्ञान से (सचन्ताम्) युक्त हो जावेंगे। इसलिये हे विद्वन्! तू उनको विस्तृत रमणीय, सारवान्, अबाधित, अनन्त वेद का उपदेश कर।

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत्॥१५॥३॥

भा०—(अस्य) इस (समिधानस्य) अग्नि वा सूर्यवत् देदीप्यमान (वृष्णः) प्रबन्ध करने हारे वा मेघ के तुल्य सुखों के वर्षक (वसोः) प्रजा को बसाने वाले राजा की (श्रिये) श्री-वृद्धि के लिये ही उसके (दमे) गृह-वत् राष्ट्र या दमन में (अनीकं) बड़ा सैन्यमय तेज (आ रुरोच) प्रकाशित हो। वह (रुशत्) तेजस्वी होकर (वसानः) राष्ट्र में रहता हुआ (सुदृ-

शीकरूपः) उत्तम दर्शनीय शरीर होकर (राया पुरुवारः) धनैश्वर्य से बहुतों द्वारा वरणयोग्य, बहुत से शत्रुओं का वारक होकर (क्षितिः न) भूमि या राष्ट्र के समान ही गंभीर शत्रुओं का क्षयकारी होकर (अद्यौत्) प्रकाशित हो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[६] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता: ॥ ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । २, ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः ॥

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान और धन के दाता विद्वन्! तू (नः) हमारे (अध्वरस्य) अन्यों से नाश न किये जाने योग्य, अध्ययनाध्यापन और प्रजा पालन कार्य में (देवतातौ) विद्वानों और विजयेच्छु, व्यवहार-निपुण लोगों के बीच (यजीयान्) सबका स्नेही, मित्र और सत्संग योग्य होकर (ऊर्ध्वः) सबसे ऊपर अध्यक्ष रूप से (तिष्ठ) विराज । हे (अग्ने) विद्वन्! (त्वं हि) तू ही निश्चय से (विश्वं मन्म) समस्त मनन योग्य ज्ञान और स्तम्भन योग्य शत्रु-बल को (अभि असि) अपने वश करने में समर्थ हो और (वेधसः) ज्ञानी और कर्म कुशल कर्त्ता की (चित्) भी (मनीषाम्) उत्तम बुद्धि को (प्र तिरसि) बढ़ा ।

अमूरो होता न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥ २ ॥

भा०—(विक्षु) प्रजाओं के बीच (अग्निः) ज्ञानी और नायक तेजस्वी (अमूरः) मूढ़ता रहित, विद्वान्, (होता) ज्ञानादि का दाता (मन्द्रः) सबको आनन्द देने वाला (विदथेषु) ज्ञानों, धनों को प्राप्त करने के लिये (प्र-चेताः) ज्ञानवान् होकर (नि असादि) विराजे । वह (सविता

इव) उत्पादक पिता के समान (ऊर्ध्वं भानुं) सबसे ऊपर कान्ति को (अश्रेत्) धारण करे और (मेता इव) ज्ञानवान् के तुल्य ही (द्याम्) ज्ञान प्रकाश और तेज को तथा (धूमम्) अग्नि के तुल्य अर्थात् शत्रुओं को कंपा देने वाले सैन्य-बल को (स्तभायत्) अपने वश करे ।

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (घृताची) तेजोयुक्त उषा वा जल से युक्त रात्रि, (रातिनी) सुख देने वाली होकर (देवतातिम् उद् अनक्ति) प्रकाशमान किरणों वा सूर्य को प्रकट करती है, वैसे ही (यता) संयम से रहने वाली ब्रह्मचारिणी (घृताची) तेज और घृतादि स्नेहयुक्त पदार्थों को सेवने वाली, (सुजूर्णिः) उत्तम रीति से सब कार्य वेग से करने वाली, (रातिनी) बहुतों के दिये दानों वा आशिषों को प्राप्त करने वाली होकर (प्रदक्षिणित्) वेदि में प्रदक्षिणा करती हुई (देवतातिम्) अपने कामना योग्य पति को (उद् अनक्ति) उद्वाह करे, प्राप्त करे और जैसे (उराणः) बहुतों को जीवन देने वाला (स्वरुः) प्रतापी सूर्य, (नवजाः न) नव उत्पन्न, बालक के समान (अक्रः) ऊपर उठता हुआ (सुधितः) सुखकारी और (सुमेकः) उत्तम रीति से प्रकाशमान होकर (पश्वः उत् अनक्ति) अपनी किरणों को प्रकट करता है वैसे ही (उराणः) बहुत कर्म करने में समर्थ वा बहुतों को जीविका देकर पालने से समर्थ (स्वरुः) आज्ञा देने वाला वा प्रतापी पुरुष (नवजाः अक्रः न) नव उदय होते हुए सूर्य के तुल्य (सुधितः) सुखपूर्वक पालित पोषित, हितकर्त्ता, (सुमेकः) उत्तम तेज से युक्त होकर (पश्वः) बहुत से गौ आदि पशुओं को (उद् अनक्ति) प्राप्त करे ।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥ ४ ॥

भा०—(स्तीर्णे) आकाश से आच्छादित (बर्हिषि) महान् आकाश में

(अग्नौ समिधाने) सूर्य या अग्नि के समान सुरक्षित (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन में (अग्नौ समिधाने) नेता के तेजस्वी होने पर (अध्वर्युः) अविनाश की इच्छा करने हारा लोक (जुजुषाणः) स्वामी की प्रेमपूर्वक सेवा करता हुआ (ऊर्ध्वः) उन्नत रूप में (अस्थात्) स्थित रहे और (अग्निः) अग्रणी नायक भी (पशुपाः न) पशुओं के पालक गोपाल के समान रक्षक और (होता) ऐश्वर्य दाता होकर (उराणः) बहुत बड़े कार्य वा ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (प्रदिवः) प्रकाशों वा काम्य पदार्थों को (त्रिविष्टि) आकाश में सूर्य के समान उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रजाओं पर (परि एति) वश करे।

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥५।४॥

भा०—जैसे (अग्निः) अग्नि, सूर्य (ऋतावा) तेजस्वी (त्मना मितद्रुः) स्वयं, परिज्ञात मति वाला होता है और उसके (शोकाः द्रवन्ति) किरणें वेग से दूर तक जाती हैं (यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते) जब चमकता है, तब सब लोग गति करते और अग्नि से सब प्राणी भय करते हैं, वैसे ही (होता) सबका दाता और सबको अपने वश करने वाला (अग्निः) नायक (मन्द्रः) सबको हर्षित करने वाला (मधुवचाः) मधुर वाणी बोलने वाला, (ऋतावा) न्याय, धनैश्वर्य से युक्त (मितद्रुः) परिमित गति से जाने वाला होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (परि एति) सब तरफ गमन करे। (अस्य) उसके (वाजिनः न) वेगवान् अश्वों, बलवान् पुरुषों के समान ही (शोकाः) तेज भी (द्रवन्ति) दूर तक जावें। (यत्-अभ्राट्) जब वह तेज से चमकता है तब (विश्वा भुवना) समस्त भुवन सब लोग (भयन्ते) भयभीत हों। इति चतुर्थो वर्गः॥

भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३रेप आ धुः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! हे (स्वनीक) उत्तम सेना के स्वामिन्! (घोरस्य) भयानक (सतः) साथ ही अति सज्जन (विषुणस्य) राष्ट्र में व्यापक सामर्थ्यवान् (ते) आपकी (चारुः) उत्तम (सं-दृक्) निष्पक्षपात दृष्टि (भद्रा) सबका कल्याण करने वाली हो। (यत्) जिसके कारण (ध्वस्मानः) विध्वंस करने वाले प्रजा-नाशक लोग (ते शोचिः) तेरे तेज को (तमसा) अन्धकार के तुल्य प्रजोत्पीड़न, अन्याय, अत्याचारादि से (न वरन्त) नहीं ढक सकें और वे (तन्वि) किसी के, वा तेरे शरीर पर भी (रेपः) अपना हत्यादि पापमय प्रयोग (न आदधुः) न कर सकें।

नयस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ।
अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस (सातुः) दानशील (जनितोः) सुखोत्पादक राजा वा गुरु को (न अवारि) भी वारण न किया जा सके, (यस्य) जिसके आगे (इष्टौ) अति प्रिय (मातापितरौ) माता पिता को भी (चित्नु) आदर योग्य (न अवारि) व स्वीकार किया जा सके, (अध) और वह (मित्रः) प्राणों के समान अति प्रिय, (पावकः) अग्नि के तुल्य पवित्र करने वाला, (सुधितः) उत्तम रीति से स्थापित (अग्निः) नायक, विद्वान् और भीतरी आत्मा (मानषीषु) मननशील मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं में (दीदाय) प्रकाशित होता है।

द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु।
उषर्बुधमथर्योऽन दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥ ८ ॥

भा०—(अथर्यः दन्तं शुक्रं स्वासं न) जैसे स्त्रियें अपने दांतों को स्वच्छ और अपने मुख को भी स्वच्छ रखती हैं और जैसे (स्वसारः अग्निं जीजनन्) बहनें अग्नि को जलाती हैं वैसे ही (यं) जिस पुरुष को (पञ्च द्विः) दशों दिशाओं की (संवसानाः) एक साथ निवास करती हुई एक स्थान पर एकत्र स्थित होकर (स्वसारः) स्वयं अपने शासन में बढ़ने वाली

प्रजाएं (मानुषीषु विक्षु) मनुष्य प्रजाओं में (अग्निं) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को अग्रणी रूप से (जीजनन्) उत्पन्न करती हैं अथवा (पञ्च स्व-सारः यं अग्निं द्विः जीजनन्) पांचों जन, ब्राह्मणादि प्रजाएं जिस नायक को दो वार अपना नायक बना लें तो वे (अथर्यः) स्वयं कभी पीड़ित न होकर (उषर्बुधम्) प्रातःकाल जागने हारे (दन्तं) प्रजा के ·ं·ना, (शुक्रं) तेजस्वी (स्वासं) उत्तम सौम्य मुख वाले (परशुं न तिग ·ं) फरसे के समान तीक्ष्ण शत्रुनाशक पुरुष को ही (अग्नि जीजनन्) अपना अग्रणी बनावें।

तव॒ त्ये अ॑ग्ने ह॒रितो॑ घृत॒स्ना रोहि॑तास ऋ॒ज्वञ्चः॒ स्वञ्चः॑ ।
अ॒रु॒षासो॒ वृष॑ण ऋजुमु॒ष्का आ दे॒वता॑तिमह्वन्त द॒स्माः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! राजन्! (तव) तेरे (त्ये) वे नाना (हरितः) अश्वों के समान शीघ्रगामी मनुष्य (घृतस्नाः) जल से सदा स्नान करने वाले, (रोहितासः) रक्त वर्ण, (ऋज्वञ्चः) सरल, धार्मिक मार्ग से चलने वाले (स्वञ्चः) उत्तम पूजा के योग्य, (अरुषासः) सौम्य स्वभाव वाले (वृषणः) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, (ऋजुमुष्काः न) ऋजु सरल धार्मिक नीति से स्वयं पुष्ट होने वाले, (दस्माः) प्रजा के दुःखों के नाशक पुरुष (देवतातिम्) उत्तम तेजस्वी पुरुष को (अह्वन्त) बुलावें।

ये ह॒ त्ये ते॒ सह॑माना अ॒यास॑स्त्वे॒षासो॑ अग्ने अ॒र्चय॒श्चर॑न्ति ।
श्ये॒नासो॒ न दु॑वस॒नासो॒ अर्थं॑ तुविष्व॒णसो॒ मारु॑तं॒ न शर्धः॑ ॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे विद्वन्! (ये ह) जो (वे) तेरे (सह-मानाः) शत्रुओं को पराजित करने वाले, (अयासः) वेग से जाने वाले, (त्वेषासः) तेजस्वी, (अर्चयः) अग्नि के प्रकाशों के तुल्य एवं सत्कार करने योग्य (श्येनासः) बाजों के समान वेग से आक्रमण करने वाले वीरों एवं ज्ञान प्राप्त करने हारे शिष्यों के समान (दुवसनासः) परिचर्या करने वाले उत्तम सेवक, (तुविष्वणासः) नाना प्रकार के घोष करने वाले, नाना स्वरों

से वेदपाठी वीर विद्वान् पुरुष (मारुतं शर्धः न) वायु के तुल्य प्रबल वीरों के सैन्य बल, प्राणों के ब्रह्मचर्य बल और (अर्थं) द्रव्य, एवं वेदार्थ और प्राप्त ब्रह्म तत्त्व को (चरन्ति) प्राप्त हों।

अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥५॥

भा०—हे (समिधान) देदीप्यमान ! नायक ! विद्वन् ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (ब्रह्म) यह महान् ऐश्वर्य और बड़ा वेद ज्ञान (अकारि) किया गया है। तेरे ही लिये विद्वान् जन (उक्थं शंसाति) उत्तम वचन कहे। तू (यजते) सत्संग करने वाले के लिये (उक्थं) उत्तम (वि धाः उ) विधान कर। (मनुषः) मननशील पुरुष (होतारम्) ज्ञान और ऐश्वर्य के दाता (अग्निं) विद्वान् को और (आयोः) मनुष्यों को (शंसम्) उपदेश करने वाले को (नमस्यन्तः) नमस्कार करते हुए (उशिजः) उसको चाहते हुए (निषेदुः) उसके समीप विराजें। इति पञ्चमो वर्गः॥

[७] वामदेव ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७, १०, ११ त्रिष्टुप्। ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। २ स्वराडुष्णिक। निचृदनुष्टुप् ४, ६ अनुष्टुप्। ५ विराडनुष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १ ॥

भा०—जो यह (प्रथमाः) सबसे आदि वर्तमान, (होता) ऐश्वर्यों का दाता (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य, (अध्वरेषु) यज्ञों में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है। (अयम्) उसे (धातृभिः) ध्यान धारण के करने हारे पुरुष (इह) यहां, इस जगत् में (धायि) हृदय में धारण करते हैं और (यम्) जिसको (अप्नवानः) उत्तम कर्मकर्त्ता वा उत्तम रूप, गुण, पुत्र पौत्रादि युक्त (भृगवः) पापनाशक पुरुष (चित्रं) अद्भुत (विभ्वं) व्यापक

परमेश्वर को (विशेविशे) प्रत्येक प्रजा के हित के लिये (वनेषु) सभी भोग्य ऐश्वर्यों में (विरुरुचुः) अग्नि के समान प्रकट पाते और उसी के तेज का ध्यान करते और स्वयं भी (यम् अप्नवानः विरुरुचुः) जिसको प्राप्त होते हुए विविध प्रकार से शोभित होते हैं।

अग्ने॒ क॒दा त॑ आनु॒षग्भुव॑द्दे॒वस्य॒ चेत॑नम् ।
अधा॒ हि त्वा॑ जगृभ्रि॒रे मर्ता॑सो वि॒क्ष्वीड्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजःस्वरूप यह मनुष्य (कदा) कब (देवस्य ते) प्रकाशस्वरूप तेरे (आनुषक्) अनुकूल (भुवत्) होता है । (अध) और (त्वा हि) तुझे निश्चय रूप से (मर्त्तासः) मनुष्य लोग कब (विक्षु) प्रजाओं के बीच में (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (चेतनम्) सबको ज्ञानवान् करने वाले जीवनदाता रूप से (कदा जागृभ्रिरे) कब ग्रहण करेंगे ।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥ गीता अ० ७ ॥ ६ ॥

ऋ॒तावा॑नं॒ विचे॑तसं॒ पश्य॑न्तो॒ द्यामि॑व॒ स्तृभिः॑ ।
विश्वे॑षामध्व॒राणां॑ हस्क॒र्तारं॒ दमे॑दमे ॥ ३ ॥

भा०—उस परमेश्वर को विद्वान् लोग (ऋतावानं) सत्य ज्ञान और मूल कारण प्रकृति रूप 'ऋत' या अव्यक्त तत्व के स्वामी (विचेतसं) विविध ज्ञानों से युक्त (स्तृभिः द्यामिव) नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान, नाना लोकों का आश्रय वा व्यापक (पश्यन्तः) देखते हुए (विश्वेषाम्) समस्त (अध्वराणाम्) जीवों और यज्ञों के (दमे दमे) गृह २ में दीपक रूप से (जगृभ्रिरे) ज्ञान करते हैं ।

आ॒शुं दू॒तं वि॒वस्व॑तो॒ विश्वा॒ यश्च॑र्ष॒णीर॒भि ।
आ ज॑भ्रुः के॒तुमा॒यवो॒ भृग॑वाणं वि॒शेवि॑शे ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (विवस्वतः) सूर्य से लोग (आशुं) शीघ्रगामी, (दूतं) संतापजनक, (भृगवाणम्) भून देने वाले, (केतुम्) प्रकाश को (आजभ्रुः) प्राप्त करते हैं (यः) जो (विश्वा चर्षणीः अभि) सब देखने वालों को प्राप्त होता है और (विशेविशे) प्रत्येक प्रजा के सुख के लिये होता है वैसे ही (आयवः) ज्ञानी पुरुष (यः विश्वाः चर्षणीः अभि) समस्त ज्ञान-द्रष्टा पुरुषों में व्यापक है ऐसे (विवस्वतः) सूर्यवत् परमेश्वर, विद्वान् से (आशुं) व्यापक (दूतं) पापी को संतप्त करने वाले, (भृगवाणं) पापों को भून देने वाले (केतुं) ज्ञान प्रकाश को (आजभ्रुः) प्राप्त करें जो (विशेविशे) प्रत्येक प्रजाजन के लिये हितकारी हो।

तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः॥ ५॥ ६॥

भा०—विद्वान् लोग (तम् ईम् होतारं) उस दानशील (चिकित्वांसम्) रोग, दुःख, पीड़ा आदि दूर करने में समर्थ, (रण्वं) रमणीयस्वरूप, (पावकशोचिषं) अग्नि के समान तेजस्वी (यजिष्ठं) दानी, सत्संग योग्य, पुरुष की (सप्तधामभिः) सातों प्रकार के धारण सामर्थ्यों वा प्राणों सहित (निषेदिरे) उपासना करें। उसको गुरु वा स्वामी रूप से प्राप्त कर स्वयं भी (आनुषक्) उसके अनुकूल होकर उसके समीप विराजें। इति षष्ठो वर्गः॥

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम्।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम्॥ ६॥

भा०—(शश्वतीषु मातृषु) नित्य आकाशादि पदार्थों में और (वने) प्रकाश की किरणों वा काष्ठ में (आवीतं) व्याप्त (अश्रितम्) अन्यों द्वारा असेवित अग्नि या विद्युत् को जैसे प्राप्त करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग (शश्वतीषु मातृषु) माताओं में बालक के तुल्य जगत् निर्माण करने वाली व्यापक नित्य शक्तियों या प्रकृति के परमाणुओं में और (वने) वन में

अग्नि के तुल्य, वन अर्थात् तेज वा सेव्य इस दृश्य जड़ जगत् में (आवीतम्) सर्वत्र व्याप्त (अश्रितम्) और स्वयं अन्यों द्वारा न भोगने योग्य, (चित्रं) सर्वत्र चेतना देने वाले, चिन्मय, (सन्तं) सत्स्वरूप (गुहाहितम्) अन्तरिक्ष में सूर्य वा वायु के समान बुद्धि या गूढ़ भाव में स्थित, (सुवेदम्) उत्तम रीति से, सुखपूर्वक, भक्ति द्वारा जानने, मनन और प्राप्त करने योग्य (कूचिद् अर्थिनम्) कहीं भी अभ्यर्थनायोग्य परमेश्वर की (निषेदिरे) उपासना करते हैं ।

ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जिसको (देवाः) विद्वान् (ससस्य वियुता) स्वप्न या निद्रा के टूट जाने पर (सस्मिन् ऊधन्) और समस्त रात्रि के वीत जाने पर (ऋतस्य धामन्) सत्य ज्ञान के धारक तेज के रूप में (रणयन्त) रमण करते और उपदेश करते हैं वह (महान् अग्निः) ज्ञानवान् तेजस्वी (रात-हव्यः) अन्नादि पदार्थों का दाता (ऋतावा) मूल प्रकृति का स्वामी, (सदम् इत) सदा ही, (नमसा) वश करने वाले बल से ([illegible]) संसार को नाश न होने देकर उसके पालन के लिये (वेः) व्यापता है ।

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (वे: अध्वरस्य) तेजःप्रकाश से युक्त यज्ञ के (दूत्यानि विद्वान्) ताप से होने योग्य कर्मों को प्राप्त करता हुआ (दूतः) स्वयं तप्त अग्नि (उराणः) स्वल्प पदार्थ को भी बहुत व्यापक बनाता हुआ (दिवः आरोधनानि विदुस्तरः) आकाश के ऊपर २ के स्थानों तक में पहुंचा देता और (उभे रोदसी अन्ता संचिकित्वान्) आकाश और भूमि दोनों के मध्य के रोगों को भी भली प्रकार दूर करने वाला होता है । वैसे ही विद्वान् राजा (वेः) व्यापक (अध्वरस्य) न विनाश होने योग्य इस राष्ट्र के

(दूत्यानि) दूतों द्वारा करने योग्य कार्यों को (विद्वान्) जानता हुआ और (उभे रोदसी अन्तः) मित्र और अरि दोनों पक्षों के बीच (सं चिकित्वान्) भली प्रकार विवेक करता हुआ (प्रदिवः) सदा ही (उराणः) बड़े कार्य करता हुआ (विदुस् तरः) अधिक ज्ञानवान् होकर (दिवः आरोधनानि) भूमि के वश करने योग्य स्थानों को (दूतः) शत्रुसंतापक होकर (ईयसे) प्राप्त करे ।

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (रुशतः) अग्नि या विद्युत् का (एम) मार्ग (कृष्णं) कोयले के रूप में काला, वा आकर्षक होता है, (पुरः भाः) आगे दीप्त होता है (वपुषाम्) देहयुक्त पदार्थों में उसका (एकम् अर्चिः) एक विशेष तेज होता है । उसको (अप्रवीता) बिन रगड़ी अरणि या दण्डी गर्भ में गुप्त रूप से धारण करती है । (जातः) वह प्रकट हो कर (दूतः) तापयुक्त हो जाता है वैसे ही हे राजन्! (रुशतः) देदीप्यमान (ते) तेरा (कृष्ण) शत्रुओं को काटने वाला वा प्रजाओं के चित्तों का आकर्षण करने वाला, (एम) मार्ग या प्रयाण हो, (पुरः) आगे (भाः) कान्ति (वपुषाम्) देहधारी जवानों के बीच (इदम्) यह (एकम्) अद्वितीय (चरिष्णु) चलता फिरता (अर्चिः) पूज्य हो । (यत्) जिस तुझको (अप्रवीता) अन्यों से अभुक्त प्रजा (गर्भं ह) गर्भ को माता के समान (गर्भं) स्वीकारने योग्य वा प्रजा के ऐश्वर्यों को ग्रहण करने वाले तुझको (दधते) धारण करती है और तू (जातः) प्रकट रोकर (सद्यः) शीघ्र ही (दूतः भवसि इत् उ) सद्योजात बालक के समान पीड़ा जनक, एवं शत्रुओं को संतापजनक होता है ।

सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥१०॥

भा०—जैसे (अस्य शोचिः) इस अग्नि के लपट के अनुकूल (वातः

अनुवाति) वायु चलता है और (सद्यः जातस्य ओजः ददृशानं भवति) उत्पन्न होते ही उसका तेज दिखाई देता है वह (अतसेषु तिग्मां जिह्वां वृणक्ति) काष्ठों के बीच तीक्ष्ण लपट को पहुंचाता है और (अन्ना चित् जम्भैः स्थिरा वि दयते) दांतों से अन्न के समान बड़े वृक्षों को भी विनष्ट करती है वैसे ही (अस्य) इस तेजस्वी राजा के (शोचिः) तेज को (वातः) वायु के समान वीर जन (यत्) जब (अनुवाति) अनुगमन करता है और (सद्यः जातस्य) तुरन्त राजा रूप से प्रकट होते ही उसका (ओजः) पराक्रम (ददृशानम्) दीखने लगता है। वह (अतसेषु) वेग से जाने वाले भृत्यों या सैनिकों के बीच में (तिग्मां) तीक्ष्ण (जिह्वां) वाणी को (वृणक्ति) प्रदान करता है, (जम्भैः अन्ना चित्) दाढ़ों से अन्नों के समान, (जम्भैः) अपने हिंसाकारी शस्त्रास्त्र साधनों से (स्थिरा) स्थिर शत्रुओं को भी (अन्ना चित्) भोज्य अन्नों के समान (वि दयते) खण्डित करता है।

तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥७॥

भा०—जैसे (अग्निः) विद्युत् (तृषुणा) तीव्र वेग से (अन्ना तृषु ववक्षे) अन्न आदि पदार्थों को शीघ्र ले जाता है और अग्नि और तीव्र ताप से चरु आदि को छिन्न भिन्न कर शीघ्र ही दूर २ तक पहुंचा देता है और (दूतं कृणुते) ताप उत्पन्न करता, (वातस्य मेळि सचते) वायु के साथ संगति करता है, (अर्वा आशुं न वाजयते) अश्व के समान वेगवान् होकर वेग से जाने वाले रथ को गति देता है। वैसे ही (अग्निः) अग्रणी पुरुष (यत्) जब (तृषुणा) शीघ्रगामी साधनों से (अन्ना) राष्ट्र के उपभोग योग्य पदार्थों को (तृषुं) शीघ्र २ (ववक्ष) एक से दूसरे स्थान को पहुंचाने का प्रबन्ध करे। वह (यह्वः) महान् होकर (तृषुं दूतं कृणुते) वेग से जाने वाला दूत बनावे। (वातस्य) वायुवत् शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले सैन्यबल की (मेळिं) संगति को (सचते) प्राप्त करे और (नि जूर्वन्) वेग से जाता हुआ

(अर्वा आशुं न) रथ को अश्व के समान (आशुं वाजयते) वेगवान् सैन्य को संग्राम से लगावे। इति सप्तमो वर्गः ॥

[८] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६ निचृद्गायत्री। २, ३, ७ गायत्री। ८ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् ।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वो) आप लोगों के बीच (विश्ववेदसं) सब में विद्यमान (हव्यवाहम्) प्राप्य पदार्थों को प्राप्त करने और उन तक पहुंचाने में समर्थ (यजिष्ठं) संग कराने वाले (दूतं) दूत के समान दूर संदेश पहुँचाने वाले (अमर्त्यम्) अविनाशी अग्नि का (गिरा) वाणी द्वारा उपदेश कर और (ऋञ्जसे) हे विद्वन् ! तू उसका भली प्रकार प्रयोग कर।

स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

भा०—(सः हि) वह (महान्) महान् है। वह (वसुधितिं वेद) ऐश्वर्य का धारण करना, कराना जाने, वह (दिवः) ज्ञान और प्रकाश का (आरोधनं) सञ्चय करना जाने। (सः) वह (देवान्) किरणों के समान उत्तम पदार्थों (इह) इस जगत् में (आ वक्षति) धारण करे।

स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे ।
दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (देवः) विद्वान्, (देवान्) पृथिव्यादि पदार्थों को (आनमं) अपने वश करना (वेद) जाने, वह (देवान् आनमं वेद) ज्ञानदाता विद्वानों को नमस्कार करना जाने। वह (ऋतायते) धन आदि के इच्छुक पुरुष के (दमे) घर में (प्रियाणि चित्) प्रिय वचन, वा पदार्थ और (वसु) ऐश्वर्य (दाति) प्रदान करे।

स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते ।
विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह अग्नि के तुल्य (होता) सबको अपने में ले लेने वाला भोक्ता हो । (सः इत् उ) वह विद्वान् (अन्तः) राष्ट्र में (दूत्यं) दूत के योग्य कर्म को (चिकित्वान्) जानता हुआ और (दिवः) प्रकाश, ज्ञान और भूमि के (अरोधनम्) वश, सञ्चय और वृद्धि करना (विद्वान्) जानता हुआ (इयते) प्राप्त हो ।

ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः ।
य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो (हव्यदातिभिः) अन्नादि देने योग्य दानों के द्वारा (अग्नये) विद्वान् पुरुष को (ददाशुः) दान देते हैं और (ये) जो (ईम्) उसको (पुष्यन्तः) पुष्ट करते हुए (इन्धते) प्रदीप्त करते, विद्यादान में समर्थ करते हैं हम लोग (ते स्याम) वे ही अर्थात् वैसे ही धनी और ज्ञानी हों ।

ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे ।
ये अग्ना दधिरे दुवः ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (अग्ना) अग्नि या विद्युत् में (दुवः) नाना परिचर्या, प्रयोग (दधिरे) साध लेते हैं (ते राया) वे धन से युक्त होते हैं और (ते) वे (सुवीर्यैः) उत्तम वीर्यों से युक्त होकर (ससवांसः) सुख से शयन करते हुए वा नाना ऐश्वर्य भोगते हुए (विशृण्विरे) विविध ज्ञानों का श्रवण करते हैं ।

अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः ।
अस्मे वाजास ईरताम् ॥ ७ ॥

भा०—(दिवेदिवे) दिनों दिन (अस्मे) हमें (पुरुस्पृहः) बहुतों से

अभिलाषा करने योग्य (रायः) नाना ऐश्वर्य (सं चरन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त हों और (अस्मे) हमें (वाजासः) नाना बल और विज्ञान (ईरताम्) प्राप्त हों।

स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम्।
अति क्षिप्रेव विध्यति ॥ ८ ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह (विप्रः) विद्वान् (चर्षणीनाम्) ज्ञान, ऐश्वर्य से प्रकाशित करने वाले और (मानुषाणाम्) मननशील मनुष्यों के दुःखों को (शवसा) अपने बल से (क्षिप्रा इव) वेग से जाने वाले बाणों के तुल्य (अति विध्यतु) प्रहार करे और उनको दूर करे। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[९] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री । २, ६ विराड्गायत्री । ५ त्रिपाद गायत्री । ७, ८ निचृद्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम्।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे राजन्! (ईं) इस (देवयुं) उत्तम गुणों, विद्वानों और ज्ञान धनादि के दानशील, गुरु और प्रभु को चाहने वाले (जनम्) पुरुष को (मृळ) सुखी कर। तू (महान् असि) गुणों से महान् और पूजा करने योग्य है। तू (बर्हिः) उत्तम आसन और प्रजाजन पर (आ सदम्) प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये (इयेथ) प्राप्त हो।

स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः।
दूतो विश्वेषां भुवत् ॥ २ ॥

भा०—जो (विक्षु) प्रजाओं में (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न (दूतः) शत्रुओं का तापक हो और (विश्वेषाम्) सबके बीच (प्रावीः) उत्तम रक्षक और विद्यावान् (भुवत्) हो। (सः) वह पुरुष (मानुषीषु)

प्रजाओं के बीच (दूळभ- = दुर्-दभः) दुर्लभ है वा शत्रुओं द्वारा कठिनता से मारने योग्य, बलवान् हो ।

स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु ।

उत पोता नि षीदति ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् (होता) उत्तम ज्ञानों का दाता, (मन्द्रः) आनन्द देने हारा, (उत पोता) और पवित्र करने वाला होकर (दिविष्टिषु) यज्ञों और नाना काम्य प्रयोगों के अवसर पर (सद्म) अन्यों द्वारा अपने गृह पर (परि णीयते) आदरपूर्वक ले जाया जावे ।

उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे ।

उत ब्रह्मा नि षीदति ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (दमे) गृह में (अध्वरे) यज्ञ के समय (ग्नाः) स्त्रियें (उतो गृहपतिः) और गृह का स्वामी, (उत) और (ब्रह्मा) विद्वान् पुरुष (निषीदति) प्रधान आसन पर विराजे ।

वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् ।

हव्या च मानुषाणाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! नायक ! तू (उपवक्ता) सबका उपदेष्टा है । तू (अध्वरीयताम्) यज्ञ और अविनश्वर राज्यपालनादि की कामना करने वाले (जनानाम्) मनुष्यों के और (मानुषाणाम्) मननशील विद्वानों के योग्य (हव्या) उत्तम अन्नों और ज्ञानों की (वेषि) कामना कर ।

वेषीद्वस्य दूत्यं यस्य जुजोषो अध्वरम् ।

हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥ ६ ॥

भा०—जैसे अग्नि (हव्यं वोढवे यस्य अध्वरं जुजोषः तस्य दूत्यं वेषि) हवि ग्रहण करने के लिये जिसके यज्ञ को प्राप्त होता है उसके यज्ञ में तापजनक आग्नेय रूप को प्राप्त होता है वैसे ही (अग्ने) नायक, विद्वन् !

तू (यस्य) जिसके (अध्वरं) यज्ञ और राज्यपालनादि कार्य को (जुजोषः) प्रेम से स्वीकार करे उसी (मर्तस्य) मनुष्य के (हव्यं वोळ्हवे) ग्रहणयोग्य कर, अन्नादि को प्राप्त करने के लिये (अस्य) उसके प्रति (दूत्यं) उत्तम सन्देह-हर के समान ज्ञानदाता के कार्य को (वेषि इव उ) प्राप्त हो ।

अस्माकं जोष्यध्वरम॒स्माकं य॒ज्ञम॑ङ्गिरः ।
अस्माकं शृणुधी हवम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (अंगिरः) ज्ञानवन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (अध्वरम्) यज्ञ-कार्य को (जोषि) स्वीकार कर । तू (अस्माकं यज्ञं) हमारे यज्ञ, दान, सत्संग, प्रेम और सत्कार को (जोषि) स्वीकार कर और (अस्माकम्) हमारे वचनों का (शृणुधि) श्रवण कर ।

परि॑ ते दू॒ळभो॒ रथो॒ऽस्माँ अ॑श्नोतु वि॒श्वतः॑ ।
येन॒ रक्ष॑सि दा॒शुषः॑ ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (ते) तेरा (दूळभः) न नाश होने वाला, दृढ़ (रथः) रथ (अस्मान्) हमें (विश्वतः) सब तरफ से (परि अश्नोतु) प्राप्त हो (येन) जिससे तू (दाशुषः) दानशील प्रजा पुरुषों की (रक्षसि) रक्षा करता है । इति नवमो वर्गः ॥

[१०] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २, ३, ४, ७ भुरिग्गायत्री । ५, ८ स्वराडुष्णिक् । ६ विराडुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने॒ तम॒द्याश्वं॒ न स्तोमैः॒ क्रतुं॒ न भ॒द्रं हृ॑दि॒स्पृश॑म् ।
ऋ॒ध्यामा॑ त॒ ओहैः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! विद्वन् ! आचार्य ! हे विनयशील शिष्य ! (ते ओहैः) तुझे प्राप्त होने वाले, ज्ञान प्राप्त करने वाले तर्कों, (स्तोमैः) उत्तम वचनों, वेदमन्त्रों से (तं) उस तुझको (अश्वं न) वहन करने के समर्थ उपकरणों से अश्व के तुल्य (ऋध्याम) समृद्ध करें । (हृदिस्पृशम्)

हृदय तक को छूने वाले, (भद्रं) कल्याणकारी, (क्रतुं न) यज्ञ वा बुद्धि के तुल्य हृदय को प्रिय, तुझको भी हम (स्तोमैः) उत्तम वचनों और धन समूहों से (ऋध्याम) समृद्ध करें।

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (साधोः) उत्तम कार्य-साधन में समर्थ (क्रतोः) बुद्धि और (भद्रस्य) कल्याणकारी (दक्षस्य) बल के (अध हि) और (बृहतः) भारी (ऋतस्य) न्याय और धनैश्वर्य का (रथीः) महारथी के समान स्वामी (बभूथ) हो।

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! विद्वन्! तू (एभिः) इन (अर्कैः) सत्कार के पात्र पुरुषों सहित (नः) हमारा रक्षक (भव) हो और (स्वः न ज्योतिः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाशक होकर (नः अर्वाङ् भव) हमारे बीच हो और तू (सुमनाः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (विश्वेभिः अनीकैः) समस्त बलों सहित हमें प्राप्त हो।

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हम (ते) तेरे प्रति (आभिः) इन नाना (गीर्भिः) वचनों से (गृणतः) तेरे प्रति उपदेश करते हुए (दाशेम) राज्य-कर आदि प्रदान करें और (ते शुष्माः) शत्रु शोषण करने वाले सैन्य बल, (दिवः न) मेघों के तुल्य (प्र स्तनयन्ति) खूब गर्जते हैं।

तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५ ॥

भा०—(अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! सूर्य और अग्नि के (रुक्मः न)

तेज के समान (अह्नः चित् अक्तोः चित्) दिन और रात्रि में भी (रुक्मः) तेरा ऐश्वर्यमय तेज और (स्वादिष्ठा) अति अधिक आनन्द देने वाली (संदृष्टिः) सम्यक् दृष्टि (उपाके) सबके समीप (श्रिये) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (रोचते) प्रकाशित हो।

घृतं न पूतं तनूरेरेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६ ॥

भा०—हे (स्वधावः) अपने बल से राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन्! (ते तनूः) तेरा देह और विस्तृत शक्ति, (घृतं न पूतं) जल के तुल्य पवित्र, (शुचि) कान्तिमान्, (हिरण्यम्) स्वर्ण के समान सबको हितकारी, रमणीय है। (तत्) वह (ते) तेरा देह, (रुक्मः) सुवर्ण और सूर्य के प्रकाश के तुल्य (रोचत) प्रकाशित हो।

कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥ ७ ॥

भा०—हे (ऋतावः) सत्य धनैश्वर्य के स्वामिन! तू (इत्था) इस प्रकार से, सचमुच, (यजमानात् मर्तात्) मैत्री, सत्सङ्ग और कर आदि के दाता प्रजाजन से (कृतं) किये गये (द्वेषः) द्वेष को भी (सनेमि) सबको दबाने वाले बल सहित (इनोषि स्म) दूर करते रहो। (चित् ह) वैसे ही हम भी करें।

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥ १० ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! प्रभो! (नः) हमारी (सख्या) मित्रताएं और (भ्रात्रा) भाईचारे के कार्य (युष्मे देवेषु) तुम व्यवहारकुशल पुरुषों और विद्वानों के बीच (शिवाः सन्तु) सदा शुभ हों, और (सा) वह उत्तम नीति (सस्मिन्) समस्त (उधन्) धन धान्य सम्पन्न

(सदने) गृह वा राज्य में (नः) हमें (नाभिः) नाभि के तुल्य बांधने वाली हो। इति दशमो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[११] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ स्वराड्बृहती। ४ भुरिक् पंक्तिः। षडृचं सूक्तम् ॥

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! हे (सहसिन्) बलवन्! (ते) तेरा (भद्रं) कल्याणकारी (रुशत्) कान्तियुक्त (अनीकम्) मुख और तेज (उपाके) समीप में (सूर्यस्य रुशत् अनीकम् इव) सूर्य के चमचमाते तेज के समान (नक्तया चित्) रात्रि के समय में भी (दृशे) सत्यासत्य दर्शाने के लिये (आ रोचते) प्रकाशित हो और सबको (ददृशे) दीखे। वह तेरा तेज (अरूक्षितम् अन्नम्) स्निग्ध घृतादि से युक्त अन्न के तुल्य (दृशे) देखने और (रूपे) निरूपण करने में भी (आ रोचते) सब प्रकार से चमके।

वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥ २ ॥

भा०—हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध! (अग्ने) हे तेज से युक्त! विद्वन्! शिष्य! तू (स्तवानः) स्तुति किया जाता हुआ (गृणते) उपदेश करने वाले विद्वान् के लिये (मनीषां) बुद्धि (खं) इन्द्रिय, कर्ण आदि के छिद्र को (वेपसा) उत्तम कर्म सहित (वि षाहि) खोल, उसके वचन ध्यान पूर्वक सुन और हे (शुक्र) कान्तिमन्! वीर्यवन्! (यत्) जब तू (विश्वेभि देवैः) समस्त विद्या धनादि के अभिलाषियों सहित (वावनः) जो कुछ प्राप्त करे, (नः) हमें भी (तत्) वह (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान वा उत्तम धन (सुमहः) उत्तम महान् राशि में (नः रास्व) दे।

त्वद॑ग्ने॒ काव्या॒ त्वन्म॑नी॒षास्त्वदु॒क्था जा॑यन्ते॒ राध्या॑नि ।
त्वदे॑ति॒ द्रवि॑णं वी॒रपे॑शा इ॒त्थाधि॑ये दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! प्रभो ! (इत्था धिये) इस प्रकार की सत्य बुद्धि वाले (दाशुषे) दानशील (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (काव्या) विद्वानों से बनाये जाने योग्य उत्तम ज्ञान (त्वत्) तुझसे ही उत्पन्न होते हैं। (मनीषाः त्वत्) समस्त उत्तम बुद्धियां तुझसे प्रकट होती हैं। (राध्यानि) कार्यसाधक और आराध्य उत्तम वचन (त्वत् जायन्ते) तुझसे प्रादुर्भूत होते हैं (वीरपेशाः) वीरों का स्वरूप या वीरों के योग्य सुवर्ण आदि धन और (द्रविणम्) ऐश्वर्य भी सब (त्वत्) तुझ से ही (एति) प्राप्त होता है।

त्वद्वा॒जी वा॑जम्भ॒रो विहा॑या अभिष्टि॒कृज्जा॑यते स॒त्यशु॑ष्मः ।
त्वद्र॒यिर्दे॒वजू॑तो मयो॒भुस्त्वदा॒शुर्जू॑जु॒वाँ अ॑ग्ने॒ अर्वा॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! विद्वन् ! (त्वत्) तुझसे ही (वाजी) बलवान् और वेगवान् (वाजम्भरः) अन्न शुद्ध ऐश्वर्य और ज्ञान धारण करने में समर्थ (विहायाः) वेग से जाने वाला (अभिष्टिकृत्) यज्ञ, मैत्री वा दान करने वाला (सत्यशुष्मः) सत्यबल से युक्त पुरुष (जायते) उत्पन्न होता है। (त्वत्) तुझ से ही (देवजूतः) विद्वानों से प्रेरित होने वाला (मयोभुः) सुख उत्पन्न करने वाला (रयिः) ऐश्वर्य वा (आशुः) वेगवान् (जुजुवान) वेग से जाने वाला (अर्वा) अश्व उसके तुल्य वेगवान् यन्त्र रथ आदि उत्पन्न होता है।

त्वाम॑ग्ने प्रथ॒मं दे॑व॒यन्तो॑ दे॒वं मर्ता॑ अमृत म॒न्द्रजि॑ह्वम् ।
द्वे॒षो॒युत॒मा वि॑वासन्ति धी॒भिर्दमू॑नसं गृ॒हप॑तिम॒मूर॑म् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमात्मन् ! हे विद्वन् ! हे (अमृत) अविनाशिन् ! (देवयन्तः) गुणों की कामना करते हुए (मर्त्ताः) मनुष्य (प्रथमं) सबसे प्रथम विद्यमान, (मन्द्रजिह्वं) मधुरवाणी बोलने वाले (द्वेषः युतम्) द्वेष-

भावों से रहित, (दमूनसं) मन और इन्द्रियों को दमन करने वाले, (गृहपतिम्) घर के स्वामी (अमूरं) मूढ़ता रहित, (त्वाम्) तुझको (धीभिः) उत्तम ज्ञानों, स्तुतिवाणियों से (आविवासन्ति) साक्षात् स्तुति करते हैं।

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति॥६॥११॥

भा०—हे (सहसः सूनो) उत्तम पिता के पुत्र! विद्वन्! हे (सहसः सूनो) शत्रु पराजयकारी बल के सञ्चालक सेनापते! हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (देव) सूर्य के समान प्रकाशक! (दोषा) रात्रि में अग्नि वा दीपक के तुल्य तेजस्वी होकर (यं चित्) जिसको भी तू (स्वस्ति) कल्याण के लिये (आसचसे) प्राप्त होता है तू उसके लिये (शिवः) कल्याणकारी होता है। इसलिये तू (अस्मत्) हम से भी (अमतिम्) मति रहित अज्ञानी, अज्ञान वा भूख प्यास की पीड़ा जिससे प्रेरित होकर मनुष्य पाप करता है, उसे (आरे) दूर कर। (अंहः आरे) हमारे पाप दूर कर। (विश्वां दुर्मतिं) समस्त प्रकार की दुष्ट बुद्धि को (आरे) दूर कर (यत्) क्योंकि तू (निपासि) सबको सब प्रकार से बचाता है। इत्येकादशो वर्गः॥

[१२] वामदेव ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३, ४ भुरिक् पंक्तिः। ६ पंक्तिः॥ षड्‌चं सूक्तम्॥

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन्।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान्॥१॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! (यतस्रुक्) स्रुच पात्र लिये यज्ञकर्त्ता जैसे अग्नि को दीप्त करता है वैसे ही जो (यतस्रुक्) बाह्य विषयों की ओर बहने वाली इन्द्रियों को वश करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष (त्वाम्) तुझको (इनधते) प्रकाशित करता, तुझे स्वामी जान, तेरी सेवा करता है और (सस्मिन्) सब (अहनि) दिनों (ते) तेरे लिये (त्रिः) तीन वार (अन्नं) अन्न (कृणवत्) करता है (सः) वह (सुद्युम्नैः)

उत्तम यशों, धनों से (असि अस्तु) युक्त हो, हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थों को जानने हारे ! वह (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (तव) तेरे (क्रत्वा) सामर्थ्य और ज्ञान से (प्रसक्षत्) युक्त हो ।

इध्मं यस्ते॑ जभर॑च्छश्रमा॒णो म॒हो अ॑ग्ने॒ अनी॑क॒मा स॑प॒र्यन् ।
स इ॑धा॒नः प्रति॑ दो॒षामु॒षासं॒ पुष्य॑न्र॒यिं स॑चते॒ घ्नन्न॒मित्रा॑न् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नितुल्य तेजस्विन् ! (यः) जो पुरुष (शश्रमाणः) खूब श्रम करता हुआ (इध्मं जभरत्) अग्निहोत्र के निमित्त यज्ञ काष्ठ लाने के समान (ते) तेरे लिये (इध्म) देदीप्यमान (अनीकम्) तेज वा सैन्य की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (जभरत्) उसे प्राप्त हो, (सः) वह (प्रति दोषाम् प्रति उषासम्) प्रति सायं, प्रति प्रातः (इधानः) प्रदीप्त करता हुआ (पुष्यन्) स्वयं पुष्ट होकर (अमित्रान्) शत्रुओं को नाश करता हुआ (रयिं सचते) ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।

अ॒ग्निरी॑शे बृह॒तः क्ष॒त्रिय॑स्या॒ग्निर्वाज॑स्य पर॒मस्य॑ रा॒यः ।
दधा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते यवि॑ष्ठो॒ व्या॑नु॒षङ्मर्त्या॑य स्व॒धावा॑न् ॥ ३ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नेता ही (बृहतः) बड़े भारी (क्षत्रियस्य) क्षात्र-धर्म युक्त बल का (ईशे) स्वामी है । (अग्निः) वह अग्रणी पुरुष, (परमस्य) उत्कृष्ट (वाजस्य) बल और (रायः) ऐश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो । वह (यविष्ठः) युवा, बलवान् पुरुष (स्वधावान्) राष्ट्र धारण की शक्ति से युक्त होकर (आनुषक्) सबके अनुकूल होकर, (विधते) सेवा करने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के हितार्थ (रत्नं) रमणीय पदार्थ, धन आदि (वि दधाति) देता है ।

यच्चि॒द्धि ते॑ पुरुष॒त्रा य॑विष्ठा॒चित्ति॑भिश्चकृ॒मा कच्चि॒दागः॑ ।
कृ॒धी ष्व॑१॒॑स्माँ अदि॑ते॒रना॑गा॒न्व्येनां॑सि शिश्रथो॒ विष्व॑गग्ने ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (यविष्ठ) युवा या पापों को दूर करने

हारे ! हम लोग (यत् चित् हि) जो कुछ भी (कत् चित्) और कभी (शचित्तिभिः) अपने अज्ञानों या मूर्खताओं से (ते) तेरे प्रति (पुरुषत्रा) मनुष्यों के बीच (आगः) अपराध (चकृम) करें तू (अदितेः) अपने अखण्ड शासन और न झुकने वाली व्यवस्था से (अस्मान्) हमें (अनागान्) अपराधों से रहित (कृधि) कर और (एनांसि) अपराधों को (विश्वक्) सर्व प्रकार से (वि शिश्रथः) दूर कर।

म॒हश्चि॑दग्न॒ एन॑सो अ॒भीक॑ ऊ॒र्वाद्दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम्।
मा ते॒ सखा॑यः॒ सद॒मिद्रि॑षाम॒ यच्छा॑ तो॒काय॒ तन॑याय॒ शं योः ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हम (देवानाम्) विद्वानों और (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (अभीके) समीप (महः चित् ऊर्वात् एनसः) भारी, लम्बे चौड़े पाप से पृथक् रहें। हम लोग (ते) तेरे (सखायः) मित्र होकर (सदम् इत्) सदा ही (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों। तू हमारे (तोकाय तनयाय) पुत्र और पौत्रों को भी (शं योः) सुख (यच्छ) दे।

यथा॑ ह॒ त्यद्व॑सवो गौ॒र्यं॑ चित्प॒दि षि॒ताममु॑ञ्चता यजत्राः।
ए॒वो ष्व१॒॑स्मन्मु॑ञ्चता॒ व्यंहः॒ प्र ता॑र्यग्ने प्रत॒रं न॒ आयुः॑ ॥६॥१२॥

भा०—हे (यजत्राः) ज्ञान, दान सत्संग करने हारे (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनो ! (यथा ह चित्) जैसे भी हो सके (पदि सितां गौर्यम्) पैरों में बंधी गौ के तुल्य (पदि) ज्ञातव्य विषय में (सिताम्) शब्दार्थ सम्बन्ध से बंधी हुई (त्यद्) उस उत्तम (गौर्यं) वाणी को (अमुञ्चत) अन्यों को देते हो (एव उ) वैसे ही (अस्मत्) हमसे (अंहः) पाप को (सु वि मुञ्चत) उत्तम रीति से दूर करो। (नः) हमारी (प्रतरं) संसार से पार उतारने वाली सुदीर्घ (आयुः) आयु को (प्रतारि) बढ़ाओ। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१३] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

प्रत्य॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑मख्यद्वि॒भाती॒नां सु॒मना॑ रत्न॒धेय॑म् ।
या॒तम॑श्विना सु॒कृतो॑ दुरो॒णमुत्सूर्यो॒ ज्योति॑षा दे॒व ए॑ति ॥ १ ॥

भा०—जैसे (अग्निः) सर्व प्रकाशक सूर्य (विभातीनां) विशेष रूप से चमकने वाली (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के (रत्नधेयम्) मनोहर (अग्रम्) मुख-भाग को (प्रति अख्यत्) प्रकाशित करता है वैसे ही (सुमनाः) ज्ञानवान् (अग्निः) राजा और विद्वान् (विभातीनां) विविध गुणों से और शस्त्रास्त्र तेजों से चमकने वाली (उषसाम्) शत्रुओं को जलाने वाली सेनाओं के (रत्नधेयम्) पुरुष-रत्नों से धारण योग्य (अग्रम्) प्रमुख भाग को (प्रति अख्यत्) प्रत्येक समय देखें। हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (सुकृतः) उत्तम आचरण करने वाले पुरुष के (दुरोणम्) गृह को (यातम्) जाओ । (सूर्यः) सूर्य के तुल्य (देवः) ज्ञानशील विद्वान् पुरुष (ज्योतिषा सह) अपने ज्ञान ज्योति के साथ (उत् एति) उदित होता है ।

ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रेद्द्र॒प्सं दवि॑ध्वद्गवि॒षो न सत्वा॑ ।
अनु॑ व्र॒तं वरु॑णो यन्ति मि॒त्रो यत्सूर्यं॑ दि॒व्या॑ रो॒हय॑न्ति ॥ २ ॥

भा०—(गविषः सत्वा न) जैसे गौ की कामना वाला वृषभ (द्रप्सं दविध्वत्) सींगों, पैरों से भूमि की धूलि को धुनता, उछालता है और जैसे (गविषः सत्वा) गौ अर्थात् पृथिवी की यात्रा करने वाला बलवान् पुरुष (द्रप्सं) आगे भूमि-भाग, धूलि को (दविध्वत्) लताड़ता, उड़ाता है वैसे ही (सत्वा) वीर्यवान् वीर पुरुष (गविषः) भूमि राज्य की आकांक्षा करता हुआ (द्रप्सं) भूगोल को (दविध्वत्) कंपावे वा (द्रप्सं) द्रुत गति से जाने वाले सेना-बल को (दविध्वत्) चालित करे । जैसे सूर्य उदय होने पर जल वा वायु भी अनुकूल कर्म करते हैं वैसे ही (सविता देवः) सूर्य के समान सेना का सञ्चालक विजीगीषु राजा (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर (भानुं) तेज को (अश्रेत्) धारण करे । (यत्) जब (सूर्यं) सूर्य के

समान तेजस्वी पुरुष को (दिवि) आकाश तुल्य विस्तृत भूमि के ऊपर (आ रोहयन्ति) विद्वान् लोग उत्तम सिंहासन पर स्थापित करते हैं तब (वरुणः) श्रेष्ठ प्रजाजन और (मित्रः) स्नेही भी उसके (अनु) अनुकूल होकर (व्रतं यन्ति) कर्म का आचरण करते हैं ।

यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (ध्रुवक्षेमाः) स्थिर स्थिति वाले नित्य कारण तत्व स्वयं (अर्थम्) इस गतिशील संसार को (अनवस्यन्तः) प्रकाशित करने में असमर्थ रहते हुए भी (तमसे विपृचे) अन्धकार को दूर करने के लिये (सीम् अकृण्वन्) इस सूर्य को निर्माण करते हैं वैसे ही (अर्थम्) द्रव्यैश्वर्य और राष्ट्र को (अनवस्यन्तः) स्वयं रक्षा करने में असमर्थ (ध्रुवक्षेमाः) राष्ट्र में स्थिर रूप से निवास करने वाले प्रजागण (तमसे) प्रजा को दुःख देने वाले शत्रु के (विपृचे) दूर करने के लिये (विपृचे तमसे) विरोध करने वाले शत्रु के निवारण के लिये (यं) जिस तेजस्वी पुरुष को (सीम्) सर्व प्रकार शत्रु का अन्तकारी (अकृण्वन्) बना देते हैं (तं) उस (सूर्यं) सूर्य के समान तेजस्वी और (विश्वस्य जगतः) समस्त जगत् के (स्पशं) द्रष्टा पुरुष को (सप्त यह्वीः हरितः) सात महती दिशाओं, सात अन्धकार नाशक किरणों के तुल्य (यह्वीः) बड़ी वा पुत्र के तुल्य (सप्त) सातों प्रकार की (हरितः) प्रजाएं (वहन्ति) धारण करती हैं । चार आश्रम और तीन वर्ण वा चारों वर्ण तीन आश्रम, मिलकर ७ प्रकृति हैं । शूद्र सेवक स्वामी के साथ ही ग्रहण हो जाता है पृथक् नहीं । ब्रह्मचर्य वा संन्यास दोनों में से किसी एक को संगरहित होने से ग्रहण न करने से तीन आश्रम हो जावेंगे अथवा (सप्त) सर्पणशील, व्यापक विस्तृत प्रजागण सप्त हरित् हैं ।

वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।

दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ ४ ॥

भा०—(वहिष्ठेभिः) जलादि का वहन करने वाले किरणों से (तन्तुम्) विस्तृत (असितं) श्यामवर्ण के (वस्म) आच्छादन करने वाले अन्धकार को (विहरन्) दूर करता हुआ सूर्य गति करता है वैसे ही हे (देव) राजन् ! तू (वहिष्ठेभिः) दूर तक ले जाने वाले रथ आदि साधनों से (तन्तुम्) प्रजा के समान (वस्म) बसने योग्य (असितं) अप्रबद्ध, राष्ट्र को (अवव्ययन्) अधीन करता हुआ, (विहरन्) विचरता हुआ (यासि) प्रयाण कर । (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष में जैसे (दविध्वतः) अन्धकार का नाश करने वाले (सूर्यस्य रश्मयः) सूर्य के किरण (चर्म इव तमः) देह को मृग-चर्म के समान आच्छादन करने वाले अन्धकार को (अव अधुः) नष्ट कर देते हैं वैसे ही (दविध्वतः) शत्रु को कंपा देने वाले (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के (रश्मयः) रश्मिवत् प्रबन्धकर्त्ता लोग (अप्सु अन्तः) आप्त प्रजाओं के बीच (चर्म इव तमः) चर्म के समान दुःखदायी शत्रु वा अविद्या अन्धकार को (अव अधुः) दबावें ।

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—बतलाओ कि (अनायतः) चारों तरफ कहीं से भी न बंधा हुआ, (अनिबद्धः) और न किसी एक स्थान पर ही कहीं बंधा हुआ, (उत्तानः) सबसे ऊपर रहता हुआ (अयम्) यह सूर्य (कथा न्यङ् न अवपद्यते) क्यों नहीं नीचे गिरता ? (कया) किस (स्वधया) अपनी धारक शक्ति से (याति) गति करता है और उसको (कः ददर्श) कौन देखता है। यह (दिवः) प्रकाश का थामने वाला (समृतः) सर्वत्र व्याप्त होकर (नाकं पाति) आकाशस्थ सबको पालन करता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१४] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्लिङ्गोक्ता वा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । ३ स्वराट् पंक्तिः । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रत्य॒ग्निरु॒षसो॑ जा॒तवे॑दा॒ अख्य॑द्दे॒वो रोच॑माना॒ महो॑भिः ।
आ ना॑सत्योरुगा॒या रथे॑ने॒मं य॒ज्ञमुप॑ नो यात॒मच्छ॑ ॥ १ ॥

भा०—जैसे (अग्निः) तेज से युक्त सूर्य (देवः) प्रकाशमान होकर (महोभिः) तेजों से (रोचमानाः) प्रकाशित होने वाली (उषसः) प्रभात वेलाओं को (प्रति अख्यत्) प्रकाशित करता है वैसे ही (जातवेदाः) ऐश्वर्यों का श्वामी (अग्निः) नायक (देवः) दानशील, (महोभिः) बड़ी २ धन सम्पदाओं से (रोचमानाः) प्रकाशित होने वाली (उषसः) स्वामी की चाहना करने वाली सेनाओं, प्रजाओं को, स्त्री को पति के तुल्य (प्रति अख्यत्) प्रेमपूर्वक देखे और (नासत्या) वे दोनों परस्पर कभी असत्य व्यवहार न करते हुए राजा, प्रजा वा पति और पत्नी, (उरुगाया) बहुत पराक्रमी होकर (रथेन) रमण योग्य साधन से (नः) हमारे (इमं) इस (यज्ञम्) परस्पर मैत्रीभाव और सत्सङ्ग को (अच्छ यातम्) प्राप्त हों।

ऊ॒र्ध्वं के॒तुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रे॒ज्ज्योति॒र्विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय कृ॒ण्वन् ।
आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ वि सूर्यो॑ र॒श्मिभि॒श्चेकि॑तानः ॥ २ ॥

भा०—(सविता देवः) प्रकाशमान सूर्य जैसे (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त जगत् के लिये (ज्योतिः कृण्वन्) प्रकाश करता हुआ (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर (केतुं) प्रकाश को (अश्रेत्) धारण करता है और (सूर्यः) सूर्य जैसे (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं) आकाश, भूमि और अन्तरिक्ष को (आ अप्राः) सब ओर पूर्ण कर देता है। वैसे ही (सविता) राष्ट्र सञ्चालक (देवः) दानशील राजा, विद्वान् (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त उत्पन्न प्रजा के हितार्थ (ज्योतिः कृण्वन्) ज्ञान-प्रकाश देता हुआ (ऊर्ध्वं) सबके ऊपर (केतुं) ज्ञान को (अश्रेत्) धारण करे और (वि चेकितानः) विशेष रूप से सबको देखता और ज्ञान करता हुआ

(रश्मिभिः) शासकों द्वारा (द्यावा पृथिवी) स्त्री पुरुषों, विद्वान् और अविद्वान् और (अन्तरिक्षं) अपने भीतरी अन्तःकरण वा अन्तरंग जनों को (आ अप्राः) ज्ञान वा ऐश्वर्य से पूर्ण करे ।

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (देवी) प्रकाश से युक्त (उषाः) प्रभात वेला (अरुणीः) लाल २ कान्तियों को (आवसन्ती) सर्वत्र पहुंचाती हुई (मही) बड़ी (चित्रा) अद्भुत (रश्मिभिः चेकिताना) किरणों से प्राणियों को जागृत करती हुई और (प्रबोधयन्ती) अच्छी प्रकार प्रबुद्ध बनाती हुई (सुविताय) सुख के लिये (सुयुजा) उत्तम सहयोगी (रथेन) वेगवान् सूर्य के साथ (ईयते) आती है वैसे ही (उषा देवी) पति को चाहने वाली, विदुषी स्त्री, देवी (अरुणीः आवहन्ती) आरक्त कान्तियों को धारण करती हुई (मही) आदरणीय (चित्रा) अद्भुत गुणों वाली, (चेकिताना) ज्ञानवती होकर (रश्मिभिः) किरणों से, (ज्योतिषा) तेज से, (सुविताय) सुख प्राप्त करने वा उत्तम मार्ग से चलने के लिये (प्रबोधयन्ती) सबको ज्ञानयुक्त करती हुई (सुयुजा रथेन ईयते) उत्तम अश्वों से युक्त रथ से आवे ।

आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥

भा०—हे (वृषणा) वीर्यनिषेक करने में समर्थ युवा स्त्री पुरुषो ! (उषसः) दिन के प्रभात के समान (वां) तुम दोनों के बीच (उषसः) प्रातः प्रभा के तुल्य पति की कामना करने वाली स्त्री के (वि-उष्टौ) विशेष कामनायुक्त होने पर ही (ते) वे नाना (वहिष्ठाः) भारवाही (रथाः अश्वासः) रथ और अश्व (वां वहन्तु) तुम दोनों को देशदेशान्तर पहुंचावें । (इमे हि सोमाः) ये ऐश्वर्य और ओषधि आदि रस (वां) तुम दोनों के लिये (मधुपेयाय) मधुर जल और अन्न के तुल्य खान पान करने योग्य

है। (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ, सत्सङ्ग और मैत्रीभाव में आप दोनों (मादयेथाम्) हर्षित होकर रहो।

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम्॥५॥१४

भा०—देखो व्याख्या (मं० ४। १३। ५॥) इति चतुर्दशो वर्गः॥

[१५] वामदेव ऋषिः॥ १—६ अग्निः। ७, ८ सोमकः साहदेव्यः। ९, १० अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ४ गायत्री। २, ५, ६ विराड् गायत्री। ३, ७, ८, ९, १० निचृद् गायत्री। षड्जः स्वरः॥ षड्डृचं सूक्तम्॥

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते।
देवो देवेषु यज्ञियः॥ १॥

भा०—(अध्वरे अग्निः) यज्ञ में अग्नि के समान (अध्वरे) सख्य आदि उत्तम कार्य में (अग्निः) विद्वान् पुरुष, (होता) सब कार्यों का स्वीकार करने वाला (वाजी) ज्ञान, अन्न, बल आदि से युक्त (देवः) दानशील विजिगीषु (यज्ञियः) मैत्री आदि के योग्य वा यज्ञ, परमपूज्य प्रजापति पद के योग्य (सन्) सज्जन पुरुष प्राप्त हो तो (देवेषु) वह विद्वान् पुरुषों के बीच (परि णीयते) ऊपर के पद तक प्राप्त कराया जावे।

परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव।
आ देवेषु प्रयो दधत्॥ २॥

भा०—(अग्निः) तेजस्वी पुरुष (त्रिविष्टि अध्वरे) तीनों प्रकार से प्रवेश करने योग्य हिंसारहित, उत्तम व्यवहार वा पद को (रथीः इव) महारथी के समान (देवेषु) विद्वानों में (प्रयः) प्रीतिकारक वचन (दधत्) प्रयोग करता हुआ (परि याति) प्राप्त होता है। महारथी (देवेषु) विजयकामी सैनिकों में (प्रयः) वेतनादि देता हुआ (त्रिविष्टि अध्वरं परि याति) तीन प्रकार से प्रवेशयोग्य युद्ध में जाता है।

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ३ ॥

भा०—(वाजपतिः) बलों व ज्ञानों का पालक (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (अग्निः) अग्नि के समान पुरुष (दाशुषे) दानशील प्रजाजन में (रत्नानि) रमणीय ऐश्वर्यों को (दधत्) देता हुआ (हव्यानि) ग्रहणयोग्य अन्नों, एवं करों को भी (परि अक्रमीत्) प्राप्त करे ।

अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते ।
द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जैसे (पुरः) आगे (दैववाते) प्रकाशक वायु के संपर्क में (समिध्यते) प्रकाशित होता है वैसे ही (यः) जो (द्युमान्) तेजस्वी (अमित्रदम्भनः) शत्रुनाश करने में समर्थ है (अयं) वह (दैववाते) विजिगीषु पुरुषों के दलों से प्राप्त होने योग्य (सृञ्जये) शत्रु-विजय कार्य में (पुरः) सबके आगे (समिध्यते) अग्नि के समान प्रज्वलित किया जावे ।

अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः ।
तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(अस्य) इस (ईवतः) गमन करने वाले, प्रयाणशील (तिग्मजम्भस्य) तेजस्वी मुख वाले, (मीळ्हुषः) शत्रु पर शस्त्रादि वर्षण करने में समर्थ मेघतुल्य (अग्नेः) अग्नितुल्य तेजस्वी, नायक (वीरः) वीर (मर्त्यः) शत्रु मारने में समर्थ पुरुष ही (ईशीत) अधिकार का भागी हो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् ।
मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—लोग जैसे (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अर्वन्तं) वेगवान् अश्व को (मर्मृज्यन्ते) खरखरे आदि से साफ करते हैं और अलंकारों से सजाते हैं

और जैसे वैद्य (अरुषं) देह में लगे घाव को नित्य (मर्मृज्यन्ते) साफ करते हैं और माता पिता जैसे (शिशुम्) बालक को नित्य साफ करते हैं वैसे ही विद्वान् (सानसिं) सबके सेवन योग्य, (अर्वन्तं) शत्रु पर वेग से चढ़ाई करने वाले (अरुषम्) रोष रहित, (दिवः शिशुम्) भूमि के शासक पुरुष को (मर्मृज्यन्ते) विद्वान् लोग स्वच्छ, दोष रहित करते रहें।

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः।
अच्छा न हूत उदरम् ॥ ७ ॥

भा०—(हूतः) युद्ध में बुलाया जाकर (यत्) जब मैं (अच्छ) मुकाबले पर (न उत् अरम्) नहीं उठ खड़ा होऊं तब (साहदेव्यः) विजिगीषु सैनिकों को साथ रखने वाले नायकों में उत्तम (कुमारः) शत्रुओं को बुरी तरह से मारने में समर्थ सेनापति (मा) मुझको (हरिभ्याम्) अश्वों से (बोधत्) मेरे कर्त्तव्यों का ज्ञान करावे।

उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात्।
प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥

भा०—(उत्) और मैं (साहदेव्यात्) सैनिक वर्ग सहित नायकों में कुशल (कुमारात्) कुत्सित शत्रुओं के मारक वीर पुरुष से (त्या) उन (यजता) संगत (प्रयता) अच्छी प्रकार प्रबद्ध, यत्नशील (हरी) रथ में लगे अश्वों के तुल्य राष्ट्र वा सैन्य बल से चलने वाले दो प्रधान पुरुषों को (सद्यः) शीघ्र ही (आ ददे) स्वीकार करूं।

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः।
दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) समस्त विद्याओं में व्याप्त वा अश्व के तुल्य बलवान् और विद्यामार्ग में वेग से जाने वाले विद्यार्थी के स्वामी (देवौ) विद्यादाता आचार्य आचार्याणी (एषः) यह (वां) तुम दोनों का (कुमारः)

कुमार (साहदेव्यः) विद्याभिलाषी शिष्यों और विद्या के प्रकाशक गुरुओं के साथ रहने वाला है। वह (सोमकः) विद्या के पुत्र के तुल्य, स्नातक होकर (दीर्घायुः अस्तु) दीर्घायु हो।

तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम्।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (देवौ अश्विना) विद्यादाता गुरुजनो! (युवं) आप दोनों मिलकर (साहदेव्यं) ज्ञानदाता गुरु के साथ रहने वाले (तं) उस (कुमारं) कुमार शिष्य को (दीर्घायुषं कृणोतन) दीर्घायु बनाओ। इति षोडशो वर्गः॥

[१६] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ८, ९, १२, १९ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ७, १६, १७ विराट् त्रिष्टुप्। २, २१ निचृत्पंक्तिः। ५, १३, १४, १५ स्वराट् पंक्तिः। १०, ११, १८, २० भुरिक् पंक्तिः ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥

भा०—(ऋजीषी) धर्म मार्ग से स्वयं जाने और प्रजावर्ग वा सैन्य-वर्ग को चलाने वाला (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ, (मघवान्) ऐश्वर्यवान् (नः) हमें (उप आयातु) प्राप्त हो और (अस्य) इसके (हरयः) अश्वों के समान वेग से जाने वाले मनुष्य, (नः उप द्रवन्तु) वेग से हमारे बीच राजकारण से आने, जाते हों, (तस्मै इत्) उसी की वृद्धि के लिये हम लोग (सुदक्षम्) उत्तम बलशाली (अन्धः) अन्न आदि ऐश्वर्य (सुषुम) उत्पन्न करें। वह (गृणानः) गुरु के तुल्य आज्ञाएं करता हुआ (इह) इस राष्ट्र में (अभिपित्वं) सब प्रकार से प्रजा पालन का कार्य (करते) करे।

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष ! (अद्य) आज (सवने) ऐश्वर्य द्वारा अभिषेक करने, वा अध्यापन के अवसर से, (अन्ते) अन्त में (नः) हमें (मन्दध्यै) प्रसन्न होने के लिये (अध्वनः अन्तेन) मार्ग की समाप्ति पर अश्वों के समान (अव स्य) मुक्त कर, जिससे हम आनन्द प्राप्त कर सकें, (वेधाः) विद्वान् (चिकितुषे) ज्ञान प्राप्त करने वाले (असुर्याय) अज्ञान से युक्त विद्यार्थी के (मन्म) मनन करने योग्य (उक्थम्) वेद मन्त्रादि का (उशना इव) कामनावान्, प्रीति युक्त बन्धु के तुल्य (शंसाति) प्रवचन करे।

कुविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥

भा०—(वृषा) वर्षण करने वाला सूर्य (यत्) जैसे (सेकं) सेचन योग्य जल को (विपिपानः) विविध प्रकारों से पान करता हुआ और (विदथानि निण्यं साधन्) प्राप्त करने योग्य जलों को अन्तरिक्ष में गुप्त रूप से साधता हुआ, (वृषा) मेघ (सेकं विपिपानः) सेचने योग्य जल की विशेष रूप से रक्षा करता हुआ (अर्चात्) पुनः प्राप्त करता है वैसे ही मतिमान् पुरुष (निण्यं) गुप्त रूप से, शान्तिपूर्वक (विदथानि साधन्) नाना ज्ञानों को, धनों के समान प्राप्त करता हुआ, (वृषा) बलवान् मेघ वा सूर्य तुल्य ज्ञान प्रकाशक तेजस्वी होकर (सेकं विपिपानः) सेचन योग्य वीर्य की विशेष रूप से रक्षा करता हुआ और (सेकं) विद्यार्थी जनों के प्रदान करने, अभिसेचन वा स्नान करने वाले, आत्मा को शुद्ध करने वाले ज्ञानरस को (विपिपानः) विशेष रूप से पान करता हुआ (अर्चात्) अपने गुरुजनों का सत्कार करे। सूर्य जैसे (सप्त दिवः) सात तेजोमय किरणों को प्रकट करता है वैसे ही वह विद्वान् पुरुष भी (दिवः) ज्ञान में (सप्त) सात प्रकार के ज्ञान के मार्ग में (सप्त) सर्पण करने, आगे बढ़ने वाले (कारून्) क्रियाशील विद्वानों को (जीजनत्) विद्यादान देकर प्रकट करे। (गृणन्तः) उपदेश करने वाले गुरु और विद्याभ्यासी शिष्यजन

(अह्ना चित्) दिन के तुल्य अविनाशी प्रकाश वेद से (वयुना) नाना ज्ञानों और कर्मों का (चक्रुः) सम्पादन करें।

स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

भा०—(यत् अर्कैः) जैसे किरणों से (सुदृशीकं स्वः वेदि) उत्तम देखने और दिखाने वाला तेज प्राप्त होता है (यत्) और जैसे सूर्य के किरण दिन के समय (महि ज्योतिः) बड़ा भारी प्रकाश (रुरुचुः) प्रदीप्त करते हैं और वह (अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे) अन्धकारमय दुःखकर अँधेरों को नष्ट कर प्रकाशित करता है वैसे ही (यत् अर्कैः) जिसके उत्तम विचारों वा मन्त्रों से (सुदृशीकम्) उत्तम दर्शन करने योग्य (स्वः) ज्ञानप्रकाश और सुख (वेदि) प्राप्त होता है और (यत्) जिसके विचार (वस्तोः) अधीन वसे प्रजा वा शिष्य के लिये (महि ज्योतिः रुरुचुः) बड़ा ज्ञान प्रकाशित करते हैं वह (नृतमः) पुरुषोत्तम (अभिष्टौ) प्रार्थना करने पर (नृभ्यः) मनुष्यों को (विचक्षे) विविध प्रकार से उपदेश करे और (अन्धा) अन्धा बना देने वाले (दुधिता) दुःखदायी (तमांसि) अज्ञान को (चकार) नष्ट करे।

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥१७॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) मेघ, तमस् को विदारण करने वाला सूर्य (अमितं) अविनाशी और अनन्त प्रकाश को (ववक्षे) धारण करता है और (महित्वा रोदसी आ पप्रौ) महान् सामर्थ्य से भूमि और आकाश दोनों को तेज से पूर्ण करता है, (यः विश्वा भुवना अभि बभूव) जो समस्त लोकों में व्यापता है (अस्य महिमा अतः विरेचि) उसका महान् सामर्थ्य इस लोक से बहुत बड़ा है। वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (अमितं) अपरिमित सामर्थ्य (ववक्षे) धारण करे (इन्द्रः) विद्वान् आचार्य (अमितं

वक्षे) अविनाशी वेद ज्ञान का प्रवचन करे। वह (ऋजीषी) सरल मार्ग से प्रजाजनों वा शिष्यजनों को ले जाने हारा (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य और पद से (रोदसी) माता और पिता दोनों के पदों को स्वयं पूर्ण करता है। इति सप्तदशो वर्गः॥

विश्वा॑नि श॒क्रो नर्या॑णि वि॒द्वान॒पो रि॑रेच॒ सखि॑भि॒र्निका॑मैः।
अश्मा॑नं चि॒द्ये बि॑भि॒दुर्वचो॑भिर्व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः॥ ६॥

भा०—जैसे वायुगण (वचोभिः) गर्जनों से (अश्मानं) मेघ को (बिभिदुः) छिन्न भिन्न करते हैं और जैसे (उशिजः) कान्तिमान् किरणगण या विद्युत (गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) किरणों से युक्त नित्य गतिशील सूर्य वा गर्जना रूप वाणीयुक्त मेघ को घेरती हैं और जैसे (निकामैः सखिभिः) खूब कान्तिमान् सहयोगी किरणों वा वायुओं द्वारा (शक्रः) शक्तिमान् सूर्य (अपः रिरिचे) जलों को अन्तरिक्ष से वर्षाता है वैसे ही (ये) जो शक्तिमान् पुरुष (वचोभिः) उत्तम वचनों, आज्ञाओं से (अश्मानं) प्रस्तर या मेघ के तुल्य दृढ़, प्रजा के भोक्ता राजा को भी (बिभिदुः) भेद नीति से तोड़ डालते हैं और जो (उशिजः) मान आदि की कामना करने वाले लोग (गोमन्तं व्रजं) गौओं से पूर्ण बाड़े के तुल्य भूमि के स्वामी, सर्वोपगम्य शत्रु पर पड़ने वाले, नायक को (वि वव्रुः) विशेष रूप से स्वीकार करते हैं उन (निकामैः) नित्य कामनावान् (सखिभिः) मित्रवर्गों सहित (विद्वान्) ज्ञानी (शक्रः) शक्तिमान् राजा (विश्वानि नर्याणि) सब मनुष्य हित के कार्यों को करे और (अपः रिरेच) उत्तम कर्म करे।

अ॒पो वृ॒त्रं व॑व्रि॒वांसं॒ परा॑ह॒न्प्राव॑त्ते॒ वज्रं॑ पृथि॒वी सचे॑ताः।
प्रार्णां॑सि समु॒द्रिया॑ण्यैनोः॒ पति॒र्भव॒ञ्छव॑सा शूर धृष्णो॥ ७॥

भा०—जैसे (वज्रं) अन्धकार का निवारक सूर्य (अपः वव्रिवांसं) जलों के आवरण करने वाले मेघ को (पराहन्) विनष्ट करता है और (समुद्रियाणि अर्णांसि प्र एनोः) आकाश के जलों को नीचे गिरा देता

है और (शवसा पतिः भवन्) बल से समस्त संसार का पालक होता है वैसे ही हे (शूर) वीर, हे (धृष्णो) शत्रुओं को पराजित करने हारे! तू (शवसा) बल से (पतिः) प्रजापालक (भवन्) होकर (समुद्रियाणि अर्णांसि) समुद्र के जलों के तुल्य सेना के दलों को (प्र एनाः) आगे बढ़ा और (ते वज्र) तेरा शस्त्रास्त्र बल (वृत्रं) बढ़ते हुए और (अपः वव्रिवांसम्) प्रजाओं वा राज्य कर्म को रोकते हुए शत्रु को (परा अहन्) दूर मार भगावे और वह (सचेताः) समान चित्त वाला होकर (पृथिवी) भूमि के समान सर्वाश्रय होकर (प्र भवत्) आगे बढ़े और (पृथिवी सचेताः) समस्त पृथिवी की प्रजा समान चित्त होकर (ते वज्रं प्रावत्) तेरे शस्त्रास्त्र बल की रक्षा करे।

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥

भा०—जैसे (अद्रिं दर्दः) सूर्य मेघ को अपने तेज से छिन्न भिन्न कर देता है (सरमा) वेग से ध्वनि करने वाली विद्युत प्रथम प्रकट होती है। (गोत्रा रुजन्) मेघों को छिन्न भिन्न करता हुआ (वाजम् आदर्षि) अन्न वा जल को प्रदान करता है। वैसे ही हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य! राजन्! (यत्) जो तू (अद्रिं) अभेद्य शत्रु को (दर्दः) विदीर्ण करता और (अपः) प्रजाजनों का पालन करता है और (ते) तेरी (सरमा) वेग से शत्रु को उखाड़ फेंकने और मारने वाली सेना और उत्तम ज्ञान उपदेश करने वाली वाणी (ते) तेरे (पूर्व्यम्) पूर्व विद्वानों द्वारा बनाये अधिकार और राज्य-शासन कार्य को (आविः भुवत्) प्रकाशित करे और तू (अंगिरोभिः) सूर्य की किरणों वा अग्नियों के समान तेजस्वी ज्ञान प्रकाशक विद्वानों से (गृणानः) उपदेश किया जाता हुआ (गोत्रा रुजन्) मेघों को विद्युत् के तुल्य 'गोत्र' अर्थात् भूमि के पालक प्रतिपक्षी राजाओं को तोड़ता हुआ, (भूरिं वाजम्) परमबल वा ऐश्वर्य को (आ दर्षि) प्राप्त करता है (सः नः नेता) वह तू हमारा नायक हो।

अच्छा॑ क॒विं नृ॑मणो गा अ॒भिष्टौ॒ स्व॑र्षाता मघव॒न्नाध॑मानम् ।
ऊ॒तिभि॒स्तमि॑षणो द्यु॒म्नहू॑तौ॒ नि मा॒यावा॒नब्र॑ह्मा॒ दस्यु॑रर्त ॥ ९ ॥

भा०—हे (नृमणः) मनुष्यों के हितों और उत्तम नायक पुरुषों में अपना चित्त देने हारे ! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्वर्षाता) शत्रु को सन्ताप और अधीनों को आज्ञा देता हुआ, (अभिष्टौ) अभीष्ट सिद्धि के लिये (नाधमानं कविं अच्छ गाः) शरण याचना करते हुए क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष को प्रभु के तुल्य और विद्यैश्वर्य सम्पन्न विद्वान् को शिष्यवत् प्राप्त हो । (द्युम्नहूतौ) धन की प्राप्ति कराने वाले संग्रामादि कार्य में (तम्) उसको (ऊतिभिः) सेनादि साधनों से (अच्छ इषणः) आगे बढ़ा और (मायावान्) मायावी (अब्रह्मा) अवेदज्ञ (दस्युः) प्रजा-नाशक शत्रु (नि अर्त) सर्वथा नष्ट हो ।

आ द॑स्यु॒घ्ना मन॑सा या॒ह्यस्तं॑ भु॒वत्ते॒ कुत्सः॑ स॒ख्ये निका॑मः ।
स्वे योनौ॒ नि ष॑दतं॒ सरू॑पा॒ वि वां॑ चिकित्सदृत॒चिद्ध॒ नारी॑ ॥१०॥१८॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तु सदा (दस्युघ्ना मनसा) प्रजाविनाशक, दुष्ट पुरुषों के नाशक चित्त, बल और विज्ञान से सम्पन्न होकर (अस्तं आ याहि) अपने गृह को प्राप्त हो । (कुत्सः) शत्रुओं को काट गिराने में समर्थ वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र सम्पन्न सैन्य (ते सख्ये) तेरे मित्र भाव में (निकामः) पूर्ण कामनायुक्त हो । उपदेष्टा विद्वान् और तू राजा वा सेनापति दोनों (स्वे योनौ) अपने २ स्थान में (सरूपा) कान्ति, अधिकार को धारण करते हुए (नि सदतम्) उच्चासन पर विराजो । (ऋतचित् नारी) सत्य वचन की प्रतिज्ञा करने वाली स्त्री जैसे (वि चिकित्सित्) विशेष रूप से विवेक करती और योग्य पुरुष को प्राप्त होती है वैसे ही (ऋतचित् नारी) धन सञ्चय करने वाले नरों से, नायक मनुष्यों से युक्त सेना, (ह) निश्चय से (वां) तुम दोनों को (वि चिकित्सित्) विशेष रूप से आदर योग्य जाने । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (अवस्युः) प्रजा की रक्षा का इच्छुक, (वातस्य) वायु के तुल्य बलशाली शत्रु को मूल से उखाड़ देने और कंपा देने में समर्थ अपने सैन्य का (तोदः) सञ्चालक और पर-सैन्य का नाशक और (हर्योः) वेगवान् अश्वों के तुल्य स्व और पर-राष्ट्र के नायकों का (ईशानः) स्वामी वा (वातस्य हर्योः ईशानः) वायु वेग से जाने वाले रथ के अश्वों का स्वामी होकर (कुत्सेन) शस्त्रास्त्र बल को लेकर (सरथम्) अपने रथ सैन्यों सहित (यासि) प्रयाण कर। (न) जैसे (गध्यं युयूषन् वाजं अहन् पार्याय भवति) ग्रहणयोग्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष वेगवान् रथ को प्राप्त करता है और दूर स्थित मार्ग को पार करने में समर्थ होता है वैसे ही तू (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (ऋज्रा) सरल, धर्मयुक्त कार्यों को (वाजं) बल, वेग वा ऐश्वर्य और (गध्यं) ग्रहण योग्य पदार्थ को (युयूषन्) प्राप्त करना चाहता हुआ, (अहन्) प्राप्य उद्देश्य तक पहुंच और (पार्याय भूषात्) प्रजा पालन योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने और शत्रु संकट को पार करने में समर्थ हो।

कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! तू (कुत्साय) वेदों के उपदेष्टा पुरुष के उपकार वा निन्दित व्यवहार के दमन के लिये (अशुषं) सुखादि रहित दुःख, वा दुःखदायी और अन्यों द्वारा न शोषण होने वाले, (शुष्णं) स्वपक्ष का शोषण करने वाले शत्रु को (निबर्हीः) विनष्ट कर और (अह्नः प्रपित्वे) अविनाशी, बल प्राप्त हो जाने पर (सहस्रा) हजारों, (कुयवम्) कुत्सित यव अर्थात् निन्दित संगी या द्वेषी पुरुष को भी (निबर्हीः) विनष्ट कर और तू (कुत्स्येन) निन्दित जनों के योग्य, एवं शत्रु को काट गिराने

वाले वज्र, शस्त्रास्त्र युक्त सैन्य से (सद्यः दस्यून् प्र मृण) शीघ्र प्रजा विनाशकों को आगे बढ़कर नष्ट कर और (अभीके) संग्राम में विद्यमान (चक्रं) परसैन्य चक्र को (सूरः) सूर्य तुल्य होकर (प्र वृहतात्) विनष्ट कर ।

त्वं पिप्रुं मृगयुं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥१३॥

भा०—हे राजन्! (त्वं) तू (वैदथिनाय) विज्ञान और ऐश्वर्यवान् प्रजा के सन्तान रूप (ऋजिश्वने) सरल व्यवहारों से बढ़ने वाले इन्द्रियों से युक्त धर्मात्मा के हित के लिये (पिप्रुं) राष्ट्र में फैले हुए (मृगयुं) दूसरों के धनादि खा जाने वाले (शुशुवांसं) बल में बढ़ने वाले दुष्ट पुरुष को (रन्धीः) अपने वस कर । तू अपने (पञ्चाशत् सहस्रा) ५० हजार (कृष्णाः) शत्रु का कर्पण करने में समर्थ सैन्यों को (नि वपः) स्थान २ पर रख और शत्रु-सैन्यों को निर्मूल कर और (जरिमा अत्कं न) जैसे बुढ़ापा रूप को नष्ट कर देता है वैसे ही तू (पुरः) शत्रुओं के नगरों को (वि दर्दः) छिन्न भिन्न कर ।

सूर उपाके तन्वं१ं दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः । मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥ १४ ॥

भा०—(सूरः उपाके) सूर्य के समीप जैसे (तन्वं दधानः) विस्तृत रूप को मेघ धारण करता है तभी उसका (अमृतस्य वर्पः चेति) जल का बना स्वरूप प्रकट होता है, वह (तविषीम्) विद्युत् को (उषाणः) प्रदीप्त करता हुआ (मृगः हस्ती न) शुद्ध श्वेत हस्ती के तुल्य वा (आयुधानि बिभ्रत्) विद्युत् प्रहारों को धारण करता हुआ (भीमः सिंहः न) भीषण सिंह के समान भासता है और जैसे (सूरः) स्वयं सूर्य भी (तन्वं दधानः) सूक्ष्म तेजोमय शक्ति को धारण करता हुआ (अमृतस्य वर्पः चेति) अविनाशी स्वरूप को प्रकट करता है । वह (तविषीम् उषाणः) बलवती पृथ्वी को किरणों से दग्ध करता हुआ, किरणवान् होकर हाथी के तुल्य, एवं

किरणों से जलवायु को शुद्ध करने से 'मृग' है और शस्त्रों तुल्य किरणों को धारता हुआ भयानक सिंहवत् तेजस्वी है वैसे ही (यत्) जब (सूरः) राजा, सेनापति (उपाके) प्रजा के समीप (तन्वं) तेजस्वी शरीर और विस्तृत सेना को (दधानः) धारण करता हुआ रहता है (अमृतस्य) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य (ते) तेरा व तेरे सैन्य का (वर्पः) स्वरूप (चेति) प्रकट होता है, तभी वह (तविषीम्) बलवती, सेना को वस्त्र के समान (वसानः) धारण करता हुआ (मृगः हस्ती न) हाथी के समान विशाल, बलवान् एवं (हस्ती) हनन साधनों से सम्पन्न होकर (मृगः) राज्य के कण्टक-शोधन करने में समर्थ और (आयुधानि बिभ्रत्) प्रहार योग्य शस्त्रास्त्रों और सैन्यों को धारण करता हुआ (भीमः सिंहः नः) भयंकर सिंह के समान (वि चेति) प्रतीत होता है।

इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५॥१६

भा०—(कामाः) ऐश्वर्यादि कामनाओं को करने वाले, (वसूयन्तः) धनादि चाहने वाले, (स्वर्मीळ्हे) सुख और तेज से युक्त संग्राम के तुल्य (सवने) शासन में (चकानाः) तेजस्वी पुरुष (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त वे (उक्थैः) उत्तम वचनों से (शशमानासः) स्तुति करते हुए (श्रवस्यवः) श्रवण योग्य ज्ञान के अभिलाषी शिष्य के तुल्य स्वयं अन्न, यश की इच्छा करते हुए राजा को गुरुवत् (अग्मन्) प्राप्त हों। वह राजा वा प्रजा परस्पर (ओकः न) गुरुगृह के समान हों और (रण्वा) रमणीय (सुदृशी इव) सुलोचना स्त्री के तुल्य (पुष्टिः) पोषक सम्पदा के तुल्य हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

तमिद्ध इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (ता) उन (पुरूणि) बहुत से (नर्या) मनुष्यों के

हित के कार्य (चकार) करता है उस (सुहवं) सुगृहीत नाम वाले को (इत्) ही हम (इन्द्रं) 'इन्द्र' (हुवेम) कहें और (यः) जो (मावते जरित्रे) मेरे तुल्य स्तुति करने वाले को (गव्यं चित्) ग्रहणयोग्य (वाजं) ऐश्वर्य (चित्) भी (मक्षू) बहुत शीघ्र (भरति) देता है वह (स्पार्ह-राधाः) अभिलाषा योग्य धनों का स्वामी भी 'इन्द्र' कहाने योग्य है।

तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम्।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः॥ १७॥

भा०—हे (शूर) वीर! हे (अर्य) स्वामिन्! (यद् अन्तः) जिस के बीच में (तिग्मा अशनिः) तीक्ष्ण वज्राघात वा विद्युत् अस्त्र (पताति) पड़े, ऐसे (जनानाम्) मनुष्यों के (कस्मिन् चित् मुहुके) किसी भी युद्ध में और (यद्) जब (घोरा) भयानक (समृतिः) संग्राम (भवाति) होता हो (अध) जब भी तू (गोपाः) रक्षा करने हारा, वाणी और पृथिवी का रक्षक होकर (नः) हमारे (तन्वः) शरीरों को (बोधि स्म) अपने ज्ञान में रख।

भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः॥ १८॥

भा०—हे (विश्वध) समस्त राष्ट्र वा विश्व के धारक राजन्! प्रभो! विद्वन्! तू (वामदेवस्य) उत्तम सेवनयोग्य पदार्थों के दाता और ज्ञानों के प्रकाशक विद्वान् प्रजाजन की (धीनां) बुद्धियों का (अविता) रक्षक (भुवः) हो। तू (वाजसातौ) ऐश्वर्य को प्राप्त और दान करने के काल में, उसका (अवृकः) चोर के तुल्य कपटादि से रहित सच्चा (सखा) मित्र (भुवः) हो। हम (त्वाम् प्रमतिम् अनु आ जगन्म) तुझ ज्ञानवान् का अनुसरण करें। तू (जरित्रे) अध्येता शिष्य को (उरुशंसः स्याः) बहुत सी विद्याओं का उपदेष्टा हो।

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः॥ १९॥

भा०—हे (इन्द्र) अज्ञाननाशक राजन्! विद्वन्! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (एभिः) इन (त्वायुभिः) तुम चाहने वाले, तेरे प्रेमी (मघवद्भिः) धन सम्पन्न (एभिः नृभिः) इन नायक पुरुषों सहित हम (विश्वे) सब लोग (आजौ) युद्ध में (द्युम्नैः द्यावः न) तेजों सहित सूर्य किरणों के तुल्य धनों से सम्पन्न होकर (अर्यः) शत्रुओं को (अभि सन्तः) पराजित करते हुए (पूर्वीः क्षपः शरदः च) पुरातन और आगामी भी बहुत सी रातों और वर्षों तक (मदेम) हर्षयुक्त रहें।

प्रवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम्।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२०॥

भा०—(भृगवः रथं न) धातु को तपा कर नाना पदार्थ बनाने और गतिशील साधनों के धारक शिल्पी लोग जैसे (रथम्) वेग से जाने योग्य रथ को तैयार करते हैं (एव इत्) वैसे ही हम लोग (वृषभाय) बलवान् (वृष्णे) राज्य प्रबन्ध में कुशल, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पु०ष के लिये (ब्रह्म अकर्म) महान् ऐश्वर्य उत्पन्न करें, (यथा) जिससे (नू चित्) शीघ्र ही वह (नः) हमें (सख्या) हमारे मित्र गण से (वि योषत्) मिलाये रक्खे, वह (उग्रः) बलवान् (अविता) रक्षक (नः) हमारे (तनूपाः) शरीरों का रक्षक (असत्) बना रहे।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो॒न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१।२०॥

भा०—(नु स्तुतः) स्तुति योग्य और (नु गृणानः) अन्यों को उपदेश करता हुआ हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! तू (नद्यः न) जलों से नदियों के समान (जरित्रे) स्तुतिशील प्रजाजन और अध्ययनशील विद्यार्थी जन के हितार्थ (इषं) वृष्टि एवं कामना को (पीपेः) पूर्ण कर। हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् सेनापते! (ते) तेरे लिये (नव्यं) उत्तमोत्तम (ब्रह्म) ऐश्वर्य उत्पन्न (अकारि) किया जाय, हम (धिया) बुद्धि और कर्म द्वारा (सदासः)

भृत्यों सहित, वा सदा ऐश्वर्य भोक्ता और दाता होते हुए (रथ्यः) रथों के स्वामी होकर (स्याम) रहें। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[१७] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ७, ९ भुरिक् पंक्तिः । १४, १६ स्वराट् पंक्तिः । १५ याजुषी पंक्तिः । निचृत्पंक्तिः २, १२, १३, १७, १८, १९ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, १०, ११ त्रिष्टुप् । ४, २० विराट्त्रिष्टुप् ॥ एकविंशत्यर्चं सूक्तम् ॥

त्वं म॒हाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्यं॑ ह॒ क्षा अनु॑ क्ष॒त्रं मं॒हना॑ मन्यत॒ द्यौः ।
त्वं॒ वृ॒त्रं शव॑सा जघ॒न्वान्त्सृ॒जः सिन्धूँ॒रहि॑ना जग्रसा॒नान् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (त्वं) तू (महान्) शक्तियों में महान् है। (क्षाः) भूमिएं, भूमि निवासी प्रजाएं और (द्यौः) ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वान् जन (मंहना) महान् होकर (तुभ्यं क्षत्रं) तुझे ही बल, वीर्य, राज्य को (अनु मन्यत) प्राप्त करने की अनुमति दें। सूर्य जैसे (शवसा) बलपूर्वक तेज से (वृत्रं जघन्वान्) मेघ को प्रहार करता है, वैसे ही (त्वं) तू (शवसा) सैन्य बल से (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को (जघन्वान्) नाश करने हारा हो और (अहिना) मेघ या सूर्य द्वारा (जग्रसानान्) किरणों द्वारा ग्रस्त हुई (सिन्धून्) बहने वाली जलधाराओं को विद्युत् जैसे (सृजः) उत्पन्न करता है वैसे (अहिना) आक्रमणकारी शत्रु द्वारा (जग्रसानान्) वशीकृत (सिन्धून्) वेगयुक्त सेनाओं को (सृजः) भगा देते हो।

तव॑ त्वि॒षो जनि॑मन्रेजत॒ द्यौ रेज॒द्भूमि॑र्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः ।
ऋ॒घा॒यन्त॑ सु॒भ्वः॒ पर्व॑तास॒ आर्द॒न्धन्वा॑नि स॒रय॑न्त॒ आपः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (जनिमन्) उत्तम जन्म वाले! हे रत्नों और अन्नों की उत्पादक भूमि के स्वामिन्! राजन्! (तव) तेरे (त्विषः) तेज वा प्रताप से (द्यौः रेजत्) आकाश कांपे और (स्वस्य) तेरे अपने (भियसा) भय से और (मन्योः) क्रोध से (भूमिः) भूमि (रेजत्) कांपे। (सुभ्वः)

उत्तम अन्नादि पदार्थों की उत्पादक भूमियां और उत्तम ओषधि आदि के जनक (पर्वतासः) पर्वतों के तुल्य मेघ और उत्तम भूमियों के स्वामी, प्रजापालक जन (ऋघावन्त) तेरे बल से बाधित हों वे (आर्दन्) प्रजा की पीड़ाओं का नाश करें। वे (धन्वानि) निर्जल स्थलों की तरफ (आपः) जलों को (सरवन्त) प्राप्त करावें, झरने आदि बहावें।

भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः॥ ३॥

भा०—जैसे (वज्रम् इष्णन्) विद्युत् का प्रेरक सूर्य वा प्रबल वायु (गिरिं भिनत्) मेघ को छिन्न भिन्न करता है और (वज्रेण वृत्रं वधीत्) वज्र से सूक्ष्म जलमय मेघ को आघात करता है और (तहवृष्णीः) ताड़ित हुए वर्षणशील मेघ से युक्त (आपः जवसा सरन्) जलधाराएं वेग से बहती हैं। वैसे ही वीर सेनापति वा राजा (सहसानः) शत्रुओं को पराजित करता हुआ और (ओजः) पराक्रम प्रकट करता हुआ (वज्रम् इष्णन्) शस्त्रास्त्र बल को प्रेरित करता हुआ (गिरिम्) पर्वत तुल्य अचल और मेघ तुल्य शस्त्रास्त्रवर्षी, एवं प्रजा के धनापहारी शत्रु को (शवसा) बल और ज्ञान के द्वारा (भिनत्) भेद नीति से तोड़ फोड़ डाले। (मन्दसानः) स्वयं खूब प्रसन्न रहकर (वज्रेण) शस्त्रास्त्र बल से (वृत्रं) नगररोधी और बढ़ते शत्रु को (वधीत्) विनष्ट करे, और (हतवृष्णीः) मारे गये बलवान् पुरुषों के (आपः) रुधिर-प्रवाह और जलों के समान भय कातर सैन्य भी (जवसा) वेग से (सरन्) भागें।

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम॥ ४॥

भा०—सूर्य जैसे (स्वर्यं) आकाश से गिरने योग्य जल को, और (सुवज्रम्) उत्तम विद्युत् जो (सदसः अनपच्युतम् न भूम) मेघ से च्युत न हो और सामर्थ्य युक्त हो उसको उत्पन्न करता है वह सूर्य स्वयं (द्यौः)

तेजोयुक्त, (सुवीरः) वीर्यवान् (इन्द्रस्य कर्त्ता) मेघ के जल विदारण समर्थ विद्युत् का उत्पादक और (सु अपस्तमः) उत्तम जलों वा कर्मों को उत्पन्न करने वाला और (जनिता) सब ओषधि अन्नादि का उत्पादक (मन्यत) माना जाता है वैसे ही हे राजन्! (यः) जो पुरुष वा सेनानायक (स्वर्यं) शत्रुओं को संताप उत्पन्न करने वाले (ईं) इस (सदसः) अपने स्थान वा पद से (अनपच्युतम्) न फिसलने वाले, (सुवज्रम्) उत्तम शस्त्रास्त्र और सैन्य बल को (भूम) बहुत मात्रा में (जजान) उत्पन्न करता है (सः) वह (सुवीरः) वीर पुरुषों से युक्त, (द्यौः) भूलोक (ते इन्द्रस्य) तुझ ऐश्वर्य-वान् राजा का (जनिता) उत्पादक (मन्यत) माना जाने योग्य है। वही (कर्त्ता) कार्य करने में समर्थ (सु अपस्तमः) उत्तम कर्मों का कर्त्ता (भूत्) हो। हम भी उसके (सदसः न भूम) सभासद् के समान हों।

य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः॥५॥२१॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) विद्युत् वा सूर्य (एकः इत् भूम प्रच्या वयति) अकेला ही बहुत जल को नीचे गिरा देता है और (कृष्टीनां राजा) जलादि खींचने वाले किरणों और लोकों के आकर्षक बलों का (राजा) स्वामी है वैसे ही (यः) जो (एक इत्) अकेला ही (भूम) बहुत से शत्रु दल को (प्र च्यावयति) गिराता, संग्रामभूमि से भगा देता है और (भूम प्र च्याव-यति) बहुत से राज्यों को सञ्चालित करता है और जो (कृष्टीनां) कृषक प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, पीड़न करने वाले सैन्यों के बीच (राजा) उनका स्वामी (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित है वही (इन्द्रः) 'इन्द्र' अर्थात् अन्न का दाता और शत्रुओं का विदारक सेनापति है। (विश्वे) समस्त लोक (सत्यम्) सत्याचरणयुक्त (एनं) इसको पाकर ही (अनु मदन्ति) उसके साथ हर्षित होते हैं और (मघोनः) ऐश्वर्यवान् (गृणतः) उत्तम उपदेष्टा (देवस्य) दानशील पुरुष के ही (रातिम्) दान को प्राप्त करके ही सब प्रसन्न होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः॥

सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य) इस राजा वा विद्वान् के (सोमाः) पुत्र वा शिष्य एवं प्रेरित वा अभिषिक्त पदाधिकारी जन सब (सत्रा) सत्य व्यवहार से युक्त (अभवन्) हों और (विश्वे) सब प्रजाजन (सत्रा) एक साथ वा सत्य व्यवहार से (मदासः) स्वयं हर्षित होने वाले (बृहतः) बड़े (मदिष्ठाः) प्रसन्न हों। (वसूनां) राष्ट्र में बसी प्रजाओं में (वसुपतिः) सब जीवों और ऐश्वर्यों का स्वामी पुरुष भी (सत्रा अभवः) सत्य व्यवहारवान् हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुनाशक राजन्! तू (दत्रे) दान योग्य सुवर्णादि के प्राप्त करने के लिये (विश्वाः) सब प्रकार की (कृष्टीः) कृषि प्रधान प्रजाओं और शत्रुपीड़क सेनाओं का भी (अधिथाः) पालन कर।

त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (जायमानः) अपने बल द्वारा प्रकट होकर सूर्य के तुल्य (प्रथमम्) सबसे प्रथम (अमे) भय के अवसर पर, (विश्वाः कृष्टीः) समस्त प्रजाओं और सेनाओं को (अधिथाः) धारण कर। (प्रवतः प्रति आशयानम्) उत्तम वा निम्न देशों में जाने वाले (अहिम्) मेघ को सूर्य के समान सर्पवत् कुटिल वा मुकाबले पर आकर आघात करने वाले शत्रु को हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (वज्रेण विवृश्चः) विविध प्रकार से वृक्ष को कुठार के समान शस्त्रास्त्र से काट डाल।

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८॥

भा०—हे प्रजावर्ग! तुम लोग (सत्राहणं) न्याय से अन्यायाचरण के नाशक (दाधृषिं) दुष्टों को गर्वरहित करने वाले, (तुम्रम्) स्व-सेना

को अपने अधीन और पर सेना को परे चलाने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (महाम्) बड़े (अपारं) समुद्र के समान अपार, अपरिमित बल विद्या युक्त, (वृषभं) बलवान् (सुवज्रम्) उत्तम शस्त्रास्त्र से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त करें। (यः) जो (वृत्रं) शत्रु को (हन्ता) दण्ड देता, (उत) और (वाजं सनिता) ऐश्वर्य का दान और विभाग करता और (सुराधाः) धन से युक्त होकर (मघानि दाता) उत्तम धनों को प्रदान करता है वही (मघवा) मघवा, ऐश्वर्यवान् है।

अ॒यं वृ॒तश्चा॑तयते स॒मीची॒र्य आ॒जिषु॑ म॒घवा॑ शृ॒ण्व एकः॑ ।
अ॒यं वाजं॑ भरति॒ यं स॒नोत्य॒स्य प्रि॒यासः॑ स॒ख्ये स्या॑म ॥ ६ ॥

भा०—(अयं) यह (वृतः) मुख्य पद पर वरण किया जाकर (समीचीः) एक साथ आक्रमण करने वाली शत्रु सेनाओं को भी (एकः) अकेला ही (चातयते) विनष्ट करे और यह आचार्य, (समीचीः) समान भाव से प्राप्त होने वाली (वृतः) गुरु को घेर बैठने वाली शिष्य पंक्तियों को (चातयते) शिक्षित करे। (यः) जो वीर पुरुष (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (एकः) अद्वितीय पराक्रमी (आजिषु) संग्रामों में (शृण्वे) सुना जाता है। (अयं वाजं भरति) वह ज्ञान, धनैश्वर्यों को धारण करता है। (यं सनोति) जिसको प्रजाजन कर, उपहार रूप में प्रदान करता है, (अस्य सख्ये) उसके मैत्रीभाव में हम (प्रियासः) प्रिय होकर (स्याम) रहें।

अ॒यं शृ॑ण्वे॒ अध॒ जय॑न्नु॒त घ्नन्न॒यमु॒त प्र कृ॑णुते यु॒धा गाः ।
य॒दा स॒त्यं कृ॑णु॒ते म॒न्युमिन्द्रो॒ विश्वं॑ दृ॒ळ्हं भ॑यत॒ एज॑दस्मात् १०.२२

भा०—(अध) और (अयं जयन्) यह विजय करता हुआ (उत) और (घ्नन्) शत्रुओं को दण्ड देता हुआ (शृण्वे) प्रख्यात हो। (उत) और (अयम् युधा) यह युद्ध द्वारा (गाः) भूमियों, उनकी निवासी प्रजाओं को भी (युधा गाः इव) प्रहार से पशुओं के समान (प्र कृणुते) वश करें। (यदा इन्द्रः) जब शत्रुहन्ता राजा (सत्यं) न्याय के अनुकूल (मन्युम्)

क्रोध (कृणुते) प्रकट करता है तब (दृळ्हं विश्वं) दृढ़ विश्व भी (अस्मात्) इससे (भयते) भय करता है और (एजत्) कांपता है। इति द्वाविंशोवर्गः॥

सम् इन्द्रो॒ गा अ॑जय॒त्सं हिर॑ण्या॒ सम॑श्वि॒या म॒घवा॒ यो ह॑ पू॒र्वीः।
ए॒भिर्नृभि॒र्नृत॑मो अस्य शा॒कै रा॒यो वि॑भ॒क्ता स॑म्भ॒रश्च॒ वस्वः॑ ॥११॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) सेनानायक (गाः सम् अजयत्) समस्त भूमियों को एक साथ विजय कर लेता है (हिरण्या सम् अजयत्) वह सुवर्णादि धनों को भी विजय करता है वह (अश्विया) अश्वों से युक्त सेनाओं को (सम् अजयत्) सम्यक् विजय करता है और वह (पूर्वीः) अपने से पूर्व प्रजाओं को भी विजय करता है, वह (नृतमः) सब नायकों में श्रेष्ठ नायकोत्तम (एभिः शाकैः नृभिः) इन शक्तिशाली नायकों द्वारा (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य का (विभक्ता) विभाग करने और विविध रूपों में सेवन करने वाला (वस्वः) बसे राष्ट्र और ऐश्वर्य का (सम्भरश्च) अच्छी प्रकार धारण करने हारा होता है।

किय॑त्स्वि॒दिन्द्रो॒ अध्ये॑ति मा॒तुः किय॑त्पि॒तुर्ज॑नि॒तुर्यो ज॒जान॑।
यो अ॑स्य॒ शुष्मं॑ मुहु॒कैरिय॑र्ति॒ वातो॒ न जू॒तः स्त॒नय॑द्भिर॒भ्रैः ॥१२॥

भा०—(यः) जो (मुहुकैः) बार २ कार्य करते हैं ऐसे सहकारी पुरुषों सहित (अस्य) इस राष्ट्र के (शुष्मं) शत्रु शोषक बल को (इयर्ति) सञ्चालित करता है और (स्तनयद्भिः) गर्जनाशील (अभ्रैः) मेघों से (जूतः) अधिक वेगवान् (वातः) वायु के तुल्य है। (यः) जो (जजान) स्वयं उत्पन्न होता है वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (मातुः) माता के तुल्य इस पृथ्वी का (कियत् स्वित् अधि एति) कितना अंश प्राप्त करे और (पितुः) पालन करने वाले और (जनितुः) अन्नादि उत्पन्न करने वाले का (कियत्) कितना अंश हो यह विवेक करने योग्य बात है।

क्षि॒यन्तं॑ त्वमक्षि॑यन्तं कृणो॒तीय॑र्ति रे॒णुं म॒घवा॑ स॒मोह॑म्।
वि॒भ॒ञ्ज॒नुर॒शनि॑माँ इव॒ द्यौरु॒त स्तो॒तारं॑ म॒घवा॒ वसौ॑ धात् ॥१३॥

भा०—जो (मघवा) धन सम्पन्न होकर (समोहं) मोह युक्त (रेणुं) अपराध को (इयर्ति) दूर करता है, वही तू (क्षियन्त) गृह में रहने वाले को (अक्षियन्तं कृणोति) निवास रहित कर देता है, वह (अशनिमान् द्यौः इव) सूर्य तेज के तुल्य (विभञ्जुः) शत्रुओं के बलको तोड़ने वाली (उत) और (स्तोतारं) स्तुतिशील, विद्वान् उपदेष्टा को (वसौ) धनैश्वर्य में (धात्) स्थापित करे ।

अ॒यं च॒क्रमि॑षण॒त्सूर्य॑स्य॒ न्येत॑शं॒ रीर॑मत्ससृमा॒णम् ।
आ कृ॒ष्ण ईं॑ जुहुरा॒णो जि॑घर्ति त्व॒चो बु॒ध्ने रज॑सो अ॒स्य योनौ॑ १४

भा०—(अयं) यह ऐश्वर्यवान् पुरुष (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (चक्रम्) राज्य-चक्र वा सैन्य-चक्र को (इषणत्) चलावे । वह (ससृमाणं) वेग से जाने वाले (एतशं) अश्व सैन्य को (रीरमत्) युद्धादि क्रीड़ा का अभ्यास करावे । (अस्य रजसः त्वचः) इस लोक के त्वचा के समान संवरण करने वाले और तेज के समान प्रकाशित करने वाले सामर्थ्य के (बुध्ने) आश्रय रूप (योनौ) स्थान वा पद में स्थित होकर, अन्तरिक्ष में स्थित (कृष्णः) श्याम वर्ण मेघ वा रश्मियों द्वारा जलाकर्षक सूर्य जैसे (जुहराणः) वक्रगति से चलता हुआ (ईं जिघर्ति) जल को सर्वत्र सेचन करता है वैसे ही राजा (कृष्णः) सबका चित्त आकर्षक करता हुआ (जुहुराणः) अप्रत्यक्ष रूप से चेष्टा करता हुआ (ईं जिघर्ति) इस राष्ट्र को ऐश्वर्य से सेचन करे ।

असि॑क्न्यां॒ यज॑मानो॒ न होता॑ ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—जैसे (यजमानः न) दानशील वा ईश्वराराधक पुरुष (असिक्न्यां) कृष्ण रात्रि में भी (होता) परमेश्वर का आह्वान वा भजन करता है । वैसे ही राजा भी (यजमानः) प्रजाजन को ऐश्वर्यादि देता हुआ (असिक्न्यां) रात्रिकाल में भी (होता) राष्ट्र को सुख और दुष्टों को दण्ड देता है । ऐसे ही दानशील राजा (असिक्न्याम्) न सिंचने वाली भूमि में

भी मेघ के तुल्य (होता) जलादि के सेचन का प्रबन्धक हो। इति त्रयो-विंशो वर्गः ॥

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६॥

भा०—(अवते न कोशम्) कूप से जल प्राप्त करने के लिये जैसे कोश, जल निकालने वाला डोल, प्राप्त किया जाता है वैसे ही (गव्यन्तः) ज्ञानरश्मियों की इच्छा करते हुए, (अश्वायन्तः) अश्वों की कामना करते हुए और (वाजयन्तः) ऐश्वर्य और ज्ञान की कामना करते हुए (जनीयन्तः) अपना उत्तम जन्म और सन्तानजनक स्त्री की कामना करते हुए हम (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्ययुक्त, (वृषणं) मेघवत् सुखों के वर्षक, (जनिदाम्) जन्मदाता एवं अपत्योत्पादक वधू के दाता और (अक्षितोतिम्) अक्षय रक्षा करने वाले पुरुष को (सख्याय) मित्रभाव के लिये (आच्यावयामः) प्राप्त करें और करावें।

त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७ ॥

भा०—परमेश्वर, राजा वा आचार्य (नः) हमारा (त्राता) रक्षक, (ददृशानः) देखने हारा (आपिः) बन्धु, (अभिख्याता) उपदेष्टा, (सोम्यानाम्) सौम्य गुणों से युक्त, उत्तम शिष्यों वा पुत्रों को (मर्डिता) सुख दाता (सखा) सुहृद्, (पिता) पालक, (पितॄणाम्) हमारे पालक माता, पिता, चाचा आदि पूज्यों में भी सबसे (पितृतमः) बड़ा पूज्य पिता, (कर्त्ता) सबका कर्त्ता (वयोधाः) ज्ञान बल का दाता है। वह (उशते) कामना करने वाले को (लोकम्) ज्ञान-दर्शन (बोधि) बतलावे।

सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! अज्ञाननाशक आचार्य! तू (सखीयता) मित्र चाहने वाले लोगों का (अविता) रक्षक और ज्ञान से तृप्त करने वाला (सखा) मित्र (बोधि) जाना जाय। तू (स्तुवते) स्तुति करने वाले को (गृणानः) उपदेश देता हुआ (वयः) ज्ञान, बल (धाः) प्रदान कर। (वयम्) हम लोग (आभिः) इन (शमीभिः) शान्तिदायक कर्मों द्वारा (महयन्तः) तेरी पूजा करते हुए (सबाधः) दुःखी एवं विघ्न बाधा से पीड़ित होकर (ते हि) तुझे ही (आचकृम) सदा बुलावें।

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९॥

भा०—(यत् ह) जो (एकः) अद्वितीय ही (अप्रतीनि) बेमुकाबले के (भूरीणि) बहुत से (वृत्रा) मेघों के समान विघ्नों को सूर्यवत् (हन्ति) नष्ट करता है वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् पुरुष (इन्द्रः) 'इन्द्र' रूप से (स्तुतः) स्तुतियोग्य है। (जरिता) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् (अस्य प्रियः) इसको सदा प्रिय है और (यस्य शर्मन्) जिसके शरण में रहने वाले को (नकि देवाः) न विद्वान् और (न मर्त्ताः) न साधारण मनुष्य ही वारण करते हैं।

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २० ॥

भा०—(इन्द्रः) राजा, आचार्य और परमेश्वर (एव) ही (नः) हमारा (मघवा) स्वामी है। वह (चर्षणीधृत्) सब मनुष्यों का धारक (अनर्वा) प्रतिपक्षी अश्वादि से रहित (विरप्शी) ज्ञानोपदेष्टा होकर (नः) हमें (सत्या करत्) सत्य ज्ञान और अविनश्वर फल दे। हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! (त्वं जनुषां) तू जन्म लेने वालों में (राजा) सबका राजा है। तू (अस्मे) हमें और (जरित्रे) स्तुतिकर्ता प्रार्थी को भी (माहिनं) बड़ा भारी (श्रवः) अन्न, ज्ञान (अधि धेहि) दे।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥२४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १६ । मं० २१ ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१८] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रादिती देवते ॥ छन्दः—१, ८, १२ त्रिष्टुप् । ५, ६, ७, ९, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । २ पंक्तिः । ३, ४, भुरिक् पंक्तिः । १३ स्वराट् पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (पन्थाः) धर्म-मार्ग (पुराणः) सनातन से (अनुवित्तः) गुरु-परम्परा और वंश-परम्परा द्वारा प्राप्त किया जाता है, (यतः) जिससे (देवाः) एक दूसरे की कामना वाले स्त्री पुरुष और ज्ञान प्रकाशक विद्वान् पुरुष भी (उत् अजायन्त) उत्पन्न होते और उन्नति करते हैं। (प्रवृद्धः) उन्नत पद तक बढ़ा हुआ पुरुष भी (अतः चित्) इसी परम्परा प्राप्त धर्म मार्ग से ही (आ जनिषीष्ट) उत्पन्न होता है इसलिये हे पुरुष ! (अमुया) इस मार्ग से चलते हुए (मातरम्) माता वा ज्ञान देने वाले गुरुरूप माता को (पत्तवे) पहुँचने अर्थात् उसे अपमानित करने का (मा कः) यत्न मत कर अर्थात् स्त्री पुरुष के सामान्य धर्म द्वारा माता से सन्तान उत्पन्न करने की चेष्टा न करे ।

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥

भा०—(अहम्) मैं जीव (अतः) इस पूर्वोक्त स्त्री पुरुषों के परस्पर संग वा मैथुन धर्म से उत्पन्न होने वा मरने के मार्ग से (न निर अय) नहीं निकल सकता । (तिरश्चता) तिर्यक् मार्ग से मनुष्योत्तर पशु पक्षी रूप से उत्पन्न होकर भी (एतत्) यह जन्म, जीवन-मार्ग (दुर्गहा) दुःख से प्राप्त होने और बीतने योग्य होता है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि

(पार्श्वात्) एक पासे से (निः गमानि) निकल जाऊं। अर्थात् जन्म मरण के तांते को छोड़कर किनारे हो जाऊँ। चाहता हूँ कि (मे) मुझे (बहूनि) बहुत से (कर्त्वानि) कर्म (अकृता) नहीं करने पड़ें। इस जीवन में (त्वेन युध्यै) किससे लड़ें और (त्वेन) किस एक से (सं पृच्छै) पूछें। जीवन-मार्ग के संग्राम में किससे लड़ें किससे विनयानुनय करें यह सब झमेला है। अच्छा है कि इस संसार-मार्ग के किनारे हो जायं।

परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (परायतीं) परलोक जाती हुई (मातरम् अनु अचष्ट) माता को देख कर मोहवश कहता है कि (न न अनुगानि) न मैं इसके पीछे ही चला जाऊं, न ? अर्थात् चला ही जाऊं (अनु नु गमानि) क्यों चला जाऊं ? न जाऊं। इस प्रकार तर्क से निर्धारण करके बाद (त्वष्टुः गृहे) ज्ञान प्रकाशक गुरु और उत्पादक पिता के घर में (चम्वोः सुतस्य) माता पिता व पुत्र पद पर रहकर (शतधन्यं सोमम्) सैकड़ों धनों से युक्त ऐश्वर्य का (अपिबत्) भोग करता है। वैसे ही (इन्द्रः) यह जीव (परायतीम्) दूर जाती हुई (मातरम्) जगत् निर्माण करने वाली माता, प्रकृति को (अनु अचष्ट) विवेक पूर्वक देखे, (न न अनुगानि) क्यों न इसके पीछे अनुगमन करूं (नु अनुगानि) और क्यों इसके पीछे जाऊं, क्यों प्रकृति बन्धन में पड़ूं, और क्यों न पड़ूं, ऐसा विवेक प्राप्त करके यह आत्मा (त्वष्टा) संसार के निर्माता परमेश्वर के (गृहे) शरण में जाकर (चम्वोः सुतस्य) प्राण और अपान दोनों के बीच में उत्पन्न (सोमम्) अध्यात्म रस का पान करे।

किं स ऋधंक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषुत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥

भा०—(मासः) वर्ष के १२ मास और (पूर्वी शरदः) पुरातन सब

वर्ष (मासः) जगत् को बनाने वाली प्रकृति और (पूर्वीः शरदः च) सब पूर्व विद्यमान नाशकारिणी शक्तियां (यं सहस्रं) जिस सर्वातिशय बलशाली को (जभार) धारण करती हैं (सः) वह परम आत्मा (किम्) क्या २ (ऋधक्) विभूति युक्त महान् कार्य (कृणवत्) किया करता है। (अस्य) इसके (प्रतिमानं) मुकाबले का (जातेषु अन्तः) उत्पन्न हुए पदार्थों में से (नहि नु अस्ति) कोई नहीं है (उत) और (ये जनित्वाः) जो भविष्य में उत्पन्न होंगे उनमें से भी इसके बराबरी का कोई नहीं है।

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम्।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५॥२५

भा०—(माता) जगत् को बनाने वाली प्रकृति (इन्द्रं) उस महान् आत्मा को (अवद्यम् इव) वाणी से न कहने योग्य और (वीर्येण) संसार को विविध प्रकार से गति देने में समर्थ बल से (नि ऋष्टं) पूर्ण (मन्यमाना) मानती हुई (गुहा अकः) उसको भीतर अदृश्य रूप से धारण करती (अथ) और अनन्तर वह परमेश्वर (स्वयं) अपने महान् सामर्थ्य से (अत्कं वसानः) तेज को धारण करता हुआ, सूर्य तुल्य (उत् अस्थात्) सबसे ऊपर विद्यमान रहता है और विश्व रूप से (जायमानः) प्रकट होता हुआ (रोदसी आ अपृणात्) आकाश और भूमि को पालता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव सङ्क्रोशमानाः।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥६॥

भा०—(ऋतावरीः इव) जैसे जलपूर्ण नदियां (अलला भवन्तीः) कलकल करती हुई जाती हैं और (ऋतावरीः इव) जैसे उषाएं (अलला भवन्तीः) पक्षियों की अव्यक्त ध्वनि करती हुई (अर्षन्ति) आती हैं वैसे ही (एतत्) ये (ऋतावरीः) 'ऋत' सत्य कारण परमेश्वर की शक्ति की धारक सब विकृतियें (अलला भवन्तीः) मनोहर ध्वनि करती हुईं वा आश्चर्य-

जनक होती हुईं (अर्षन्ति) प्रकट होती हैं और (संक्रोशमानाः) बड़े प्रकट शब्दों से कुछ पुकार रही हैं। हे विद्वान् पुरुष ! (एताः वि पृच्छ) इनसे तू विशेष रूप से पूछ कि ये (इदं किम् भनन्ति) यह क्या कह रही हैं ? (कम्) क्या (आपः) जलधाराएं (परिधिं अद्रिं) अपने को धारण करने वाले मेघ वा पर्वत को स्वयं (रुजन्ति) तोड़ कर बाहर निकलती हैं ? और क्या (आपः) व्यापक उपाएं अपने धारक (अद्रिं) मेघ तुल्य अन्धकार को स्वयं तोड़ती हैं ? वैसे ही क्या (आपः) ये समस्त प्राण एवं प्राणी गण (अद्रिं) पर्वतवत् अभेद्य (परिधिम्) अपने धारक इस स्थूल देह वा जड़ प्रकृति तत्व को स्वयं (रुजन्ति) पीड़ित एवं भग्न करते हैं ? नहीं।

किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७॥

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्रस्य) जगत् के द्रष्टा परमेश्वर के विषय में (निविदः) वेदवाणियां (किम् उ भनन्त) क्या कहती हैं ? यही कि (आपः) प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म परमाणु (अस्मै) इस परमेश्वर के (अवद्यं) अकथनीय सामर्थ्य को (दिधिषन्त) धारण करते हैं। (मम पुत्रः) मुझ प्रकृति का पुत्र अर्थात् मुझ में प्रकट होने वाला जीवों का त्राता, परमेश्वर, (महता वधेन) भारी गतिशील शक्ति से (वृत्रं) सबके आवरक कारण रूप 'तमस् वा सलिल' को (जघन्वान्) मेघ को विद्युत् के तुल्य ताड़ित करता हुआ (सिन्धून्) जल प्रवाहों के तुल्य अनवरत वेग से जाने वाले रजः प्रवाहों, निहारिका नदियों को (असृजत्) रचता और चलाता है।

ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥८॥

भा०—हे परमेश्वर ! (ममत् चन युवतिः) हर्षयुक्त युवती स्त्री के तुल्य प्रकृति तुझसे मिलती हुई या जड़ होने से पृथक् रहती हुई भी (परा आस) तुझ चेतन ब्रह्म से बहुत दूर, भिन्न ही रहती है। (कु सवा)

कुत्सित, दुःख से पूर्ण जगत्-सर्ग को उत्पन्न करने वाली वह प्रकृति (ममत् चन) हर्षयुक्त स्त्री के तुल्य ही (त्वा जगार) तुझे ही मानो निगले हुए है। (आपः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु भी मानो (ममत् चन) हर्षित होकर ही (शिशवे) शिशु को माताओं के तुल्य सर्वव्यापक तुझको ही (ममृड्युः) प्रसन्न करते हैं और तू (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आत्मा भी (ममत् चित्) हर्षयुक्त पुरुष के तुल्य (सहसा) अपने परम, अतिशायी बल से (उत् अतिष्ठित्) सबके ऊपर विद्यमान है।

ममच्चन तें मघवुन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनूं जुघान ।
अधा निविंद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (ममत् चन) मदयुक्त होकर ही (व्यंसः) विविध स्कन्धों, नाना सैन्य-कटकों से बलशाली होकर कोई शत्रु (निविविध्वान्) विविध प्रकार से ताड़ता हुआ यदि (ते) तेरे (हनू) हनन करने वाली दायें बायें दोनों ओर की सेनाओं को (अप जघान) विनाश करे तब तू (निविद्धः) खूब ताड़ित होकर उससे (उत्तरः) अधिक बलशाली (बभूवान्) होकर (दासस्य) प्रजा के नाश करने वाले उसके (शिरः) उत्तम अंग, मुख्य भाग को (वधेन) शस्त्र बल से (सं पिणक्) अच्छी प्रकार पीस डाल।

गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१०॥

भा०—(गृष्टिः) गौ जैसे (वत्सं वृषभं ससूव) बछड़े और बलवान् बैल को जन्म देती है वैसे ही (गृष्टिः) उपदेश करने वाली वेद वाणी (इन्द्रं) उस परमेश्वर को (स्थविरं) सबसे महान्, स्थिर ध्रुव (तवागाम्) सर्वशक्तिमान् (अनाधृष्यम्) सर्वविजयी, (तुम्रम्) सबका प्रेरक (अरीळ्हं) अविनाशी, (वत्सं) सबमें बसने वाले, (स्वयं गातुं) स्वयं अपने बल

से व्यापने वाले (तन्वे) विस्तृत संसार को प्रकट करने के लिये (इच्छमानं) इच्छा रूप संकल्प करने वाले प्रभु को (चरथाय) कर्म फल देने के लिये (ससूव) सर्वेश्वर रूप से बतलाता है।

उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११॥

भा०—और (माता) सबको उत्पन्न करने वाली यह माता पृथिवी (महिषम्) महान् ऐश्वर्य भोक्ता पुरुष की (अनु अवेनत्) सदा अनुकूल होकर कामना करे, (त्वा) तुझको देखकर हे (पुत्र) दुःखों से त्राण करने वाले राजन्! (अमी देवाः) ये सब विजयेच्छुक वीर लोग (त्वा) तुझे ही (जहति) प्राप्त होते हैं। (अथ) अनन्तर (वृत्रम्) बढ़ते हुए शत्रु को (हनिष्यन्) मारने का इच्छुक (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष मित्रगण को (अब्रवीत्) आज्ञा दे, हे (सखे) मित्रगण ! हे (विष्णो) व्यापक शक्ति से युक्त ! तू (वितरं) अच्छी प्रकार (वि क्रमस्व) विक्रम कर।

कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम्।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! ऐसा तेरा कौन सा शत्रु है (यत्) जो (पादगृह्य) चरणों से पकड़ कर (ते पितरं) तेरे पालक को (प्र अक्षिणाः) अच्छी प्रकार नाश कर सके और (कः) कौन है जो (ते मातरम्) तेरी माता को (विधवाम् अचक्रत्) विधवा, पतिहीन कर सके। (चरन्तं) विहार करते हुए और (शयुं त्वाम्) शयन करते हुए भी (त्वाम्) तुझको (कः अजिघांसत्) कौन नाश कर सकता है और (ते) तेरे (मार्डीके) सुख देने वाले राज्य में (कः देवः) राज्याभिलाषी है जो (अधि आसीत्) अध्यक्ष पद पर स्थित हो सके। तू पिताओं के चरण धोकर आशीर्वाद लेकर अपने शत्रुजनों को (प्र अक्षिणाः) विनाश कर।

अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्।

अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार॥१३॥२६॥५॥

भा०—अध्यात्मदर्शी कहता है, (अवर्त्या) जन्म मरण के व्यापार से रहित मैं (शुनः) सुखस्वरूप होकर, (आन्त्राणि) ज्ञान कराने वाले गुह्य साधनों को (पेचे) परिपक्व करूं। (देवेषु) पृथिवी सूर्यादि एवं विषय के अभिलाषी इन्द्रियों के बीच में (मर्डितारम्) किसी को भी परम सुख देने वाला (न विविदे) नहीं पाता हूँ और उन (देवेषु) विषयाभिलाषुक प्राणों में से एक को भी सुखप्रद नहीं पाता हूँ। अनन्तर (जायाम्) संसार उत्पन्न करने वाली प्रकृति को भी मैं (अमहीयमानाम्) महती परमेश्वरी शक्ति के तुल्य (अपश्यम्) नहीं देखता हूँ। इतना ज्ञान कर लेने के अनन्तर (श्येनः) ज्ञानस्वरूप प्रभु परमेश्वर (मे) मुझे (मधु) परम मधुर ब्रह्मज्ञान (आजभार) प्रदान करता है। इति षड्विंशो वर्गः॥

इति पञ्चमोऽध्यायः

अथ षष्ठोऽध्यायः

[१९] वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ५, ८ त्रिष्टुप्। ४, ९ भुरिक् पंक्तिः। ७, १० पंक्तिः॥ ११ निचृत्पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं को मारने हारे! हे (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र बल के स्वामिन्! (अत्र) इस राष्ट्र में (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जन (सुहवासः) उत्तम यज्ञ, युद्धादि करने हारे वीर पुरुष (ऊमाः) रक्षक लोग (वृत्रहत्ये) बढ़ते हुए शत्रु को दण्डित करने के लिये (उभे रोदसी) राजा प्रजा दोनों वर्गों में (महां वृद्धम्) गुणों और शक्ति में महान् वृद्ध,

(ऋष्वं) सर्वद्रष्टा (एकम्) अद्वितीय जानकर (त्वाम् इव) तुझको (नि वृणते) सब प्रकार से वरण करते हैं।

अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥

भा०—(जिव्रयः देवाः न) जीवनदाता सूर्य-किरण जब (अव असृजन्त) नीचे भूतल पर आते हैं तब (सम्राट् सत्ययोनिः) देदीप्यमान सूर्य मेघ का उत्पादक होता है और वह (परिशयानम् अहिम् अहन्) फैले हुए मेघ को आघात करता है, (अर्णः) जल (विश्वधेनाः वर्त्तनीः अरदः) सबको तृप्त करने वाले जल-मार्गों को बना लेता है वैसे ही (जिव्रयः) विजयशील (देवाः) तेजस्वी पुरुष (अव असृजन्त) प्रयाण करें और (सत्ययोनिः) सत्य का आश्रय रूप राजा (भुवः) इस भूमि का (सम्राट्) महाराज हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (परिशयानम्) सर्वत्र फैले (अहिम्) सामने से आघात करने वाले, विघ्नकारी शत्रु को (अहन्) विनष्ट करे और (अर्णः) जल के समान शीतल स्वभाव होकर तू (विश्वधेनाः) समस्त जगत् को आनन्द से तृप्त करने वाले (वर्त्तनीः) सुखदायक न्याय-शासनों को (प्र अरदः) अच्छी प्रकार बना।

अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य जैसे (वज्रेण) तेज से (आशयानम् अहिम्) व्यापक मेघ को छिन्न भिन्न करता है वैसे ही हे राजन् ! (अपर्वन्) 'पर्व' अर्थात् पालन और पूर्ण बल से रहित अवसर में (सप्त प्रवतः प्रति) नीचे की सातों प्रकृतियों को (आशयानम्) व्यापे हुए, सातों पर अधिकार किये हुए और (अतृप्णुवन्तम्) विषय विलासों से तृप्त न होने वाले, (वियतम्) अजितेन्द्रिय, (अबुध्यम्) अज्ञानी, (अबुध्यमानं) चेताने पर भी न चेतने वाले (सु-सुपानम्) खूब मदिरादि पान में मस्त, वा (सु सुपा-

नम्) निरन्तर सोने वाले असावधान, शत्रु को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वज्रेण) शस्त्रास्त्र बल से (वि रिणाः) विविध प्रकार से नष्ट कर।

अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

भा०—जैसे सूर्य (क्षाम) खोखले (बुध्नं) आकाश को (शवसा) सूक्ष्म तेज से (अक्षोदयत्) भर देता है, (नः) और जैसे (वातः) प्रबल वायु का झंकोरा (तविषीभिः) बलवती विद्युतों से (वाः) जल को छिन्न भिन्न कर बूंद २ कर देता है और (पर्वतानाम्) जैसे विद्युत् पर्वतों और मेघों के (ककुभः) शिखरों को (अभिनत्) तोड़ डालता है, वैसे ही (ओजः उशमानः) बल पराक्रम का साधक (इन्द्रः) शत्रुविजयी राजा शत्रु के (क्षाम) निर्बल (बुध्नं) राज्य प्रबन्ध, मोर्चे, वा गढ़ को (शवसा) अपने बल से (अक्षोदयत्) चूर २ कर दे और (वातः वार् न) जलों को वायु के तुल्य (तविषीभिः) बलवती सेनाओं से (वाः) घेरने वाले शत्रु बल को नष्ट करे। (दृढानि) वह शत्रु के दृढ़, मजबूत पुरों और सैन्यों को (औभ्नात्) मटियामेट कर दे और (पर्वतानाम्) पर्वतों वा मेघों के समान दृढ और शस्त्रवर्षी शत्रु राजाओं के (ककुभः) श्रेष्ठ पुरुषों को (अव अभिनत्) भेद नीति से तोड़ कर नीचे गिरा दे।

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (जनये गर्भं न) पुत्र को उत्पन्न करने वाली स्त्रियें जैसे अपने गर्भ से उत्पन्न बालक को लेने के लिये वेग से आगे बढ़ती हैं वैसे ही (जनयः) युद्धकारी वीर (गर्भम् अभि प्रदद्रुः) मुख्य पद ग्रहण करने वाले, सैन्यों की बागडोर संभालने वाले को लक्ष्य करके आगे बढ़ें और (रथा इव) रथों के समान वे (अद्रयः) शस्त्रधर पुरुष (साकं) एक साथ (प्रययुः) प्रयाण करें। हे राजन्! तू (विसृतः)

विविध मार्गों वा प्रकारों से चलने वाली सेनाओं वा प्रजाओं को (अत-र्पयः) अन्न वेतनादि से तृप्त कर। तू (ऊर्म्मीन्) प्रतिपक्ष को उखाड़ फेंकने वाले लोगों को (उब्ज) नीचा कर। (त्वं) तू (वृतान्) स्वीकार किये गये (सिन्धून्) महानदों के समान लम्बे शत्रु सैन्यों का (अरिणाः) नाश कर और अपने सैन्यों को सन्मार्ग पर चला। इति प्रथमो वर्गः॥

त्वं म॒हीम॒वनिं॑ वि॒श्वधे॑नां तु॒र्वीत॑ये व॒य्या॑य॒ क्षर॑न्तीम्।
अर॑मयो॒ नम॒सैज॒दर्णः॑ सुत॒रणाँ॑ अकृणोरिन्द्र॒ सिन्धू॑न्॥ ६॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः राजन्! तू (महीम्) बड़ी भारी (विश्व-धेनाम्) सबको आनन्द से तृप्त करने वाली (अवनिं) ज्ञान और रक्षा को देने वाली और (तुर्वीतये) शत्रुओं की हिंसा करने वाले और (वय्याय) रक्षा करने योग्य दोनों के लिये (क्षरन्तीम्) अन्न रस आदि गोमाता के समान क्षरण करती हुई, देती हुई वाणी और भूमि को (नमसा) दुष्टों को नमाने वाले दण्ड से (अरमयः) प्रसन्न कर और जहां (अर्णः) जल (एजत्) चले उन (सिन्धून्) वेगगामी महानदों को और उनके सदृश सैन्यों को भी (सुतरणान्) सुख से पार करने योग्य (अकृणोः) बना।

प्रा॒ग्रुवो॑ नभ॒न्वो॒३॒॑ न वक्वा॑ ध्व॒स्रा अ॑पिन्वद्युव॒तीर्ऋ॑त॒ज्ञाः।
धन्वा॒न्यज्राँ॑ अपृणक्तृषा॒णाँ अधो॒गिन्द्रः॑ स्त॒र्यो॒३॒॑ दंसु॑पत्नीः॥ ७॥

भा०—(इन्द्रः) मेघ वा सूर्य जैसे वृष्टि द्वारा (प्राग्रुवः) प्रबल वेग से जाने वाली (नभन्वः) आकाश से आने वा करारे तोड़ने वाली, (वक्वाः) वक्र गति से जाने वाली (ध्वस्राः) नगरादि का ध्वंस करने वाली, (ऋतज्ञाः) जलोत्पादक नदियों को (अपिन्वत्) सींचता, पूर्ण करता है। वैसे ही वह राजा (प्राग्रुवः) आगे बढ़ने वाली (नभन्वः) शत्रुओं को मारने वाली (वक्वाः) व्यूहादि से वक्र चलने वाली, (ध्वस्राः) शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाली, (ऋतज्ञाः) सत्य प्रतिज्ञा वाली (युवतीः) स्त्रियों के तुल्य ही उनको (अपिन्वत्) पूर्ण करे।

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥

भा०—जैसे सूर्य (वृत्रं) जगत् को घेरने वाले अन्धकार को (जघन्वान्) नष्ट करके (पूर्वीः उषसः शरदः च) सदा से चली आई उषाओं और शरत् आदि ऋतुओं को (वि असृजत्) विशेष रूप से प्रकट करता है और जैसे सूर्य वा विद्युत् (वृत्रं जघन्वान् सिन्धून् वि असृजत्) मेघ को आघात करके जलधाराओं को प्रकट करता है वैसे ही राजा (वृत्रं जघन्वान्) बढ़ते शत्रु वा विघ्नकारी बाधा को नष्ट करके (पूर्वीः उषसः) धनादि से पूर्ण, प्रजा की पालक, शत्रुओं को भस्म करने वाली और (गूर्ताः) उद्यमशील (शरदः) हिंसाकारिणी वीर सेनाओं को (वि असृजत्) विविध प्रकार से चलावे और (सिन्धून्) वेग से चलने वाले नदों के समान सैन्य के रथों, अश्वों को सञ्चालित करे। (इन्द्रः) विद्युत् जैसे (पृथिव्या) भूमि पर (स्रवितवे) बहने के लिये (सीराः अतृणत्) नदियों को काटता है वैसे ही वह शत्रुहन्ता राजा (बद्धधानाः) वधादि करने वाली (परिस्थिताः) चारों ओर खड़ी शत्रु-सेनाओं को (पृथिव्या) पृथिवी पर (सीराः स्रवितवे) रक्त की धाराएं बहाने के लिये (अतृणत्) मारे।

वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्यं१न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

भा०—हे (हरिवः) उत्तम अश्व सैन्यों के स्वामिन्! राजन्! (अग्रुवः) नदियें जैसे (वम्रीभिः) छोटी २ लहरों से (पुत्रं) अपने ही पुत्र रूप तट वा तटस्थ वृक्ष को उसके (निवेशनात्) स्थान से हर लेती हैं वैसे ही तू भी (अदानं) कर आदि न देने वाले (पुत्रम्) पुत्र तुल्य प्रिय पुरुष को भी (निवेशनात्) उसके पद से (आ जभर्थ) च्युत कर। (अहिम्) सामने से आक्रमण करने वाले मेघ तुल्य शत्रु को भी (अन्धः इव) अपने अन्न या भोज्य के तुल्य आहार को (वि अख्यद्) देखे और (उखच्छिद्)

शत्रु की गति को काट देने वाले (पर्वं) पालक सैन्य को (आददानः) लेता हुआ (निर्भूत्) बाहर निकल पड़े और (सम् भरन्त) समर करे। 'उख-च्छित् पर्वं' उखा हंडिया या दृढ़ पात्र में विस्फोटक पदार्थों को बन्द करके विषम घातक प्रयोग करने का वर्णन अथर्ववेद में आया है। 'पर्व' का अर्थ पोरु वाला काण्ड या शर है। बन्दूक, तोप, बाम्ब आदि सभी अस्त्र जो विस्फोटक पदार्थ के बल से अपने स्थान को भेदकर निकलें वे 'उख-च्छित्' हैं।

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्ताऽपांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥ १० ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन्! पुरुष! (यथायथा) जिस जिस प्रकार से (आविद्वान्) विद्याओं का ज्ञाता विद्वान् (ते विदुषे) तुझ विद्या लाभ करने वाले के हितार्थ (पूर्वाणि) पूर्व विद्यमान (करणानि) साधनों और (करांसि) करने योग्य कार्यों का (आह) उपदेश करे वैसे ही हे (राजन्) राजन्! तू (वृष्ण्यानि) बल उत्पादक (स्वगूर्त्ता) अपने ही उद्यम से साधने योग्य (नर्या) मनुष्यों के हितकारी (अपांसि) कर्मों को (आ विवेषीः) आदरपूर्वक स्वयं कर।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः। अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! नू (नू स्तुतः) अन्यों से निरन्तर स्तुति योग्य और (गृणानः) अन्यों को धर्म, न्यायानुकूल वचन का उप-देश करता हुआ (नद्यः न) नदियें जैसे तट पर बसे को अन्न आदि से पुष्ट करती हैं वैसे ही तू (जरित्रे) विद्वान् पुरुष को (इषं) अन्नादि से (पीपेः) पुष्ट कर। हे (हरिवः) पुरुषों और अश्वों के स्वामिन्! (ते) तेरे लिये यह (नव्यम्) नया, (ब्रह्म) ऐश्वर्य (अकारि) किया जाता है, हम तेरे अधीन

(धिया) उत्तम कर्म और उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (सदासाः) भृत्यादि सहित (रथ्यः) रथादि सम्पन्न होकर (स्याम) रहें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[२०] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ८, १० त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ७, ९ स्वराट् पंक्तिः। ११ निचृत् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (उग्रः) बलवान् (नृपतिः) सब मनुष्यों का पालक, (वज्रबाहुः) बाहुओं में शस्त्रास्त्र एवं बल वीर्य का धारक (समत्सु) संग्रामों में (ओजिष्ठेभिः) पराक्रमशाली, वीर पुरुषों द्वारा (पृतन्यून्) सेना लेकर युद्ध करने की इच्छा वाले बड़े २ सेनापतियों को (संगे) एक साथ प्रतिस्पर्धा में (तुर्वणिः) नष्ट करने हारा (दूरात् आसात्) दूर और समीप से भी (अवसे) हमारी रक्षा के लिये (नः) हमें (यासत्) प्राप्त हो।

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (अवसे) रक्षा और (राधसे च) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये (अर्वाचीनः) वर्त्तमान में भी (हरिभिः) पुरुषों सहित (नः अच्छ आयातु) हमें प्राप्त हो। (वज्री) शस्त्रास्त्रों का स्वामी (मघवा) धनैश्वर्य से सम्पन्न, (विरप्शी) महान् आज्ञापक, (वाजसातौ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (नः) हमारे (इमं) इस (यज्ञं) परस्पर संगति, राज्य प्रबन्ध को (अनु तिष्ठाति) विधिपूर्वक चलावे।

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारे (इमं) इस (यज्ञं) परस्पर के आदर और राज्यप्रबन्ध को (पुरः दधत्) सबके समक्ष धारण करे। तू (नः) हमें (क्रतुम्) उत्तम बुद्धि को (सनिष्यसि) दे सकेगा। हे (वज्रिन्) वीर्य बल से युक्त! (धनानां सनये) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (वयम्) हम सब (अर्यः) स्वामी होकर (त्वया) तेरे द्वारा (श्वघ्नी इव) जुआरी के समान (आजिम्) स्पर्धा के लक्ष्य को (जयेम) विजय करें।

उशन्नु षु णः सुमनां उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥

भा०—हे (स्वधावः) ऐश्वर्य से युक्त ! तू (सुमनाः) शोभाचित्त और प्रशंसनीय ज्ञान से युक्त होकर (नः) हमारे समीप (सुसुतस्य सोमस्य) उत्तम रीति से आदरपूर्वक प्रदत्त (सोमस्य) ऐश्वर्य और (प्रतिभृतस्य) प्रत्येक पुरुष से धारण योग्य (मध्वः) मधुर अन्न का भी तू ही (पाः) पालन एवं उपभोग कर और (पृष्ठ्येन) पीछे से, वा आनन्द सेचक (अन्धसा) जीवनप्रद उस अन्न से तू (संममदः) अच्छी प्रकार हर्षित हो।

वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता।
मर्यो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५॥३॥

भा०—(यः) जिसकी (नवेभि- ऋषिभिः) नये अध्येता, ज्ञानद्रष्टा पुरुष भी (ररप्शे) स्तुति करते हैं। जो (पक्वः वृक्षः न) पके वृक्ष के समान मधुर फलों का दाता और (सृण्यः जेता न) वेग से जाने वाली सेना वा आयुधों के सञ्चालन में कुशल पुरुष के तुल्य (जेता) समरविजयी, (योषाम्) युवति को (अभि मन्यमानः) प्रिय मानने वाले (मर्यः न) पुरुष के समान प्रजा को अपना मानता हो, उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (पुरुहूतम्) बहुतों से स्तुत्य पुरुष को (अच्छ विवक्मि) मैं बहुस्तुत्य 'इन्द्र' नाम से पुकारता हूँ। इति तृतीयो वर्गः॥

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (गिरिः न) मेघ के समान (स्वतवान्) ऐश्वर्यों से उन्नत (ऋष्वः) महान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सनात् एव) सदा से (सहसे) पराभवकारी बल से (उग्रः) उग्र, (जातः) रूप से प्रसिद्ध होता है और जो (भीमः न) भयङ्कर होकर (स्थविरं) स्थूल (वज्रं) बल एवं शस्त्रास्त्र को (आदर्त्ता) आदरपूर्वक स्वीकार करता है और जो (उद्ना कोशं इव) जल पूर्ण मेघ के तुल्य (वसुना) धनैश्वर्य से (नि ऋष्टं) पूर्ण (कोशं) खजाने को (आदर्त्ता) धारण करता है वह (इन्द्रः) 'इन्द्र' कहाने योग्य है।

न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिसका (जनुषा उ) जन्म से ही (वर्त्ता न अस्ति) निवारक कोई नहीं है और जिसके (मघस्य) ऐश्वर्य और (राधसः) धनादि का भी (आमरीता न) नाशक नहीं है। हे (तविषीवः) सेना के स्वामिन्! हे (उग्र) बलवन्! हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुत्य! तू (उद्वावृषाणः) उत्तम सुखों को मेघवत् वर्षाता हुआ (अस्मभ्यं) हमें (रायः) नाना धनों को (दद्धि) दे।

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम्।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥८॥

भा०—तू (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (क्षयस्य) निवासस्थान, राष्ट्र को (ईक्षे) स्वयं देखता है। (उत) और (गोनाम्) वाणियों, भूमियों के बीच (व्रजम्) जाने योग्य उत्तम पुर आदि को, गौओं के बाड़े को गोपाल के समान (अपवर्त्तासि) रक्षा करने वा खोलने वाला है। तू (समिथेषु) संग्रामों में (शिक्षा नरः) सब मनुष्यों का शिक्षक, दण्ड नायक! और

प्रहावान्) प्रेरणा करने हारा और (वस्वः) राज्य में बसे प्रजाजन के (भूरिम् राशिम्) बहुत बड़े समूह को (अभिनेता) लाने और ले चलने हारा नायक (असि) है।

कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९ ॥

भा०—(तत्) वह राजा वा परमेश्वर (शचिष्ठः) सबसे अधिक शक्ति और वाणी से युक्त, सर्वशक्तिमान्, (कया शच्या) किस वाणी, शक्ति और बुद्धि से युक्त है। उत्तर—(यया) जिससे (ऋष्वः) वह महान् (का चित्) कई, अनेक कार्य (मुहु) वार २ (कृणोति) करता है और (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वा कर आदि देने वाले प्रजाजन और स्तुति कर्त्ता विद्वान् के लिये (पुरु अंहः) बहुत सा पाप, अपराध (विचयिष्ठः) दूर कर देता है, (अथ) और उसके बाद (द्रविणं) ऐश्वर्य भी (दधाति) देता है।

मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (नः) तू हमें (मा) मत (मर्धीः) विनष्ट कर। (दातवे) तेरे प्रति समर्पण करने वाले जन के लिये (यत् ते) जो तेरा (दातवे) देने योग्य (भूरि) बहुत सा है (तत् आभर) उसी को प्राप्त करा और (नः दद्धि) हमें दे। (अस्मिन्) इस (नव्ये) उत्तम, (देष्णे) दान योग्य, (शस्ते) प्रशस्त (ते) तेरे (उक्थे) वचन में रहते हुए (वयम्) हम लोग (स्तुवन्तः) गुण गाते हुए, (प्र ब्रवाम) अच्छी प्रकार बतावें।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥४॥

भा०—व्याख्या पूर्व सूक्त १९। ११ में देखो ॥ इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२१] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, १० भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराड् पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (शूरः) वीर, शत्रु नाशक, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (स्तुतः) गुणों द्वारा प्रशंसित राजा (नः) हमारी (अवसे) रक्षा के लिये (उप आयातु) प्राप्त हो । वह (वावृधानः) बढ़ता हुआ (नः) हमारे साथ (सधमात् अस्तु) हर्षित होने वाला हो । (यस्य) जिसकी (पूर्वीः) पहले से विद्यमान, राष्ट्र पालन में कुशल, (तविषीः) सेनाएं हों और (क्षत्रम्) बल (द्यौः नः) सूर्य प्रकाश के समान (अभिभूति) सबको पराजित करने वाला होकर (पुष्यात्) राष्ट्र को पुष्ट करे ।

तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥२॥

भा०—जैसे सूर्य का (क्रतुः) वर्षण आदि कार्य (कृष्टीः अभि अरति) कृषक प्रजाओं को सुखकारी होता है वैसे ही (यस्य) जिसका (क्रतुः) राज्य पालन आदि कर्म (विदथ्यः) यश और श्री के लाभ के योग्य (सम्राट् न) प्रकाशमान् सूर्य के तुल्य, (साह्वान्) सबको पराजित करने वाला, (तरुत्रः) दुःखों से तराने वाला, (कृष्टीः अभि अस्ति) कृषिकर प्रजा के लिये सुखकारी और प्रजा का कर्षण, पीड़न करने वाले दुष्टों को (अभि अस्ति) पराजित करने वाला होता है । हे विद्वान् पुरुषो ! आप (तुविद्युम्नस्य) बहुत ऐश्वर्य के स्वामी, (तुविराधसः) बहुत साधनों वाले (तस्य इत्) उसके ही (वृष्णयानि) सुखों की वर्षा और उनका प्रबन्ध करने वाले बलों और (नॄन्) उसके मुख्य नायकों के (स्तवथ) गुण वर्णन करो ।

आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात्।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (मरुत्वान्) वायुगणों सहित (दिवः) आकाश से सूर्य के समान तेजस्वी होकर (मक्षु) शीघ्र (आयातु) हमें प्राप्त हो। (पृथिव्या) वह हमें भूमि से सुवर्णादि वा अग्नि के तुल्य (आ) प्राप्त हो। (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से विद्युत् के तुल्य प्राप्त हो, (पुरीषात्) जल में से विद्युत्वत् 'पुरीष' अर्थात् ऐश्वर्य में से प्राप्त हो। वह पुरुष (स्वर्नरात्) सूर्यवत् प्रतापी नायक समूह में से (वा) और (परावतः) दूरस्थ देश से और (ऋतस्य सदनात्) न्याय के स्थान से भी (नः) हमारी (अवसे) रक्षा के लिये (आयातु) हमें प्राप्त हो।

स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम्।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥४॥

भा०—(यः) जो वीर (बृहतः) बड़े (स्थूरस्य) भारी (रायः) धनैश्वर्य का (ईशे) स्वामी है हम (तम् उ इन्द्रम्) उस शत्रुहन्ता की (विदथेषु) संग्रामों के अवसरों में (स्तवाम) स्तुति करें। (यः) जो (वायुना) वायुसमान तीव्र गति से जाने वाले बल से (गोमतीषु) सेनाओं के आधार पर (जयति) विजय करता है और (धृष्णुया) शत्रुओं का पराजय करने वाले सैन्यों को (प्र नयति) आगे बढ़ाता और (वस्यः) अति श्रेष्ठ धन (अच्छ) प्राप्त कराता है।

उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो राजा (नमसि) अन्यों का आदर, शत्रु नमाने का साधन बल और शस्त्रादि के आश्रय पर (नमः) स्वयं अन्यों के आदर, शत्रु नमाने वाले बल आदि को (स्तभयन्) वश करता हुआ (यजध्यै)

मैत्री, सत्संग करने के लिये (वाचं जनयन्) वाणी को प्रकट करता हुआ (इयर्त्ति) अन्यों को प्रेरित करता है वह (अञ्जसानः) सबको वश करता हुआ, (पुरुवारः) बहुतों से वरण करने और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाला, (होता) सब ऐश्वर्यों का दाता है उसको (सदनेषु) उत्तम पदों पर (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त अध्यक्ष (आ कृण्वीत) बनाओ । इति पञ्चमो वर्गः ॥

धि॒षा यदि॑ धिष॒ण्यन्तः॑ सर॒ण्यान्त्सद॑न्तो॒ अद्रि॑मौशि॒जस्य॒ गोहे॑ ।
आ दु॒रोषाः॑ पा॒स्त्यस्य॒ होता॒ यो नो॑ म॒हान्त्सं॒वर॑णेषु॒ वह्निः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यदि) जब (औशिजस्य) धनादि की कामना वाले पुरुष के (गोहे) गृह में (सदन्तः) उत्तम पदों पर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए दरबारी लोग (अद्रिम्) शत्रुओं के नाशक और स्वयं न डरने वाले पुरुष को (धिषा) उत्तम बुद्धि या वाणी से (धिषण्यन्तः) स्तुति करते हुए (तम् सरण्यान्) उसको प्राप्त हों तो (यः) जो (नः) हमारे लिये (संवरणेषु) आच्छादित अन्धकार पूर्ण स्थानों में (वह्निः) अग्नि समान तेजोमय होकर हमें ले चलने हारा है वह (पास्त्यस्य) गृहों में बसी प्रजा के हित-कारक, ऐश्वर्य का (होता) दाता (दुरोषाः) दुस्तर क्रोध या तेज से युक्त होकर भी हमारे प्रति (दुरोषाः) क्रोध रहित होकर हमें (आ) प्राप्त हो ।

स॒त्रा यदीं॑ भार्व॒रस्य॒ वृष्णः॒ सिष॑क्ति॒ शुष्मः॑ स्तुव॒ते भरा॑य ।
गुहा॒ यदी॑मौशि॒जस्य॒ गोहे॒ प्र यद्धि॒ये प्राय॑से॒ मदा॑य ॥ ७ ॥

भा०—(भार्वरस्य वृष्णः शुष्मः) सबके पालक पोषक सूर्य का बल (सत्रा स्तुवते भराय) सचमुच स्तुतिकर्त्ता जीवनगण के भरण पोषण के लिये (ईं सिषक्ति) जल सेचन करता है वैसे ही (भार्वरस्य वृष्णः) समस्त राष्ट्र के पोषक बलवान् पुरुष का (शुष्मः) शत्रु का शोषक बल, वा उद्योग भी (यत्) जब (ईं) इस राष्ट्र को (सिषक्ति) प्राप्त होता है तो वह (सत्रा) सचमुच, (स्तुवते) राजा से प्रार्थना करने वाले प्रजाजन के

(भराय) भरण के लिये होना चाहिये और (औशिजस्य) तेजस्वी राजा की (गुहा) बुद्धि में (यत्) जो विचार हों और (यत् गोहे) जो एकान्त स्थान में मन्त्रणा हों वे (सत्रा) सदा (ईम्) राष्ट्र के (धिये प्र) उत्तम कर्म करने और (अयसे प्र) उत्तम मार्ग पर बढ़ने और (मदाय प्र) सबके हर्ष के लिये (सिषक्ति) प्राप्त हो।

वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्योऽवहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—जैसे विद्युत् मेघ के द्वार को खोलता है तब जलों के वेगवान् स्रोतों को बढ़ा देता है वैसे ही (यत्) जब राजा (पर्वतस्य) पर्वत प्रदेश के (वरांसि) आवृत या घिरे हुए स्थानों को (वि वृण्वे) खोले तब उनमें एकत्र हुए (पयोभिः) जल-राशियों से (अपां) जलों के (जवांसि) वेग से बहने वाले प्रवाहों को (जिन्वे) बढ़ावे और (यदी) जब (सुध्यः) उत्तम कर्मकर्त्ता लोग (वाजाय) अन्न प्राप्त करने के लिये (वहन्ति) खेत में हल बाहें तब (गोहे) अन्न को बचाने के लिये (गौरस्य गवयस्य) गवय हरिण और नीलगाय इन खेती नाशक पशु जातियों का (विदद्) भी ध्यान रक्खें। अथवा—(सुध्यः यदि वाजाय वहन्ति) बुद्धिमान् लोग वेग वृद्धि के लिये रथादि चलावें तब (गौरस्य गवयस्य विदत्) हरिण और नीलगाय के जाति के पशु को प्राप्त करें, उनका उपयोग करे।

भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! हे सुख आदि देने हारे! (ते हस्ता) तेरे दोनों हाथ (भद्रा) कल्याण और सुख करने वाले, (उत) और (पाणी) दोनों बाहुएं (सुकृता) उत्तम काम करने में कुशल और (स्तुवते) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के उपकार के लिये (राधः) धनैश्वर्य (प्रयन्तारा) खूब देने हारे हों। तू विचार कर कि (ते निषत्तिः का) उच्च पद पर तेरी क्या

स्थिति है, तू (दातवा) दान देने के लिये भला (किम् उ नो ममत्सि) क्यों न प्रसन्न हो (किम् उ नोडद् उद् हर्षसे उ) और क्यों न तू खूब हर्षित हो।

एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता, राजा (सत्यः) सज्जनों के बीच सज्जन, (वस्वः) ऐश्वर्य और राष्ट्र में बसी प्रजा का (सम्राट्) महाराजाधिराज, (वृत्रं हन्ता) मेघनाशक विद्युत् के तुल्य विघ्नकारी, दुष्ट पुरुष को दण्डित करने वाला, (पूरवे) ऐश्वर्य को पूर्ण करने और अपने बनाये राजनियमों के पालक प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वरिवः कः) नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करे। हे (पुरुस्तुत) बहुतों से प्रशंसित राजन्! (नः) हमें (क्रत्वा) योग्यता वा कर्म कौशल के अनुसार (रायः) धन या वेतनें (शग्धि) प्रदान कर। मैं प्रजाजन (ते) तुझ (दैव्यस्य) दानशील पुरुष के (अवसः) रक्षा और उत्तम व्यवहार का (भक्षीय) उपभोग करूं।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥११।६।२॥

भा०—व्याख्या मं० ४। २०। ११ में ॥ इति षष्ठो वर्गः। इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[२२] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, १० निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४ विराट् त्रिष्टुप्। ६, ७ त्रिष्टुप्। ८ भुरिक् पंक्तिः। ९ स्वराट् पंक्तिः। ११ निचृत् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति॥१॥

भा०—(यत् इन्द्रः) जो ऐश्वर्यवान् पुरुष, राजा (नः जुजुषे) हमें प्रेम करता है (यत् च वष्टि) जो हमें चाहता है और (यः) जो (शवसा

अस्मानं) जल सहित विद्युत् वाले मेघ के समान (शवसा अश्मानं बिभ्रत्) बल सहित वज्र या शस्त्रास्त्र सैन्य को धारण करता हुआ (एति) प्राप्त होता है (तत्) वह (महान् शुष्मी) बड़ा बलवान् (नः) हमारे लिये (ब्रह्म) वेद विज्ञान, बड़ा ऐश्वर्य, (स्तोमं) स्तुति योग्य बल, (सोमम्) सन्तान और (उक्था) उत्तम वचन (आ करति चित्) आदर पूर्वक दे ।

वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

भा०—(वृषा) बलवान् (उग्रः) शत्रुओं में उद्वेग उत्पन्न करने वाला, (नृतमः) नायकों में श्रेष्ठ, (शचीवान्) प्रज्ञा और प्रजा का स्वामी, (श्रिये) शत्रु को तपाने वाली राक्ष्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये, (ऊर्णाम्) आच्छादन करने वाली, ऊन की बनी (परुष्णीम्) पर्व पर्व पर उष्ण वस्त्र के समान (ऊर्णाम् परुष्णीम्) राष्ट्र को आच्छादन करने और व्यापने वाली वा नाना पर्व अर्थात् विभागों से युक्त उस सेना और प्रजा को (यस्याः) जिसके (पर्वाणि) पालक सामर्थ्यों या विभागों को (सख्याय) मैत्रीभाव के लिये (विव्ये) चाहता और सुरक्षित करता है उसको (उषमाणः) बसाता और धारण करता हुआ (वृषन्धि) बलवान् पुरुषों के धारक (चतुरश्रिम्) चार स्कन्धों वाले चतुरंग बल को (बाहुभ्यां) बाहुओं से (अस्यन्) चौधारे खड्ग के समान चलावे ।

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी (देवतमः) विजिगीषुओं में श्रेष्ठ, (महद्भिः) बड़े २ (वाजेभिः) ऐश्वर्यों, बलों और (शुष्मैः) शत्रुशोषक सैन्यों से (महः) पूज्य और (जायमानः) प्रसिद्ध हो वह (बाह्वोः) बाहुओं में (उशन्तं) कान्ति से चमचमाते (वज्रं) खड्ग को (दधानः)

धारण करता हुआ (अमेन) बल से (द्याम्) आकाश को सूर्य के समान, (भूम) भूमि को (रेजयत्) कंपावे ।

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (ऋष्वात्) महान् परमेश्वर से (विश्वा रोधांसि) समस्त उन्नत लोक और (प्रवतः च) अधो लोक (पूर्वीः द्यौः क्षाः) सनातन से चले आये आकाश और भूमि सब (जनिमन्) जन्म लेते हैं और वह उन सबको (रेजत) सञ्चालित करता है। वैसे ही (ऋष्वात्) महान् राजा से (विश्वा रोधांसि) नदी के उच्छृङ्खल प्रवाहों को रोकने वाले तटों के समान प्रजाओं को उच्छृङ्खलता से रोकने वाले राज नियम और (पूर्वीः) सनातन से चली आने वाली प्रजाएं और (जनिमन्) उत्पन्न प्राणी, (द्यौः क्षाः) ज्ञानप्रकाशयुक्त और भूमि निवासी सामान्य प्रजाएं भी (रेजत) उसी से स्थिति लाभ करते और सञ्चालित होते हैं। वह (शुष्मी) बलवान् राजा (गोः) पृथिवी के (मातरा) राजा प्रजा दोनों वर्गों को (आभरति) पुष्ट करे। (वाताः) वायु के समान तीव्र बलशाली वीर और ज्ञानी पुरुष (परिज्मन्) आकाशवत् भूमि में (नृवत्) सज्जन और नायक के तुल्य (नोनुवन्त) उपदेश घोर तर्जनादि करें।

ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥५॥७॥

भा०—(यत्) जब हे (शूर) वीर ! तू (धृषता) शत्रु को पराजित करने में समर्थ (वज्रेण) बल से (अहिं) सन्मुख आये शत्रु को (दधृष्वान्) हराता हुआ (शवसा) बल से (आविवेषीः) राष्ट्र को व्याप लेता है, हे (धृष्णो) दृढ़ पुरुष ! (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तव (ते) तेरे (विश्वेषु सवनेषु इत्) समस्त ऐश्वर्य और राज्यशासनादि कार्यों में (ता) वे (महानि) बड़े बड़े काम (प्रवाच्या) उत्कृष्ट कहे जाने योग्य हों। इति सप्तमो वर्गः ॥

ता तू तें सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नंः।
अधां ह त्वद्वृषमणो भियानाः प्र सिन्धंवो जवंसा चक्रमन्त ॥६॥

भा०—हे (तुविनृम्ण) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामिन्! (ते) तेरे (तु) निश्चय से (ता) वे कार्य (सत्या) न्यायानुसार धर्मानुकूल हों। (ते वृष्णः) वे सुख के वर्षण करने वाले, बलवान् तेरे लिये (विश्वा धेनवः) समस्त वाणियें और प्रजाजन गौओं के समान (ऊध्नः) स्तनमण्डल से दुग्ध के समान (प्र सिस्रते) ऐश्वर्य प्रवाहित करें, तुझे दें। अन्तरिक्ष में विद्युतों के समान हे (वृषमणः) जलवान् दृढ़ चित्त वाले! (अध ह) निश्चय से (त्वत् भियानाः) तेरे से भयभीत होकर (सिन्धवः) महा नदों के तुल्य वेगवान् रथादि सैन्य (जवसा) वेग से (प्र चक्रमन्त) आगे बढ़ें।

अत्राहं ते हरिवस्ता उं देवीरवोंभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसांरः।
यत्सीमनु प्र मुचो बंद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥

भा०—हे (हरिवः) विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्यों के स्वामिन्! (यत्) जब तू (अत्र) इस राज्यकार्य में (दीर्घां प्रसितिम् अनु) बड़ी, चिरकाल तक स्थिर राज्य व्यवस्था के अनुकूल (स्यन्दयध्यै) वेग से आगे बढ़ने के लिये (बद्बधानाः) प्रबन्ध करने वाली समितियों और उत्तम प्रजाओं को (सीम् अनु प्र मुचः) उनके मनोनुकूल स्वतन्त्र कर देता है तब (ताः उ देवीः) वे तुझे चाहने वाली और ज्ञान-प्रकाश से युक्त प्रजाएं और विदुषी स्त्रियें (स्वसारः) परस्पर बहनों के समान प्रेम भाव से रहती और स्वयं उद्देश्य तक पहुंचती हुई (अवोभिः) राज्य रक्षण और प्रेमयुक्त व्यवहारों द्वारा (स्तवन्त) तेरी प्रशंसा करें।

पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः।
अस्मद्र्यंक्छुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥

भा०—(मद्यः) हर्षजनक (अंशुः) राज्य प्राप्त कराने वाला बल

(सिन्धुः न) महानद के तुल्य (त्वा आपिपीडे) तुझे प्राप्त हो और (शश-मानस्य) उद्वेगों और उपद्रवों को शान्त और उत्तम उपदेश करने वाले पुरुष की (शक्तिः) शक्ति और (शमी) कर्म भी (त्वा आ) तुझे प्राप्त हों। (आशुः) शीघ्रगन्ता पुरुष (न) जैसे (गोः तुव्योजसं रश्मिं यच्छति तथा) वेग से जाने वाले बलीवर्द के प्रबल रास को काबू रखता है वैसे ही (आशुः) राष्ट्र का भोक्ता राजा तू (शुशुचानस्य) तेजस्वी, (गोः) पृथिवी राष्ट्र के (तुव्योजसं) बहुत बल से साधने योग्य (रश्मिम्) बागडोर को (अस्मद्र्यक्) हमारे सन्मुख (यम्याः) निमन्त्रित कर।

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे (सहुरे) सहनशील राजन्! तू (अस्मे) हमारे (सत्रा) वस्तुतः, (वर्षिष्ठा) बहुत और (ज्येष्ठा) प्रशंसनीय (नृम्णानि) धन और (सहांसि) बल (कृणुहि) बना। (अस्मभ्यं) हमारे (वृत्रा) शत्रुओं को (सुहनानि) सुख से हनन करने योग्य कर और (रन्धि) उनका नाश कर। (वधः वनुषः) हत्या के साधन शस्त्रास्त्र को सेवने वाले (मर्त्यस्य) दुष्ट पुरुष को (जहि) दण्डित कर।

अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान्।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१०॥

भा०— हे (इन्द्र) विद्वन्! (त्वम्) तू (अस्माकम् इत्) हमारे वचन अवश्य (सु शृणुहि) अच्छी प्रकार सुन। (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (चित्रान्) आश्चर्यजनक (वाजान्) धनैश्वर्य और बल (उप माहि) प्रदान कर। (अस्मभ्यम्) हमें (विश्वाः) सब प्रकार की (पुरन्धीः) बहुत से ज्ञानों की धारक बुद्धियें और राष्ट्र की धारक समृद्धिएं (इषणः) दे और प्रेरित कर। तू (गोदाः) वाणी, ज्ञान-रश्मि और गौ आदि पशुओं

को देने हारे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्माकं) हमें (सु बोधि) उत्तम ज्ञानवान् बना ।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो॒३न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥११॥८॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १९ । ११ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३] वामदेव ऋषिः ॥ १—७, ११ इन्द्रः । ८, १० इन्द्र ऋतदेवो वा देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ७, ८, ९ त्रिष्टुप् । ४, १० निचृत त्रिष्टुप् । ५, ६ भुरिक् पंक्तिः । ११ निचृत्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥

भा०—(कस्य होतुः) किस धनादि दाता दानशील महापुरुष के (महान्) भारी (यज्ञं) मैत्रीभाव, उत्तम दान को (जुषाणः) प्रेमपूर्वक सेवन करता हुआ (कथा) कैसे (अवृधत्) बढ़े ? उत्तर—जैसे (ऊधः पिबन्) स्तनपान करता हुआ बालक बढ़ता है वैसे ही (सोमम् अभि पिबन्) 'सोम' शान्तिदायक ऐश्वर्य और ज्ञान का पान करता हुआ बढ़े । वह (उशानः) ज्ञान, ऐश्वर्यादि की कामना और (जुषमाणः) प्रेमपूर्वक सेवन करता हुआ (ऋष्वः) महान् होकर (अन्धः) उत्तम प्राण धारक अन्न को धारण करे । (शुचते धनाय) आत्मा को पवित्र करने वाले शुद्ध धन की प्राप्ति के लिये (ववक्षे) ज्ञान का प्रवचन करे वा धनादि प्राप्त करे ।

को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥२॥

भा०—(अस्य) इसके (सधमादम्) साथ आनन्द प्रसन्न होने का अवसर (कः) कौन (आप) प्राप्त करता है ? और (अस्य) इसके साथ (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों और विज्ञानवान् पुरुषों सहित (कः समा-

मंश) कौन सत्सङ्ग करता है ? मनुष्य जो उसका सत्सङ्ग और सहयोग भी करता है वह (अस्य) इसके (चित्रं) अद्भुत सामर्थ्य को (कत्) कब (चिकिते) जान पाता है ? (अस्य) इस (यज्वोः) सत्सङ्ग्योग्य, दाता एवं (शशमानस्य) उत्तम गुणों से प्रशंसित पुरुष की (ऊती) रक्षा, ज्ञान और सामर्थ्य से (वृधे) वृद्धि प्राप्त करने के लिये (कत्) कब (भुवत्) समर्थ होता है ?

कृथा शृंणोति हूयमा॑नुमिन्द्रः॒ कृथा शृ॒ण्वन्न॑व॑सामस्य वेद ।
का अ॑स्य पू॒र्वीरुप॑मातयो ह कृथैन॑माहुः पपु॑रिं जरि॒त्रे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा और विद्वान् आचार्य, (हूयमानम्) अपने से स्पर्धा करने वाले शत्रु के वचन और अपने प्रति दिये या सौंपे जाने वाले शिष्य के प्रति (कथा शृणोति) कैसे श्रवण करे ? और (शृण्वन्) सुनने वाला पुरुष (अस्य) इस राजा और विद्वान् के (अवसाम्) ज्ञानों और रथादि सामर्थ्यों को (कथा वेद) कैसे जाने ? (अस्य) इसकी (पूर्वीः) ऐश्वर्यपूर्ण, बहुतसी, पूर्वतः विद्यमान (उपमातयः) समीपस्थ शत्रु हनन-कारिणी सम्मति, अनुमति देने वाली (का) सेना, प्रजा और समिति क्या २ हों और विद्वान् की 'उपमति' अर्थात् ज्ञान शक्तियां क्या २ हों और (एनम्) इसको (जरित्रे) स्तुतिकर्त्ता पुरुष वा प्रजाजन के हितार्थ (पपुरिम्) पालक और पूरक (कथा आहुः) कैसे कहते हैं । यह सब बातें जानने योग्य हैं ।

कृथा स॒बाधः॑ शशमा॒नो अ॑स्य नश॑द॒भि द्रवि॑णं दीध्या॑नः ।
दे॒वो भु॑वन्नवे॑दा म ऋ॒ताना॒ं नमो॑ जगृ॒भ्वाँ अ॒भि यज्जुजो॑षत् ॥४॥

भा०—(सबाधः) नाना प्रकार की बाधाओं अथवा 'बाधा' ऊहा-पोह से युक्त (शशमानः) शम का अभ्यासी अनुशासन प्राप्त विद्यार्थी (दीध्यानः) ध्यान धारणा का अभ्यास करता हुआ (अस्य द्रविणं) इस राजा के ऐश्वर्य और गुरु वा प्रभु के ज्ञान-धन को (कथा अभिनशत्) कैसे

साक्षात् प्राप्त करे ? उत्तर—(नवेदाः देवः) बिलकुल न जानने वाला विद्या का इच्छुक शिष्य और (नवेदाः) सुवर्णादि धनों से रहित, निर्धन (देवः) धनाभिलाषी, (यत्) जब (मे नमः) मेरे लिये नमस्कार आदि सत्कार को (अभि जुजोषत्) प्रेमपूर्वक करता है तब वह (ऋतानां) सत्य ज्ञानों और अन्नादि धनों को (जगृभ्वान्) ग्रहण करने वाला (भुवत्) हो जाता है।

कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे ॥५॥९

भा०—(देवः) प्रकाशक प्रभु, विद्वान्, राजा (मर्त्तस्य) मनुष्य के (सख्यं) मित्र भाव को (कथा) कैसे और (कत्) कब (जुजोष) प्राप्त कर सकता है ? उत्तर—(अस्याः) इस (उषसः) प्रभात वेला के (व्युष्टौ) विशेष रूप से दीप्तिमान् होने पर अर्थात्—(१) परमेश्वर प्रातः वेला में भजन करने पर मनुष्य पर अनुग्रह करता है। (२) विद्वान् साधारण मनुष्य का कब और कैसे सख्य प्राप्त करता है ? (अस्याः उषसः व्युष्टौ) इस पापनाशक, तेजस्विनी वाणी के विशेष रूप से प्रकाशित होने पर। (३) देव, तेजस्वी राजा कब और कैसे मनुष्य प्रजा का सख्य प्रेम प्राप्त करता है ? उत्तर –(उषसः व्युष्टौ) शत्रु को दग्ध करने वाली सेनादि शक्ति के विशेष चमक जाने पर। (४) ऐसे ही (देवः) सूर्य इस मनुष्य का कब और कैसे अधिक मित्रता का पात्र होता है ? उत्तर—(उषसः व्युष्टौ) प्रभात वेला के चमकने पर। उस समय प्राभातिक किरणें और वायु सब रोगनाशक स्वास्थ्यप्रद होने से सेवनीय हैं और वही मरणशील प्राणी के परम मित्र हैं। (ये) जो (अस्मिन्) इसके आश्रय पर ही (सुयुजं) उत्तम रीति से योग देने वाले (कामं) अभिलाषा को (ततस्रे) विस्तारित करते हैं उन (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (कथा कत् अस्य सख्यं) कैसे और कब मित्रभाव होता है ? उत्तर वही है। (उषसः व्युष्टौ) प्रभात

वेला के चमकने पर, पापदाहक वाणी के प्रकाश होने पर और प्रभात में। इति नवमो वर्गः॥

किमादमंत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः॥६॥

भा०—हे विद्वन्! स्वामिन्! प्रभो! (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (आत्) अनन्तर (ते) तेरा (किम् कदा सख्यम्) क्या और कब कैसा और किस समय मित्र भाव और किस समय (भ्रात्रं) भाईपने का सा स्नेह हम (प्र ब्रवाम) बतलावें? उत्तर—(अमत्रं) अपने सहवासी की रक्षा करने वाला (अमात्रम्) और असीम (अस्य) इस (सुदृशः) दर्शनीय पुरुष का (वपुः) शरीर (श्रिये) श्री, शोभा और राज्यलक्ष्मी धारण करने योग्य हो और (अस्य सर्गाः) इसके सब उद्योग (स्वः सर्गाः न) सूर्य के उत्पादित मेघादि जल के तुल्य हो और (गोः) सबके नमन करने योग्य, उत्तम पुरुष की वाणी का स्वरूप भी (चित्रतमम्) अति आश्चर्यजनक, (गोः इषे) सूर्य की रश्मि का स्वरूप जैसे अन्न और वृष्टि के लिये होता है वैसे ही (इषे) अन्न की वृद्धि और प्रजाओं की कामना पूर्त्ति के लिये हो।

द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे॥७॥

भा०—(उग्रः) शत्रुओं को नष्ट करने में बलवान् पुरुष (द्रुहं) द्रोहकारिणी, (ध्वरसम्) हिंसा करने वाली (अनिन्द्राम्) ऐश्वर्यवान् राजा से रहित शत्रु सेना को (जिघांसन्) दण्ड देने की इच्छा करता हुआ, (तुजसे) प्रजा पालन और शत्रु नाश के लिये (तिग्मा अनीका) तीक्ष्ण स्वभाव के सैन्यों और शस्त्रास्त्रों को (तेतिक्ते) और अधिक तीक्ष्ण करे। (ऋणयाः ऋणा चित्) जैसे ऋण शेष करने वाला, अधमर्ण (ऋणा) लिये ऋण रूप धनों का अन्त कर देता है वैसे ही (नः) हमारा (उग्रः)

बलवान् राजा (दूरे) दूर विद्यमान (अज्ञाताः) अज्ञात (उषसः) उषाओं को सूर्य समान, शत्रु सेनाओं को (बबाध) पीड़ित करे।

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः॥८॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य ज्ञान वेद की (शुरुधः) अज्ञान को शीघ्र रोकने वाली (पूर्वीः) सनातन ज्ञान पूर्ण वाणियें (सन्ति) हैं। (ऋतस्य धीतिः) सत्य ज्ञान, वेद का अध्ययन, धारण और मनन (वृजिनानि) समस्त पापों को (हन्ति) नाश करता है। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (श्लोकः) वाणी, (शुचमानः) पवित्र करती हुई और स्वयं पवित्र, (बुधानः) उत्तम बोध प्रदान कराती हुई (आयोः) मनुष्य के (बधिरा कर्णा) बहरे कानों को भी (ततर्द) छेद देती है और उनमें भी प्रवेश करती है।

ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः॥९॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य के (दृढा) दृढ़ (धरुणानि) धारक आश्रय (सन्ति) हुआ करते हैं और (ऋतस्य वपुषे) सत्याचरण करने वाले शरीरधारी के (पुरूणि) बहुत से (चन्द्रा) आह्लादजनक (वपूंषि) नाना सहयोगी बन्धुजनों के शरीर भी उसे प्राप्त होते हैं। (ऋतेन) सत्याचरण द्वारा बुद्धिमान् लोग (दीर्घम् पृक्षः) जल से अन्न के तुल्य दीर्घकाल तक अन्नादि जीवन और शान्ति सुख (इषणन्त) प्राप्त करते हैं। (ऋतेन) सत्य ज्ञान वा सत्याचरण से (गावः) वाणियें भी (ऋतम्) सत्य स्वरूप परमेश्वर को (आ विवेशुः) प्राप्त करती हैं।

ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते॥१०॥

भा०—जैसे (ऋतं येमानः ऋतम् वनोति) जल को नियन्त्रण में

रखने वाला शिल्पी वा कृषक शक्ति वा अन्न को प्राप्त करता है वैसे ही (ऋतं) सत्याचरण को (येमानः) नियम पूर्वक पालन करता हुआ (ऋतम् इत्) सत्य बल को ही (वनोति) चाहा करता है। (ऋतस्य शुष्मः) जल वा अन्न का बल जैसे (तुरया गव्युः) अति शीघ्र भूमि, इन्द्रिय और वाणी को प्राप्त होता है वैसे ही (ऋतस्य शुष्मः) सत्याचरण और धन का बल (तुरया) शीघ्र ही (गव्युः) गो अर्थात् वाणी और पार्थिव सम्पदा की वृद्धि करता है। (ऋताय) अन्न और जल के उत्पन्न करने के लिये जैसे (पृथ्वी) भूमि और आकाश है वैसे ही (ऋताय) न्यायशील राजा के हितार्थ (पृथ्वी) भूमि और आकाश के समान विस्तृत (बहुले) बहुत ऐश्वर्य देने वाली (गभीरे) गम्भीर राजवर्ग और प्रजावर्ग (दुहाते) नाना ऐश्वर्य प्रदान करते हैं और (ऋताय) यज्ञ के लिये जैसे (परमे) उत्तम दोनों (धेनू) वाणी और गौ (दुहाते) दूध और ज्ञान प्रदान करती हैं वैसे ही (ऋताय) सत्य युक्त पुरुष और यज्ञादियुक्त राष्ट्र के लिये दोनों लोक, वाणी और क्रिया, प्रजा और सेना दोनों ही (परमे) परम (धेनू इव) गौओं के तुल्य (दुहाते) सम्पदाएं देती हैं।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११।१०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्वसूक्त ॥ इति दशमो वर्गः ॥

[२४] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप्। ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। २, ८ भुरिक् पंक्तिः। ९ स्वराट् पंक्तिः। ११ निचृत्पंक्तिः। १० निचृदनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत्।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥१॥

भा०—(का) वह कौनसी (सुस्तुतिः) उत्तम स्तुति है जो (शवसः) सैन्यों के (सूनुम्) प्रेरक (अर्वाचीनम्) हमारे प्रति प्रबल, प्रिय

(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा वा प्रभु के प्रति (राधसे) हमें धनैश्वर्य की वृद्धि और आराधना के लिये (आववर्त्तत्) प्रवृत्त करे ? हे (जनासः) मनुष्यो ! (सः) वह (नः) हमारा (नि: षिधाम्) बुरे मार्गों से हटाने वाले शासनों और शासकों, आचार मर्यादाओं की (गोपतिः) वाणी या आज्ञाओं, शास्त्र-वचनों का पालक है वही (निषिधाम्) सब शासकों में सबसे ऊंचा (गोपतिः) भूमि का स्वामी है। (सः गृणते) वह विद्वान् पुरुष को (वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को (ददिः हि) निश्चय से दान करने हारा, (वीरः) वीर है।

स वृ॑त्रहत्ये॒ हव्यः॒ स ईड्यः॒ स सुष्टु॑त॒ इन्द्रः॑ स॒त्यरा॑धाः ।
स याम॒न्ना म॒घवा॒ मर्त्या॑य ब्रह्मण्य॒ते सुष्व॑ये॒ वरि॑वो धात् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही, (वृत्रहत्ये) बढ़ते शत्रुओं के नाश के कार्य, संग्राम में (हव्यः) पुकारने योग्य है। (सः) वह (ईड्यः) स्तुति योग्य है। (सः सुस्तुतः) वह उत्तम प्रशंसित (सत्य-राधाः) सत्य न्याय का रूप धन का धनी हो। (सः यामन्) वह उत्तम मार्ग में चलने वाला (ब्रह्मण्यते) धर्म पूर्वक धन के चाहने वाले, (सुष्वये) ऐश्वर्य पाने के उद्योग करने वाले (मर्त्याय) मनुष्य को (वरिवः) नाना ऐश्वर्य (आधात्) देता है।

तमिन्नरो॒ वि ह्व॑यन्ते समी॒के रि॑रि॒क्वांसः॑ स्त॒न्वः॑ कृण्वत॒ त्राम् ।
मि॒थो यत्त्या॒गमु॒भया॑सो॒ अग्म॒न्नर॑स्तो॒कस्य॒ तन॑यस्य सा॒तौ ॥३॥

भा०—(यत्) जिस (त्यागम्) दाता पुरुष को लक्ष्य कर (नरः) नायक लोग और साधारण जन एवं पक्ष प्रतिपक्ष (उभयासः) दोनों (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र पौत्र के निमित्त धन, वेतनादि लाभ के निमित्त (मिथः) सह सम्मति करके (अग्मन्) जाते हैं। (रिरिक्वांसः) देहों और करादि धनों का त्याग करने वाले (नरः) वीर और प्रजाजन भी, (समीके) संग्राम में (तम् इत्) उसको ही (वि ह्वयन्ते) पुकारें और

(तन्वः) अपने शरीर का (त्राम्) रक्षक भी उसी को (कृणुत) करें।

क्र॒तू॒यन्ति॑ क्षि॒तयो॒ योगे॑ उग्राशुषा॒णासो॑ मि॒थो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽव॑वृत्रन्त यु॒ध्मा आदिन्नेम॑ इन्द्रयन्ते अ॒भीके॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (उग्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! (योगे) योगाभ्यास काल में तुझे प्राप्त करने के लिये (क्षितयः) तेरे में ही निवास करने वाले योगी (आशुषाणासः) आदर पूर्वक अपने देह का शोषण करते हुए, (अर्णसातौ) ज्ञान और सुख को प्राप्त करने के लिये (क्रतूयन्ति) ज्ञान और कर्म का अनुष्ठान करते हैं। वे (यत्) जब (विशः) तेरे में प्रवेश करने वाले होकर (युध्माः) अपने भीतरी काम क्रोध आदि दुष्ट शत्रुओं से लड़ते हुए (सं अववृत्रन्त) सब प्रकार से घिर जाते हैं तब (नेमे) यम नियम के पालक होकर (अभीके) युद्ध में (इन्द्रयन्ते) तुझ ऐश्वर्यवान् प्रभु की कामना करते हैं।

आदिद्ध नेम॑ इन्द्रि॒यं य॑जन्त॒ आदित्प॒क्तिः पु॑रो॒ळाशं॑ रिरिच्यात् ।
आदित्सोमो॒ वि प॑पृच्या॒दसु॑ष्वीना॒दिज्जु॑जोष वृष॒भं यज॑ध्यै ॥५ ११

भा०—(आत् इत्) अनन्तर (नेमे) कुछ जन (ह) निश्चय से (इन्द्रियं) आत्मा के ऐश्वर्य को (यजन्ते) प्राप्त करते हैं और (आदित्) अनन्तर (पक्तिः) परिपाक जैसे (पुरोडाशं) उत्तम अन्न को (रिरिच्यात्) अधिक गुण सम्पन्न कर देता है वैसे ही (पक्तिः) ज्ञान और तप की परिपक्वता (पुरोडाशं) प्रस्तुत किये आत्मा को (रिरिच्यात्) शक्तिशाली बना देता है। (आत् इत्) और अनन्तर (सोमः) शरीर के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला वीर्य या वीर्यवान् पुरुष (असुष्वीन्) प्राणों द्वारा चलने वाले इन्द्रियगण को (वि पपृच्यात्) विषय सम्पर्क से शिथिल करने में समर्थ होता है। (आत् इत्) उसके बाद वह (वृषभं) सुखों के वर्षक धर्म मेघ रूप प्रभु को (यजध्यै) प्राप्त करने के लिये (जुजोष) प्रेमपूर्वक चाहने लगता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (इत्था) वस्तुतः (सोमम्) अभिषेक, और ऐश्वर्य शासन की (उशते) कामना वाले (इन्द्राय) शत्रुनाशक, राजा होने योग्य पुरुष को (सुनोति) ऐश्वर्य का पद देता है और जो (अविवेनन्) अपनी विशेष कामना से रहित होकर ही (सध्रीचीनेन मनसा) साथ लगे, सादर चित्त से (समत्सु) संग्रामों और हर्षादि के अवसरों में (तम् इत् सखायं) उसको ही अपना मित्र (कृणुते) बना लेता है वह (अस्मै) इसको (वरिवः कृणोति) ऐश्वर्य देता और अत्यन्त सेवा करता है ।

य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो प्रजाजन (इन्द्राय) शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये (अद्य) आज के समान सदा (सोमम्) अन्नादि ऐश्वर्य (सुनवत्) उत्पन्न करता है, (पक्तीः पचात्) परिपक्व करने योग्य बलवीर्य, विद्या, ज्ञान एवं अन्नादि उसी के लिये परिपक्व करे, (उत) और (धानाः) खीलों के समान राष्ट्र की धारक शक्तियों को (भृज्जाति) और भी परिपक्व करता और पीड़ादायकों को सन्तप्त करता है और (मनायोः) प्रशंसा की कामना वाले के (उचथानि) कहने योग्य वचनों की (प्रतिहर्यन्) कामना करता हुआ (इन्द्रः) वह वीर पुरुष (तस्मिन) उस प्रजाजन में, उसके आश्रय पर ही (वृषणं) अपने प्रबन्धकारी और ऐश्वर्य सुखों के दाता (शुष्मं) बल को धारण करता है ।

यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद्वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥ ८ ॥

भा०—(यदा) जब (ऋघावा) शत्रुओं के नाश में समर्थ राजा

(समर्यम्) मरने मारने वाले वीर पुरुषों के एकत्र होने योग्य संग्राम को (वि अचेत्) विशेष रूप से जान ले (अर्यः) स्वामी होकर (यदा) जब वह (आजिम् दीर्घम्) शत्रुओं को उखाड़ने के कार्यों को भी देर तक चलाने वाला (अभि अख्यत्) देखे तब जैसे (सोमसुद्भिः आनिशितं वृषणं पुरुषं पत्नी दुरोणे अच्छ अधिक्रदत्) अन्न ओषधिरसों से पुष्ट करने वाले उपायज्ञों द्वारा तीक्ष्ण वा बलवान् किये गये, हृष्ट पुष्ट पुरुष को पत्नी प्रेम युक्त होकर बुलाती है, वैसे ही (सोमसुद्भिः) ऐश्वर्यों के उत्पादक पुरुषों से (आनिशितम्) सब प्रकार से तेजस्वी बनाये गये (वृषणं) बलवान् प्रबन्धक पुरुष को (दुरोणे) उच्च पद पर (पत्नी) पत्नी के समान राष्ट्रैश्वर्य पालक प्रजा (अच्छ) आदर पूर्वक (अधिक्रदत्) बुलावे, स्थापित करे।

भूर्यसा वस्नमचर॒त्कनी॒योऽवि॑क्रीतो अकानिषं॒ पुन॒र्यन्।
स भूर्य॑सा॒ कनी॑यो॒ नारि॑रेचीद्दी॒ना दक्षा॒ वि दु॑हन्ति॒ प्र वा॒णम् ॥९॥

भा०—राजा (भूयसा) बड़े भारी कार्यों से भी (कनीयः) अति स्वल्प (वस्नम् अचरत्) मूल्य प्रजा से प्राप्त करे। वह (पुनः यन्) वार २ प्रयाण करता हुआ भी (अविक्रीतः) प्रजा से वेतन द्वारा अपने आप न बेचा जाकर (अकानिषम्) अति दीप्तियुक्त होवे। (सः) वह राजा (भूयसा) बहुत से बल से (कनीयः) राष्ट्र के छोटे से छोटे अंश को भी (न अरिरेचीत्) त्याग न करे, क्योंकि (दीनाः) गरीब और (दक्षाः) चतुर लोग उसके (वाणम्) ऐश्वर्य वा आज्ञा को (वि प्र दुहन्ति) विविध प्रकारों से पूर्ण करते रहते हैं।

क इ॒मं द॒शभि॒र्ममेन्द्रं॑ क्रीणाति धे॒नुभिः॑।
य॒दा वृ॒त्राणि॒ जङ्घ॑न॒दथै॑नं मे॒ पुन॑र्ददत् ॥ १० ॥

भा०—(मम) मुझ प्रजा के (इमं इन्द्रं) इस ऐश्वर्यवान् राजा वा सेनापति को (दशभिः) दश (धेनुभिः) गौओं के तुल्य दसों पृथिवियों से या दस गुणा भूमि से भी (कः) कौन (क्रीणाति) खरीद सकता है।

(यदा वृत्राणि जंघनत्) वह जब बढ़ते शत्रुओं की सेनाओं को मार चुकता है वा नाना ऐश्वर्य प्राप्त करता है (अथ) उसके बाद (एनं) इसको (मे) मुझ प्रजा को (पुनः ददत्) फिर वापस दे देता है। ऐसे ही राजा भी कहता है (मे इमं इन्द्रम्) मेरे इस राष्ट्र ऐश्वर्य को (कः दशभिः धेनुभिः क्रीणाति) कौन दसों भूमियों से भी खरीद सकता है यह राष्ट्र जब (वृत्राणि जंघनत्) वृद्धिशील ऐश्वर्यों को प्राप्त होता है तब २ यह (एनं) इस ऐश्वर्य को वह राष्ट्र (मे पुनः ददत्) मुझे ही बार २ सौंप देता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥१२॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्व सूक्त मं० ११ ॥

[२५] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः । २, ८ स्वराट् पंक्तिः । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ३, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥

भा०—(कः) कौन (अद्य) वर्त्तमान में (नर्यः) मनुष्यों वा नायक सबका हितकारी है ? [उत्तर]—जो (उशन्) उत्तम कामना से युक्त होकर सबको चाहता हुआ (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (सख्यं) प्रेम भाव का (जुजोष) सेवन करता है। [प्रश्न]—(वा) और (कः) कौनसा पुरुष (महे अवसे) बड़ी रक्षा में समर्थ है ? [उत्तर]—जो (पार्याय) पार पहुंचाने में समर्थ पुरुष के लिये (समिद्धे अग्नौ) अग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर (सुतसोमः) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करके (ईट्टे) ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।

क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२॥

भा०—(सोम्याय) 'सोम' अर्थात् उत्तम ऐश्वर्यों के योग्य और शान्ति आदि गुणों से युक्त शिष्य पुत्रादि के अधिकारी गुरु के आदरार्थ (वचसा) वचन द्वारा (कः नानाम) कौन विनीत होता है ? और (कः) कौन पुरुष (मनायुः) ज्ञान की कामना करता है ? (कः) कौन पुरुष (उस्राः) गौओं को गोपालक के तुल्य, उत्तम अन्नदात्री भूमियों को राजा के तुल्य (वस्ते) आच्छादित करता है, उनका पालन करता है ? (कः) कौन (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, अज्ञानहन्ता गुरु के (युज्यं) सहयोग और सौहार्द की (वष्टि) कामना करता है ? (कः) कौन (सखित्वं वष्टि) उसके मित्रभाव की कामना करता है, (कः भ्रात्रं वष्टि) कौन उसके साथ भाई-चारा करना चाहता है ? (कवये) क्रान्तदर्शी विद्वान् को (ऊती) ज्ञान आदि साधन के लिये (कः वष्टि) कौन चाहता है ? [उत्तर] (मनायुः) ज्ञान का इच्छुक होकर (यः उस्राः वस्ते) जो वेद वाणियों के ग्रहणार्थ गुरु के अधीन रहता है ।

को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥

भा०—(अद्य) आज वर्त्तमान में (देवानाम्) ऐश्वर्य दाता गुरुजनों की (अवः) रक्षा को (कः वृणीते) कौन वरण करता है ? (आदित्यान् कः) बारहों मासों के समान 'अदिति' सूर्य तुल्य तेजस्वी पुरुषों से उत्पन्न विद्वानों और (अदितिं) अखण्ड विद्यावान् गुरु को (कः वृणीते) कौन वरण करता है ? (अश्विनौ) स्त्री और पुरुष (इन्द्रः) ज्ञानवान् और (अग्निः) नायक, अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष (कस्य सुतस्य अंशोः) विद्यानिष्णात, पुत्रवत् प्रिय, अपने ही किरण के तुल्य किसके अन्नादि का (अवि वेनं) निष्काम होकर (मनसा) प्रिय चित्त से (पिबन्ति) पान करते हैं ?

उत्तर-(यः ज्योतिः ईट्टे) जो शिष्यवत् ज्योति, ज्ञान प्रकाश प्राप्त करना चाहता है।

तस्मा॑ अ॒ग्निर्भार॑तः॒ शर्म॑ यंस॒ज्ज्योक्प॑श्या॒त्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम्।
य इन्द्रा॑य सु॒नवा॒मेत्याह॒ नरे॒ नर्या॑य॒ नृत॑माय नृ॒णाम् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (नरे) सबके प्रणेता (नर्याय) सब मनुष्यों के हितकारी एवं सबसे कुशल, (नृणां नृतमाय) नायकों के बीच श्रेष्ठ (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रु के नाशक राजा के तुल्य अज्ञान के नाशक गुरु के लिये ही (सुनवाम) उत्तम ऐश्वर्य वा उसके ज्ञान का सम्पादन करें (इत्याह) इस प्रकार की प्रतिज्ञा करता है और जो (ज्योक्) चिरकाल तक (उत् चरन्तं सूर्यम्) ऊर्ध्व आकाश में विचरते हुए सूर्य के तुल्य गुरु को सदा (पश्यात्) आदर भाव से देखता है (तस्मै) उसको (भारतः) मनुष्यों का हितकारी (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष वा प्रभु (शर्म) शरण और सुख (यंसत्) प्रदान करता है।

न तं जि॑नन्ति ब॒हवो॒ न द॒भ्रा उ॒र्व॑स्मा॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत्।
प्रि॒यः सु॒कृत्प्रि॒य इन्द्रे॑ मना॒युः प्रि॒यः सु॑प्रा॒वीः प्रि॒यो अ॑स्य सो॒मी ५।१३

भा०—(दभ्राः न) अल्प वीर्य के (बहवः) बहुत से भी जैसे बलवान् पुरुष को नहीं पराजय करते वैसे ही (बहवः) बहुत से (दभ्राः) हिंसक शत्रु भी (तं न जिनन्ति) उसको नहीं जीत सकते; (अस्मा) उसको (अदितिः) सूर्य के तुल्य गुरु (उरु) बहुत अधिक (शर्म यंसत्) सुख शरण दे। (अस्य) उसका (सुकृत्) उत्तम कर्म करने और उत्तम आचरण करने वाला (प्रियः) प्रिय होता है (इन्द्रे) गुरु के अधीन रहकर (मनायुः) ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाला शिष्य (अस्य प्रियः) उसको प्रिय होता है। (सु प्रावीः) उत्तम रीति से वीर्य रक्षा करने वाला जितेन्द्रिय (सोमी) शिष्य (अस्य प्रियः) उसका प्रिय होता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥

भा०—राजा (एषः) वह (सुप्राव्यः) उत्तम रीति से प्रजा पालन में कुशल, (प्राशुषाट्) शीघ्र शत्रुओं का पराजय करने वाला, (वीर) वीर, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (सुष्वेः) उत्तम रीति से अन्नादि ऐश्वर्य-उत्पादक प्रजाजन के हित के लिये (केवला) अकेला (पक्तिं) अन्नादि का सूर्य के तुल्य शत्रुओं का परिताप (कृणुते) करता है। वह (असुष्वेः) ऐश्वर्य अन्नादि उत्पन्न करने वाले निकम्मे मनुष्य का (न आपिः) न बन्धु है, (न सखा) न मित्र है, (न जामिः) न भाई है। वह (अवाचः) निन्दित वाणी बोलने वाले पुरुष का (अवहन्ता) नाशक होकर (दुष्प्राव्यः) दुःख से प्राप्त करने योग्य है।

न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७॥

भा०—(रेवता) धनवान् (असुन्वता) राज्य के निमित्त ऐश्वर्य उत्पन्न न करने वाले (पणिना) व्यापारी के साथ (सुतपाः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का पालक (इन्द्रः) राजा (सख्यं) मित्रभाव की (न संगृणीते) प्रतिज्ञा नहीं करता। (अस्य) ऐसे लोभी धनी के (वेदः) धन को वह (आ खिदति) छीन लेता है, ऐसे (नग्नं) स्तुति-वाणी से रहित या वाणी पर स्थिर न रहने वाले असत्यवादी निर्लज्ज को (हन्ति) दण्ड देता है। (सुष्वये) राजा के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले, प्रजाजन के हितार्थ वह राजा (केवलः) अकेला ही, (पक्तये) अन्नादि समृद्धि और शत्रु सन्ताप के लिये (वि भूत) समर्थ होता है।

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥८।१४॥

भा०—(परे) उत्तम, ज्ञानी जन, (अवरे) निकृष्ट कोटि के अल्प ज्ञानी और (मध्यमासः) बीच की श्रेणी के लोग (इन्द्रं हवन्ते) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही पुकारते हैं। (यान्तः) वे प्रयाण करते हुए और (अवसितासः) स्थिर निश्चय वाले भी उसी (इन्द्रं हवन्ते) 'इन्द्र,' शत्रुहन्ता पुरुष की याद करते हैं। (क्षियन्तः) राष्ट्र में निवास करने वाले (उत) तथा (युद्धयमानाः) युद्ध करने हारे और (वाजयन्तः नरः) ऐश्वर्य, ज्ञान और बल का सम्पादन करने वाले, (नरः) नायक जन भी (इन्द्रं हवन्ते) शत्रु के विदारक वीर पुरुष को ही पुकारते हैं। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[२६] वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः— १ पंक्तिः। २ भुरिक् पंक्तिः। ३, ७ स्वराट् पंक्तिः। ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ स्वराट्त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

अ॒हं मनु॑रभवं॒ सूर्य॑श्चा॒हं क॒क्षीवाँ॒ ऋषि॑रस्मि॒ विप्रः॑।
अ॒हं कुत्स॑मार्जुने॒यं न्यृ॑ञ्जे॒ऽहं क॒विरु॒शना॒ पश्य॑ता मा॥ १॥

भा०—परमेश्वर कहता है—(अहं मनुः अभवम्) मैं मननशील, चराचर का ज्ञाता हूँ। (अहं सूर्यः च) मैं सूर्य के समान स्वयं प्रकाश हूँ, मैं (कक्षीवान्) समस्त लोकों में व्यापक कर्तृशक्ति का स्वामी हूँ। मैं (विप्रः) विशेष रूप से संसार को पूर्ण करने और ज्ञान, कर्मफल का दाता, (ऋषिः अस्मि) सबका द्रष्टा, ज्ञान का प्रकाशक हूँ। (अहम्) मैं (आर्जुनेयं) विद्वान् पुरुष से बनाये (कुत्सं) शस्त्रास्त्र के तुल्य सब विघ्ननाशक और ऋजु मार्ग पर चलने एवं स्तुतियों के करने वाले विद्वान् भक्त को (ऋञ्जे) अपनाता हूँ। (अहं) मैं (कविः) क्रान्तदर्शी (उशनाः) सबको प्रेम से चाहने वाला हूँ (मा) मुझको (पश्यत) साक्षात् करो। (२) परमात्मा इन गुणों से युक्त है। उसके अनुकरण में उसकी उपासना करता हुआ मनुष्य भी प्रार्थना करे—मैं ज्ञानी होऊं, सूर्यवत् तेजस्वी होऊं, सर्व विद्या युक्त बुद्धि का स्वामी, मन्त्रद्रष्टा, विद्वान् होऊं। मैं वीर जनों

चित शस्त्र और धर्मात्मोचित ज्ञान स्तुति की साधना करूं। मैं क्रान्तदर्शी और सर्वप्रिय होऊं।

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥

भा०—(अहं) मैं परमेश्वर (आर्याय भूमिम् अददाम्) श्रेष्ठ पुरुष को 'भूमि' देता हूँ, मैं राजा श्रेष्ठ पुरुष के हाथ में भूमि दान करूं। मैं गृहपति भूमि रूप कन्या को भी भले के हाथ दूं। मैं परमेश्वर (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य के हाथ (वृष्टिम् अददाम्) नाना समृद्धि-वर्षा देता हूँ। मैं राजा करप्रद राजा के प्रति ऐश्वर्य खुले हाथ दूं। (अहम्) मैं ही (वावशानाः) कामनावाले (अपः) लिङ्ग शरीरों, प्राणों, वायु और जलों को (अनयम्) इस संसार में लाता और चलाता हूँ। (देवासः) सूर्यादि लोक और ज्ञानी विद्वान् और कामनाशील जीव (मम) मेरे (केतम् अनु आयन्) ज्ञान वा बुद्धि का अनुसरण करते हैं।

अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥

भा०—(अहम्) मैं (सर्वताता) सर्वत्र जगत् में (शततमं) सौवें वर्ष में वर्त्तमान (दिवोदासम्) प्रकाशक सूर्य से तेजस्वी (अतिथिग्वम्) व्यापक किरणों के तुल्य वाणी को प्रसार करने वाले पुरुष को (यद् आवम्) जब पालन करता हूँ तब (शम्बरस्य) शान्ति चाहने वाले उस जीव के (नवतीः नव पुरः) ९९ संख्या वाली पूर्ण वर्षों को (साकं) एक साथ ही (वि ऐरम्) विशेष रूप से सञ्चालित करता हूँ। मनुष्य की सौ वर्ष की आयु का भोग भी परमेश्वर के ही हाथ है। अथवा—इस मन्त्र में आत्मा कहता है कि (सम्बरस्य) शान्ति सुखमय अध्यात्म आनन्द का रोकने वाली ९९ नाड़ियों को एक ही साथ दूर करूं, प्रकाश

ज्ञानदाता व्यापक किरण वाले सूर्य वा तेजस्वी (वेश्यं) वेश अर्थात् उत्तम पद पर वा देह में प्रविष्ट १०० वें आत्मा को मैं प्राप्त करूं।

प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा। अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥

भा०—(आशुपत्वा श्येनः यथा श्येनेभ्यः विभ्यः प्र सु विः) वेग से गति करने वाला 'श्येन', बाज पक्षी अन्य बाज जाति के पक्षियों की अपेक्षा उत्तम गिना जाता है वह (सुपर्णः अचक्रया स्वधया देवजुष्टम् हव्यं स्वधया मनवे भरत्) उत्तम पक्षों से युक्त होकर अपनी चक्र रहित स्वधा अर्थात् अपने आकाश में थामे रखने की क्रिया से ही मननशील पुरुष को विद्वानों द्वारा ग्रहण योग्य विज्ञान प्रदान करता है वैसे ही हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (श्येनः) श्येन के आकार का आकाशयान (प्र आशुपत्वा) खूब वेग से जाने हारा हो, जो (श्येनेभ्यः विभ्यः) अन्य श्येनाकार, पक्षियों और आकाशयानों से भी अधिक (प्र सु अस्तु) उत्तम सिद्ध हो। (यत्) जो (सुपर्णः) गति के उत्तम साधनों से युक्त होकर (अचक्रया) विना चक्र के ही (स्वधया) अपने को आकाश में थामे रखने की शक्ति से (देवजुष्टं हव्यं) उत्तम विद्वानों से प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य (मनवे) ज्ञानी शिल्पी को (हरत्) प्राप्त करावे।

भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि। तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥

भा०—(यदि) जैसे (विः श्येनः) वेगयुक्त पक्षी, बाज, (अतः वेविजानः) इस पृथिवी लोक से पक्षों को कंपाता हुआ (हरत्) वेग से गमन करता है और (उरुणा पथा मनोजवाः असजि) बड़े भारी आकाश-मार्ग से मन के समान वेगवान् हो जाता है और (तूयं ययौ) बहुत शीघ्र जाता है और (श्रवः विविदे) ख्याति या श्रवण योग्य शब्द उत्पन्न करता है वैसे ही (यदि) जब (श्येनः) ज्ञानवान् पुरुष (विः) तेजस्वी होकर

(वेविजानः) उद्विग्न होकर उनको कंपा दे, फाड़ दे, असंग हो जावे वा (विरतः) विषयों से विरत हो जावे और (उरुणा पथा) महान् ज्ञानमार्ग से (भरत्) गति करे तब वह (मनोजवाः असर्जि) मन से ही यथा संकल्पित लोकों को जाने में समर्थ हो जाता है। वह (सोम्येन मधुना) सुख दाता मधुर ज्ञान द्वारा (तूयं ययौ) शीघ्र ही उस पद तक पहुँचता है। वह (श्येनः) उत्तम गति प्राप्त करके (अत्र) यहां (श्रवः) श्रवण योग्य परम ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करता है।

ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम्।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (ऋजीपी श्येनः शकुनिः अंशुं ददमानः मन्द्रं मदं सोमम् भरत्) सीधी गति से जाने वाला श्येन पक्षी वेग धारण करता हुआ स्तुत्य मद व वीर्य को धारण करता है। वैसे ही (ऋजीपी) सरल, धर्म मार्ग से जाने वाला (श्येनः) आचारवान् पुरुष (परावतः) परम पद पर स्थित प्रभु से (अंशुं ददमानः) उत्तम ज्ञान के प्रकाश को स्वयं धारण करता और अन्यों को देता हुआ (शकुनः) उन्नत पद पर पहुंचने में समर्थ शान्तिमान्, शमदम का अभ्यासी पुरुष (मन्द्रं) अति आनन्दजनक, (मदम्) हर्ष और (सोमं) ऐश्वर्य, ज्ञान और वीर्य को (अमुष्मात्) उस (उत्तरात्) सबसे उत्कृष्ट प्रभु से (आदाय) प्राप्त करके (भरत्) धारण करता है और स्वयं (ददृहाणः) उत्तरोत्तर दृढ़ और (देववान्) किरणों से युक्त सूर्य के तुल्य तेजस्वी और विद्या के इच्छुक शिष्यों और इन्द्रियों का भी स्वामी हो जाता है।

आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम्।
अत्रा पुरंन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ ॥ १५ ॥

भा०—(श्येनः यथा सोमम् अभरत्) बाज पक्षी जैसे वेग और वीर्य को धारण करता है, (मदे अरातीः अजहात्) बल के गर्व में

शत्रुओं को मारता है वैसे ही (श्येनः) बाज के तुल्य, वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ राजा, (साकम्) अपने साथ (सहस्रं अयुतं च सवान् आदाय) हजारों और लाखों अधीन सैन्यों और ऐश्वर्यों को लेकर (सोमम् अभरत्) राष्ट्र को धारण करे। (अत्र) इस राष्ट्र में रहकर (पुरन्धिः) समस्त राष्ट्र को एक पुर के समान धारण करे और स्वयं (अमूरः) कभी प्रमादी न होकर, (मूराः) मूढ़ (अरातीः) शत्रु सेनाओं को (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य के दमन करने के निमित्त (अजहात्) प्राणों से वियुक्त करे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२७] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ५ निचृच्छक्वरी ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥

भा०—जीव का वर्णन। (अहम्) मैं जीव (गर्भे) गर्भ में (नु सन्) प्राप्त होकर ही (एषां) इन (देवानां) चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियों के (विश्वा) समस्त (जनिमानि) प्रादुर्भावों, प्रकट रूपों को (अनु अवेदम्) अपने अनुकूल विषयों को ग्रहण करने में साधन रूप से प्राप्त करता हूँ। (आयसीः पुरः) राजा की लोह वा सुवर्ण की बनी दृढ़ नगरियों के समान (मा) मुझ जीव को (शतं) सैकड़ों (आयसीः) आवागमन या चेतना से युक्त (शतं पुरः) सैकड़ों इच्छा पूर्त्ति करने वाली देह रूप नगरियां (अरक्षन्) रक्षा करती हैं। (अध) और मैं (श्येनः) प्रशंसनीय गति वाला और ज्ञानयुक्त होकर, घोंसले से बाज के समान, वा नगर से निकलने वाले राजा के समान (जवसा) बड़े वेग से (निर्-अदीयम्) देह-बन्धन को छोड़ कर निकल जाता और मुक्त हो जाता हूँ।

न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरंन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (जोपं) संसार का सेवन करते हुए (माम्) मुझको (न घ अप जहार) अपवर्ग की ओर कभी नहीं ले जाता। (ईम्) प्रत्युत मैं उस परमेश्वर को लक्ष्य करके (त्वक्षसा) तेजस्वी (वीर्येण) पराक्रम या तप से (ईम् अभि आस) उनकी ओर होता और उनका साक्षात् करता हूँ। वह (ईर्मा) सब जगत् का सञ्चालक, (पुरन्धिः) राजा के तुल्य इस समस्त विश्व को पुर के समान धारण करने वाला प्रभु (अरातीः) समस्त दुःखादि देने वाले शत्रुओं या पीड़ाओं को (अजहात्) छुड़ा देता है, (उत्) और (शूशुवानः) वही महान् पुरुष (वातान्) इन प्राणों को (अतरन्) प्रदान करता है अथवा—(ईर्मा) देह का सञ्चालक यह जीव (पुरन्धिः) देह को पुरवत् धारण करता हुआ (अरातीः) क्रोधादि सुख न देने वाले शत्रुओं को (अजहात्) छोड़ दे और (शूशुवानः) शक्ति से बढ़ता हुआ (वातान् उत) इन प्राणों को भी युद्ध में वीरों को प्रबल राजा के तुल्य (अतरत्) तर जावे, उनके बन्धनों से पार हो जावे।

अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम्।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३॥

भा०—(यत्) जिस जीव को (श्येनः) उत्तम प्रशंसनीय गमन, आचरण और ज्ञान तप वाला पुरुष वा प्रभु (द्योः) प्रकाशमय ज्ञान का (अव अस्वनीत्) अपने अधीन रख कर उपदेश करता है (यत् यदि) और जब जैसे (पुरन्धिम्) देहधारक जीव को (अतः) इस संसार बन्धन से (ते ऊहुः) वे ज्ञानी जन ऊपर उठा लेते हैं और (कृशानुः) अग्नि के तुल्य सब पापों को भस्म कर देने वाला, गुरु या प्रभु (मनसा) ज्ञान के बल से (भुरण्यन्) इस जीव का पालन करता है। (अस्ता यथा ज्यां क्षिपत् अव सृजत्) धनुर्धर जैसे डोरी चलाता और बाण फेंकता है वैसे ही (अस्ता) सब दुःखों, बन्धनों को दूर फेंक देने वाला गुरु या प्रभु

(अस्मै) इस जीव की (ज्यां) हानि करने वाली अविद्या को (क्षिपत्) दूर करता हुआ (अव सृजत्) उसे बन्धनों से मुक्त करता है।

ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥ ४ ॥

भा०—(श्येनः भुज्युं न) वेगवान् अश्व जैसे अपने पालक पुरुष को अपने पर चढ़ा कर ले जाता है वैसे ही (ऋजिप्यः) धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ (श्येनः) उत्तम रीति से आचरण करने वाला आत्मा ज्ञानी (बृहतः) बड़े भारी (स्नोः) आनन्द वर्षक (इन्द्रवतः) ऐश्वर्ययुक्त परम पद से (ईम्) इस (भुज्युं) भोक्ता जीव को (अधि जभार) धारण करता है, (अध) अनन्तर (यामनि) संयम मार्ग से (प्रसितस्य) अति सुसंयत, शुक्लकर्मा हुए (वेः) कान्तिमान् (अस्य) इसका (पतत्रि) इधर उधर जाने वाला (पर्णं) भीतरी साधन, मन (वेः पर्णम्) सूर्य की किरण के समान (तत्) उस परमात्म तत्व की ओर ही (पतत्) चला जाता है।

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—जैसे (मघवा इन्द्रः) जलप्रद सूर्य (गोभिः अक्तम् शुक्रम् अन्धः आपिप्यानं श्वेतं कलशं मध्वः अग्रम् पिबध्यै प्रति धत्) किरणों से व्यक्त हुए जल को और अन्नवर्धक मेघ को और जल के अंश का पान कराने के लिये धारण करता है वैसे ही (शूरः) वीर, (मघवा) ऐश्वर्यवान्, (इन्द्रः) राजा (गोभिः अक्तम्) ज्ञान वाणियों द्वारा प्रकाशित होने वाले (श्वेतं) स्वच्छ (कलशं) १६ कलाओं से युक्त, इस आत्मा को (आपिप्यानं) तृप्त या वृद्धि करने वाले (शुक्रम्) तेजोयुक्त वीर्य और (अन्धः) जीवन-धारक अन्न को और (अध्वर्युभिः प्रयतम्) अविनाशी प्राणों और विद्वानों

द्वारा प्रदान किये हुए (मध्वः अग्रम्) ब्रह्म ज्ञान के श्रेष्ठ स्वरूप को (मदाय) परमानन्द प्राप्ति (पिबध्यै) और उपभोग के लिये (प्रतिधत्) प्रतिक्षण धारण करे। वह (मदाय पिबध्यै प्रति धत्) हर्ष वृद्धि और उपभोग के लिये ही धारण करे। इति षोडशो वर्गः ॥

[२८] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रासोमौ देवते ॥ छन्दः—निचृत् । त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ५ पंक्तिः ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन ! हे राष्ट्र ! (त्वा युजा) तुझ सहायक से और (तव सख्ये) तेरे मित्रभाव में रहकर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (मनवे) मनुष्य मात्र के हितार्थ सूर्य जैसे धाराएं बरसाता है वैसे ही (सस्रुतः अपः कः) जलों को उत्तम रसों से बहने वाला बनावे, नहरें खोले। (अहिम्) मेघ को सूर्यवत्, विघ्नकारी शत्रु आदि या सर्पवत् कुटिल जन को (अहन्) दण्ड दे। (सप्त सिन्धून्) चलने वाले वेगवान् अश्वों और अश्वसैन्यों को (अरिणात्) चलावे, (अपि-हिता इव) ढकी हुई सी (खानि) इन्द्रियों को जैसे आत्मा देह में प्रकट करता है वैसे ही (अपिहिता इव खानि) ढके हुए उन्नति के द्वारों को (अप अवृणोत्) खोल देवे।

त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२॥

भा०—हे (इन्दो) दयार्द्र हृदय ! चन्द्र के समान कान्ति और ऐश्वर्य से युक्त प्रजाजन ! (इन्द्रः) वायु वा विद्युत् जैसे जल की सहायता से सूर्य के ज्योतिर्मण्डल को हीनकान्ति बना देता है वैसे ही (त्वा युजा) तुझ सहायक से ही (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक, विद्युत् के समान गर्जन,

छेदन-भेदनशील, वायु के तुल्य शत्रु-वृक्षों को कंपाने हारा, बलवान् पुरुष (सूर्यस्य) सूर्य तुल्य तेजस्वी राजा के भी (चक्रं) राज्य-चक्र को (सहसा) अपने शत्रुविजयी सैन्यबल से (सद्यः) अति शीघ्र (नि खिदत्) बिलकुल दीन-हीन कर सकता है और (बृहता) बहुत बड़े (स्नुना) उपरिस्थित, वा दूर २ तक फैलाने वाले सैन्य बल से (अधि वर्तमानं) अध्यक्ष रूप से कार्य करने वाले (द्रुहः) द्रोही शत्रु के (महः) बड़े (विश्वायु) सर्वत्रगामी बल को भी (अप धाथि) दूर हटा देने में समर्थ होता है।

अह॒न्निन्द्रो॒ अद॑हद॒ग्निरि॑न्दो पु॒रा दस्यू॑न्म॒ध्यंदि॑नाद॒भीके॑ ।
दु॒र्गे दु॑रो॒णे क्रत्वा॒ न या॒तां पु॒रू स॒हस्रा॒ शर्वा॒ नि ब॑र्हीत् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्यतुल्य शत्रुहन्ता राजा (अभीके) संग्राम में (मध्यन्दिनात्) मध्याह्न काल के ताप के समान असह्य प्रताप से (दस्यून्) प्रजा-नाशक पुरुषों का (अहन्) विनाश करे और वह हे (इन्दो) दयार्द्र स्वभाव, विद्वन् ! एवं प्रजाजन ! (अग्निः) अग्नितुल्य तेजस्वी, नायक वैसे ही दुष्ट पुरुषों को (अदहत्) भस्म करे (दुरोणे) घर में (क्रत्वा) यज्ञ से जैसे मनुष्य (यातां) पीड़ादायक (पुरु सहस्रा शर्वा) बहुत से हजारों हिंसाकारी, रोग बाधाओं का नाश करता है, (न) वैसे ही (दुर्गे) गढ़ में स्थित होकर (क्रत्वा) अपनी प्रज्ञा और कर्म कौशल से ही (यातां) प्रयाण करने वाले पीड़ादायक शत्रुओं के (पुरु सहस्रा शर्वा) अनेक हजारों हिंसाकारी सैन्यों वा शस्त्रघातों को (नि बर्हीत्) निवारण करे।

विश्व॑स्मात्सी॒मध॒माँ इ॑न्द्र॒ दस्यू॒न्विशो॒ दासी॑रकृणोरप्रश॒स्ताः ।
अबा॑धेथा॒ममृ॑णतं॒ नि शत्रू॒नवि॑न्देथा॒मपचि॑तिं॒ वध॑त्रैः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुओं के नाशक राजन्! तू (सीम्) सूर्यतुल्य होकर (दस्यून्) प्रजा के नाशक (अधमान्) नीच पुरुषों को (विश्वस्मात्) समस्त राष्ट्र से पृथक् (अकृणोः) कर इनको दण्ड दे और (विशः) प्रजाओं को (दासीः अकृणोः) दानशील बना और (अप्र-

शस्ताः) जो उत्तम आचार व्यवहार वाली नहीं हैं उनको भी (दासीः विशः अकृणोः) कर देने तथा राष्ट्र में बसने योग्य बना। हे विद्वन्! राजन्! तुम दोनों मिलकर (शत्रून् नि अवाधेथाम्) शत्रुओं को खूब पीड़ित करो (वधत्रैः) वधकारी अस्त्रों से (नि अमृणतं) खूब मारो और (अपचितिं) पूजा को (अविन्देथाम्) प्राप्त करो।

एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (सोम) अन्नादि, समृद्धि उत्पन्न करने वाले प्रजाजन! (इन्द्रः च) और राजन्! (युवं) आप दोनों (मघवाना) ऐश्वर्य युक्त होकर (गोः) वाणी के (तत्) उस (सत्य) सत्य ज्ञान और (गोः) पृथिवी के (तत्) उस (ऊर्वम्) शत्रुहिंसक (अश्व्यम्) घोड़ों के बने सैन्य को (आदर्दृतम्) आदरपूर्वक स्वीकार करो और (क्षाः चित्) भूमियों और शत्रु-सेनाओं को (ततृदाना) कृषि, खनि और युद्ध द्वारा खोदते और तोड़ते हुए (अश्ना) भोग्य ऐश्वर्यों को (रिरिचथुः) प्राप्त करो। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२९] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, २ त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! आप (मन्दसानः) हर्षयुक्त होकर (वाजेभिः) बलवान् पुरुषों और (हरिभिः) विद्वान् पुरुषों से (स्तुतः) प्रशंसित होकर (ऊती) रक्षण आदि सामर्थ्य सहित (नः उप याहि) हमें प्राप्त हों और तू (अर्यः) सबका स्वामी (सत्यराधाः) सत्य ऐश्वर्यवान्, न्यायशील होकर (आंगूषेभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (गृणानः) स्तुति करता हुआ, (पुरूणि सवना) बहुत से ऐश्वर्यों को (तिरः चित्) हमें प्राप्त करा।

आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥ २ ॥

भा०—(चिकित्वान् नर्यः) मनुष्यों में ज्ञानी पुरुष (सोतृभिः) ऐश्वर्य उत्पन्न करने और अभिषेक आदि करने वाले पुरुषों सहित (हूयमानः) आदरपूर्वक स्तुति को प्राप्त होता हुआ (आयाति स्म हि) सदैव आवे और (यज्ञं) राजा प्रजा के परस्पर संगत व्यवहार और मैत्री को (उपयाति) प्राप्त हो । (यः) जो (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्य से युक्त होकर (अभीरुः) शत्रु से भय नहीं करता वह (मन्यमानः) आदर सत्कार को प्राप्त करता हुआ (सुस्वनेभिः) उत्तम हर्ष ध्वनि युक्त (वीरैः) वीरों सहित (ह) निश्चय से (सं मदति) आनन्द लाभ करता है ।

श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! आचार्य ! उपदेशक ! (अस्य) इस वीर पुरुष के (कर्णा) दोनों कानों को (वाजयध्यै) ज्ञान सम्पन्न करने के लिये (मन्दयध्यै) और खूब हर्षित करने के लिये (जुष्टां) सत्पुरुषों से सेवित, (दिशम्) ज्ञान दिशा का अनुगमन करने के लिये (अनु श्रावय, प्र श्रावय) अनुकूल और उत्तम उपदेश कर । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (उद् वावृषाणः) ऊर्ध्व स्थित मेघ के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करता हुआ (तुविष्मान्) बलवान् पुरुष (नः) हमारे (राधसे) धन और आराध्य सुख के लिये, हमारे राष्ट्र में (सुतीर्था) दुःखों से पार उतारने वाले आचार्य, सत्य भाषणादि युक्त विद्वानों, विद्यामठों और सेतु आदि (करत्) बनावे और (अभयं च) प्रजा को भय से रहित (करत्) करे ।

अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्याशून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (त्मनि) अपने अधीन (सहस्राणि शतानि) हजार हजार और सौ २ के दल-बद्ध (आशून् धुर्या) वेग से जाने वाले धुरा ढोने योग्य अश्वों और धुरन्धर पुरुषों को (दधानः) धारण और भृत्य रूप से भरण पोषण करता हुआ (वज्रबाहुः) बाहुओं में बलवीर्य, शस्त्रास्त्रादि धारता हुआ, (इत्था) सत्य न्यायानुकूल (नाधमानं) अधिकार याचना करते हुए (ऊती) रक्षा के निमित्त (गृणन्तं हवमानं) स्तुति और प्रार्थना करते हुए (विप्रं) विद्वान् पुरुष को (अच्छ गन्ता) प्राप्त होता है। वह राजा प्रजा को अभय करे।

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥१८॥

भा०—हे (मघवन्) राजन् ! हे (त्वा उतासः) तेरे द्वारा सुरक्षित (वयं) हम (विप्राः) विद्वान् और (सूरयः) विद्याओं के प्रकाशक होकर (गृणन्तः स्याम) उत्तम उपदेष्टा हों। हम (भेजानासः) तेरा सेवन करते हुए (आकाय्यस्य) अतिस्तुत्य, एवं सब प्रकार से काया देह को सुखदायी (बृहद्-दिवस्य) अति प्रकाशयुक्त (पुरुक्षोः) बहुत से अन्नादि से युक्त (रायः) ज्ञान के (दावने) दाता (ते) तेरे हितैषी हों। इत्यष्टादशो वर्गः॥

[३०] वामदेव ऋषिः॥ १—८, १२—२४ इन्द्रः। ९—११ इन्द्र उषाश्च देवते छन्दः—१, ३, ५, ६, ११, १२, १६, १८, १९, २३ निचृद्गायत्री। २, १०, ७, १३, १४, १५, १७, २१, २२ गायत्री। ४, ६ विराड्गायत्री। २० पिपीलिकामध्या गायत्री। ८, २४ विराडनुष्टुप्॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्॥

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रु और बाधक विघ्नों के नाशक राजन् ! हे प्रभो ! (त्वत् उत्तरः नकिः) तुझसे बढ़कर, तेरा प्रतिपक्षी कोई नहीं (त्वत् ज्यायान् नकिः अस्ति) तुझसे बड़ा भी कोई

नहीं। (यथा त्वम्) जैसा तू है वैसा भी (नकिः एव) कोई नहीं है।

सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः।
सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥

भा०—(सत्रा) न्याय से युक्त (ते) तेरे (अनु) अधीन (विश्वाः कृष्टयः) समस्त मनुष्य प्रजाएं और शत्रुपीड़क सेनाएं भी (चक्रा इव) गाड़ी के पहियों के समान (ववृतुः) तेरे अनुकूल होकर चलें। तू भी (सत्रा) सत्य व्यवहार से ही (महान्) पूज्य और (श्रुतः) प्रसिद्ध (असि) है।

विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः।
यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (विश्वे चन देवासः) सभी विजयेच्छुक लोग (अना त्वा) तुझ जीवनदायक को प्राप्त कर (युयुधुः) युद्ध करें (यत्) जिससे (अहा नक्तम्) दिन रात तू शत्रुओं का (आ अतिरः) सब तरफ नाश करे।

यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते।
मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में (बाधितेभ्यः) शत्रुपीड़ित प्रजाजनों और (युद्धयते) युद्ध करने वाले (कुत्साय) शस्त्रास्त्र से युक्त सैन्य-हितार्थ हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (सूर्यम्) सूर्यसमान तेजस्वी (चक्रं) पर सैन्य चक्र को (मुषायः) नष्ट कर और अपने सैन्य चक्र की रक्षा कर।

यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत्।
त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—और (यत्र) जिस संग्राम में (ऋघायतः) हिंसक (विश्वान् देवान्) समस्त विजिगीषु पुरुषों को (एकः इत्) तू अकेला ही (अयुध्यः) लड़ा लेने में समर्थ है वह (त्वम्) तू ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः!

(वनून्) अधार्मिक शत्रुओं को (अहन्) विनष्ट कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् ।
प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! तू (मर्त्याय) प्रजा पुरुषों और शत्रु-मारक सैन्य के हितार्थ (सूर्यम्) सूर्य समान तेजस्वी राजचक्र को भी (अरिणाः) सञ्चालित करे वहां (शचीभिः) सेनाओं और शासनवाणियों द्वारा (एतशम्) अपने समृद्ध राष्ट्र की (प्रावः) रक्षा कर ।

किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः ।
अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥

भा०—(वृत्रहन्) हे आवरणकारी अन्धकारों वा मेघों के तुल्य नगरादि को रोधने वाले शत्रुओं और विघ्नों के नाशक राजन् ! (आत् उत किम्) और क्या ! आप तो (मन्युमत्तमः असि) सबसे अधिक मन्यु अर्थात् दुष्टों पर कोप करने वाले हो, (अत्र अह) निश्चय से इस राष्ट्र में आप (दानुम् अतिरः) दानशील राष्ट्र को बढ़ाओ ।

एतद्घेदुत वीर्य१मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! (एतत् घ इत् उत) और यह भी तू ही (पौंस्यम्) पुरुषोचित (वीर्यम्) बल वीर्य पराक्रम (चकर्थ) कर (यत्) कि जैसे सूर्य (दिवः दुहितरं) प्रकाश से उत्पन्न उषा को प्राप्त होता वा उसे नष्ट करता है वैसे ही तू भी (दुर्हणायुवं) बड़ी कठिनता से नाश योग्य शत्रुनायक की कामना करने वाली (स्त्रियं) संघात बना कर आक्रमण करने वाली शत्रु सेना को (वधीः) विनष्ट कर और (दिवः) शत्रु

विजिगीषा को (दुहितरं) पूर्ण करने वाली (दुर्हणायुवं) कठिनता से वध योग्य नायक को चाहने वाली (स्त्रियं) प्रबल संघात वाली स्वसेना को (दिवः दुहितरं) कामनापूर्ण करने वाली स्त्री के समान ही प्रिय जानकर पति के तुल्य (वधीः) तू प्राप्त कर।

दि॒वश्चि॑द्घा दुहि॒तरं॑ म॒हान्म॑ही॒यमा॑नाम्।
उ॒षास॑मिन्द्र॒ सं पि॑णक् ॥ ९ ॥

भा०—(दिवः दुहितरं चित् उषासं सं पिणक्) जैसे सूर्य महान् प्रकाश से उत्पन्न, प्रकाश को देने वाली उषा को अच्छी प्रकार छितरा वितरा देता, और प्रकट कर देता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! तू (दिवः) विजयकामना करने वाले राजा की (दुहितरं) कामनाओं को पूर्ण करने वाली (महीयमानाम्) विशाल, पूज्य (उषासम्) शत्रु को भस्म करने वाली तेजस्विनी परसेना को (सं पिणक्) अच्छी प्रकार पीस कर नष्ट कर और स्व-सेना को (सं पिणक्) अच्छी प्रकार खण्ड २ करके दूर तक फैला।

अपो॒षा अन॑सः सर॒त्सम्पि॑ष्टा॒दह॑ बि॒भ्युषी॑।
नि यत्सीं॑ शि॒श्नथ॒द्वृषा॑ ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—जब (वृषा) सुखों का वर्षक सूर्य (सीम्) सब ओर से (शिश्नथत्) व्याप लेता है, प्रकाश की किरणें फेंकता है, तब जैसे (संपिष्टात् अनसः बिभ्युषी अप सरत्) टूटते फूटते रथ से भयभीत वधू निकल भागे वैसे ही वह उषा भी (संपिष्टात्) खूब सञ्चूर्णित और सर्वतो व्याप्त (अनसः) जीवनप्रद सूर्य रूप रथ से ही (अप सरत्) निकल भागती है। वैसे ही (वृषा) शत्रुओं पर अनवरत बाणों, शस्त्रास्त्रों की वर्षा वाला और सेना और राष्ट्र का उत्तम प्रबन्धक राजा (यत्) जब (सीम्) सब ओर से (शिश्नथत्) पर सेना को पीड़ित करके शिथिल, लाचार कर देता है तो वह (उषा) दाहकारिणी सेना (सम्पिष्टात् अनसः) अच्छी

प्रकार चूर्णित रथादि व्यूह से (विभ्युषी) भय करती हुई (अप सरत्) भाग जाती है। इति विंशो वर्गः ॥

एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या ।
ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

भा०—(अस्याः) इस सन्मुख खड़ी शत्रु सेना का (अनः) शकट तुल्य सुदृढ़ व्यूह (विपाश्या) विविध रूप से पाटने वाली अपनी सेना से (सुसंपिष्टं शये) खूब चूर्णित छिन्न भिन्न होकर, निश्चेष्ट हो जाय, तब वह (परावतः) दूर २ देशों को (ससार) जाय।

उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।
परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (मायया) बुद्धि बल से (अधि क्षमि) पृथ्वी पर (वितस्थानाम्) विविध प्रकारों से स्थिति प्राप्त करने वाली प्रजा को (विबाल्यं) विविध बल-कार्य में समर्थ (सिन्धुं) वेगयुक्त महानद के तुल्य सैन्य समुद्र के (अधि परि स्थाः) ऊपर अध्यक्ष रूप से स्थित हो।

उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य सम्पिणक् ॥ १३ ॥

भा०—हे राजन्! (यत्) जो तू (अस्य) इस शत्रु के (पुरः) नगरों को (संपिणक्) नष्ट करे (उत) और (शुष्णस्य) शत्रु शोषक बल का (धृष्णुया) धर्षक होकर (वेदनम्) धन को भी (अभि प्रमृक्षः) जीते।

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।
अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥

भा०—सूर्य, वायु या विद्युत् जैसे (बृहतः पर्वतात् दासं कौलितरं

शम्बरं अधि अवाहन्) बड़े मेघ या पर्वत से जलप्रद मेघ या जल को विताड़ित करता है वैसे ही हे (इन्द्र) शत्रु के हन्तः! तू (उत) भी (बृहतः पर्वतात् अधि) बड़े पालक पुरुषों के पोरु २ से बने दण्डबल वा सैन्य के भी ऊपर विद्यमान अध्यक्ष, (दासं) दानशील और अपने प्रजा वा सैन्य के नाशक (कौलितरम्) कुल अर्थात् नाना जन समूह गृह-परिवारों में श्रेष्ठ (शम्बरम्) शान्तिनाशक शत्रु को (अव अहन्) नीचे गिरा कर मार।

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः।
अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—(उत) और (वर्चिनः) सम्पदावान् (दासस्य) प्रजा के नाशकारी शत्रु के (सहस्राणि) हजारों और (शता) सैकड़ों सैन्यों को भी (अवधीः) विनष्ट कर और (दासस्य) सेवक तुल्य और (वर्चिनः) धन-धान्य समृद्ध प्रजाजन की, (सहस्राणि शता पञ्च) हजारों और सैकड़ों पांचों प्रकार के जनों की (प्रधीः इव) नाभि के चारों ओर लगी परिधियों के समान रक्षकों के तुल्य (अधि अवधीः) अध्यक्ष होकर प्राप्त हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः।
उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (उक्थेषु) प्रशंसनीय कार्यों में (उत) भी (त्यं) उस (अग्रुवः पुत्रम् इव) अग्रगण्य, विवाहित पत्नी के पुत्र के तुल्य उत्तम जानकर (अग्रुवः) अग्रगामिनी सेना के (पुत्रम्), दुःखों से बहुतों के रक्षक (परावृक्तं) व्यसनों से रहित पुरुष को (आभजत्) प्राप्त करे।

उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥

भा०—(शचीपतिः) सेना और व्यवस्थापक वाणी का पालक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (विद्वान्) ज्ञानवान् वा राज्यश्री को लाभकर्त्ता पुरुष (तुर्वश-यदू) धर्म, अर्थ, काम मोक्ष चतुर्वर्गों की कामना करने वाले प्रजास्थ स्त्री पुरुष दोनों वर्गों को, जो (अस्नातारौ) स्नात, अभिषिक्त या कृतकृत्य न हुए हों (अपारयत्) पालन करे और संकट से पार करके कृतकृत्य करे। वेद वाणी का विद्वान् पुरुष आचार्य (तुर्वशा-यदू) शीघ्र इन्द्रियों के वशकारी और विद्याभ्यास में यत्नवान् दोनों प्रकार के विद्यार्थी जनों को, विद्याव्रत स्नातक न हुए हों, (अपारयत्) विद्या और व्रत के पार करे।

उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः।
अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥

भा०—(उत) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अर्णा-चित्ररथा) जल में आश्चर्यजनक रथ चलाने वाले (आर्या) श्रेष्ठ आचार वाले (त्या) उन दोनों मित्र और शत्रु जनों को भी (सरयोः पारतः) प्रशस्त वेग से जाने वाले सैन्यबल के पालक व पूर्ण सामर्थ्य से (अवधीः) विनाश कर।

अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन्।
न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) आवरणकारी अज्ञान और विघ्न के नाशक राजन्! यदि तू (अन्धं) लोचनहीन, प्रजा के दुःखों के अद्रष्टा प्रजा के सुख दुःखों की उपेक्षा करने वाले, और (श्रोणं च) बहरे, प्रजा की पीड़ा-युक्त चीख पुकारों को न सुनने वाले (द्वा) दोनों प्रकार के (जहिता) प्रजा को त्यागने वाले दुष्ट राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (अनुनयः) अपने अनुकूल करके सन्मार्ग पर चलावे तो (ते) तेरे (तत्) अपूर्व (सुम्नम्) सुखयुक्त राष्ट्र और यश को (न अष्टवे) कोई भी प्राप्त न कर सके।

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।
दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥ २२ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जैसे (दिवोदासाय) प्रकाश की इच्छुक प्रजा के लिये (अश्मन्मयीनां पुराम् शतं वि आस्यत्) मेघों से बनी जल-धाराओं को नीचे गिरा देता है, वैसे ही (दाशुषे) करादि दाता (दिवः दासाय) भूमि का सेवन करने वाले प्रजा के उपकार के लिये (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (अश्मन्मयीनां) पत्थरों की बनी (पुरां) शत्रु नगरियों को (वि आस्यत्) विविध प्रकार से तोड़ फोड़ दे । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।
दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (मायया) शक्ति और बल से (दासानां) प्रजा नाशक शत्रुओं के (त्रिंशतं सहस्रा) तीन सौ हजार [३,००,०००] सैन्यों को (दभीतये) विनष्ट करने के लिये (हथैः) दूर तक व्यापने वा हनन करने वाले अस्त्रों, शस्त्रों और अन्यान्य साधनों से (अस्वापयत्) सुला दे ।

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः ।
यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाशक (इन्द्र) ऐश्वर्यकारक ! राजन् ! (यः) जो तू (ता) उन (विश्वानि) शत्रु-सैन्यों को (चिच्युषे) रण-स्थान से विचलित करता और स्वसैन्यों को सञ्चालित करता है, (सः उ घत) वह तू निश्चय से (समानः) सूर्यवत् तेजस्वी, निष्पक्षपात, (गोपतिः) भूमि का स्वामी (असि) है ।

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।
अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥

भा०—(उत) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (पौंस्यम्) सब मनुष्यों के बीच, पुरुषोचित (इन्द्रियं) सामर्थ्य और ऐश्वर्य (करिष्याः) करता है (नूनं) निश्चय से (तत्) उसको (अद्य) वर्त्तमान में भी (नकिः आमिनत्) कोई नष्ट नहीं कर सकता।

वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥ २४ ॥ २३ ॥

भा०—हे (आदुरे) सब ओर शत्रुओं के नाशक! (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता न्यायकारी शासक, (देवः) ज्ञान और सत्य न्याय का दाता पुरुष (ते) तुझे (वामं-वामं ददातु) सब उत्तम २ ऐश्वर्य दे। (पूषा देवः) सर्वपोषक प्रजाजन, वा पृथ्वी का प्रबन्धक भी (ते वामं ददातु) तुझे उत्तम ऐश्वर्य दे और (भगः) ऐश्वर्य का स्वामी, कल्याणकर्त्ता अध्यक्ष भी तुझे (वामं ददातु) सेवन योग्य ऐश्वर्य दे और वे तीनों अध्यक्षजन (करूळती) कटे दांतों वाले हों अर्थात् राजा के कर आदि ऐश्वर्य में से स्वयं काट कर खाने वाले न हों। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[३१] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता छन्दः—१, ७, ८, ९, १०, १४ गायत्री। २, ६, १२, १३, १५ निचृद्गायत्री। ३ त्रिपाद्गायत्री। ४, ५ विराड्गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या गायत्री। पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! तू (कया ऊती) किस रक्षा और साधन से और (कया) किस (शचिष्ठया) शक्ति, वाणी और बुद्धि से और (कया वृता) किस व्यवहार से (नः) हमारे लिये (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला, सत्कार योग्य, (सदावृधः) सदा स्वयं बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने हारा और (सखा) सबका मित्र (आभुवत्) रूप से हो? उत्तर—(कया) सुखप्रद वाणी और व्यवहार से।

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (कः) वह कौन है जो (सत्यः) सज्जनों का हितैषी, (मदानां) आनन्दकारक पदार्थों और (अन्धसः) अन्नादि का (मंहिष्ठः) अति दानशील होकर (त्वा मत्सत्) तुझे आनन्द से युक्त करता और (दृढा) शत्रु के दृढ़ दुर्गों और (वसु) नाना धनों को (आरुजे) तोड़ने और प्राप्त करने के लिये (चित्) भी उत्साहित करता है ? उत्तर—(सत्यः) सत्य न्याय ।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (ऊतिभिः) रक्षाओं, ज्ञानों और सुख-जनक क्रियाओं से (सखीनाम्) मित्र और (जरितॄणाम्) स्तुतिकर्त्ता (नः) हम लोगों का (शतं) सैकड़ों प्रकारों से और सौ बरस तक (अविता) रक्षक (अभि भवासि) बना रह ।

अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः ।
नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥

भा०—जैसे अश्व (अर्वतः) गतिशील रथ के (वृत्तम् चक्रम् न अभि आवर्तयति) दृढ़ चक्र को चलाने में समर्थ है वैसे ही हे राजन् ! तू (चर्ष-णीनाम्) सत्य के द्रष्टा विद्वानों और हलादि कर्षक प्रजाओं के और (नः वृत्तं चक्रम्) हमारे दृढ़ चक्र, राष्ट्र और राजचक्र को (अभि आ ववृत्स्व) अच्छी प्रकार सञ्चालित कर ।

प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि ।
अभक्षि सूर्ये सचा ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—और (हि) निश्चय से हे राजन् ! प्रभो ! (क्रतूनां) यज्ञों,

उत्तम बुद्धि और कर्मों के (प्रवता) निम्न, विनययुक्त वा उत्तम मार्ग से (पदा.इव) पैरों के सदृश ज्ञान द्वारा (आ गच्छसि) प्राप्त हो और (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के अधीन (सचा) सदा साथ रहकर मैं (अभक्षि) सदा भोग करूं वा तेरा भजन करूं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे ।

अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो (ते) तेरे (मन्यवः) मननशील पुरुष (सं दधन्विरे) एक साथ मिलकर धारण करते हैं और (यत्) जो भी वे (चक्राणि) करने योग्य कर्मों को (सं दधन्विरे) एक साथ अपने ऊपर उठाते हैं वे (अध त्वे) भी तेरे ही आश्रय रहकर करते हैं, (अध सूर्ये) और जैसे सूर्य में स्थित किरणें ताप और प्रकाश धारते हैं वैसे ही वे सूर्य सदृश पुरुष तेरे अधीन रहकर ज्ञान और कर्मों को धारण करें।

उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते ।

दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥

भा०—(उत हि) और भी हे (शचीपते) प्रज्ञा, कर्म, शक्ति और सेना के पालक ! स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! आत्मन् ! (त्वाम्) तुम को विद्वान् लोग (दातारम्) दानशील (मघवानम्) ऐश्वर्यवान् और (अविदीधयुम्) भूतादि में द्रव्य नाश न करने वाला ही (आहुः) बतलाते हैं। वैसा ही वे अन्यों को रहने का उपदेश करते हैं।

उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते ।

पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८ ॥

भा०—(उत स्म) और हे राजन् ! तू (सद्यः इत्) शीघ्र ही, (शशमानाय) उत्तम वचनों का अनुशासन या शिक्षा करने वाले, प्रशंसित

आचारवान्, विद्यावान् (सुन्वते) अन्यों को और स्वयं भी ज्ञान और धनैश्वर्यों का सम्पादन करने कराने वाले को (परि) आदरपूर्वक (पुरु वसु) बहुत सा जीवनोपयोगी धन (मंहसे) प्रदान करता है।

नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः।
न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! (आमुरः) चारों ओर से आघात करने वाले और पीड़ादिजनक लोग (ते शतं चन राधः) तेरे सैकड़ों ऐश्वर्यों को भी (नहि वरन्त स्म) वरण नहीं कर सकते। (च्यौत्नानि) नाना बल कार्यों को (करिष्यतः) करना चाहने वाले तेरे बलों को भी वे नहीं रोक सकते।

अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! (ते शतं ऊतयः) तेरे सैकड़ों शिक्षा और ज्ञान के कर्म (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें। (ते सहस्रम् ऊतयः अस्मान् अवन्तु) तेरी सहस्रों रक्षाएं, विद्याएं हमारी रक्षा करें, ज्ञान दें और (ते विश्वाः अभिष्टयः अस्मान् अवन्तु) तेरी समस्त अभिलाषाएं और प्रेरणाएं हमें पालन करें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये।
महो राये दिवित्मते ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (इह) इस संसार में (अस्मान्) हमको (सख्याय) मित्रता, (स्वस्तये) सुखपूर्वक कल्याण जीवन और (महः दिवित्मते राये) बड़े भारी न्याय, प्रकाश आदि से युक्त, समुज्ज्वल धन सम्पदादि की प्राप्ति और वृद्धि के लिये (वृणीष्व) मित्र, भृत्य और सहायक रूप से स्वीकार कर।

अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! तू (अस्मान्) हमें (विश्वहा) सदा, (परीणसा राया) बहुत धन-सम्पदा से (अविड्ढि) युक्त कर और (विश्वाभिः ऊतिभिः अस्मान् अविड्ढि) सब प्रकार की रक्षा-सेनाओं सहित हम में प्रवेश कर, हम में बस।

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (नवाभिः ऊतिभिः) नये २ रक्षा साधनों और नई २ आविष्कृत विद्याओं से (अस्मभ्यं) हमारे उपकार के लिये (तान्) उन (गोमतः) गौओं के (व्रजान्) बाड़ों के तुल्य रश्मियों, ज्ञान-वाणियों और भूमि समूहों को (अस्ता इव) गृहों के समान (अप वृधि) खोल दे, प्रकट कर।

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः।
गव्युरश्वयुरीयते ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (अस्माकं) हमारा (धृष्णुया) शत्रुओं को जीतने वाला, (द्युमान्) दीप्ति युक्त (अनपच्युतः) नाशरहित (गव्युः) गमन साधनों और (अश्वयुः) शीघ्रगामी, अश्वादि, यन्त्रकलादि से युक्त (रथः) रथ और काम क्रोध को जीतने वाला, तेजोयुक्त, अविनाशी, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों का स्वामी (रथः) रथस्वरूप, वा देह से देहान्तर जाने वाला आत्मा, (ईयते) अच्छी प्रकार से गमन करे।

अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य।
वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—हे (सूर्य) तेजस्विन् ! सूर्य जैसे (वर्षिष्ठं द्याम् उपरि करोति)

प्रचुर जल वर्षाने वाला प्रकाश सर्वोपरि रहकर करता है वैसे ही तू भी (अस्माकं) हमारा (उत्तमं श्रवः) उत्तम यश, ऐश्वर्य्य और (देवेषु) धनाभिलापियों के बीच (वर्षिष्ठं याम्) सर्वोत्तम कामना (कृधि) पूर्ण कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[३२] वामदेव ऋषिः ॥ १—२२ इन्द्रः। २३, २४ इन्द्राश्वौ देवते ॥ १, ८, ६, १०, १४, १६, १८, २२, २३ गायत्री। २, ४, ७ विराड्गायत्री। ३, ५, ६, १२, १३, १५, १६, २०, २१ निचृद्गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या गायत्री। १७ पादनिचृद्गायत्री। २४ स्वराडार्ची गायत्री ॥ चतुर्विंशत्यृच सूक्तम् ॥

आ तू न॑ इन्द्र वृत्रहन्नस्माक॑मर्धमा ग॑हि।
महान्म॒हीभि॑रू॒तिभिः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! (वृत्रहन्) शत्रुओं, विघ्नों और अज्ञान के नाश करने हारे! तू (नः) हमें (तु) शीघ्र प्राप्त हो और (महीभिः ऊतिभिः महान्) बड़ी रक्षा कारिणी शक्तियों से महान् तू (अस्माकम् अर्धम्) हमारे समृद्ध राष्ट्र को (आ गहि) प्राप्त हो।

भृमि॑श्चिद् घासि॒ तूतु॑जि॒रा चित्र॑ चि॒त्रिणी॒ष्वा।
चि॒त्रं कृ॑णोष्यू॒तये॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (चित्र) अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाव! तू (भृमिः) भ्रमणशील (चित्) होकर (चित्रिणीषु) आश्चर्यजनक कार्य करने वाली, विविध सेनाओं और प्रजाओं में (तूतुजिः) पालक होकर (ऊतये) रक्षा, प्रजावृद्धि आदि कार्यों के लिये (चित्रं) विविध प्रकार का धन, ज्ञान और बल (दधासि) धारण कर और (चित्रं कृणोषि) अद्भुत कार्य कर।

द॒भ्रेभि॑श्चि॒च्छशी॑यांसं॒ हंसि॒ व्राध॑न्त॒मोज॑सा।
सखि॑भि॒र्ये त्वे सचा॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (दभ्रेभिः) अल्प संख्या वा अल्प बल वाले वा शत्रु हिंसक (सखिभिः) उन मित्रों से मिलकर (ये त्वा सचा) जो तेरे साथ रहते हैं, (शशीयांसं) धर्म मर्यादा और तेरी भूमि सीमा को लांघ कर आने वाले (ब्राधन्तं) प्रजा के नाश करने वाले दुष्ट पुरुष को (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (हंसि) दण्डित कर ।

वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः ।
अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (वयम्) हम (त्वे सचा) तेरे अधीन समवाय बनाकर रहें । (वयं) हम (त्वा अभि नोनुमः) तुझे आदर, नमस्कार करें । तू (अस्मान् अस्मान् इव) हम सबको बार २ (उत् अव) उत्तम रीति से रक्षा कर और उन्नत पद पर पहुंचा ।

स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः ।
अनाधृष्टाभिरा गहि ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) पर्वत तुल्य दानी और दृढ़ पुरुषों के स्वामिन् ! (सः नः) वह (चित्राभिः) विविध, (अनवद्याभिः) अनिन्दित, (अनाधृष्टाभिः) शत्रुओं से पराजित, धर्षण वा अपमानित न होने योग्य (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं, सुखसम्पदाओं और प्रजाओं सहित (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः ।
युजो वाजाय घृष्वये ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वावतः) तेरे सदृश (गोमतः) भूमि, वाणी, इन्द्रियों से सम्पन्न, तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशमान् पुरुष के हम लोग (घृष्वये वाजाय) प्रतिपक्षियों से संघर्ष और बल, ऐश्वर्य, ज्ञान और संग्राम विजय के लिये (युजः सु भूयाम उ) अच्छे सहयोगी होवें ।

त्वं ह्येक॒ ईशि॑ष॒ इन्द्र॒ वाज॑स्य॒ गोम॑तः ।
स नो॑ यन्धि म॒हीमिष॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन् ! आत्मन् ! (त्वं हि) तू ही निश्चय से (एकः) अद्वितीय (गोमतः वाजस्य) वाणी इन्द्रियादि सम्पदा से युक्त (वाजस्य) ज्ञान, बल, अन्न आदि का (ईशिषे) स्वामी है । (सः) वह तू (नः) हमें (महीम् इषम्) बड़ी भारी अन्न आदि सम्पदा (यन्धि) दे और (नः इषम् यंधि) हमारी सेना को संयत कर ।

न त्वा॑ वरन्ते अ॒न्यथा॒ यद्दित्स॑सि स्तु॒तो म॒घम् ।
स्तो॒तृभ्य॑ इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों द्वारा सेव्य, स्तुत्य राजन् ! प्रभो ! विद्वन् ! (यत्) क्योंकि तू (स्तुतः) प्रशंसित होकर ही (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों को (मघम्) ऐश्वर्य (दित्ससि) देना चाहता है, इसलिये लोग (त्वा) तेरा (अन्यथा) और किसी प्रयोजन से (न वरन्ते) नहीं वरण करते ।

अ॒भि त्वा॒ गोत॑मा गि॒रानू॑षत॒ प्र दा॒वने॑ ।
इन्द्र॒ वाजा॑य॒ घृष्व॑ये ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! विद्वन् ! (घृष्वये) अति घर्षण को प्राप्त, वादविवादादि से परिष्कृत, (वाजाय) वेग, बल, विद्युतादि शक्ति, प्रदीप्त धन और शुद्ध ज्ञान और अन्न प्राप्त करने के लिये (गोतमाः) उत्तम भूमि के स्वामी, वाणी के ज्ञाता और विद्वान् पुरुष एवं बैलों वाले कृषक जन (दावने) दान प्राप्त करने के लिये (गिरा) वाणी से (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर (प्र अनूषत) खूब स्तुति करें ।

प्र ते॑ वोचाम वी॒र्या॒३॒॑ या म॑न्दसा॒न आरु॑जः ।
पुरो॒ दासी॑र॒भीत्य॑ ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! (याः) जिन (दासीः) राष्ट्र के नाशक शत्रु की (पुरः) नगरियों को (अभीत्य) आक्रमण करके (मन्दसानः) प्रसन्नता पूर्वक (आ अरुजः) सब तरफों से तोड़ दे हम विद्वान् जन (ते) तेरे उन (वीर्या) बल पराक्रम के कार्यों को (प्र वोचाम) अच्छी प्रकार वर्णन करें, तुझे उनका उपदेश करें। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या ।

सुतोष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (गिर्वणः) वाणी द्वारा प्रार्थना करने योग्य राजन् ! विद्वन् ! (सुतोषु) पुत्रों के तुल्य, अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्रों में (यानि पौंस्या) जिन पौरुष युक्त कर्मों को तू (चकर्थ) करे (वेधसः) विद्वान् लोग (ता) उन २ तेरे कर्मों का (ते गृणन्ति) तुझे उपदेश करें।

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः ।

ऐषु धा वीरवद्यशः ॥ १२ ॥

भा०—जैसे (गोतमाः सूर्ये मेघे वा स्तोमवाहसः अवीवृधन्त सः एषु यशः आदधाति) उत्तम बैल आदि वाले किसान सूर्य या मेघ के आश्रय रहकर स्तुति करते और प्रचुर अन्न पाते हैं और वह उनमें उत्तम अन्न देता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (स्तोमवाहसः) स्तुतियों बल-वीर्यों के धारक विद्वान् (गोतमाः) भूमि, वाणी के स्वामी जन (त्वे) तेरे आश्रित रह कर (अवीवृधन्त) बढ़ें और तू (एषु) उनमें (वीरवत् यशः) वीर पुरुषों से युक्त यश, अन्न (आ धाः) धारण करा।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।

तं त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यः) जो (त्वं) तू (शश्वतां चित्) अनादि सनातन से चले आये, सत् तत्वों में परमेश्वर

के तुल्य, पूर्व से प्राप्त प्रजाओं के बीच (साधारणः असि) सबको समान, निष्पक्ष होकर धारण करने हारा है, (तं त्वा) उस तुझको (वयं) हम (हवामहे) पुकारते, स्तुति करते और राजा स्वीकार करते हैं।

अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः।
सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में प्रजा को बसाने हारे राजन्! शिष्यों को अपने अधीन बसाने वाले आचार्य! हे देह में बसने हारे आत्मन्! (इन्द्र) द्रष्टः! तू (सोमपाः) अन्नादि ओषधि के तुल्य समस्त ऐश्वर्यों का उपभोक्ता सोमवत् प्रजाओं वा शिष्यों का पालक है। तू (अर्वाचीनः) प्राप्त होकर (अस्मे) हमारे (अन्धसः) अन्न और (सोमानाम्) ऐश्वर्यों के उपभोग से (सु मत्स्व) अच्छी प्रकार आनन्द लाभ कर।

अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु।
अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (मतीनां) मतिमान् (अस्माकं) हमारा वा हम में से मतिमान् पुरुषों का (स्तोमः) समूह वा स्तुतियुक्त वचन (त्वा) तुझे (यच्छतु) नियम में बांधे। तू (हरी) स्त्री पुरुष वर्गों को रथ में लगे अश्वों के तुल्य (अर्वाग् आ वर्त्तय) मर्यादा में चला।

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ १६ ॥ २९ ॥

भा०—हे राजन्! तू (नः) हमारे (पुरोळाशं) आदर पूर्वक दिये, उत्तम रीति से बनाये अन्न का (घसः) उपभोग कर और (वधूयुः इव) वधू प्राप्त करने की कामना वाला पुरुष जैसे (योषणाम्) प्रेम युक्त स्त्री को प्रेम से स्वीकार करता है वैसे ही तू भी (नः) हमारी (गिरः च) वाणियों को (जोषयासे) स्वीकार कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे ।
शतं सोमस्य खार्यः ॥ १७ ॥

भा०—हम (युक्तानां) जुते हुए (व्यतीनां) विशेष वेग से जाने वाले अश्वों और नियुक्त वेतनबद्ध रक्षक सेनाओं, भोगादि पाने वाली प्रजाओं के बीच (सहस्रं) सर्व सहनशील; बलवान् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा या राज्य की हम (ईमहे) याचना करते हैं कि (सोमस्य) ओषधि अन्नादि के (खार्यः शतं) सैकड़ों मन हमें प्राप्त हों ।

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि ।
अस्मत्रा राध एतु ते ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन् ! धनाधिपते ! (हे) तेरी (सहस्रा शता गवाम्) हजारों, सैकड़ों गौओं, भूमियों और वाणियों को (वयम्) हम लोग (आ च्यावयामसि) प्राप्त करें । (ते) तेरा (राधः) ऐश्वर्य (अस्मत्रा एतु) हमें प्राप्त हो । हमारे ऊपर तेरा ऐश्वर्य निर्भर हो ।

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि ।
भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रु, विघ्नों और अज्ञानों को नाश करने हारे ! राजन्, विद्वन् ! तू (भूरिदाः असि) बहुत देने हारा है । (ते) तेरे (हिरण्यानां) हित और रमणीय, धन पूर्ण (कलशानां दश) दश कलशों के सदृश हितकारी मनोहर वेदवाणियों, दश मण्डलों को हम (अधीमहि) धारण करें, स्वाध्याय करें, मनन करें ।

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर ।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥ २० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (घ) निश्चय से (भूरि दित्ससि) बहुत सा ऐश्वर्य हमें देना चाहता है । तू

(भूरिदाः) बहुत धन ज्ञानादि का दाता होकर (नः) हमें (भूरि देहि) बहुत दे, (मा दभ्रं) स्वल्प धन एवं पीड़ादायक धन मत दे। (भूरि आ भर) बहुत २ ऐश्वर्य, ज्ञान प्राप्त करा।

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्।
आ नो भजस्व राधसि ॥ २१ ॥

भा०—हे (शूर वृत्रहन्) वीर, दुष्टों के नाशक ! तू (भूरिदा हि) बहुत ऐश्वर्यादि का दाता (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है। तू (नः) हमें (राधसि) धन के निमित्त (आ भजस्व) स्वीकार कर।

प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्।
माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥ २२ ॥

भा०—हे (विचक्षण) विशेष ज्ञान के द्रष्टः! हे (गो-सनः) वेदवाणी और पृथिवी के दातः! हे (नपात्) स्वयं न गिरने, अन्यों को न गिरने देने हारे! (ते) तेरे (बभ्रू) भरण करने वाले विद्वानों, दयाशील स्त्री पुरुषों, माता पिताओं और अश्ववत् राष्ट्ररथ को ले जाने वालों की (प्रशंसामि) प्रशंसा करता हूँ। तू (आभ्याम्) इन दोनों से शिक्षित होकर (गाः) वाणियों और राष्ट्र की भूमियों वा प्रजाओं के प्रति (मा अनु शिश्रथः) अपने को शिथिल मत कर और प्रजाओं को भी शिथिल मत होने दे।

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके।
बभ्रू यामेषु शोभेते ॥ २३ ॥

भा०—(यामेषु) गमनयोग्य मार्गों में जैसे (बभ्रू) लाल रङ्ग के दो घोड़े (अर्भके द्रुपदे विद्रधे शोभते) छोटे से दृढ़ खूंटे में बंधे शोभा पाते हैं वैसे ही (यामेषु) यम नियम के पालन कार्यों में (बभ्रू) तेजस्वी स्त्री पुरुष वर्ग, शिष्य और आचार्य दोनों (अर्भके) छोटे (विद्रधे) दृढ़ (नवे) नये, अतिस्तुत्य (द्रुपदे) खूंटे के तुल्य स्थिर व्रत में (शोभेते) शोभा

पाते हैं और वे दोनों (कनीनका-इव) आंखों की दो पुतलियों के समान परस्पर प्रेम से युक्त हों।

अरं॑ म उस्रया॒म्णेऽर॒मनु॑स्रयाम्णे ।
ब॒भ्रू याम॑ष्व॒स्रिधा॑ ॥ २४ ॥ ३० ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! आपके (बभ्रू) राष्ट्र का भरण करने वाले शासक वर्गों की दोनों श्रेणियें सधे अश्वों के समान (यामेषु) गमन योग्य उत्तम मार्गों में (अस्रिधा) प्रजा के हिंसक न हों। वे (उस्रयाम्णे) बैलों से जाने वाले या (अनुस्रयाम्णे) बिना बैलों से जाने वाले क्षुद्र प्रजाजन को भी (अरम्) बहुत सुख देने वाले हों। वैसे ही किरणों से युक्त, उससे विरहित शीतोष्ण देश में भी वे (बभ्रू) मेरे पालने वाले हों। इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[३३] वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ११ त्रिष्टुप् । ३, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ७, ८ भुरिक् पंक्तिः । ९ स्वराड् पंक्तिः ॥

प्र ऋ॒भुभ्यो॑ दू॒तमि॑व॒ वाच॑मिष्य उप॒स्तिरे॒ श्वैत॑रीं धे॒नुमी॑ळे ।
ये वात॑जूतास्त॒रणि॑भि॒रेवैः॒ परि॒ द्यां स॒द्यो अ॒पसो॑ बभू॒वुः ॥ १ ॥

भा०—जैसे (अपसः) क्रियाशील जलादि के परमाणु (तरणिभिः) गति देने वाले (एवैः) साधनों, सूर्य किरणादि से और (वातजूताः) वायु से प्रेरित होकर (द्यां परि बभूवुः) आकाश में चढ़ जाते हैं वैसे ही जो (अपसः) कर्मकर्त्ता मनुष्य (तरणिभिः) संकटों से पार उतारने वाले (एवैः) दूर तक या उद्देश्य तक पहुँचा देने वाले साधनों या सहायकों से युक्त होकर (वातजूताः) वायु के समान प्रबल ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा

प्रेरित होकर (सद्यः) शीघ्र ही (द्यां परि बभूवुः) ज्ञान को प्राप्त होते हैं जो बलवान् राजशक्ति से प्रेरित होकर (द्यां) भूमि को प्राप्त करते हैं मैं उन (ऋभुभ्यः) ज्ञान से प्रकाशित होने वाले शिक्षित मनुष्यों के हितार्थ (दूतम् इव वाचम्) वाणी को दूत के समान (इष्ये) कहता हूँ और (उपस्तिरे) उसके अभिप्राय को सर्वत्र फैलाने के लिये (श्वैतरीं) शुद्ध ज्ञानमयी (धेनुम्) ज्ञान धारण करने वाली वाणी और बुद्धि को (ईडे) प्राप्त होऊं।

यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥ २ ॥

भा०—(ऋभवः) सत्य ज्ञान के प्रकाश से युक्त विद्वान् जन (यदा) जब (पितृभ्याम्) माता और पिता से उनकी (परिविष्टी) परिचर्या और (वेषणा) विद्या प्राप्ति की साधना और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों द्वारा (अरम्) बहुत अधिक (अक्रन्) परिश्रम करते हैं (आत् इत्) तभी वे (देवानाम्) विद्या के दाता गुरु जनों के (सख्यम्) मित्रभाव को प्राप्त करते हैं और वे (धीरासः) ध्यान धारणा वाले होकर (मनायै) मनन योग्य विद्या की (पुष्टिम्) वृद्धि को (अवहन्) धारण करते हैं।

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥

भा०—(पुनः) और (ये) जो (यूपा इव) 'यूप' अर्थात् स्तम्भों के समान दृढ़ (युवानौ पितरौ) युवा माता पिता को (सना) दानशील, (जरणा) वृद्ध और (शयाना) मृत्युशय्या पर सोने वाला (चक्रुः) कर देते हैं अर्थात् माता पिता की वृद्धावस्था और मृत्यु पर्यन्त सेवा करते हैं (ते) वे (वाजः) ज्ञानवान्, (विभ्वा) बड़े ज्ञानी, शक्तिमान् परमेश्वर के अनुग्रह से युक्त, (ऋभुः) और सत्य ज्ञान से प्रकाशित, तेजस्वी ये सभी (इन्द्र-वन्तः) ज्ञानवान्, गुरु आदि अज्ञान नाशक जनों वाले, (मधु-प्सरसः)

सौम्यमुख एवं ज्ञान और उत्तम अन्न जल का उपभोग करने वाले, सात्विक पुरुष (नः यज्ञम् अवन्तु) हमारे यज्ञ, मैत्रीभाव; सत्संगति, ज्ञान धनादि के दानादान और गुरु जनों के पूजा सत्कार आदि कर्मों की रक्षा करें।

यत्संवत्सम्ऋभवो गामरक्षन्यत्संवत्सम्ऋभवो मा अपिंशन्।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४॥

भा०—(यत्) जिन कर्मों से (ऋभवः) ज्ञान से युक्त विद्वान् (संवत्सम् गाम्) बछड़े से युक्त गौ के समान, कहने योग्य अभिप्राय, वाच्य अर्थ से युक्त वाणी की (अरक्षन्) रक्षा करते हैं और (ऋभवः) ज्ञान के द्वारा अधिक सामर्थ्यवान् होने वाले विद्वान्जन (यत्) जिन उपायों से (संवत्सम्) वन्दना करने योग्य, तत्त्व के सहित वर्त्तमान (माः) ज्ञानों को (अपिंशन्) प्रकट करते हैं और (यत्) जिन उपायों से (अस्याः) इस वेद वाणी की (भासः) नाना अर्थ प्रकाशक कान्तियों को (संवत्सम्) उत्तम प्रकार से कहने योग्य गुरु के अधीन रहकर प्राप्त करने योग्य तत्त्व ज्ञान सहित (अभरन्) धारण करते हैं (ताभिः) उन (शमीभिः) शान्तिदायक कर्मों से विद्वान् लोग (अमृतत्वम्) अमृतस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥१॥

भा०—(ज्येष्ठः) सबसे श्रेष्ठ पुरुष (आह) कहता है कि (द्वा चमसा करः इति) अर्थ और काम इन भोग योग्य दो पुरुषार्थों का सम्पादन करो और (कनीयान्) उससे अधिक दीप्तिमान् पुरुष (आह) कहता है कि (त्रीन् कृणवाम इति) हम लोग धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का सम्पादन करें। (कनिष्ठः आह) सबसे अधिक दीप्तिमान् तेजस्वी पुरुष कहता है कि (चतुरः करः इति) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों

को सम्पादन करो। (त्वष्टा) विश्व का निर्माता, अज्ञान का नाशक तेजस्वी गुरु, हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य से प्रकाशित, सामर्थ्य युक्त पुरुषो! (वः) आप लोगों के (तत् वचः) उस वचन की (पनयत्) प्रशंसा, वा उपदेश करे और शिल्पी उसको व्यवहार योग्य रूप दें। इति प्रथमो वर्गः॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः॥ मनु० २। २२४॥

बुभुक्षून् प्रत्युपदेशो न मुमुक्षून्। मुमुक्षूणां तु मोक्ष एव श्रेयान् इति षष्ठे वक्ष्यते। इति कुल्लूकभट्टः।

स॒त्यमू॑चु॒र्नर॑ ए॒वा हि च॒क्रुरनु॑ स्व॒धामृ॒भवो॑ जग्मुरे॒ताम्।
वि॒भ्राज॑मानाँश्चम॒साँ अहे॒वावे॑न॒त्त्वष्टा॑ च॒तुरो॑ ददृ॒श्वान्॥ ६॥

भा०—(नरः) मनुष्य (सत्यम् ऊचुः) सत्य बोलें (एव हि) वैसे ही वे (सत्यम् अनु चक्रुः) ज्ञान के अनुसार ही कर्म करें। (ऋभवः स्वधाम्) प्रकाशमान सूर्य के किरण जैसे जल को ग्रहण करते हैं वैसे ही (ऋभवः) सत्य ज्ञान, तेज और ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले विद्वान् (एताम् स्वधाम्) इस सत्यमयी 'स्वधा' आत्मा की धारण शक्ति को (जग्मुः) प्राप्त हों। (ददृश्वान्) सत्य का दर्शक (त्वष्टा) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुष (अह एव) निश्चय से, (चतुरः चमसान्) भोग-योग्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों को ही मेघ के तुल्य, भोग्य पदार्थों के दाता, अन्नवत् और (विभ्राजमानान्) विशेष कान्ति से चमकते हुए देखें और उनकी (अवेनत्) कामना करे।

द्वाद॑श॒ द्यून्यदगो॑ह्यस्याति॒थ्ये रण॑न्नृ॒भवः॑ स॒सन्तः॑।
सु॒क्षेत्रा॑कृण्वन्नन॑यन्त॒ सिन्धू॒न्धन्वाति॑ष्ठ॒न्नोष॑धीर्नि॒म्नमापः॑॥ ७॥

भा०—जैसे (अगोह्यस्य आतिथ्ये) प्रत्यक्ष सूर्य के आधिपत्य में (ससन्तः ऋभवः) विद्यमान प्रकाश की किरणें (द्वादश द्यून् रणन्) बारहों

मासों को रौनकदार बनाते हैं, (सुक्षेत्रा अकृण्वन्) खेतों को उत्तम कर देते हैं, (सिन्धून् अनयन्) जलधाराएं प्राप्त कराते हैं और जैसे (धन्व ओषधीः अतिष्ठन्) स्थल में औषधियां और (निम्नम् आपः) नीचे भाग में जल चले जाते हैं वैसे ही (ऋभवः) विक्रम, तेज से प्रकाशित विद्वान् जन, (अगोह्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी, चिरकाल तक अप्रकट रूप से न रह सकने वाले प्रकाशमान पुरुष के (आतिथ्ये) अतिथिवत् आदर वा आधिपत्य में (ससन्तः) सुख से रहते हुए (द्वादश द्यून्) १२ मास के दिनों में (रणन्) आनन्द प्रसन्न हों, (सुक्षेत्राणि) उत्तम २ क्षेत्र (अकृण्वन्) बनावें। उनमें (सिन्धून्) जल प्रवाहों को (अनयन्त) ले जावें, (धन्व) स्थल भाग पर (ओषधीः) अन्नादि ओषधियें (अतिष्ठन्) खड़ी हों और (आपः निम्नम्) गहरे तालाब आदि स्थान में जल रहें।

रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम्।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (सुवृतं) सुख से चलने या वर्तने योग्य (नरेष्ठां) के आने वाले चक्र, या अश्वादि के तुल्य प्रधान नायक पुरुष पर आश्रित, या मनुष्यों के बैठने योग्य, (रथं) रथ और उसके समान राष्ट्र को (चक्रुः) बनाते हैं और (ये) जो (धेनुं) गौ के तुल्य कामदुघा, (विश्वजुवं) सब प्रकार के ज्ञानों से युक्त और (विश्वरूपाम्) सब प्रकार के पदार्थों का वर्णन करने वाली वाणी को (चक्रुः) प्रकट करते हैं (ते) वे (ऋभवः) ज्ञान प्रकाशक विद्वान् (सु-अवसः) उत्तम रक्षादि साधन से युक्त (सु अपसः) उत्तम कर्मकर्त्ता, (सुहस्ताः) उत्तम हाथों वाले, कर्मकुशल होकर शिल्पियों के तुल्य (नः) हमारे लिये (रयिं) ऐश्वर्य (आ तक्षन्तु) उत्पन्न करें।

अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥ ९ ॥

भा०—(देवः) दानशील पुरुष (क्रत्वा) कर्म और (मनसा) ज्ञान से (दीध्यानाः) चमकते हुए (एषाम्) इन शिल्पी आदि विद्वानों के (अपः) कर्मों को (अभि अजुषन्त) प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। (वाजः) ऐश्वर्यवान् अन्नादिसमृद्ध (सुकर्मा) उत्तम कर्मकुशल पुरुष (देवानाम्) कामना वाले विद्वानों वा प्रजाओं के पालन में (अभवत्) समर्थ हो और (ऋभुक्षाः) तेजस्वी पुरुष (इन्द्रस्य) सेनापति वा राजा के पद पर स्थित हो। (विभ्वा) व्यापक, विशेष सामर्थ्य से युक्त पुरुष (वरुणस्य) श्रेष्ठ और दुष्टों के वारण करने के पद पर नियुक्त हो।

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (मेधया) बुद्धि से (उक्था) उत्तम वचनों से (मदन्तः) हर्षित होते हुए (इन्द्राय) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (हरी) रथादि ले चलाने में समर्थ अग्नि जलों को (अश्वा) अश्वों के समान (सुयुजा) रथादि में लगने योग्य (चक्रुः) बना लेते हैं और जो (हरी अश्वा सुयुजा चक्रुः) ऐश्वर्य के लिये स्त्री पुरुष दोनों को रथ के अश्वों के समान उत्तम रीति से सहयोगी साथी बनाते हैं (ते) वे (ऋभवः) विद्वान् (मित्रं न) मित्र के तुल्य (क्षेमयन्तः) कल्याण की कामना करते हुए (अस्मे) हमें (रायस्पोषं) ऐश्वर्य की पुष्टि और (द्रविणानि) धन (धत्त) दें।

इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११॥२॥

भा०—(ऋभवः) विद्वान् लोग (वः) आप लोगों को (अह्नः) दिन में सूर्य के किरणों के तुल्य (पीतिम् उत मदम्) पान योग्य उत्तम जल और तृप्तिकारक अन्न (धुः) दें। क्या (देवाः) विद्वान् पुरुष सूर्यादि के समान (ऋते) ऐश्वर्य और ज्ञान के लिये (श्रान्तस्य) श्रम करने वाले पुरुषार्थी के (सख्याय) मित्रभाव के लिये नहीं होते हैं? होते ही हैं। (ते)

वे (ऋभवः) तेजस्वी लोग, (अस्मिन्) इस (तृतीये) तीसरे, सर्वोत्कृष्ट (सवने) ऐश्वर्ययुक्त, उच्चपद में या आयु के तृतीय भाग, ५० से ऊपर के वयस् में स्थित होकर (नूनम्) निश्चय से (अस्मे) हमें (वसूनि) नाना ऐश्वर्य (दधात) दें । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३४] वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ८, ९, निचृत् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । ३, ११ स्वराट् पंक्तिः । ५ भुरिक् पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१॥

भा०—(ऋभुः) बल और न्यायादि से प्रकाशमान (विभ्वा) व्यापक सामर्थ्य से युक्त (वाजः) बलवान् अन्नों का स्वामी और (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष ये सब (इमं) इस (नः यज्ञं) हमारे यज्ञ, सत्संग, मैत्रीभाव, दान-प्रतिदान के कार्य को (रत्न-धेया) ज्ञान, सुख, ऐश्वर्य तथा वृद्धि के लिये (उप यात) प्राप्त हों । हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (धिषणा) मति और वाणी (देवी) ज्ञान देने और तत्वों को प्रकाशित करने में समर्थ होकर (अह्नाम्) दिनों में सूर्य की दीप्ति के तुल्य बहुत दिनों तक (पीतिम् अधात्) ज्ञानरस का पान करे और (मदाः) आनन्द (वः सम् अग्मत) आप लोगों को सदा प्राप्त हों ।

विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरंधिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से चमकने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (जन्मनः) जन्म से (विदानासः) ज्ञान लाभ करते हुए (उत) और (वाजरत्नाः) ऐश्वर्यादि के 'रत्न' अर्थात् रमणयोग्य सुख प्राप्त करते हुए (ऋतुभिः) ज्ञानवान् पुरुषों सहित वा (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं

के अनुसार (मादयध्वम्) स्वयं और अन्यों को भी प्रसन्न करो। (वः मदाः सम् अग्मत) आप लोगों को ऐश्वर्य प्राप्त हों और (वः पुरंधिः) आप लोगों को पुरादि धारण करने वाला राजा, वा गृहादि धारण करने वाली स्त्री प्राप्त हो। आप लोग (अस्मे) हमें (सुवीराम् रयिम्) वीरों और पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य को (आ ईरयध्वम्) सब प्रकारों से प्राप्त कराओ।

अ॒यं वो॑ य॒ज्ञ ऋ॑भवोऽकारि॒ यमा म॑नु॒ष्वत्प्र॒दिवो॑ दधि॒ध्वे। ।
प्र वोऽच्छा॑ जुजुषा॒णासो॑ अस्थु॒रभू॑त॒ विश्वे॑ अग्रि॒योत वाजाः ॥३॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों को (अयम्) यह (यज्ञः) ऐश्वर्यादि का दान-प्रतिदान, मैत्री, ईश्वरोपासना आदि (अकारि) किया जावे (यम्) जिसको आप लोग स्वयं (प्रदिवः) उत्तम कामना और व्यवहारों से युक्त होकर (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के तुल्य (आ दधिध्वे) सब प्रकार से धारण करो। हे (वाजाः) ज्ञानैश्वर्य-बलों से युक्त पुरुषो ! (वः) आप लोगों में से जो उस यज्ञ का (अच्छ) उत्तम रीति से (जुजुषाणासः) प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (प्र अस्थुः) उन्नति की ओर बढ़ते हैं (विश्वे) वे सभी (अग्रिया उत वाजाः अभूत) मुख्य पद के योग्य और सम्पन्न हो जाते हैं।

अभू॑दु वो विध॒ते र॑त्न॒धेय॑मि॒दा न॑रो दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य।
पिब॑त वाजा ऋभवो द॒दे वो॒ महि॑ तृ॒तीयं॒ सव॑नं॒ मदा॑य ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) नायक पुरुषो ! हे (वाजाः) ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् पुरुषो ! हे (ऋभवः) ज्ञान और तेज से प्रकाशित पुरुषो ! (विधते) उत्तम श्रेष्ठ काम करने वाले और (दाशुषे) ज्ञान आदि देने वाले, (मर्त्याय) मनुष्य के लिये तो (वः) आप लोगों का (रत्नधेयम्) रमणीय पदार्थों का दान (अभूद् उ) होना चाहिये। मैं परमेश्वर वा मुख्य पुरुष जो कुछ (वः ददे) आपको ज्ञान और धनैश्वर्यादि दूं आप लोग उस (महि) पूज-

नीय (तृतीयं) उत्कृष्ट (सवनं) ऐश्वर्य को (मदाय) अपने आनन्द की वृद्धि के लिये (पिबत) उत्तम रस के तुल्य पान करो।

आ वा॑जा या॒तोप॑ न ऋभुक्षा म॒हो न॑रो द्रविणसो गृणा॒नाः।
आ वः॑ पी॒तयो॑ऽभिपि॒त्वे अह्ना॑मि॒मा अस्तं॑ नव॒स्व॑ इव ग्मन् ॥५॥३॥

भा०—हे (वाजाः) ऐश्वर्य, बल से युक्त, (ऋभुक्षाः) गुणों से महान् पुरुषो! आप लोग (महः) उत्तम (द्रविणसः) धनों विद्याओं का (गृणानाः) उपदेश करते हुए (नः उप यात) हमें प्राप्त हों। (अह्नाम् अभिपित्वे) दिनों के समाप्ति में (इमा) ये (पीतयः) उत्तम दुग्ध आदि पान योग्य पदार्थ (अस्तं नवस्वः इव) नये २ सुख प्राप्त करने वाले लोग जैसे घर को आते हैं वैसे तुम्हें (आ ग्मन्) नित्य प्राप्त हों। इति तृतीयो वर्गः॥

आ न॑पातः शवसो यात॒नोपे॒मं य॒ज्ञं नम॑सा हू॒यमा॑नाः।
स॒जोष॑सः सूरयो॒ यस्य॑ च॒ स्थ मध्वः॑ पात रत्न॒धा इन्द्र॑वन्तः ॥६॥

भा०—जैसे (नमसा हूयमानाः) अन्न द्वारा आहुति प्राप्त करके देह में प्राण गण (शवसः नपातः यज्ञं यान्ति) देह के बल को न गिरने देने वाले होकर जीवन यज्ञ को वा आत्मा को प्राप्त होते हैं वे (इन्द्रवन्तः मध्वः पिबन्ति) आत्मा से युक्त होकर मधुर अन्न का उपभोग करते हैं, वैसे ही हे (सूरयः) सूर्य तुल्य तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! आप (नमसा) सत्कार पूर्वक (हूयमानाः) बुलाये जाकर, प्रतिस्पर्द्धा—एक दूसरे से गुणों में अधिक बढ़ने की इच्छा करते हुए और (शवसः नपातः) अपने बल वीर्य को न गिरने देकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए (इमं यज्ञम्) इस श्रेष्ठ कर्म, दान-प्रतिदान, अध्ययन, अध्यापन, मैत्री, सौहार्द आदि को (उपयातन) प्राप्त करो। (सजोषसः) परस्पर प्रीतियुक्त होकर (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान्, अज्ञाननाशक विद्वान् से युक्त वा स्वयं 'इन्द्रवान्', आत्मवान्, ऐश्वर्यवान् होकर (यस्य च) जिसके पास से आप लोग (मध्वः) मधुर ज्ञान रस का (पात) पान करें (तस्य) उसको (रत्नधाः स्थ) उत्तम उत्तम ऐश्वर्य देने वाले हों।

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ज्ञानवन् ! तू (वरुणेन) उत्तम पुरुषार्थ और श्रेष्ठ पुरुष से (सजोषाः) समान प्रीति युक्त होकर (सोमं पाहि) ओषधि, ऐश्वर्य और ज्ञान का उपभोग कर । हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति योग्य विद्वान् पुरुष ! तू (मरुद्भिः) वायुओं के तुल्य गतिशील, तीव्र बुद्धियुक्त, अनालसी शिष्यों से (सजोषाः) प्रीतियुक्त होकर (सोमं पाहि) ज्ञान की रक्षा कर । हे ऐश्वर्यवन् ! तू (अग्रेपाभिः) आगे के मुख्य पदों का पालन करने वाले, (ऋतुःपाभिः) सत्य धर्मों वाले, प्राणों के पालक और 'ऋतु' अर्थात् वर्ष के वसन्तादि, नाना विभागों के तुल्य प्रजा का पालन करने वाले शासकों से (सजोषाः) प्रीतियुक्त होकर और (रत्नधाभिः) रमणीय रत्नों को धारण करने वाली (ग्नाः-पत्नीभिः) गमन योग्य, उत्तम पत्नियों और ऐश्वर्यधारक, प्रयाण करने में कुशल राष्ट्र की पालक सेनादि शक्तियों से (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (सोमं पाहि) तू गृहस्थ के तुल्य अन्नादिवत् ऐश्वर्य का उपभोग कर ।

सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८॥

भा०—हे (ऋभवः) विद्वान् पुरुषो ! आप (आदित्यैः सजोषसः मादयध्वम्) सूर्य के समान तेजस्वी, आदान-प्रति-दान में कुशल व्यापारियों वा 'अदिति' अर्थात् पृथिवी के स्वामियों वा १२ मासों के सुखों से युक्त होकर आनन्द-लाभ करो । आप लोग (पर्वतेभिः) पर्वतों के समान अचल और मेघों के तुल्य उदार, शस्त्रवर्षी वीरों के साथ (सजोषसः मादयध्वम्) समान प्रीतियुक्त होकर हर्षित होओ । आप लोग (दैव्येन सवित्रा सजोषसः मादयध्वम्) प्रकाशमान पिण्डों के बीच उत्तम प्रकाशयुक्त सविता सूर्य के तुल्य ज्ञान के अभिलाषुक शिष्यों के हितकारी, आ-

र्थं वा विद्वान् के साथ प्रीतियुक्त होकर प्रसन्न रहो और आप लोग (रत्नधेभिः सिन्धुभिः सजोषसः मादयध्वम्) समुद्रों के समान रत्नों के धारक और प्रदाता पुरुषों से प्रीतियुक्त होकर रहो।

ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥

भा०—(ये) जो (ऋभवः) ज्ञान से प्रकाशित, विद्वान् (अश्विनौ) रात्रि दिन के समान जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (ततक्षुः) तैयार करते हैं। (ये पितरा) जो विद्वान् माता और पिता दोनों की (ततक्षुः) सेवा करते हैं (ये ऊती धेनुं ततक्षुः) जो अपनी रक्षा और ज्ञान के लिये गौ के तुल्य वाणी और पृथ्वी का रक्षण करते हैं। (ये अश्वा) जो उत्तम अश्वों को तैयार करते हैं, जो (अंसत्रा) कन्धों को बचाने वाले कवच बनाते हैं, (ये ऋधक् रोदसी चक्रुः) जो आकाश और पृथ्वी दोनों का यथार्थ रूप से ज्ञान करते और (ये) जो (विभ्वः नरः) सामर्थ्यवान् पुरुष (सुअपत्यानि चक्रुः) उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे 'ऋभु' कहाने योग्य हैं।

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
ते अग्रेपा ऋभवो मंदसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥

भा०—(ये) जो लोग (गोमन्तम्) गौ आदि पशु और पृथ्वी आदि से युक्त (वाजवन्तं) अन्नादि से युक्त, (सुवीरम्) उत्तम वीर रक्षकों से युक्त और (वसुमन्तम्) उत्तम बसने, बसाने वाले राजा प्रजादि वर्गों से युक्त (पुरुक्षुम्) बहुत से सस्यादि से सम्पन्न (रयिम्) ऐश्वर्य को (धत्थ) आप लोग धारण करते हैं (ते) वे आप (ऋभवः) सत्य ज्ञान और न्याय से प्रकाशित 'ऋभु' हो और (ये च रातिं गृणन्ति) जो दान धर्म का उपदेश करते हैं वे आप लोग (अग्रेपाः) आगे से रक्षा करने वाले प्रमुख (मन्दसानाः) स्वयं प्रसन्न और औरों को आनन्दित करते हुए (अस्मे) हमारे निमित्त (रयिं धत्त) ऐश्वर्य दें।

मापांभूत न वोऽतीतृषामानिंशस्ता ऋभवो युज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदंथ सं मुरुद्भिः सं राजंभी रत्नुधेयांय देवाः ॥११॥४॥

भा०—हे (ऋभवः) तेज के सामर्थ्यवान् पुरुषो ! आप लोग (न अप भूत) हम से दूर मत हों । (अस्मिन् यज्ञे) इस मैत्रीभावादि से पूर्ण व्यवहार में आप सब (अनिः-शस्ताः) अनिन्दित हों । (वः) आप लोगों को (न अतीतृपाम) कभी न तरसावें । आप (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा और (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् पुरुषों सहित (सं मदथ) अच्छी प्रकार आनन्दित होवो । हे (देवाः) दानशील पुरुषो ! आप (रत्न धेयाय) रमणीय धन लेने के निमित्त, (राजभिः) राजा के समान पुरुषों सहित (सं मदथ) अच्छी प्रकार हर्ष अनुभव करो । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३५] वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः । नवर्चं सूक्तम् ॥

इहोपं यात शवसो नपातुः सौधन्वना ऋभवो मापं भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नुधेयं गमुन्त्विन्द्रमनुं वो मदांसः ॥ १ ॥

भा०—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धन की आकांक्षा करने वाले, अन्तरिक्ष में किरणों के समान, उत्तम भूमि भाग के स्वामी जनो ! हे उत्तम धनुष आदि अस्त्रों के धारक पराक्रमी पुरुषो ! हे (ऋभवः) न्याय से प्रकाशित, समर्थ, बहुत संख्या में विद्यमान प्रजा, सेना के पुरुषो ! आप लोग (शवसः) बलवान् और (नपातः) अपने पक्ष को नीचे न गिरने देने वाले होकर (इह उपयात) इस राष्ट्र में प्राप्त होओ । (अस्मिन् सवने) इस राज्य कार्य में ही (वः) आप लोगों का (रत्न-धेयम्) उत्तम धनैश्वर्य है और (वः मदासः) आप लोगों के सुखादि भी (इन्द्रम् अनु गमन्तु) ऐश्वर्ययुक्त जन वा राष्ट्र के अनुसार ही हों ।

आगंन्नृभूणामिह रत्नुधेयमभूत्सोमंस्य सुषुंतस्य पीतिः ।

सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस कारण से (सुकृत्यया स्वपस्यया) शोभन कर्मों को करने की प्रवृत्ति से ही विद्वान् लोग (एकं चमसं) सुख प्राप्तिरूप एक पुरुषार्थ को ही (चतुर्धा) चार प्रकार से (वि चक्र) विभाग कर देते हैं। इससे (ऋभूणाम्) सत्यबल से समर्थ विद्वानों का (इह) इस जगत् में (रत्नधेयम् आ अगन्) ऐश्वर्य प्राप्त होता है और (सु-सुतस्य सोमस्य) उत्तम रीति से उत्पादित ऐश्वर्य का (पीतिः) उपभोग व पालन भी अन्न ओषध्यादि वा प्रजा के समान धर्मानुसार ही (अभूत्) होता है। राजाओं का एक चमस अर्थात् उपभोगपात्र प्रजा वा राष्ट्र, वर्ण भेद से चार प्रकार का हो जाता है। शत्रुसैन्य को निगल जाने वाला सैन्य रथ, गज, वाजि, पदाति भेद से चार प्रकार का चतुरंग हो जाता है, मेघ से उत्पन्न जल का रश्मियों द्वारा चार प्रकार का परिणाम होता है कन्द-मूल फूल फलादि जीव शरीर और जल, विद्युत्, अन्न ओषधि है।

व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऋभवः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (एकं) एक (चमसं) चमस, उपभोग्य पात्र को (चतुर्धा वि अकृणोत) चार रूपों में प्रकट करो और ज्ञान के लिये आप (सखे वि शिक्ष इति अब्रवीत) हे मित्र! विशेष ज्ञान प्राप्त कर, इस प्रकार कहा करो। (अथ) इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लेने के अनन्तर आप लोग हे (ऋभवः) ज्ञान से प्रकाशित और (सुहस्ताः) उत्तम कर्म कुशल! (वाजाः) ऐश्वर्यादि से युक्त पुरुषो! (अमृतस्य पन्थाम्) अमृत, आत्मतत्व ज्ञान के मार्ग को और (देवानां गणम्) उत्तम दानशील, ज्ञानप्रकाशक विद्वानों को भी (एत) प्राप्त होवें। जैसे एक मेघ किरणों द्वारा चार रूपों में छिन्न भिन्न हो जाता है उसी प्रकार विद्वान्जन एक प्रजासंघ को चार वर्णों में, एक जीवन को चार आश्रमों

में और एक चमस-कर्म यज्ञ को अग्निहोत्र आदि भेद से चार भेद में और एक प्रकृति तत्व को अग्नि, जल, पृथिवी, वायु रूप में, एक पुरुषार्थ को चार पुरुषार्थों में, एक सैन्य को चार अंगों में और एक ईश्वरीय ज्ञान वेद को ऋक्, साम, यजु, ब्रह्म इन चार प्रकारों में उपदेश करें।

किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥

भा०—चमस का स्वरूप—(एषः चमसः) यह 'चमस' (किंमयः स्वित्) किस पदार्थ का बना (आस) है (यं) जिसको (काव्येन) क्रान्तदर्शी विद्वानों का कौशल (चतुरः) चार रूपों में (वि चक्र) परिणत कर देता है। हे (ऋभवः) ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग (मदाय) आनन्द लाभ के लिये, (सवनं) उत्तम ऐश्वर्य, यज्ञ, अपत्यादि (सुनुध्वं) करो और (मधुनः सोम्यस्य पात) परमानन्द से युक्त मधुर ब्रह्म रस वा अन्नादि का पान, उपभोग करो। प्रश्न—यह पूर्वोक्त चमस किस पदार्थ का बना, कैसा है? उत्तर—चमस 'किं-मय' है अर्थात् तुच्छ बल को उखाड़ फेंकने वाला सैन्य, तुच्छ अज्ञान का नाशक ज्ञानस्वरूप, 'किं' प्रश्न के योग्य ब्रह्म ज्ञान का उपदेशप्रद 'वेद' है।

शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम्।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (ऋभवः) ज्ञान से प्रकाशवान् पुरुषो! हे (वाजः-रत्नाः) अन्नैश्वर्यादि रमणीय पदार्थों के स्वामियो! आप (शच्या) शक्तिशालिनी बुद्धि, वाणी, शक्ति और सेनादि के बल से ही (चमसं) भोग योग्य, भोगप्रद पदार्थ राष्ट्रादि को (देवपानम्) विजिगीषु आदि से उपभोग करने योग्य (कर्त्त) करो और आप (शच्या) वाणी और बुद्धि से ही (इन्द्रवाहौ हरी) ऐश्वर्यवान् राजा को वहन करने, उसको धारण करने

वाले अश्वों के तुल्य सन्मार्ग पर चलने वाले स्त्री पुरुषों को (धनुतरौ अतष्ट) शीघ्रगामी बनाते हो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऋभवः) ज्ञान के प्रकाशक, हे (वृषणः) सुखों के वर्षक हे (वाजासः) ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (मन्दसानाः) हर्ष लाभ के इच्छुक जनो ! (यः) जो (अह्नाम् अभि-पित्वे) दिनों के अवसान में (वः) आप लोगों के लिये (तीव्रं) सर्वातिशायी, (सवनं) ऐश्वर्य (मदाय) हर्ष लाभ के लिये (सुनोति) उत्पन्न करता है (तस्मै) उसकी वृद्धि के लिये आप लोग भी (सर्व-वीरम्) समस्त प्रकार के वीरों, पुत्रों और प्राणों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ तक्षत) उत्पन्न करो ।

प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यंन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँ र्याँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७॥

भा०—हे (हर्यश्व) तीव्र अश्वों के स्वामिन् ! हे जलहरणशील किरणों से प्रकाश फैलाने वाले सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू (प्रातः) प्रातःकाल जीवन वा राज्यप्राप्ति के प्रारम्भ में (सुतम् अपिबः) देह में उत्पन्न बल पालन और ऐश्वर्य का उपभोग कर । (ते) तेरा (सवनं) ऐश्वर्य (माध्यन्दिनं) मध्याह्न समय के प्रखर सूर्य के समान (केवलं) सबसे अद्वितीय हो । उस समय (रत्नधेभिः ऋभुभिः) उत्तम प्रकाशयुक्त किरणों से जैसे सूर्य जल को पीता है वैसे ही तू भी (रत्नधेभिः) हे आचार्य ! रत्नरूप वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी ब्रह्मचारी शिष्यों और हे राजन् (यान्) जिनको तू (सुकृत्या) उत्तम कर्म से अपना (सखीन् चकृषे) सखा, मित्र बना लेता है (रत्न-धेभिः) ऐश्वर्यों वा रत्नों के धारक उन (ऋभुभिः) तेजस्वी पुरुषों सहित (सवनं सं पिबस्व) ज्ञान का पान और ऐश्वर्य का उपभोग कर ।

ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (देवासः) उत्तम सुख के इच्छुक विद्वान् पुरुष (सुकृत्या) उत्तम आचरण से (श्येनाः इव) तीव्रगामी पक्षियों के समान ऊंचे चढ़ने वाले, उत्तम पद या मार्ग की ओर जाने वाले प्रशंसनीय आचरण वाले (अभवत) हो जाते हैं वे (दिवि अधि) ज्ञानमय परमेश्वर में, मोक्ष में, ज्ञानमय प्रकाश में और पृथ्वी के ऊपर (निषेदुः) आदर से विराजते हैं। हे (शवसः नपातः) बल वीर्य का नाश न होने देने हारे बलवान्, ज्ञानवान् पुरुषो ! विद्वान् शिष्यो ! हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुर्धरो ! उत्तम मनोभूमि पर आरूढ़ साधको ! (ते) वे आप लोग (रत्नं धात) रमणीय वीर्य का धारण पालन करो, ऐश्वर्य को धारो और (अमृतासः) अविनाशी, मुक्त (अभवत) होओ ।

यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सुहस्ताः) उत्तम साधनों से सम्पन्न वीरो ! हे उत्तम कर्म करने में कुशल हाथों वा विघ्ननाशक साधनों वाले विद्वानो ! आप (स्वपस्या) उत्तम कर्म की इच्छा से (यत्) जब (तृतीयं) तीसरे श्रेष्ठ कोटि के (रत्न-धेयम्) रमणीय वीर्य धारण के कार्य अर्थात् ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य को (अकृणुध्वम्) कर लो इसी प्रकार हे वीरो ! जब तुम सब श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्राप्त कर लो। (तत्) तब हे (ऋभवः) विद्वानो ! वीरो ! न्याय से शोभा पाने वालो ! (वः) तुम्हारा (एतत्) यह (परि सिक्तम् अस्तु) सन्तानार्थ निषिक्त हो और राज्य में प्रजा की वृद्धि के लिये मेघ के जल के तुल्य सर्वोपकारार्थ दान दिया जाय और आप लोग स्वयं (इन्द्रियेभिः मदेभिः) आत्मा के द्वारा प्राप्त अध्यात्म आनन्दों से (सं पिबध्वम्) उसका उपभोग और पालन करो। हे वीरो ! तुम उस ऐश्वर्य का

(इन्द्रियेभिः मदेभिः) राजा द्वारा प्रदत्त तृप्तिकारक भोजन वेतनादि रूप से भोग करो। इति षष्ठो वर्गः॥

[३६] वामदेव ऋषिः॥ ऋभवो देवता॥ छन्दः—१, ६, ८ स्वराट् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ विराट् जगती। ७ जगती॥ नवर्चं सूक्तम्॥

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो॑३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ॥१॥

भा०—जैसे (अनश्वः अनभीशुः त्रिचक्रः रथः) बिना अश्व, बिना लगाम का तीन चक्रों का रथ जो (रजः परि वर्त्तते) सर्वत्र लोकों वा अन्तरिक्ष में घूम सके वह (उक्थ्यः) स्तुति योग्य उत्पन्न होता है और उससे शिल्पियों की प्रशंसा होती है वैसे ही हे (ऋभवः) विद्वान् पुरुषो! (रथः) रमण करने वाला आत्मा, वा यह रथ रूप देह (अनश्वः) अश्व के सदृश बाह्य गतिसाधन से रहित, वा स्वयं आत्मा, (अनश्वः) भोक्ता न होकर, (अनभीशुः) लगाम आदि बाह्य साधनों से रहित, (त्रिचक्रः) मन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय अथवा मन, प्राण और विज्ञान इन तीन कारकों से युक्त होकर (रजः परिवर्त्तते) लोकान्तरों में, वा प्रकृति के रजस्तत्व को प्राप्त होकर देहादि से आवृत होता है। (यत् च) जो आप लोग (द्याम् पृथिवीम् च पुष्यथ) सूर्य-रश्मियों के समान आकाश व पृथिवी, ज्ञानवान् पुरुषों और सामान्य लोकों को भी पुष्ट करते हैं (तत्) वह (वः) आप लोगों के (देव्यस्य) विद्वानों के योग्य ज्ञान की (महत्) बड़ी भारी (प्रवाचनम्) उत्तम ख्याति और उपदेश है।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि॥२॥

भा०—(ये) जो (सुचेतसः) उत्तम चित्त वाले होकर (मनसः परि ध्यया) मन की विशेष चिन्तना से (अवि-ह्वरन्तं) कुटिल गति से न जाने वाले, (सुवृतं) उत्तम रीति से चलने वाले (रथं चक्रुः) रथ को बनाते हैं।

अध्यात्म में—जो ज्ञानवान् और शुभ चित्त से युक्त पुरुष (व्यया) संध्या अर्थात् ध्यान के अभ्यास से (मनसः परि) मन से भी परे विद्यमान (अवि ह्वरन्तं) अकुटिल, (सुवृतं) आचारवान् (रथं) रसस्वरूप आत्मा को (चक्रुः) बना लेते हैं उसकी साधना करते हैं। हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित विद्वान् पुरुषो ! हे (वाजाः) ऐश्वर्यवान् पुरुषो ! (तान् उ नु. वः) उन आप लोगों से (अस्य सवनस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (आ वेदयामसि) निवेदन करते हैं।

तद्वो॑ वाजा ऋभवः सुप्रवाच॒नं दे॒वेषु॑ विभ्वो अभवन्महित्व॒नम् ।
जिव्री॑ यत्सन्ता॑ पि॒तरा॑ सना॒जुरा॑ पुन॒र्युवा॑ना च॒रथा॑य॒ तक्ष॑थ ॥३॥

भा०—हे (वाजाः) बल से युक्त ! हे (ऋभवः) ज्ञान और तेजों से युक्त ! हे (विभ्वः) विशेष ऐश्वर्य वा विद्यादि से युक्त विद्वान् जनो ! (यत्) जो तुम लोग (जिव्री) जरावस्था को प्राप्त (सन्ता) हुए (सना जुरा) दान आदि से वृद्ध, (पितरा) पालक वृद्ध पुरुषों को (चरथाय) ज्ञान वितरण और जीवन यापन के लिये (पुनः युवाना तक्षथ) पुनः युवाओं के तुल्य उत्साह युक्त हो (वः) आप लोगों का (तत्) वही (सु-प्र-वाचनम्) उत्तम ख्याति और उत्तम विद्याभ्यास है और वही आप लोगों का (देवेषु) विद्यादाताओं में (महित्वनम्) महान् कर्त्तव्य है।

एकं॒ वि च॑क्र चम॒सं च॒तुर्व॑यं॒ निश्चर्म॑णो॒ गाम॑रिणीत धी॒तिभिः॑ ।
अथा॑ दे॒वेष्व॑मृत॒त्वमा॑नश श्रु॒ष्टी वा॑जा ऋभव॒स्तद्व॑ उ॒क्थ्य॑म् ॥४॥

भा०—(वाजाः ऋभवः) बल धारक और ऋत अर्थात् अन्न से उत्पन्न होने और चमकने वाले प्राणो ! (वः तत् उक्थ्यम्) आप लोगों का यही स्तुतियोग्य कर्म है कि आप लोग (एकं चमसं चतुर्वयं वि चक्र) बाह्य पदार्थों के भोगने वाले एक अन्तःकरण को चार शाखाओं में प्रकट कर देते हो, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार एक ही अन्तःकरण के ये चार रूप प्राणशक्ति से होते हैं। अथवा—प्राणों द्वारा ही एक भोग्य जीवन 'चतु-

वय' अर्थात् चार अवस्थाओं वाला हो जाता है, बाल, यौवन, सम्पूर्णता (किञ्चित् परिहाणि), वार्धक्य और आप प्राणगण (धीतिभिः) ध्यान धारणाओं द्वारा (चर्मणः) चर्म आदि की बनी जिह्वा, तालु, मुखादि अवयवों से (गाम् निर् अरिणीत) व्यक्त वाणी को प्रकट करते हो। (अथ) और (देवेषु) बाह्य विषयों के ज्ञान की कामना करने वाले इन्द्रियों में (अष्टी) शीघ्रतापूर्वक (अमृतत्वम्) चैतन्य (आनश) प्राप्त कराते हो।

ऋभुतो र॒यिः प्र॑थ॒मश्र॑वस्तमो॒ वाज॑श्रुतासो॒ यमजी॑जन॒न्नरः॑।
वि॒भ्वत॒ष्टो वि॒दथे॑षु प्र॒वाच्यो॒ यं दे॑वा॒सोऽव॑था॒ स विच॑र्षणिः ॥५।७

भा०—(वाजश्रुतासः) ज्ञान को श्रवण करने वाले और ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध होने वाले विद्वान् एवं वीर (नरः) नायक (यम्) जिस ऐश्वर्य को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं वह (रयिः) ऐश्वर्य (ऋभुतः) ज्ञान से प्रकाशित गुरु वा प्रभु से प्राप्त होकर (प्रथमश्रवस्तमः) श्रेष्ठ, उत्तम श्रवण योग्य वेद है। (सः) वह वेदाख्य ज्ञान (विचर्षणिः) विविध गूढ रहस्यों को दिखाने वाला है। (यं) जिसकी हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! आप (अवथ) रक्षा करते हो और वह (विभ्वतष्टः) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों वा व्यापक परमेश्वर द्वारा प्रकट किया है और (विदथेषु) ज्ञान प्राप्ति के अवसरों पर (प्र-वाच्यः) गुरु द्वारा शिष्यों के प्रति उपदेश योग्य होता है।
इति सप्तमो वर्गः ॥

स वा॒ज्यर्वा॒ स ऋषि॑र्वच॒स्यया॒ स शूरो॒ अस्ता॒ पृत॑नासु दु॒ष्टरः॑।
स रा॒यस्पोषं॒ स सु॒वीर्यं॑ दधे॒ यं वाजो॒ विभ्वाँ॑ ऋ॒भवो॒ यमावि॑षुः ६

भा०—(यत्) जिसकी (वाजः विभ्वा ऋभवः) ऐश्वर्यवान् विशेष सामर्थ्य और विद्यावान् और तेज और सत्य के बल से तेजस्वी पुरुष (आविषुः) रक्षा करते, (सः वाजी) वह ऐश्वर्यवान् (अर्वा) अश्व के समान बलवान् शत्रुओं का नाशक होता है। (वचस्यया ऋषिः) उत्तम स्तुति से मन्त्रार्थों का द्रष्टा, ऋषि, (सः) वह (शूरः) वीर, (अस्ता) अस्त्रों से शत्रु

को पराजित करने वाला, (पृतनासु दुस्-तरः) सेनाओं के बीच कठिनता से विजय करने योग्य होता है। (सः रायः पोषं दधे) वह ऐश्वर्य की समृद्धि को धारण करता और (सः सुवीर्यं दधे) वह उत्तम बल को धारण करता है।

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७॥

भा०—हे (वाजाः) बलवान् और बुद्धि में तीव्र वेग वाले शिष्य जनो ! हे (ऋभवः) सत्य-ज्ञान से प्रकाशित होने वालो ! जिसके द्वारा (वः) आप लोगों का (श्रेष्ठं) सबसे उत्तम (दर्शतं पेशः) दर्शनीय स्वरूप, (धायि) धारण किया जाय और सर्वश्रेष्ठ (स्तोमः धायि) वेदोपदेश स्थिर किया जा सके, आप लोग (तं जुजुष्टन) उसकी सेवा करो और जो लोग (धीरासः) धीर पुरुष और (कवयः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (विपश्चितः) ज्ञानों को जानने वाले मेधावी हैं (तान्) उनको लक्ष्य करके हम (वः) आप लोगों को (एना ब्रह्मणा) इस वेद ज्ञान के निमित्त (आवेदयामसि) बतलावें और आप लोग भी (धीरासः कवयः स्थ) धीर और विद्वान् हो जाओ।

यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥

भा०—हे (विद्वांसः ऋभवः) विद्वान् महोदयो ! (यूयं) आप लोग (धिषणाभ्यः परि) बुद्धियों से विचार कर (विश्वा नर्याणि भोजनानि तक्षत) सब प्रकार के लोकोपकारक भोग्य पदार्थों का निर्माण करो और (द्युमन्तं वाजं) तेजस्वी ज्ञान, बल और (वृषं शुष्मम्) बलवान् पुरुषों के बल रूप (उत्तमं रयिम्) उत्तम ऐश्वर्य को उत्पन्न करो।

इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥ ८ ॥

भा०—(ऋभवः) तेज विद्यादि से प्रकाशित पुरुषो ! आप लोग (इह) इस राष्ट्र में (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को और (इह रयिं रराणः) इस लोक में उत्तम ऐश्वर्यं और (इह श्रवः रराणः) इस लोक में उत्तम अन्न और ज्ञान को देते हुए (नः तक्षत) हमें व्यवस्थित और उत्तम बनाओ और (येन) जिससे (वयम्) हम लोग (अन्यान् अति) और सबको अतिक्रमण करके (चितयेम) ज्ञानवान् होवें और (तं चित्रं वाजं) उस, अद्भुत ज्ञान और ऐश्वर्य को (नः दद) हमें दो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३७] वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता । छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पंक्तिः ॥ ५, ७ अनुष्टुप् ॥ ६ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वाजाः) बलवान् पुरुषो ! हे (ऋभुक्षाः) बड़े लोगो ! हे (देवाः) दानशील लोगो ! आप लोग (देवयानैः पथिभिः) विद्वानों से जाने योग्य उत्तम मार्गों और गमन साधन रथादि से (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसारहित होने वाले यज्ञ और दृढ़ राष्ट्र को (उप यात) प्राप्त होओ और आप लोग (मनुषः रण्वाः) मननशील, मनोहर आचरण करते हुए (अह्नाम् सुदिनेषु) दिनों के बीच उत्तम दिनों में (आसु विक्षु) इन प्रजाओं में (यथा) यथावत् (यज्ञं दधिध्वे) संगति, मैत्री आदि को बनाये रहो ।

ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के (ते) वे (यज्ञाः) परस्पर मित्रतादि के भाव, एवं दान, सत्कार आदि सत्कर्म और पूजनीय पुरुष भी, (अद्य) वर्त्तमान में (घृतनिर्णिजः) घृत वा जलादि के संसर्ग से पवित्र और (जुष्टासः) प्रेमपूर्वक सेवन-योग्य होकर (गुः) प्राप्त हों और वे (हृदे मनसे सन्तु) हृदय और चित्त को भी सन्तुष्ट करने वाले हों। हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (सुतासः) सन्तान और ऐश्वर्य (पूर्णाः) पोषित और गुणों से पूर्ण होकर (वः हरयन्त) तुम्हें प्रेम से चाहें और वे (पीताः) पालित, सुरक्षित रहकर (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान, कर्म, उत्साह की वृद्धि के लिये (हर्षयन्त) प्रसन्न चित्त रहें।

त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजाः) ज्ञानवान् (ऋभुक्षणः) तेजस्वी पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (स्तोमः) वचन समूह, उपदेश (यथा) जैसे (त्रि-उदयं देव-हितं ददे) तीनों प्रकार के अभ्युदय के दाता विद्वानों के हितकारी सुख को देता है, वैसे ही मैं भी (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता होकर तीनों अभ्युदयकारी हितवचन (वः ददे) आप लोगों को दूं और जैसे (मनुष्वत्) मननशील विद्वान् के सदृश (उपरासु विक्षु) समीप बसी प्रजाओं को मैं (सोमम् जुह्वे) अन्नादि पदार्थ दूं वैसे ही (बृहद्-दिवेषु) बड़े-बड़े ज्ञानवान् पुरुषों के बीच में मैं (सचा) संगत होकर (युष्मे सोमं जुह्वे) आप लोगों को भी ऐश्वर्यादि दूं।

पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रस्य सूनो) विद्वान् और बलवान् राजा के पुत्र के समान प्रिय ! और हे (शवसः नपातः) बल के द्वारा अपने को उससे बांधने वाले

वीर पुरुषो ! आप लोग (पीवो अश्वाः) खूब हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले, (शुचद्रथाः) कान्तिमान् रथों वाले, (अयः-शिप्राः-वाजिनः) मुख में वा नाक पर लोहे की बनी लगाम वा पट्टी के धारक अश्वों के तुल्य वीर भी (अयः-शिप्राः-वाजिनः) स्वर्णादि के बने कुण्डलादि आभूषणों को गण्डस्थल पर धारण करने वाले और बलवान् (सुनिष्काः) कण्ठ में सुवर्ण पदकादि धारण करने वाले, (भूत् हि) हुआ करें। (वः) आप लोगों के बीच (अग्रियम्) आगे का मुख्य पद (अनु मदाय) अनुकूल रहकर हर्ष प्राप्त करने के लिये (चेति) जाना जाता है।

ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (ऋभुक्षणः) महोदयो ! हम लोग (वाजे) ज्ञान और बल के कार्य में (ऋभुम् रयिम्) बहुत ऐश्वर्य प्राप्त करें और (ऋभुम्) बहुत तेजस्वी, सत्य, ज्ञान, तेज से चमकने वाले, (रयिम्) ऐश्वर्यवान् (वाजिन्तमम्) उत्तम वेगवान् अश्वादि साधनों के स्वामी, (युजम्) सबके संयोजक, (इन्द्रस्वन्तं) ऐश्वर्य धारक (अश्विनम्) उत्तम अश्वों के स्वामी को (हवामहे) प्राप्त करें। इति नवमो वर्गः ॥

सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऋभवः) तेजस्वी पुरुषो ! (यम् मर्त्यम्) जिस मनुष्य की (यूयम् इन्द्रः च अवथ) तुम और ऐश्वर्यवान् राजा रक्षा करते हैं (सः इत्) वही श्रेष्ठ है। वही (धीभिः) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों से (सनिता) सत्यासत्य का विवेकी अन्यों को ज्ञानैश्वर्य देने वाला (अस्तु) हो और (मेधसाता) पवित्र यज्ञ करने, पवित्र अन्न देने और धर्म संग्राम में (सः) वही (अर्वता) उत्तम ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम अश्व के सहित हो।

वि नो॑ वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं॑ सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (वाजाः) ज्ञान और बल से युक्त (ऋभुक्षणः) गुणों में महान् और (स्तुताः सूरयः) प्रशंसित विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (यष्टवे) दान, मैत्री, सत्संग, देवपूजन आदि सत्कर्म के लिये उत्तम (पथः चितन) मार्गों का उपदेश करो और (अस्मभ्यं) हम में (तरीषणि) संसार-सागर से पार उतरने का सामर्थ्य और (विश्वा आशाः) हमारी समस्त आकांक्षाओं को पूर्ण करो ।

तं नो॑ वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं॑ चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥ १० ॥

भा०—हे (वाजाः) ऐश्वर्यवान् लोगो ! हे (ऋभुक्षणः) बड़े लोगो ! हे (इन्द्रः) शत्रुहन्तः ! हे (नासत्या) असत्याचरण न करने हारे सभापति, न्यायपति ! आप (नः चर्षणिभ्यः) हम को (तं अश्वं रयिं) उस महान् धन की (सम् आ शस्त) अच्छी प्रकार प्रशंसा व उपदेश करें। जो (पुरु) बहुतों को पालने में समर्थ और (मघत्तये) दान के लिये हो। इति दशमो वर्गः ॥

[३८] वामदेव ऋषिः ॥ १ द्यावापृथिव्यौ । २-१० दधिक्रा देवता ॥ छन्दः—
१, ४ विराट् पंक्ति । ६ भुरिक् पंक्ति । २, ३ त्रिष्टुप् । ५, ८, ९,
१० निचृत् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

उतो हि वां॑ दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्य॑स्त्रसद॑स्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां द॑दथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥

भा०—(या) जिन उत्तम पदार्थों को (त्रसदस्युः) दुष्ट पुरुषों को भय-प्रद और भयभीत शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला वीर सेनापति (नितोशे) देता है हे (द्यावा पृथिव्यौ) राजा और प्रजाजनो ! वे (दात्रा) दान योग्य (पूर्वा)

पूर्व विद्यमान सभी पदार्थ (वाम् हि) निश्चय से तुम दोनों के ही हैं। क्योंकि, आप दोनों ही (क्षेत्रासां उर्वरासां घनं ददथुः) रणक्षेत्र वा कृषि क्षेत्रों और श्रेष्ठ धन भूमि को प्राप्त कराने वाला सैन्यबल प्रस्तुत करते हो। आप दोनों ही (दस्युभ्यः) प्रजानाशक दुष्ट पुरुषों के नाश के लिये (उग्रम् घनं) उग्र आयुध और (अभिभूतिम् ददथु) पराजय देते हो।

उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥

भा०—जैसे स्त्री पुरुष (वाजिनं दधिक्राम् श्येनम् आशु ददथुः) वेगवान्, बलवान्, पीठ पर लेकर चलने वाले, उत्तम चाल वाले, तीव्र वेगवान् अश्व को पालते पोसते हैं वैसे ही राजा-प्रजावर्ग भी (वाजिनम्) बलवान्, (पुरु निः-षिध्वानं) बहुत शत्रुओं को हटा देने वाले, (दधिक्राम्) राष्ट्र को धारण करने वाले (विश्वकृष्टिं) समस्त कृषक और शत्रुकर्षक प्रजाओं, सेनाओं के स्वामी (ऋजिप्यं) धार्मिक जनों के पालकों में उत्तम, (श्येनम्) बाज के समान शत्रु पर झपटने वाले वा उत्तम ज्ञानयुक्त (प्रुषितप्सुम्) स्निग्ध सात्विक और परिपक्व पदार्थों का भोजन करने वाले, (आशुं) वेगवान् (चर्कृत्यम्) कार्य में कुशल, (अर्यः शूर) शत्रुओं के प्रति वीर, (नृपतिं न) पालक के तुल्य नायकों के भी पालक पुरुष को (ददथुः) सब ऐश्वर्य प्रदान करें।

यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (पड्भिः द्रवन्तं रथतुरं विश्वः हर्षमाणः मदति) पैरों से दौड़ते हुए रथ में लगे तेज अश्व को देखकर सभी प्रसन्न होकर उस की प्रशंसा करते हैं वैसे ही (प्रवता इव द्रवन्तं) नीचे मार्ग से वेग से बहते जल के समान (सीम् पड्भिः द्रवन्तं) गमन साधनों से सब तरफ द्रुतगति से जाने वाले (गृध्यन्तं) अन्य राष्ट्रों की विजय कामना करते हुए (मेधयुं न शूरं) संग्राम

के इच्छुक, वीर के सदृश और (ध्रजन्तम्) वेग से जाने वाले, (वातम् इव) वायु के समान (रथतुरम्) रथ से वेग से जाने वाले महारथी को राजा प्रजा दोनों धारण करें।

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन्।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (समत्सु) संग्रामों में (गध्या) परस्पर मिलने वाले उभय पक्ष के वीरों को (आरुन्धानः) सब भांति रोकता रहता है और जो (सनुतरः चरति) सबसे अधिक दानशील वा विवेकी होकर आचरण करता है, जो (गोषु गच्छन्) भूमियों और ज्ञान वाणियों में विचरता हुआ, (आविः-ऋजीकः) सरल धर्म मार्गों को प्रकट करता हुआ (विदथा विचिक्यत्) ज्ञानों और धनों को जान लेता और प्राप्त कर लेता है, वह (आपः आयोः अरतिम् परितिरः) आप्त पुरुष या प्रजाजन के दुःखों को दूर करता है।

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥११॥

भा०—(भरेषु=हरेषु वस्त्रमथिं तायुम् न अनुक्रोशन्ति) चोरियों के होने पर जैसे वस्त्रादि पदार्थों को हरने वाले चोर को लोग नाना प्रकार से कोसते हैं वैसे ही (भरेषु) संग्रामों में (क्षितयः) राष्ट्रवासी लोग (वस्त्रमथिं) रहने के मकान आदि वास योग्य पदार्थों के नाशक चोरवत् (एनं) इस राजा को भी (अनुक्रोशन्ति) बुरा भला कहा करते हैं और (श्येनं न) पक्षियों के नाशक बाज पक्षी के तुल्य, वेग से (श्रवः) अन्न और (पशुमत् च यूथम्) पशुओं के रेवड़ को (अच्छ) लक्ष्य करके (नीचायमानं) नीच आचरण करने वाले (जसुरिं) प्रजा पर आक्रमण करने वाले हिंसक राजा को भी (अनुक्रोशन्ति) प्रजाजन बुरा भला कहते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥ ६ ॥

भा०—(उत स्म) और (आसु) जो सेनाओं के बीच (रथानां श्रेणिभिः) रथों की पंक्तियों सहित (सरिष्यन् इव) शत्रु पर आक्रमण करने की इच्छा करता हुआ (नि विवेति) सब प्रकार से तमतमाता है और जैसे सूर्य (जन्यः) सब जनों का हितकर (शुभ्वा) शोभायमान रूप से (किरणं ददश्वान्) किरणों को देता हुआ (स्रजं कृण्वानः) व्यापक किरणों को प्रकट करता हुआ, (रेणुं रेरिहत्) रेणु-रेणु व्याप लेता है। वा जैसे (किरणं ददश्वान् शुभ्वा स्रजं कृण्वानः जन्यः रेणुं रेरिहत्) मुंह में लगे लोहखण्ड वा लगाम को चबाता हुआ, श्वेत, सजासजाया, माला पहने घोड़ा धूल उड़ाता, या चाटता है वैसे ही प्रतापी राजा, (जन्यः) सर्वहितकारी, उत्तम रूप से प्रकट होने वाला, (शुभ्वा) शोभायमान और (स्रजं कृण्वानः) माला धारण करके (जन्यः न) वधू के अभिलाषी वर के तुल्य सज धज कर (किरणं ददश्वान्) तेज को धारण करता हुआ (रेणुं रेरिहत्) अपने सैन्य द्वारा धूलि को उड़ावे, अथवा 'रेणु' अर्थात् हिंसक दुष्ट जन को नष्ट करे।

उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥

भा०—(वाजी सहुरिः समर्ये तन्वा शुश्रूषमाणः तुरं यतीषु तुरयन् रेणुम् ऋञ्जन् भ्रुवोः अधिकुरुते) जैसे वेगवान् अश्व सहनशील होकर संग्राम में शरीर से सेवा करता हुआ वेग से जाने वाली सेनाओं के बीच वेग से जाता हुआ, धूल उड़ाता हुआ, अपने भौंहों के ऊपर भी धूल डाल देता है वैसे ही (स्यः) जो (वाजी) बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष (ऋतावा) अन्न, धन तेज और ज्ञान से सम्पन्न होकर (समर्ये) संग्राम में और उत्तम, पुरुषों के सहयोग में, अन्तेवासी या और सुहृदों के बीच (तन्वा) अपने देह से (शुश्रूषमाणः) देश वा गुरु आदि की शुश्रूषा करता हुआ, वेदादि के श्रवण की इच्छा करता

हुआ, (तुरं यतीषु) वेग से जाने वाली सेनाओं और प्रयत्नशील प्रजाओं में (तुरं तुरयन्) रथादि साधनों को वेग से चलाता हुआ, (ऋजिप्यः) धार्मिकों का पालक होकर (रेणुम् ऋञ्जन्) धूलि के समान शत्रु-दल को वश करता हुआ, (भ्रुवोः अधि) भौंहों के सञ्चालन मात्र से, आंख के इशारे भर से, उन पर भौंहों के क्रोधभाव को दर्शनिमात्र से (अधि किरते) उन पर शस्त्रास्त्र वर्षा करता है।

उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥ ८ ॥

भा०—(द्योः तन्यतोः इव) जैसे चमचमाती घातक बिजली से लोग डरते हैं वैसे ही (अस्य) उस (द्योः) विजयशील, (ऋघायतः) शत्रु हिंसक (अभियुजः) आक्रमणकारी सेनापति से शत्रु (भयन्ते) भय करते हैं। (यदा) जब वह (सीम्) सब ओर स्थित (सहस्रम्) समस्त हजारों शत्रु सैन्यों के मुकाबले पर (अभि अयोधीत्) डट कर सबसे एक साथ युद्ध करता है, तब वह (ऋञ्जन्) शत्रुओं को वश करता हुआ (दुर्वर्तुः) कठिनता से वारण-योग्य और (भीमः) अति भयंकर (भवति स्म) हो जाता है।

उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और जैसे (जनाः कृषिप्रः जूर्ति पनयन्ति) लोग कर्षण योग्य, रथादि को पूर्ण करने वाला, उसका अंगभूत होकर जुते हुए अश्व के वेग को कार्य व्यवहार में लाते और उसकी स्तुति करते हैं और जैसे (आशोः अभिभूतिम्) व्यापक विद्युत् के व्यापन गुण को विद्वान् जन कार्य में लाते और वर्णन करते हैं जैसे (वि यन्तः) विविध उपायों से जाने वाले लोग (समिथेएनम् आहुः) प्राप्त होने पर कहते हैं कि वह (दधिक्राः सहस्रैः परा असरत्) धारण करके ले चलने में समर्थ विद्युत् या अश्वादि हजारों मील के

वेगों से दूर तक जाने में समर्थ होता है वैसे ही (जनाः) लोग (उत) भी (अस्य) इस (कृष्टिप्रः) राष्ट्रवासी प्रजाजनों को ऐश्वर्य समृद्धि से पूर्ण करने हारे राजा के, (जूतिम्) वेगवती सेना और (आशोः) वेगवान् (अभिभूतिम्) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य की (पनयन्ति) स्तुति करते हैं और (वियन्तः) विविध मार्गों और चालों से जाने वाले वीर लोग (समिधे) संग्राम के समय (एनम् आहुः) उसके विषय में कहते हैं कि (दधिक्राः) सबको अपने वश में करके शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ वीर पुरुष ही (सहस्रैः) शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले सहस्रों वा बलवान् सैन्यों सहित (परा असरत्) दूर तक आक्रमण करने में समर्थ है।

आ द॒धि॒क्राः शव॑सा॒ पञ्च॑ कृ॒ष्टीः सूर्य॑ इव॒ ज्योति॑षा॒पस्त॑तान।
स॒ह॒स्र॒साः श॑त॒सा वा॒ज्यर्वा॑ पृ॒णक्तु॒ मध्वा॒ समि॒मा वचां॑सि ॥१०॥१२॥

भा०—(सूर्यं इव ज्योतिषा अपः ततान) सूर्य जैसे तेज के बल से जलमय मेघों को विस्तारित करता है, वैसे ही (दधिक्राः) राष्ट्र को धारण करके शत्रु पर आक्रमण करने में कुशल पुरुष (शवसा) अपने बल से (पञ्च कृष्टीः) पांचों प्रजाजनों को (आ ततान) विस्तृत करे, वश करे। वह (सहस्र-साः) सहस्रों को देने वाला और (शत-साः) सैकड़ों का दाता, (वाजी) ऐश्वर्यादि का स्वामी (अर्वा) शत्रुसिहक होकर भी (इमा वचांसि) इन वचनों को (मध्वा) मधुर गुण से (सं पृणक्तु) युक्त करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

[३९] वामदेव ऋषिः ॥ दधिक्रा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४ स्वराट् पंक्तिः। ६ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आ॒शुं द॑धि॒क्रां तमु॒ नु ष्ट॑वाम दि॒वस्पृ॑थि॒व्या उ॒त च॑र्किराम।
उ॒च्छन्ती॒र्माम॒षस॑ः सूदय॒न्त्वति॒ विश्वा॑नि दुरि॒तानि॑ पर्षन् ॥ १ ॥

भा०—(आशुं) वेगवान् (दधिक्राम्) धारण करके, पीठ पर लेकर चलने में समर्थ अश्व के तुल्य (दिवः पृथिव्याः दधिक्राम्) आकाश और भूमि दोनों को धारण करने वाले (तम् अनु) उस परमेश्वर की ही निश्चय से हम स्तुति करें (उत) और (तम् अनु चर्किराम) उसके गुणों को सर्वत्र फैलावें। (उच्छन्तीः) अन्धकार को दूर करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान ज्ञान-दीप्तियां और धार्मिक अग्नियें (माम् सूदयन्तु) मुझे रस प्रदान करें और वे मुझे (विश्वानि दुरितानि पर्षन्) समस्त बुराइयों से पार करें।

महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥

भा०—(दधि-क्राव्णः) ज्ञानैश्वर्य के धारक विद्वानों की कामना करने वाले, (पुरुवारस्य) बहुतसों से वरण योग्य, (वृष्णः) मेघवत् प्रजा पर सुखों के वर्षक पुरुष के (अर्वतः) विद्वानों और (क्रतुप्राः) यज्ञों को पूर्ण करने वाले)महः) बड़े-बड़े पुरुषों की मैं (चर्कर्मि) सेवा करता हूं अथवा, मैं ज्ञानपूरक पुरुष, उस शत्रुहिंसक की सेवा करूं (यं) जिसको (मित्रावरुणा) दिन रात जैसे सूर्य को धारण करते और प्राण उदान जैसे देह में आत्मा को धारण करते हैं वैसे ही मित्र और वरुण, न्यायपति और सेनापति दोनों (दीदिवांसं) तेजस्वी (अग्निम्) अग्नि के तुल्य और (ततुरिम्) शीघ्र कार्यकारी पुरुष को नायक रूप से (पूरुभ्यः) समृद्ध प्रजाजनों के हितार्थ (ददथुः) देते हैं।

यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण स वरुणेना सजोषाः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (अश्वस्य) विद्याओं में व्यापक, बलवान् (दधिक्राव्णः) व्रत धारकों को आगे के सत्पथ पर चलाने वाले परमेश्वर वा आचार्य की (अग्नौ समिद्धे) अग्नि के प्रज्वलित होने पर और (उषसः व्युष्टौ) उषा के समान जीवन के प्रभात, बाल्यकाल में (अकारीत्) सेवा

ओर शुश्रूषा करता है (तम्) उसको (अदितिः) माता पिता व बन्धुवर्ग, तेजस्वी विद्वान् (अनागसं) पापरहित (कृणोतु) करे और वह (मित्रेण) स्नेही वर्ग और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ (सजोषाः) प्रेमपूर्वक रहता है।

दधिक्राव्णं इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामहे इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जिस (दधिक्राव्णः) विश्व के धारक पञ्चमहाभूतों को भी धारण करने वाले परमेश्वर की (इषः) सर्वप्रेरक शक्ति और (ऊर्जः) बल का (भद्रम् नाम) कल्याणकारी स्वरूप हम (मरुताम्) प्राणों वा विद्वानों के बीच (अमन्महि) ज्ञात करें उसी (वरुणं मित्रं अग्निं इन्द्रं वज्रबाहुम्) श्रेष्ठ, मित्र, सबके प्रकाशक, सर्वैश्वर्यवान्, ज्ञान से अज्ञान के नाशक परमेश्वर को हम (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये (हवामहे) स्तुति करें।

इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥ ५ ॥

भा०—(उद् ईराणाः) उद्योग करने वाले और (यज्ञम् उपप्रयन्तः) यज्ञ वा इष्ट देव के उपासक वा युद्धोपयोगी संघ बना कर स्थित प्रजाजन (उभये) दोनों ही (इन्द्रम् इव इत्) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और उसके समान अन्य ऐश्वर्यवान् को ही (वि ह्वयन्ते) विविध प्रकार से पुकारते हैं और (मित्रा वरुणा) हे दिन और रात्रि के तुल्य सर्व स्नेही और श्रेष्ठ पुरुषो ! आप दोनों ही (नः) हमारे (मर्त्याय) मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये (सूदम् उ ददथुः) सब प्रकार के सुख समृद्धि के दाता वा अभिषेक योग्य (दधिक्राम्) सर्व धारणकर्त्ता अध्यक्षों से बढ़कर और उनके सञ्चालक पुरुष का हमें (ददथुः) दो।

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥ १३ ॥

भा०—मैं (दधिक्राव्णः) न्याय मार्ग पर चलने वाले वा सर्वधारक, (जिष्णोः) सर्वविजयी (अश्वस्य) उत्तम गुणों के धारक, (वाजिनः) ज्ञानवान्, ईश्वर और राजा की (अकारिषं) उपासना और आज्ञा का पालन करूं । वह (नः) हमारे (मुखा) चक्षु आदि इन्द्रिय रूप अंगों को (सुरभि करत्) उत्तम कर्म करने में समर्थ करे और (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों की (प्र तारिषत्) वृद्धि करे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[४०] वामदेव ऋषिः ॥ १-४ दधिक्रावा । ५ सूर्यश्च देवता ॥
छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् ।
४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥

भा०—हम प्रजागण (दधिक्राव्णः इत् उ) विश्व के धारक मूल कारणों के प्रेरक परमेश्वर के समान ही राष्ट्रधारक अध्यक्षों के सञ्चालक राजा के गुणों को सर्वत्र फैलावें। राजा चाहे कि (विश्वाः इत्) समस्त (उषसः) कामनाशील प्रजाएं और तेजस्विनी सेनाएं (माम्) मुझ राजा का (सूदयन्तु) अभिषेक करें, और हम (अपाम्) आप्तजनों के (अग्नेः) अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् के (उषसः) कामना वाली विदुषी स्त्री या शत्रुदाहक सेना के, (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के और (बृहस्पतेः) बड़े राष्ट्र पालक और वेदज्ञ विद्वान् के और (आङ्गिरसस्य) प्राणों के बीच स्थित आत्मवत् मुख्य तेजस्वी पुरुष के और (जिष्णोः) विजयशील पुरुष के (चर्किराम) गुणों को सर्वत्र फैलावें ।

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत ॥ २ ॥

भा०—वह परमेश्वर (सत्वा) सर्वव्यापक, (भरिषः) सबका धारक पोषक (गविषः) ज्ञान वाणियों का प्रेरक (दुवन्यसत्) अपने सेवक भक्तजनों को चाहने वाला (तुरण्यसत्) अति वेग से जाने वाले विद्युत् प्रकाशादि पदार्थों में व्यापक है, वह (इषः) वृष्टियों और (उषसः) प्रभात वेलाओं के सूर्य के तुल्य (इषः) समस्त कामना और (उषसः) पापनाशक, ज्ञान प्रकाशों को प्राप्त करे। वह (सत्यः) सत् कारणों में विद्यमान, (द्रवः) रस के समान सबमें बहता हुआ, (द्रवरः) स्नेहादि रसों का प्रदाता, (पतङ्गरः) अग्नि आदि में भी शक्ति को देने वाला, (दधिक्रावा) जगत् के धारक तत्वों का चलाने और सबको स्वयं धारण कर समस्त जगत् को चलाने वाला है। वह हमें (इषम्) अन्न, उत्तम इच्छा (ऊर्जम्) बल और (स्वः) सुख और परम उपदेश (जनत्) उत्पन्न करे।

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥ ३ ॥

भा०—(तुरण्यतः वेः पर्णं न) जैसे वेग से जाने वाले पक्षी वा बाण के पंख उसके पीछे वायु वेग से जाते हैं वैसे ही (अस्य) इस (द्रवतः) वेग से शत्रु पर चढ़ाई करते हुए (तुरण्यतः) शीघ्रगामी अश्वों से आगे बढ़ते हुए, (प्रगर्धिनः) उत्तमता से राष्ट्र को लेने की कांक्षा करते हुए (वेः) तेजस्वी इस राजा के (उत स्म) भी (पर्णम् अनु वाति) अनुकूल बल, सैन्य आदि चले। (ध्रजतः श्येनस्य इव अङ्कसं) वेग से जाते हुए श्येन के जैसे छाती के ऊपर (पर्णम्) पंख चिपट जाते हैं वैसे ही (श्येनस्य) प्रशंसनीय प्रयाण करने वाले (ध्रजतः) वेग से आगे बढ़ते हुए, (दधिक्राव्णः) धारक पोषकों के सञ्चालक और (ऊर्जा सह) बल पूर्वक (तरित्रतः) स्वयं पार हो जाने

और राष्ट्र को भी संकट से पार उतारने वाले पुरुष के (अंकसं परि) लक्षणानुसार, पदानुसार ही (पर्णं) बल, सैन्यादि हों।

उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥

भा०—(ग्रीवायां बद्धः अपिकक्षे आसनि बद्धः वाजी क्षिपर्णि तुरण्यति) गर्दन, कमर और मुंह में बंधा हुआ वेगवान् अश्व जैसे शीघ्रता से ले जाने वाले सवार को वेग से ले जाता है। वा (क्षिपर्णि तुरण्यति) सञ्चालनी कशा को देखकर वह वेग से भागता है वैसे ही (स्यः वाजी) वह ज्ञानवान् जीव (ग्रीवायां बद्धः) निगलने वाली भोग कामना वा गर्दन (अपिकक्षे) पार्श्व और (आसनि) मुख आदि देहावयवों में बद्ध होकर भी (क्षिपर्णि) सब अज्ञान बन्धनों को दूर फेंक देने वाली ज्ञान मुद्रा को प्राप्त कर (तुरण्यति) वेग से आगे बढ़ता है और जैसे (दधिक्राः अनु सं तवीत्वत्) अपनी पीठ पर ले चलने वाला अश्व वेग में चलता रहता है और (पथाम् अंकसि) मार्गों के सब चिह्नों को पार कर जाता है वैसे ही (दधिक्राः) ध्यान वेग से बढ़ने वाला ज्ञानी (क्रतुम् अनु संतवीत्वत्) कर्म और प्रज्ञा के अनुसार आगे बढ़े और (पथाम्) ज्ञान मार्गों के (अंकासि) स्वरूपों को (अनु आ पनीफणत्) क्रम से प्राप्त करे।

हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥१४॥

भा०—आत्मा कैसा है ? (हंसः) हंस के समान नीर-क्षीरवत् सत्यासत्य का विवेकी और बन्धनों का नाशक, (शुचि-सद्) शुद्ध-स्वरूप में विद्यमान, (अन्तरिक्ष-सत्) वायु के तुल्य अन्तरिक्ष या अन्तरात्मा चित्त के भी भीतर विद्य मान, (होता) सुख दुःखों का भोक्ता, (वेदिषद्) वेदि में होता के तुल्य, सुख दुःख प्राप्त कराने वाली देह भूमि में विराजमान,

(अतिथिः) अतिथि के समान घर-घर में घूमने वाले परिव्राजकवत्, (दुरोण-सद्) गृह में गृहपति के तुल्य विराजने वाला, (नृ-सद्) नायकों में मुख्याध्यक्ष के तुल्य देह के नेता प्राणगण में विराजमान (वर-सद्) वरण योग्य अन्न के तुल्य श्रेष्ठ ब्रह्म में विराजमान, (व्योम-सद्) आकाश में स्थित सूर्य के तुल्य, विविध रक्षा से युक्त परमेश्वर की शरण में विद्यमान, (अब्जाः) जलों में अनायास प्रकट कमलवत् प्राणों में शक्ति रूप से प्रकट, (गोजाः) गौओं में गो-रस के तुल्य, ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञान रूप से प्रकट, (ऋतजाः) सत्य में स्थित, (अद्रिजाः) मेघों में जलवत् अखण्ड ब्रह्म में स्थित, स्वयं (ऋतम्) ज्ञानमय ब्रह्म का लाभ करे। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४१] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ९, ११ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ पंक्तिः । ८, १० स्वराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्मां अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्तः ! हे दुःखों के वारक जनो ! (वाम्) तुम दोनों में से (कः) कौन ऐसा है जो (स्तोमः) स्तुति योग्य (हविष्मान्) अन्नादि पदार्थों का स्वामी, (होता न) दानशील के समान (अमृतः) दीर्घजीवी होकर (सुम्नम्) सुख वा उत्तम रीति से मनन योग्य ज्ञान को (आप) प्राप्त करे। [उत्तर] (यः) जो (क्रतुमान्) कर्म और ज्ञान से युक्त (नमस्वान्) अन्नादि दातव्य पदार्थों और नमस्कार आदि साधनों से विनयशील होकर हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र और वरुण ! हे अज्ञाननाशक, हे दुःखवारक विद्वानो ! (वां हृदि) आप दोनों के हृदय में (पस्पर्शत्) स्पर्श करे, हृदय में हृदय मिलाकर एक चित्त, प्रिय, प्रेमपात्र हो जावे वह (अस्मद् उक्तः) हम से भी प्रशंसा योग्य होता है।

इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्त्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) पूर्व कहे इन्द्र और वरुण ! ऐश्वर्य्ययुक्त एवं वरण योग्य जनो ! हे (देवौ) ज्ञान के प्रकाश, विद्या एवं सत्संग के अभिलाषी जनो ! आप दोनों को (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य, (सख्याय) मित्र भाव की वृद्धि के लिये (प्रयस्वान्) अति उत्तम रीति से यत्नवान् होकर आप दोनों को (आपी चक्रे) एक दूसरे को प्राप्त करने वाला बन्धु बनाता है (सः) वह (समिथेषु शत्रून्) संग्रामों में शत्रुओं और परस्पर मिलने के अवसरों में (वृत्रा) विघ्नों का (हन्ति) विनाश करता है और (सः) वही (महद्भिः अवोभिः) बड़े ज्ञानों और अन्नादि तृप्तिकारक उपायों से (प्र शृण्वे) खूब प्रसिद्ध हो जाता है ।

इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण ! ऐश्वर्यवन् ! और एक दूसरे को प्रेम से स्वीकार करने वाले स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजाजनो ! (ता) वे आप दोनों (शशमानेभ्यः नृभ्यः) अनुशासन या उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों और प्रधान नायकों को (रत्नं) रमण करने योग्य ज्ञान, अन्न आदि के (धेष्ठा) देने वाले होओ। (यदि) जब कि साथ ही आप दोनों (सखाया) मित्र रहते हुए (सोमैः) उत्पन्न किये (सुतेभिः) पुत्रों और ऐश्वर्यों सहित (सुप्रयसा) उत्तम प्रयत्न और अन्नादि से (मादयैते) आनन्द लाभ करो, औरों को भी सुखी करो ।

इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) शत्रु हन्तः, हे दुष्टों के निवारक (युवं) आप दोनों (उग्रा) बलवान् होओ और (यः) जो (नः) हम में से, (दुरेवः) दुष्ट कर्म करने वाला, (वृकतिः) चोर वा भेड़िये के समान छली, (दभीतिः) हत्याकारी हो (अस्मिन्) उस पर (दिद्युम्) चमकता (ओजिष्ठं वज्रम्) तेजस्वी शस्त्र (नि वधिष्ठम्) प्रहार करो और (तस्मिन्) उस पर ही (अभिभूति ओजः) परपराजयकारी पराक्रम भी (मिमाथाम्) करो।

इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५॥१५॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् और वरण योग्य जनो ! (धेनोः वृषभा इव प्रेतारा) जैसे वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ गौ को प्राप्त करते हैं और (सा गौः यवसा इव गत्वी सहस्रधारा पयसा दुहीयत्) वह गौ अन्न भुस आदि से युक्त होकर सहस्रों धार वाली होकर दूध से घर को भरपूर करती है और जैसे (धेनोः प्रेतारा वृषभा इव) अपने में धारण करने वा दो बलवान् बैल गाड़ी के आगे जुड़ते हैं और (मही गौः) बड़ी गाड़ी (सहस्रधारा) सहस्रों अन्नादि पदार्थों को धारण करने वाली होकर (पयसा नः दुहीयत्) अन्न से घर भर देती है। वैसे ही (धेनोः) समस्त ज्ञानों को धारण करने, सब आनन्द रसों का पान कराने वाली (धियः) धारणावती बुद्धि और वाणी को (प्रेतारौ) प्राप्त करने वाले और उसके रहस्य तक पहुँचाने वाले (युवं भूतम्) आप दोनों होवो। (सा) वह (मही) पूज्य (गौः) अर्थों का ज्ञान कराने वाली वाणी और भूमि (यवसी इव) प्रत्येक तत्व को पृथक् पृथक् विवेक से (गत्वी) प्राप्त होकर (सहस्रधारा) सहस्रों वाणियों से युक्त होकर (पयसा) पोषक ज्ञान रस से (नः दुहीयत्) हमें पूर्ण करे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (परितक्म्यायाम्) रात्रि बीत जाने पर (हृशीके) दर्शनीय प्रकाश देने में (उर्वरासु) वरणीय प्रभात वेलाओं में (सूरः अवोभिः दस्मो भवति) सूर्य प्रदीप्तियों सहित अन्धकार वा नाशक होता है और जैसे (परितक्म्यायाम्) अन्नाभाव से सर्वत्र कष्टसाध्य संकट वेला में (पौंस्ये) पुरुषों के हितकारी अन्न प्रदान करने में (उर्वरास वृषणः च) अन्नोत्पादक भूमियों में वर्षणशील मेघ (अवोभिः दस्मा भवति) तृप्तिकारक अन्नों द्वारा संकट क्षुधा, अकाल आदि का नाशक होता है वैसे ही हे (इन्द्रा वरुणा) सूर्यवत् शत्रुहन्तः ! मेघवत् कष्टों के वारक ! राजा अमात्यजनो ! (उर्वरासु) अन्नोत्पादक भूमियों और प्रजोत्पादक दाराओं, ऐश्वर्योत्पादक प्रजाजनों और ज्ञानाङ्कुरोत्पादक शिष्य-मतियों में, (हृशीके) ज्ञान, प्रकाश (पौंस्ये) बल, पौरुष और (तोके हिते तनये) हितकारी पुत्र पौत्र आदि की रक्षा के निमित्त भी (परितक्म्यायाम्) सब तरफ कष्टापन्न दशा में भी (अत्र) इस राष्ट्र में (अवोभिः) राष्ट्र के रक्षक सैन्यादि साधनों से (दस्मा) शत्रुओं के नाशक (स्याताम्) होवो ।

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (प्रियाय) प्रिय पुत्र को प्राप्त करने के लिये (पितरा इव) माता और पिता (प्रभूती) उत्तम धन धान्यादि से सम्पन्न, (स्वापी) आदर पूर्वक एक दूसरे को प्राप्त, उत्तम बन्धु (मंहिष्ठा) दानशील, (शंभू) एक दूसरे के कल्याणकारक होकर (सख्याय भवतः) सखिभाव, प्रेम भाव निभाने के लिये होते हैं वैसे ही हम लोग (गविषः) वाणियों और उत्तम भूमियों को प्राप्त करने के इच्छुक शिष्य और वीर जन (पूर्व्याय अवसे) पूर्व जनों से प्राप्त ज्ञान की प्राप्ति और पूर्व राजाओं से स्थापित राष्ट्र की रक्षा के लिये (प्रभूती) सामर्थ्यवान्, (स्वापी) प्रजा के प्रति बन्धु, (मंहिष्ठा) दानशील, (शंभू) शान्तिदायक, (शूरा) वीर (युवाम्) तुम दोनों गुरु, उपदेशक,

राजा और अमात्य को (प्रियाय सख्याय) प्रीति कारक मित्र भाव की वृद्धि के लिये (परि वृणीमहे) वरण करते हैं।

ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे वरण योग्य श्रेष्ठ पुरुषो ! जिस प्रकार सेनाएं (आजिं न जग्मुः) संग्राम को लक्ष्य करके आगे बढ़ती हैं वैसे ही हे (सुदानू) दानशील पुरुषो ! (वां) आप दोनों की (धियः) बुद्धियें और क्रियाएं (युवयूः) और आप दोनों को प्रेम से चाहने वाली (धियः) प्रजाएं भी (अवसे) रक्षा के लिये (वाजयन्तीः) ऐश्वर्य से युक्त होकर (आजिं जग्मुः) शत्रुओं को उखाड़ने वाले, सब ओर विजयशील पुरुष को प्राप्त हों और जैसे (गावः सोमम् श्रिये न) गो-दुग्ध कान्ति उत्पन्न करने के लिये सोम आदि ओषधि को प्राप्त करते हैं वैसे ही (गावः) भूमियें और गो-पशु आदि सम्पदाएं (श्रिये) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (सोमम् उप आस्थुः) ऐश्वर्यवान् राजा को प्राप्त हों और (गावः) ज्ञान वाणियें (सोमम्) सोम्य ब्रह्मचारी शिष्य को प्राप्त हों। (मे) मेरी (गिरः) वाणियें और (मे मनीषाः) बुद्धियां भी (इन्द्रं वरुणं उप अस्थुः) ऐश्वर्यवान् और सर्व दुःखहारी राजा और प्रभु को प्राप्त हों।

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (वस्वः) धन को (जोष्टारः) चाहने वाले सेवक लोग (इन्द्रं उप अस्थुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के पास उपस्थित होते हैं और जैसे (रघ्वी) लघु अवस्था वाली प्रजाएं, कुमार कुमारी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियें (श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्न वा श्रवण योग्य ज्ञान की याचना करती हुईं (इन्द्र) अज्ञाननाशक तत्वदर्शी के पास पहुंचती हैं वैसे ही (मे) मेरी (इमाः) ये (मनीषाः) मन की इच्छाएं, (द्रविणम्) ज्ञान की (इच्छमानाः) कामना

करती हुईं (इन्द्र वरुणम्) परमैश्वर्यवान् और सबसे वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ प्रभु एवं आचार्य को (अग्मन्) प्राप्त हों।

अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०॥

हम लोग (अश्व्यस्य) अश्वों से युक्त और (रथ्यस्य) रथों से युक्त (पुष्टेः) पोषक (नित्यस्य रायः) नित्य धन के (त्मना) अपने सामर्थ्य से (पतयः) पालक (स्याम) होवें। (ता) वे स्त्री पुरुष (नव्यसीभिः) नये (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (चक्राणा) काम करने वाले हों और (अस्मत्रा) हमें (नियुतः रायः) लक्षों धन (सचन्ताम्) प्राप्त हों।

आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११॥१६॥

भा०—हे (इन्द्र वरुण) शत्रुहन्तः ! हेशत्रुवारक ! आप दोनों (बृहन्ता) बड़े शक्तिशाली हो। आप (वाजसातौ) ऐश्वर्य के लाभ वा विभाग के अवसर में (नः आयातम्) हमें प्राप्त होओ। (यत्) जब (दिद्यवः) चमचमाते शस्त्र और शस्त्रधारी सैनिक एवं विद्याविनय-सम्पन्न जन (पृतनासु) सेनाओं और मनुष्यों के बीच (प्रक्रीळान्) नाना युद्ध क्रीड़ाएं करें तब (तस्य वां आजेः) आप दोनों के उस संग्राम के हम (सनितारः) भागी (स्याम) होवें। इति षोडशो वर्गः ॥

[४२] त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य ऋषिः ॥ १-६ आत्मा। ७-१० इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ६, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। ८ भुरिक् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्। ५ निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ १ ॥

भा०—राजा के कर्त्तव्य । (विश्वायोः) सब मनुष्यों के स्वामी (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय का (राष्ट्रम्) राष्ट्र अर्थात् (द्विता) राजा प्रजा दोनों ऐसे रहें (यथा) जिससे (नः) हमारे (विश्वे) सब लोग (अमृताः) दीर्घायु हों। (देवाः) विजिगीषु और धनार्थी लोग (वरुणस्य) उत्तम वरण योग्य प्रधान पुरुष के (क्रतुं) ज्ञान और उपदिष्ट कर्म को (सचन्ते) एक मत होकर स्वीकार करें, और (उपमस्य) समीपस्थ (वव्रेः) सुरूप वा मुझे राजा वरण करने वाले (कृष्टेः) प्रजाजन का मैं (राजामि) राजा बनूं ।

अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥

भा०—(अहं वरुणः) मैं सबसे श्रेष्ठ, सबके द्वारा वरे जाने योग्य, (राजा) राजा होऊं। (मह्यम्) मेरे लिये ही (देवाः) सब प्रजाएं कर देने वाले और विजयोत्सुक, एवं विद्वान् लोग (तानि) उन-उन (असुर्याणि) जीवन देने और प्राण शक्ति में रमने वाले बलवान् पुरुषों के योग्य (प्रथमा) श्रेष्ठ धनैश्वर्यों और ज्ञानों को (अधारयन्त) धारण करें। वे (वरुणस्य क्रतुं सचन्ते) अपने वृत राजा के कार्य और मति के साथ सहमति करके रहें। मैं (उपमस्य वव्रेः) समीपस्थ वरणशील (कृष्टेः) शत्रुपीड़क, भूमि कृषक दोनों प्रकार की प्रजा का (राजामि) राजा बनूं ।

अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥

भा०—(अहम्) मैं (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) वरण योग्य सर्वसंकट निवारक होकर (ते) उन दोनों (ऊर्वी) विशाल, (गभीरे) गम्भीर, (सुमेके) उत्तम रीति से एक दूसरे का अभिषेक वा वृद्धि करने वाले (रजसी) दोनों लोकों को (त्वष्ट इव रोदसी) आकाश और भूमि को सूर्य के तुल्य (महित्वा) सामर्थ्य से (ऐरयम्) सञ्चालित करूं और

(विश्वा भुवनानि) समस्त कार्यों को जानता हुआ (धारयं च) धारण करूं ।

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥ ४ ॥

भा०—(अहम्) मैं राजा ही (उक्षमाणाः अपः) सेचन करने वाले जलों को सूर्यवत्, राष्ट्र की वृद्धि करने वाली प्राप्त प्रजाओं को (अपिन्वम्) सेचन करता हूं, उनको बढ़ाता हूं और (ऋतस्य) सत्यन्याय के (सदने) आसन पर स्थित होकर मैं (दिव) इस पृथ्वी वा प्रजा के प्रकाशमान व्यवहार और तेज को (धारयम्) धारण करता हूं । (अदितेः) माता के (पुत्रः) पुत्र के समान अखण्ड शासन वाली भूमि का पुत्र होकर (ऋतेन) बल और धनैश्वर्य से ही (ऋतावा) सत्य और ऐश्वर्य का स्वामी होकर (त्रिधातु भूम वि प्रथयत्) तीन धातु के नाना प्रकार के द्रव्यों को विविध प्रकार से प्रचरित करे ।

मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(सु-अश्वाः) उत्तम अश्वों, अश्व सैन्यों के स्वामी (नरः) नायक लोग (वाजयन्तः) बल और अन्न की कामना करते हुए (वृताः) प्रजाजनों से वरण किये जाकर (सम्-अरणे) संग्राम और एकत्र होने के स्थान में (मां हवन्ते) मुझको पुकारते हैं । (अहम्) मैं (मघवा) उत्तम धनैश्वर्य का स्वामी होकर (आजिम् कृणोमि) संग्राम करता हूं और (अभिभूत्योजाः) ऐश्वर्यों और पराक्रमों का स्वामी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा होकर (रेणुम्) प्रजा के नाशक शत्रु धूल के समान (इयर्मि) उड़ा देता हूं । इति सप्तदशो वर्गः ॥

अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥

भा०—मैं राजा (ता) उन (विश्वा) समस्त कार्यों को (चकरम्) करता हूं और (अप्रतीतं) किसी से मुकाबला न किया जाकर (मां) मुझको और मेरे (दैव्यं सहः) विजिगीषु राजा के योग्य, शत्रु पराजयकारी बल को (नकिः वरते) कोई वारण नहीं करता और (यत्) जिस (मा) मुझको (सोमासः) नाना ऐश्वर्य और (यत्) जिसको (उक्था) स्तुति वचन (ममदन्) हर्षित करते हैं उस मुझसे (उभे) दोनों (अपारे) अपार, अगणित (रजसी) स्वपक्ष परपक्ष के सैन्य और प्रजाजन (भयेते) भय करते हैं ।

विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! (ता विश्वा भुवनानि) वे नाना समस्त उत्पन्न पदार्थ राष्ट्र के उत्पन्न जीवगण को (तस्य ते विदुः) उस तेरे ही आधीन जानते हैं । हे (वेधः) राज्यकर्त्तः ! विद्वन् ! तू (वरुणाय) सब कष्टों के वारक, सर्वश्रेष्ठ, सर्व वरणीय राजा को (ता) इन कार्यों का (प्र ब्रवीषि) उपदेश कर । हे राजन् ! (त्वं) तू (वृत्राणि) बढ़ते शत्रुओं और विघ्नों को (जघन्वान्) मारता हुआ और सब धनों को प्राप्त करता हुआ, मेघों को आघात करते हुए वज्र के तुल्य (शृण्विषे) सर्वत्र सुना जाय । (त्वं) तू हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! (वृतान्) व्यवहारकुशल (सिन्धून्) अश्वादि सैन्यों व मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य (अरिणाः) प्रेरित कर ।

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥

भा०—(दौर्गहे) शत्रु जिसको बड़ी कठिनता से विजय कर सके ऐसे किले या राष्ट्र के (वध्यमाने) प्रबंध द्वारा सुव्यवस्थित करने पर (सप्त ऋषयः) देह में शिरस्थ प्राणों के तुल्य सात प्रकार के (ते ऋषयः) वे आप्त विद्वान् पुरुष ही (अत्र) इस राष्ट्र में (अस्माकम्) हमारे (पितरः) पालक (आसन्) होते हैं। (ते) वे ही (त्रसदस्युम्) दस्युओं को भयभीत करने वाले और भयभीत शत्रुओं को उखाड़ने वाले, (अस्याः इन्द्रं न) इस भूमि के स्वामी सूर्य के तुल्य तेजस्वी (वृत्रतुरम्) विघ्नकारी गणों के नाशक (अर्धदेवम्) राष्ट्र के समृद्ध अंश की कामना वाले बलवान् पुरुष को (आ अयजन्त) आदर पूर्वक प्राप्त करते हैं।

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! हे वरुण, संकटों और शत्रुओं के वारण करने हारे! (पुरुकुत्सानी) बहुत से वज्रधर सैनिकों को ले जाने वाली बड़ी सेना (हव्येभिः) स्वीकार योग्य नमस्कार, आदर वचनों और अन्नों द्वारा (वाम् अदाशत्) आप दोनों का आदर करती है। (अथ) उसके बाद आप दोनों भी (त्रसदस्युं) दुष्ट शत्रुओं को भयकारी (वृत्रहणं) विघ्नकारियों के नाशक (अर्ध-देवम्) आधे जगत् के प्रकाशक तेजस्वी (राजानम्) सर्वप्रकाशक राजा को (अस्या) इस भूमि के शासनार्थ पति रूप से (ददथुः) प्रदान करता है।

राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०॥१८॥

भा०—(गावः यवसेन) गौ आदि पशु बुस आदि से जैसे तृप्त होते हैं। वैसे ही (वयं) हम लोग (देवाः) दानशील, तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (हव्येन) दान देने वा लेने योग्य ज्ञान वा धन आदि से (राया) ऐश्वर्य से (ससवांसः) सुखपूर्वक रहते हुए (मदेम) सुखी हों। हे उक्त दोनों विद्वान् जनो! (युवं)

आप दोनों (विश्व-हा) सर्वदा, (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण (अनपस्फुरन्तीम्) न तड़पती गौ के समान कष्टों से पीड़ित न होती हुई (तां धेनुम्) उस सर्वैश्वर्य-दुघा, प्रजा, भूमि और उत्तम दृढ़ निश्चय वाली प्रजा को देने वाली वाणी को (धत्तम्) धारण पोषण करो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[४३] पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी ॥ अश्विनौ देवते ॥
छन्दः—१, त्रिष्टुप् । २, ३, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ।
४ स्वराट् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥ १ ॥

भा०—स्त्री पुरुषों के उत्तम गुणों का वर्णन। (कः उ श्रवत्) कौन स्तुतियों को श्रवण करता है ? और (यज्ञियानां) यज्ञ अर्थात् सत्कार और पूजा योग्य पुरुषों में से (कतमः) कौन (देवः) दानशील, कामनाशील, विजयेच्छुक है जो (वन्दारु) वन्दना योग्य वचन को (जुषाते) स्वीकार करता है ? और (अमृतेषु) अमरणधर्मा पुरुषों में से (कस्य) किसके (हृदि) हृदय में (प्रेष्ठाम्) अति प्रिय (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति से युक्त (सु-हव्याम्) उत्तम रीति से आदरपूर्वक ग्रहण योग्य (देवीम्) शुभ कामना वाली विदुषी स्त्री को (श्रेषाम) लगावें अर्थात् सुशील, कन्यारत्न किसको दें ?

को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥

भा०—(यम्) जिसको (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष की (दुहिता) पुत्री, प्रभात वेला के समान उज्ज्वल गुण-रूप वाली कन्या (अवृणीत) पति रूप से वरण करे। ऐसे (कम्) किस (द्रवद् अश्वम्) वेग से जाने वाले अश्वों से युक्त (रथम्) रथ के समान (द्रवत्-अश्वम्)

प्रेमपूर्ण आत्मा वाले (रथं) रमण योग्य पुरुष को (आहुः) विद्वान् लोग बतलाते हैं ? (कः मृळाति) कौन पुरुष कन्या को सुख देने में समर्थ है ? (कतमः) कौन सा (आ-गमिष्ठः) आने वालों में श्रेष्ठ है ? (देवानाम् उ) कन्या को चाहने वाले विद्वान् वरों में से भी (कतमः) कौनसा (शं-भविष्ठः) अधिक सुख देने वाला है ? यह निर्णय करके उसी पुरुष को कन्या वरण करे ।

मुक्षू हि ष्मा गच्छ॑थ ईव॑तो द्यूनिन्द्रो॒ न शुक्तिं॒ परि॑तक्म्यायाम् ।
दि॒व आजा॑ता दि॒व्या सु॑प॒र्णा कया॒ शची॑नां भवथ॒ः शचि॑ष्ठा ॥ ३ ॥

भा०—(परितक्म्यायाम्) रात्रि के व्यतीत हो जाने पर जैसे (इन्द्रः न) सूर्य (ईवतः द्यून्) गुजरते हुए गतिशील प्रकाशों को प्राप्त होता और (शक्ति) उत्तरोत्तर सामर्थ्य को गच्छति प्राप्त करता है । वैसे ही हे वर, वधू ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों भी (ईवतः द्यून्) आगामी दिवसों में (परितक्स्यायाम्) सब तरफ से कष्ट वा उपहास वाली सृष्टि में (मक्षू हि) शीघ्र ही (शक्ति गच्छथः स्म) अधिकाधिक शक्ति को प्राप्त करो । आप दोनों (दिव्यां सुपर्णा) सूर्य से उत्पन्न दिव्य दो रश्मियों के तुल्य (दिवः आ जाता) एक दूसरे की कामना से आदरपूर्वक एक दूसरे के आश्रय पर रहते हुए । (दिव्या सुपर्णा) कान्तियुक्त शुभ, सुखकारी पालन शक्ति से युक्त होकर (शचीनां) वाणियों और बुद्धियों के बीच में भी (कया) सुखमयी मति या वाणी से (शचिष्ठा) अतिशय शक्ति और वाणी से युक्त, (भवथः) होकर रहो ।

का वां॑ भूदुप॑मातिः कया॑ न॒ आश्वि॑ना गमथो हू॒यमा॑ना ।
को वां॑ म॒हश्चि॒त्त्यज॑सो अ॒भीक॑ उरु॒ष्यतं॑ माध्वी दस्रा न ऊ॒ती ॥ ४ ॥

भा०—हे विवाहित स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों की (का) कौनसी (उपमातिः भूत) उपमा हो । हे (अश्विना) एक दूसरे के लिये 'अश्व' अर्थात् भोक्ता आत्मा से युक्त, वा शुभ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों

(कया) किस वाणी से (हूयमानां) स्तुति किये जाकर (नः आगमथः) हमें प्राप्त होते हो। (वां) आप दोनों के बीच में (कः) कौन (महः चित् त्यजसः) बड़ा पूज्य त्यागी है। आप दोनों (माध्वी) मधुर वचनों वा गुणों से युक्त (दस्रा) दुखों के नाशक होकर (नः ऊती) हमारी तृप्तिकारक साधन से (अभीके) समीप रहकर (उरुष्यतम्) रक्षा करो।

उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम् ।

मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥ ५ ॥

भा०—(वां) आप दोनों का (रथः) रथ (द्याम्) पृथिवी आकाश को (उरु नक्षति) खूब व्यापे, और (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का रथ (समुद्राद् अभि आ नक्षत्) समुद्र तक आ जावे। विद्वान् लोग (माध्वी) मधुर गुणों से युक्त (वां) आप दोनों पर (मध्वा) मधुर अन्न से (मधु प्रुषायन्) मधुर पदार्थों की वृष्टि करें। (वाम्) आप दोनों को (पृक्षः) प्रेम से सम्बद्ध जन (सीम्) सब ओर से प्राप्त हों और (पक्वाः वां सीं भुरजन्त) परिपक्व मति विद्यावयोवृद्ध जन आप को सब ओर से प्राप्त हों।

सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।

तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥ ६ ॥

भा०—(सिन्धुः) समुद्र समान ज्ञानप्रवाह और गंभीर ज्ञान वाला पुरुष (वां) आप दोनों को (रसया) उत्तम वाणी से (असिञ्चत्) अभिषिक्त करे, और (वयः) कान्तिमान्, रक्षाकारी (अरुषासः) दोषरहित जन (घृणा) दीप्ति और स्नेह से (परि ग्मन्) किरणों के तुल्य तुम्हें प्राप्त हों और (वाम्) तुम दोनों का (यानं) गमन-साधन रथादि वा संसार मार्ग का गमन (तत् उ) उसी प्रकार पूर्वप्राप्त शिक्षानुसार, (अजिरं) शीघ्रतायुक्त (सु चेति) जाना जाय (येन) जिससे आप दोनों (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति के सदा (पती भवथ(परिपालक होकर रहो।

इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥१९॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (इह इह) यहां स्थान-स्थान पर (यत्) जो व्यवहार, वाणी वा (सुमतिः) उत्तम बुद्धि, (समना वां) समान चित्त वाले तुम दोनों को (पपृक्षे) सुसंगत करे (सा इयम्) वह यह शुभ मति (अस्मे) हमें भी प्राप्त हो। हे (वाजरत्ना) ऐश्वर्यादि में रमण करने वाले स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष की (उरुष्यतम्) रक्षा करो। हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो ! दोनों की (कामः) परस्पर की कामना (युवद्रिक् श्रितः ह) आप दोनों में एक दूसरे पर आश्रित हो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४४] पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । भुरिक् पंक्तिः ॥

सप्तर्चं सूक्तम् ॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रियों को अश्वों के समान वश करने वाले स्त्री पुरुषो ! (अद्य) आज (वयम्) हम लोग (वाम्) आप दोनों के (तम्) उस (रथम्) रथ और रथ के तुल्य इस देह का (हुवेम) उत्तम रीति से वर्णन करें जो (पृथुज्रयाम्) अति विस्तृत गति वाला, बहुत काल तक जीने में समर्थ (गोः सम्-गतिम्) वाणी और इन्द्रियों से चिरकाल तक अच्छी प्रकार से युक्त रहे और (वन्धुरायुः सूर्याम्) आधार काष्ठ वाला रथ जैसे 'सूर्या' अर्थात् कान्तिमती वधू को अपने में धारण करता है वैसे ही जो देह रूप रथ (वन्धुरायुः) उत्तम-उत्तम भोगों की कामना करता हुआ भी (सूर्याम्) सूर्य की उषाकालिक प्रसन्न मुख कान्ति को (वहति) धारण करे और जो (गिर्वाहसम्) वाणी को धारण करने वाले (पुरु-तमम्) 'पुरु' अर्थात्

इन्द्रियों में श्रेष्ठ. (वसूयुम्) देह में वसे इन्द्रियों के स्वामी आत्मा को भी, वधूसहित वर के समान चिरकाल तक धारण करे ।

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (दिवः नपाता) परस्पर कामना से एक दूसरे को थामने वाले स्त्री पुरुषो, हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय ! स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (देवता) दिव्य गुणों से युक्त, लेन देन, परस्पर इच्छा पूर्ति आदि कार्यों में कुशल होकर (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (तां) उस (श्रियम्) लक्ष्मी को (वनथः) प्राप्त करो और (यत्) जब (ककुहासः) उत्तम अश्व (रथे) रथ में लगाकर (वां वहन्ति) तुम दोनों को वहन करते हैं। तव (पृक्षः) अन्नादि से तुल्य आपस के उत्तम सम्पर्क, सम्बन्ध, स्नेह आदि (युवोः) तुम दोनों के (वपुः) शरीरों को (सचन्ते) सुखकर हों ।

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों में से (अद्य) आज (कः) कौन (रातहव्यः) दान योग्य अन्नादि देता और (सुतपेयाय) पुत्रादि के पालन के लिये (करते) यत्न करता है। (ऋतस्य) ज्ञान, बल, धनादि के (पूर्व्याय) पूर्व विद्वानों से निर्धारित किये (वनुषे) विभाग और सेवन के लिये (कः) कौन (करते) यत्न करता है और (कः येमानः) कौन यम नियम पालक आप दोनों को या आप दोनों में से (नमः आ ववर्तत्) उत्तम अन्न, आदर आदि का व्यवहार करे ।

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले, सत्य प्रतिज्ञा वाले स्त्री पुरुषो ! (हिरण्ययेन रथेन) लोह सुवर्णादि से जटित रथ से जैसे उत्तम परिषदादि में जाते हैं वैसे ही आप दोनों भी (इमं यज्ञम्) इस परस्पर के संगति से बने गृहस्थ रूप पवित्र यज्ञ को (हिरण्ययेन) परस्पर हितकारी और रमणीय आचरण से बने (रथेन) एक दूसरे को रमाने वाले व्यवहार से (उपयातम्) प्राप्त होवो। (सोमस्य) सोम अर्थात् उत्तम सन्तान के निमित्त (मधुनः) अन्न आदि ओषधि का (पिबाथः) पान करो और (विधते जनाय) कर्त्ता पुरुष के वंश में सञ्चालन के लिये (रत्नं) दोनों मिल कर पुत्र 'रत्न' को (दधथः) धारण करो।

आ नो॑ यातं दि॒वो अच्छा॑ पृथि॒व्या हि॑र॒ण्यये॑न सु॒वृता॒ रथे॑न ।
मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन्देव॒यन्तः॒ सं यद्द॒दे नाभिः॒ पू॒र्व्या वा॑म् ॥ ५ ॥

भा०—(हिरण्ययेन सुवृता रथेन दिवः पृथिव्याः यतः) राजा अमात्य या राजा रानी उत्तम सुवर्णादि से सुशोभित, उत्तम रीति से चलने वाले रथ से आकाश और पृथिवी के मार्ग से जाते हैं वैसे ही हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों भी (हिरण्ययेन) हितकारी और मनोहारी (सुवृता) आदरणीय उत्तम आचार से युक्त (रथेन) शुभ व्यवहार से (दिवः पृथिव्याः) ज्ञान मार्ग से और आकाश व पृथिवी के मार्ग से (नः अच्छ आ यातम्) हमें प्राप्त होवो। तुम दोनों का (यत्) जो (पूर्वंनाभिः) पूर्व विद्यमान माता पिता गुरुजनादि द्वारा बनाया सम्बन्ध (सं ददे) तुम को बांध रहा है (वाम्) आप दोनों के उस दाम्पत्य सम्बन्ध को (देवयन्तः) नाना कामनाओं से प्रेरित (अन्ये) अन्य, स्वार्थी लोग (मा नियमन्) न रोकें, विघ्नयुक्त न करें।

नू नो॑ र॒यिं पु॑रु॒वीरं॑ बृ॒हन्तं॒ दस्रा॒ मिमा॑थामु॒भये॑ष्व॒स्मे ।
नरो॒ यद्वा॑मश्विना॒ स्तोम॒माव॑न्त्स॒धस्तु॑तिमाज॒मी॒ळ्हासो॒ अग्म॑न् ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्रा) परस्पर के कष्टों को दूर करने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मे) हमारी वृद्धि और कल्याण के

लिये (उभयेषु) राजा प्रजा, स्त्री वर्ग पुरुष-वर्ग दोनों के निमित्त (पुरुवीरं) बहुत से वीरों वा पुत्रों से युक्त (बृहन्तं रयिं नु मिमाथाम्) बहुत बड़ा ऐश्वर्य उत्पन्न करो। (यत्) क्योंकि (आजमीळ्हासः नरः) 'अज', अविनाशी आत्माओं की दुष्ट वृत्तियों को फेंकने वाले जितेन्द्रियों में मेघ तुल्य ज्ञान की वृष्टि करने वाले विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों के लिये (स्तोमं) उपदेश (आवन्) करते और (सह स्तुतिं आ अग्मन्) एक साथ ही स्तुति का विधान करते हैं।

इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥२०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्व सूक्त की ७ वीं ऋचा ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[४५] वामदेव ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द—१, ३, ४ जगती ।
५ निचृज्जगती । ६ विराड् जगती । २ भुरिक् त्रिष्टुप् ।
७ निचृत्त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥१॥

भा०—गृहस्थ पक्ष में—(भानुः सानवि उत् इयर्ति) जैसे प्रकाशमान सूर्य पर्वत के शिखर पर ऊपर उगता है, वैसे ही (एषः स्यः) यह वह (भानुः) तेजस्वी पुरुष (उत इयर्ति) उदय को प्राप्त हो और जैसे (दिवः परिज्मा रथः) भूमि पर वेग से जाने वाला रथ जोड़ा जाता है वैसे ही (अस्य) इसका (रथः) उत्तम आत्मा या गृहस्थ रूप रथ भी (दिवः) कामना करने वाली स्त्री के प्रति (परिज्मा) जाने वाले (सानवि) उन्नत कर्त्तव्य पालन के निमित्त, उच्च उद्देश्य से (युज्यते) जुड़े। (अस्मिन्) इस गृहस्थ रूप रथ में (पृक्षासः) परस्पर स्नेह से सम्बद्ध, (त्रयः) तीन (मिथुनाः) परस्पर जुड़े हुए जन (अधि रप्शते) विराजते हैं और (तुरीयः) चौथा (दृतिः) मेघ के समान ज्ञान वर्षक, विद्वान् पुरुष (मधुनः) अन्नवत्

ज्ञान का (विरप्शते) विविध प्रकार से उपदेश करता है। 'त्रयः मिथुनाः'—त्रिष्वपि पदार्थेषु मिथुनशब्दस्तैत्तिरीयके दृश्यते। माता पिता पुत्रस्तदेतन्मिथुनमिति। तै० ब्रा० १।६।३॥ गृहस्थ में गृहपति के आश्रय तीन जन माता, पिता, पुत्र हैं उस पर चौथा 'दृति' अर्थात् मेघ के तुल्य सर्वोपकारक परिव्राजक वा विद्वान् पुरोहित वा आचार्य है।

उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः व्युष्टिषु) प्रभात प्रकट होने की वेलाओं में (मधुमन्तः) तेज वा आदित्य से युक्त (रथाः) रसोत्पादक (अश्वासः) आकाश में फैलने वाले किरण (परिवृतम् तमः) चारों तरफ फैले अन्धकार को (आ अप ऊर्णुवन्तः) सर्वत्र दूर करते हुए और (शुक्रम्) शुद्ध (स्वः) प्रकाश (आ तन्वन्तः) फैलाते हुए (उद् ईरते) प्रकट होते हैं वैसे ही हे गृहस्थ स्त्री पुरुषो! (उषसः वि उष्टिषु) उषाकाल अर्थात् जीवन की प्रभात वेला के विविध प्रकार से प्रकट होते हुए, विद्याभ्यास आदि के समय (वाम्) तुम दोनों के हितार्थ (मधुमन्तः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न (पृक्षासः) मेघ तुल्य ज्ञानाभिषेक करने वाले (रथाः) रथवत् ज्ञान मार्ग में दूर तक ले जाने वाले रम्य-स्वभाव (अश्वासः) शुभ गुणों से व्याप्त, अश्व वा सूर्य के समान बलवान्, ज्ञानी पुरुष (परीवृतं) चारों तरफ घिरे (तमः) दुःख और अज्ञान को (अप उर्णुवन्तः) दूर करते हुए (शुक्रं न स्वः) जलवत् ज्ञानोपदेश को भी (आ तन्वतः) सर्वत्र फैलाते हुए (रजः उत् ईरते) समस्त लोकों या राजस भावों के भी ऊपर उठते हैं।

मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम्।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना॥ ३॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मधुपेभिः आसभिः) अन्न, जल को पान करने के अभ्यासी मुखों से (मध्वः) मधुर जल और अन्नों का ही (पिबतम्) पान करो। ऐसे ही (मधुपेभि आसभिः) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले (आसभिः) मुखों, कान, आंख, नाक आदि ग्रहणशील द्वारों से (मधु) ज्ञान को प्राप्त करो। (उत) और (मधुने) अन्न के प्राप्त करने के लिये जैसे गाड़ी आदि जोड़ी जाती है वैसे ही (मधुने) ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (प्रियं रथम्) प्रिय, रसस्वरूप आत्मा को योग द्वारा परस्पर प्रेमवश मिलाले रक्खो और (मधुना) जल और अन्न से जैसे (पथः वर्तनिं आजिन्वथः) मार्ग को तैयार कर लिया जाता है, वैसे ही (मधुना) वेद ज्ञान से (पथः) संसार मार्ग में (वर्तनिं) वार-वार के आवागमन को (आ जिन्वथः) वश करो। जिस प्रकार यात्रा में (अश्विनौ) रथ पर स्थित स्वामी-स्वामिनी वा स्वामी-सारथी दोनों (मधुमन्तं दृतिं वहेथे) अन्न वा जल से भरे पात्रों को रखते हैं जिससे मार्ग के भूख प्यास की निवृत्ति होती है वैसे ही विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष (मधुमन्तं) उत्तम ज्ञान से युक्त (दृतिम्) संकटों के काटने वाले शास्त्र वेद का (वहेथे) धारण करें।

हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (वां) तुम दोनों के (हंसासः) अश्व (मधुमन्तः) मधुर रूप और अति वेग से युक्त, (अस्रिधः) अपीड़ित, (हिरण्यपर्णाः) सुवर्ण लोहादि के बने चलने के साधन युक्त (उहुवः) शकट आदि को ढोने वाले हों वैसे ही (वां) आप दोनों के हितार्थ (हंसासः) राजहंसों के समान स्वच्छ, अहंकार आदि दोषों से मुक्त (मधुमन्तः) मधुर आत्मज्ञान और वेदज्ञान से सम्पन्न हों। वे (अस्रिधः) पीड़ित न हों, वे (हिरण्यपर्णाः) हितकारी और रमणीय पालनऔर ज्ञान

साधनों से युक्त, वा सुवर्ण के सदृश कान्तिमान् पंख वाले राजहंसों के समान, (हिरण्यपर्णाः) हिरण्य अर्थात् आत्मा की शक्ति वा ज्ञान का पालन करने वाले, (उहुवः) अन्यों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले, (उषर्बुधः) ब्राह्म मुहूर्त्त में जागने वाले और जीवन के उषाकाल, शैशव वा कौमार काल में ज्ञानार्जन करने वाले, (उदप्रुतः) जल और ज्ञान से स्नान करने वाले, (मन्दिनः) सदा प्रसन्न, (मन्दि-नि-स्पृशः) आनन्दमय परमेश्वर को योग द्वारा प्राप्त करने वाले हों। (मध्वः मक्षः न) मधु मक्खी जैसे मधु को प्राप्त करती है वैसे ही आप लोग (मध्वः) ज्ञान के (सवनानि) ऐश्वर्यों को (गच्छथः) प्राप्त करो।

स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥ ५ ॥

भा०—(यत् निक्तहस्तः तरणिः अद्रिभिः मधुमन्तं सोमं सुषाव) जैसे शुद्ध किरणों वाला सूर्य मेघों द्वारा मधुर रस से युक्त ओषधि गण को सींचता है और जैसे (निक्तहस्तः विचक्षणः अद्रिभिः मधुमन्तं सोमं सुषाव) यज्ञ में पवित्र हाथों वाला विद्वान् अध्वर्यु शिलाखण्डों से मधुर रस युक्त सोम रस को बनाता है, वैसे ही (यत्) जब (निक्तहस्तः) पवित्र साधनों से युक्त, (तरणिः) संसारमार्ग से पार जाने में समर्थ (विचक्षणः) ज्ञानवान् पुरुष (अद्रिभिः) मेघवत् उदार गुरुजनों वा पर्वत के समान अभेद्य व्रतादि साधनों से (मधुमन्तं सोमम्) ज्ञानी आत्मा को (सुषाव) ज्ञान से सम्पन्न कर लेता है, तब हे (अश्विना) शुभ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषो! (प्रति वस्तोः) प्रति दिन (सुअध्वरासः) उत्तम यज्ञ के करने वाले, दृढ़ (मधुमन्तः) ज्ञान-सम्पन्न (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (उस्राः) किरणों के तुल्य प्रकाशवान् होकर (जरन्ते) उपदेश करें।

आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥ ६ ॥

भा०—(चित्) जैसे (सूरः अश्वान् युयुजानः ईयते) सूर्य व्यापक किरणों को फैलाता हुआ आकाश में गति करता है और (अहभिः दविध्वतः आकेनिपासः रजः स्वः न शुक्रं आतन्वन्तः भवन्ति) दिन के समयों में तीव्र वेग से आने वाले, समीप समीप गिरने, वा जल पान करने वाले किरण ही ताप या सूर्य के तुल्य उज्ज्वल प्रकाश को उत्पन्न करते हैं, (स्वधया अनु विश्वान् चेतयन्ति) अन्न और जल से सबको चेतना देते हैं, वैसे ही (सूरः) तेजस्वी, पुरुष (अश्वान्) अश्वों, अश्ववान् रथों और विद्यादि शुभ गुणों से युक्त शिष्यों को, अध्यात्म में इन्द्रियगण को (युयुजानः) सत्-कार्य में नियुक्त करता और योग से वश करता हुआ (ईयते) आगे बढ़ता है और (आकेनिपासः) समीप में रहने वा सुखमय ब्रह्मानन्द का रस पान करने वाले (दविध्वतः) मलादि को दूर करने वाले अवधूतपाप्मा पुरुष (अहभिः) दिनों दिन (स्वः न) ज्ञानोपदेश के समान (शुक्रं) वीर्यरक्षा, और शुक्ल शुद्धाचार और (रजः) तेज को (आतन्वन्तः) प्रकट करते हैं। (अनु) उनके अनुकूल रहकर हे नर-नारी जनो ! आप लोग भी (स्वधया) शक्ति सम्पन्न होकर (विश्वान् पथः) समस्त कर्त्तव्यमार्गों को (चेतथः) जानो।

प्र वा॑मवोचमश्विना धिय॒न्धा रथ॒ः स्वश्वो॑ अ॒जरो॒ यो अस्ति॑ ।
येन॑ स॒द्यः परि॒ रजां॑सि या॒थो ह॒विष्म॑न्तं त॒रणिं॑ भो॒जमच्छ॑ ॥७॥२१॥४॥

भा०—जैसे (रथः धियन्धाः सु-अश्वः अजरः) रथ, गति को धारण करने वाला, उत्तम अश्व से युक्त और दृढ़ हो (येन सद्यः रजांसि परि याथः) जिससे रथी सारथी बहुत से देशों को पार करते हैं, वह रथ (हविष्मान् तरणिः भोजः) नाना पदार्थों से युक्त, वेगगामी, सुरक्षा से युक्त होता है, विद्वान् शिल्पी उसकी रचना का अश्व के स्वामियों को उपदेश करता है वैसे ही हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (रथः) रमण योग्य आनन्दमय आत्मा (धियंधाः) धारणावती बुद्धि और कर्मों का धारक (सु-अश्वः) उत्तम इन्द्रियों से युक्त, (अजरः) जरा से रहित और वाणी

द्वारा न कथन करने योग्य, (अस्ति) है (येन) जिसके द्वारा (सद्यः) शीघ्र ही (रजांसि) समस्त लोकों, समस्त राजसविकारों को (परियाथः) पार कर सकते हो, मैं विद्वान् पुरुष उस (हविष्मन्तं) भक्तिमान् (तरणि) भवसागर से पार उतारने में समर्थ, (भोजम्) पालक और ऐश्वर्य भोक्ता आत्मा को ही (अच्छ) लक्ष्य करके (वाम्) आप दोनों को (प्र अवोचम्) उपदेश करूं। एकोनविंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[४६] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ५, ६, ७ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु ।
त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् प्रमाद रहित पुरुष ! (त्वं) तू (हि) निश्चय से (पूर्वपाः) पूर्व नियत धर्मों और माता, पिता, गुरु आदि का पालक (असि) हो। तू (दिविष्टिषु) ज्ञानप्रकाश, दान आदि कार्यों में (सुतं) उत्तम रीति से उत्पन्न किये (मधूनां अग्र) अन्नों, जलों और ज्ञानों में से उत्तम अन्न जल, ज्ञान आदि का (पिब) पान कर।

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, शत्रुहन्तः ! तुम दोनों (सुतस्य) उत्पन्न, ऐश्वर्यमय राष्ट्र को प्राप्त कर (तृम्पतम्) तृप्त होवो। हे (वायो) बलवान् पुरुष ! तू (नियुत्वान्) अधीन, अश्वारोही सैनिकों का स्वामी और (इन्द्र-सारथिः) ऐश्वर्यवान् पुरुष का सारथि के समान सहायक होकर (नः) हमारे (शतेन अभिष्टिभिः) सैकड़ों अभिलषित कार्यों से राष्ट्र का उपभोग कर।

आ वां सहस्रं हर्य इन्द्रवायू अभि प्रयः ।
वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे वायुवद् बलवान् पुरुष ! (वां) आप दोनों के (सोमपीतये) राष्ट्रैश्वर्य के उपभोग और पालन के लिये (सहस्रं हरयः) सहस्रों मनुष्य (प्रयः) अन्न आदि तृप्तिकारक पदार्थ (अभि वहन्तु) प्राप्त करावें ।

रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरं ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् ! दोनों आप (हिरण्य-वन्धुरम्) लोह सुवर्ण आदि से बने, जड़े, दृढ़ आश्रयकाण्ड से युक्त (दिवि-स्पृशं) पृथ्वी पर स्पर्शमात्र करने वाले वा वेग से आकाश से बात करने वाले (सु-अध्वरं) उत्तम रीति से भीतर बैठे पुरुष पर बाहर के आघात की आशंका से रहित, (रथं) रथ पर (आ स्थाथः) आदरपूर्वक बैठा करो और सर्वत्र यात्रा करो। 'दिव्' शब्द से पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों का ग्रहण है इसलिये यहां तीनों स्थानों में चलने वाले दृढ़ यानों का वर्णन है ।

रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् ।
इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! राजन् ! सेनापते ! आप दोनों (पृथु-पाजसा रथेन) बड़े बलशाली, बड़े विस्तृत पाद रूप चक्रों से युक्त, वेगवान् रथ से (दाश्वांसम्) दानशील प्रजाजन को (उप गच्छतम्) प्राप्त हो और (इह आगतम्) इस राष्ट्र में आया जाया करो ।

इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा ।
पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) राजन् ! हे सेनापते ! (अयं) यह (सुतः) उत्पन्न पुत्र तुल्य ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन है। आप दोनों सूर्य और वायु के तुल्य (स-जोषसा) प्रीतियुक्त होकर (देवेभिः) विद्वान्, विजयेच्छुक ब्राह्मणों और क्षत्रियों सहित (दाशुषः(करादि देने वाले प्रजावर्ग के (गृहे) गृह के समान राष्ट्र में रहते हुए (तं पिवतम्) उसका उपभोग और पालन करो।

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् ।
इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) विद्युत् वा पवन के समान तेजस्वी और बलवान् राजा और अमात्य, राजा व सेनापति, नर नारी जनो ! (इह) इस स्थान वा काल में (वां) आप दोनों का (प्रयाणं) उत्तम रीति से जाना (अस्तु) हो और (इह विमोचनम्) इस स्थान में आप दोनों का अश्वादि को रथ से पृथक् करने का स्थान हो और (इह) इस स्थान में (वां) आप दोनों का (सोमपीतये) सुखादि भोगने के लिये स्थान हो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[४७] वामदेव ऋषिः ॥ १ वायुः । २-४ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, ३ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् एवं ज्ञानवान् पुरुष वा प्रभो ! आचार्य ! मैं (दिविष्टिषु) ज्ञानप्रकाश प्राप्त करने की साधनाओं में लगकर (शुक्रः) तेजस्वी और जल के समान पवित्र और (शुक्रः) ब्रह्मचर्यादि से वीर्यवान् होकर (ते मध्व अग्रं) तेरे ज्ञान के सर्वोत्तम भाग को (अयामि) प्राप्त करूं। हे (देव) ज्ञान बल आदि के देने वाले ! तू (स्पार्हः) स्पृहा, प्रेम वा अभिलाषा करने योग्य है। तू (सोमपीतये) शिष्य

के पालन, एवं अन्नादि रसों के उपभोग के लिये (नियुत्वता) अश्वों से युक्त रथ से और विजितेन्द्रिय चित्त से (आयाहि) हमें प्राप्त हो ।

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रः च वायो) हे इन्द्र ! अज्ञान के नाशक, हे बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष ! दोनों को (एषां सोमानां) इन सौम्य शिष्यों की (पीतिम् अर्हथः) पालना करनी चाहिये। (आपः न) जल जैसे (सध्र्यक्) एक साथ ही (निम्नम्) नीचे के प्रदेश में बहते हैं वैसे ही (इन्दवः) द्रुतगति से आने वाले, प्रेमार्द्रहृदय शिष्य (युवां हि यन्ति) तुम दोनों को प्राप्त हों ।

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (वायो इन्द्रः च) हे महाबल सेनापते ! और राजन् ! तुम दोनों (शुष्मिणा) बलवान् और (शवसः) सैन्य बल के पालक और (नियुत्वन्तः) नियुक्त हजारों लाखों सैन्य जनों सहित (सरथं) रथ सहित (नः ऊतये) हमारी रक्षा और (सोमपीतये) राष्ट्र-ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (आ यातम्) आदरपूर्वक आओ ।

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥ २३ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक युगल ! हे (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवान् पुरुष ! हे (यज्ञवाहसा) सत्संग, मैत्रीभाव, दानप्रतिदान व्यवहार के धारक ! (या) जो (वां) आप दोनों के (पुरु-स्पृहः) बहुतों को प्रिय और बहुत से धनों को चाहने वाले, (नियुतः) अधीन नियुक्त लक्षों जन, अश्वादि हैं (ता) उन सबको (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये (नि यच्छतम्) नियम में सुव्यस्थित रक्खो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[४८] वामदेव ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ।
२ अनुष्टुप् ३, ४, ५ भुरिगनुष्टुप् । पंचर्चं सूक्तम् ॥

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—जैसे (विपः न) बुद्धिमान् (अर्यः) स्वामी या वैश्य जन (रायः) धनों की (वेति) रक्षा करता है वैसे ही हे (वायो) ज्ञानवान्, बलवान् पुरुष ! विद्वान् आचार्य ! राजन् ! तू भी (विपः) बुद्धिमान् और शत्रुओं का कंपाने हारा, (अर्यः) इन्द्रियगण और प्रजाओं का स्वामी होकर (अवीताः) अरक्षित (होत्राः) ग्रहण करने और आश्रय देने योग्य प्रजाओं की (विहि) रक्षा कर। हे आचार्य ! तू (होत्राः अवीताः) अज्ञानी अप्रदीप्त शिष्यवत् स्वीकार करने योग्य शिष्यों को (विहि) ज्ञान से प्रकाशित कर। (सुतस्य पीतये) प्रजा वा शिष्य को पुत्रवत् पालने और राष्ट्रैश्वर्य को ओषधि रस के तुल्य उपभोग करने के लिये (चन्द्रेण रथेन) आह्लादकारी रमणीय रथ और उपदेश से (आ याहि) प्राप्त हो।

निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ बलवान् ! तू (इन्द्र-सारथिः) राजा को सहायक बना कर (चंद्रेण रथेन) सुवर्ण के बने रथ एवं सर्वाह्लादक, व्यवहार से (नियुत्वान्) अपने अधीन नियुक्त सैन्यों, अश्वों और भृत्यादि का स्वामी होकर (अशस्तीः) सौम्य स्वभाव, (निर्युवाणः) बलवान् पुरुषों से रहित वा नाना युवकों से युक्त प्रजाओं को (सुतस्य पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग और रक्षा के लिये (आ याहि) प्राप्त कर।

अनु॒ कृष्णे॒ वसु॑धिती येमा॒ते॑ वि॒श्वपे॑शसा ।
वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ रथे॑न या॒हि सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—(कृष्णे) एक दूसरे का आकर्षण करने वाले (वसुधिती) वसने वाले और वसने योग्य लोकों के धारक (विश्व-पेशसा) विश्व रूप, आकाश और पृथिवी दोनों को जैसे वायु व्यापता है वैसे ही हे (वायो) वायु के तुल्य व्यापक सामर्थ्य से युक्त बलवान् पुरुष ! (कृष्णे) राष्ट्र में कृषि और शत्रु का कर्षण और पीड़न करने वाली (विश्वपेशसा) सब प्रकार के द्रव्यों को धारण करने वाली (वसुधिती) बसे जनों को अन्न से पालन करने वाली होकर (अनुयेमाते) एक दूसरे के अनुकूल नियम व्यवस्था में रहें और तू (सुतस्य पीतये) उन दोनों को ऐश्वर्य के उपभोग और पुत्रवत् उनके पालन के लिये कटिबद्ध होकर (चन्द्रेण रथेन आयाहि) सुवर्ण लोहादि के बने रथ से सर्वाह्लादक व्यवहार से दोनों को प्राप्त हो ।

वह॑न्तु त्वा म॒नो॒युजो॑ यु॒क्तासो॑ नव॒तिर्नव॑ ।
वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ रथे॑न या॒हि सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वायो) वायुवत् शत्रुओं को निर्मूल करने में समर्थ पुरुष ! (त्वा) तुझको (नवतिः नव) ९९ या ९×९०=८१० (युक्तासः) नियुक्त भृत्य, (मनोयुजः) तेरे साथ मनोयोग देकर (त्वा वहन्तु) तुझको अध्यक्ष रूप से धारण करें । तू १०० में से एक शताध्यक्ष हो अथवा ९० की ९ टुकड़ियों के ९ अध्यक्षों सहित उन पर दसवां सहस्राध्यक्ष वा सहस्र सैन्यपति हो । तू (सुतस्य पीतये चन्द्रेण रथेन आयाहि) राष्ट्रैश्वर्य के रक्षार्थ, धनैश्वर्य से युक्त, रथसैन्य से वा आह्लादक रम्य व्यवहार से राष्ट्र को प्राप्त हो ।

वायो॑ श॒तं हरी॑णां यु॒वस्व॒ पोष्या॑णाम् ।
उ॒त वा॑ ते सह॒स्रिणो॒ रथ॒ आ या॑तु॒ पाज॑सा ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (वायो) वायुवत् शत्रूच्छेदक राजन् ! तू (पोष्याणां) पोषण करने योग्य, वेतन-बद्ध भृत्य (हरीणां) मनुष्यों वा अश्वारोहियों के (शतं) सौ के दल को (युवस्व) मिलाकर रख। (उत वा) और (सहस्रिणः) हजारों के स्वामी (ते) तेरा (रथः) रथ वा रथ-सैन्य (पाजसा) बलपूर्वक (आ यातु) आवे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[४६] वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्राबृहस्पती देवते। छन्दः—१ निचृद्गायत्री। २, ३, ४, ५, ६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती ।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् इन्द्र ! राजन् ! हे बृहस्पति वेद वाणी के पालक विद्वान् पुरुषो ! (वाम् आस्ये) आप दोनों के मुख में (इदं) यह (प्रियं) तृप्तिकारक (हविः) अन्न, ग्राह्य वचन, ज्ञान, (प्रियम् उक्थं) और प्रीतिकारक वचन (मदश्च) और तृप्तिकारक हर्ष और (दमः) दमन का अभ्यास, (शस्यते) प्रशंसा योग्य हो।

अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती ।
चारुर्मदाय पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे महान् राष्ट्र वा भारी बल के पालक, बड़ी वाणी वेद के पालक राजन्, विद्वन् ! (अयं सोमः) यह राष्ट्रमय ऐश्वर्य और सोम्यस्वभाव युक्त शिष्य (वाम्) आप दोनों के अधीन रहकर (परि षिच्यते) पात्र में जल के तुल्य परिषेक, या अभिषेक, कराया जाता है, वह (मदाय) आनन्द लाभ और इन्द्रिय-दमन अर्थात् ब्रह्मचर्य के निमित्त और (पीतये) राष्ट्र के उपभोग और व्रत पालन के लिये (चारुः) उत्तम, व्रताचरण में कुशल हो।

आ नो इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे वाणी के पालक जनो ! हे राजन्, विद्वन् ! आप दोनों (सोमपा) ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान का उपभोग करने वाले और राष्ट्र और शिष्य का पालन करने वाले हो। (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् पुरुष और ज्ञानद्रष्टा विद्वान् दोनों ही आप (सोमपीतये) ज्ञान और ऐश्वर्य पान और राष्ट्र और शिष्य के पालन के निमित्त (नः गृहम्) हमारे गृह को (आ गच्छतम्) आइये।

अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् ।
अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) राजन् ! बृहती सेना, प्रजा वा वेदवाणी के पालक विद्वन् ! (अस्मे) हमें (शतग्विनं) सैकड़ों भूमियों, गौ और वेदवाणी से युक्त (अश्वावन्तं) अश्वों, अश्व सेना और उत्तम, सुयश, इन्द्रिय-दमन युक्त (सहस्रिणं) सहस्रों ऐश्वर्यों सहस्र ज्ञानों, सहस्र समावेद युक्त, वा बलवान् महाव्रत रूप (रयिं) ऐश्वर्य का (धत्तं) पालन और धारण कराओ।

इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे वेदज्ञ विद्वन् ! (अस्य सोमस्य पीतये) इस 'सोम' के पान, उपभोग और राष्ट्र वा शिष्य आदि के पालन के लिये, (वयम्) हम (गीर्भिः) स्तुतियों और वाणियों द्वारा (सुते) अभिषिक्त हो जाने पर या उसके निमित्त आप दोनों को (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें।

सोमंमिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे ।
मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥ २५ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे वेदज्ञ विद्वन् ! आप दोनों (दाशुषः) आत्म समर्पक शिष्य वा प्रजाजन के (गृहे) गृह में (सोमं) अन्नादि ऐश्वर्य का उपभोग और गृह में उत्पन्न पुत्र या शिष्य का (पिबतं) पालन करो और (तदोकसा) उसके आश्रय स्थान में रहकर ही (मादयेथाम्) अन्यों को हर्षित करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५०] वामदेव ऋषिः ॥ १-९ बृहस्पतिः । १०, ११ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—१-३, ६, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ४, ११ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ८, १० त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (सहसा) बलपूर्वक (ज्मः अन्तान्) पृथिवी के पर्यन्त मार्गों को (रवेण) अपनी आज्ञा से (तस्तम्भ) वश करता है वही (त्रि-सधस्थः) तीनों लोकों में व्यापक, (बृहस्पतिः) महान् पालक परमेश्वर है। (तं) उस (मन्द्र-जिह्वम्) आनन्ददायक, वेदवाणी के स्वामी परमेश्वर को (प्रत्नासः) पूर्व के वेदार्थ-द्रष्टा (विप्राः ऋषयः) मेधावी ऋषिजन (दीध्यानः) प्रकाशित करते वा ध्यान करते हुए (पुरः दधिरे) अपने समक्ष, साक्षी रूप से स्थापित करते हैं।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो (धुनेतयः) कंपा देने वाली, दिल दहलाने वाली, चेष्टाएं करने वाले वीर जन (मदन्तः) हर्ष और तृप्ति अनुभव करते हुए (नः)

हमारे बीच में (सुप्रकेतम्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष को (अभि ततस्रे) प्राप्त कर सतावें, तब हे (बृहस्पते) वेदवाणी के पालक विद्वन् ! और बड़े राष्ट्र के पालक राजन् ! तू (पृषन्तं) स्नेह से मेघ के समान सुख सेचन करते हुए (सृप्रम्) आगे बढ़ने वाले (अदब्धं) न नाश हुए, (ऊर्वं) दुष्टों के नाशक, (अस्य) उक्त ज्ञानवान् पुरुष के (योनिम्) आश्रय रूप क्षात्र बल की (रक्षतात्) रक्षा कर।

बृह॑स्पते॒ या प॑र॒मा प॑रा॒वद॒त आ त॑ ऋत॒स्पृशो॒ नि षे॑दुः ।
तुभ्यं॑ खा॒ता अ॑व॒ता अद्रि॑दुग्धा॒ मध्वः॑ श्चोतन्त्य॒भितो॑ विर॒प्शम् ॥३॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़ी ज्ञान वाणी और बड़े राष्ट्र के पालक ! विद्वन् ! एवं राजन् ! (या) जो (ते) तेरी (परमा) सर्वोत्कृष्ट (परावत्) दूर देश तक व्यापने वाली नीति, मर्यादा या सीमा है, (अतः) उसके भीतर जो (ऋतस्पृशः) धर्म पालन वा अन्न आदि उत्पन्न करने वाले (ते आ निषेदुः) तेरे अधीन, माण्डलिक आदि बसें वा विराजें वे (खाताः) खने गये (अवताः) कूपों के समान गम्भीर, (अद्रिदुग्धाः) मेघवत् दयार्द्र विद्वान् पुरुषों द्वारा दोहे वा पूर्ण किये जाकर (तुभ्यं) तेरे लिये (मध्वः) अन्न और धन की (विरप्शम्) महान् राशि को (अभितः) सब ओर से (श्चोतन्ति) प्रदान करें।

बृह॒स्पतिः॑ प्रथ॒मं जाय॑मानो म॒हो ज्योति॑षः पर॒मे व्यो॑मन् ।
स॒प्तास्य॑स्तुविजा॒तो रवे॑ण॒ वि स॒प्तर॑श्मिरधम॒त्तमां॑सि ॥ ४ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी ज्ञान का पालक, वेद और वेदज्ञ विद्वान् स्वयं (प्रथमं जायमानः) सबसे प्रथम सर्वोत्कृष्ट प्रकट होता हुआ, (महः ज्योतिषः) बड़े भारी प्रकाश के (परमे व्योमन्) परम स्थान ज्ञानकोटि में स्थित है। वह (सप्त-आस्यः) सात छन्द रूप सात मुखों वाला, (तुवि-जातः) बहुत से विद्वानों में प्रकट होकर (रवेण) उपदेश द्वारा (सप्त-रश्मिः) सात

रश्मियों वाले सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश को फैलाता हुआ, (तमांसि) सब अविद्या अन्धकारों को (अधमत्) विनाश करे।

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(सः बृहस्पतिः) वह बड़े राष्ट्र का पालक (सु-स्तुभा) उत्तम रीति से शत्रुहिंसा में समर्थ, (ऋक्वता) वाणी के पालक (गणेन) सैन्य दल से और (सु-स्तुभा) उत्तम रीति से कंपाने वाले, (ऋक्वता) उत्तम वाणी से युक्त (रवेण) आज्ञा से (फलिगं वलं रुरोज) फलों वाले शस्त्रों सहित नगररोधी शत्रु का भंग करे और (हव्यसूदः) रत्न आदि उपादेय ऐश्वर्य को प्रचुर मात्रा में देने वाली, (उस्रियाः) नाना भोग देने वाली, (वावशतीः) निरन्तर कामनाशील, प्रजाओं और सेनाओं को (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (उद् आजत्) उत्तम रीति से, गौ आदि पशु संघ के समान अधीन कर उनको उत्तम मार्ग से चलावे।

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (एव) इस प्रकार (पित्रे) सर्वव्यापक (विश्वदेवाय) विश्व के प्रकाशक, सबको ऐश्वर्य देने वाले, सबके उपास्य (वृष्णे) सुखों के वर्षक, महान् पुरुष, परमेश्वर की (यज्ञैः) यज्ञों, सत्संगों से और (नमसा) नमस्कार पूर्वक और (हविर्भिः) उत्तम अन्नों और वचनों से (विधेम) भक्ति करें। हे (बृहस्पते) बड़े राष्ट्र और ज्ञान के पालक (वयं) हम (सु-प्रजाः) उत्तम प्रजा से युक्त (वीरवन्तः) उत्तम वीरों वा पुत्रों से युक्त और (रयीणां पतयः) ऐश्वर्यों के स्वामी (स्याम) होवें।

स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥

भा०—(सः इत्) वह परमेश्वर ही (राजा) राजा के समान सर्व विश्व का स्वामी तेजोमय, स्वप्रकाश, (शुष्मेण) सर्व शोषक, प्रखर तेज और (वीर्येण) सबको गति देने वाले बल से (विश्वा) समस्त (प्रतिजन्यानि) प्रत्यक्ष उत्पन्न होने वाले पदार्थों में (अधि तस्थौ) व्यापक है। (यः) जो परमेश्वर (सु-भृतम्) उत्तम रीति से विश्व के पोषक (बृहस्पतिम्) बड़े ब्रह्माण्ड के पालक सूर्यादि लोक को भी (बिभर्त्ति) धारण करता है और (पूर्वभाजं) सबसे पूर्व के विद्यमान उपार्जित ज्ञानों को सेवन करने वाले विद्वान् पुरुष को भी (वल्गूयति) उपदेश करता और (वन्दते) उसको चाहता है।

स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥ ८ ॥

भा०—(सः इत्) वह परमेश्वर (स्वे) अपने (सुधिते ओकसि) सुरक्षित जगत्-रूप स्थान में (क्षेति) निवास करते हैं, (तस्मै) उसकी (विश्वदानीम्) सदा (इडा) वेद वाणी (पिन्वते) सब पर ज्ञान का वर्षण करती है। (तस्मै) उसके आदर के लिये (विशः) सभी प्रजाएं (स्वयम् एव) आप से आप (नमन्ते) भक्ति से झुकती हैं। (यस्मिन्) जिस (राजनि) सर्वप्रकाशक परमेश्वर में (पूर्वः ब्रह्मा) अनादि श्रेष्ठ ज्ञानी वेदज्ञ विद्वान् (एति) प्राप्त होता है।

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर राजा के तुल्य (अवस्यवे ब्रह्मणे) रक्षा चाहने वाले ब्रह्मज्ञानी पुरुष को (वरिवः कृणोति) धन देता है जो (राजा)

स्वयं सूर्यवत् सबका प्रकाशक है (तम्) उसको सब (देवाः)विद्वान् गण, किरणों के तुल्य (अवन्ति) प्राप्त होते हैं। वह स्वयं (अप्रतीतः) प्रत्येक साधारण पुरुष से वा प्रत्यक्ष इन्द्रियों से नहीं जाना जाता है, तो भी (प्रति-जन्या या स-जन्या धनानि) वह प्रत्येक उत्पन्न होने वाले समान, व साथ रहने वाले जीवों के हितकारी ऐश्वर्यों को (सं जयति) अच्छी प्रकार वश में करता है।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१०॥

भा०—(इन्द्रः च बृहस्पते) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! वेदवाणी और महान् राष्ट्र के पालक ! आप दोनों (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर संग, सहयोग और राज्यकार्य में (मन्दसाना) हर्ष अनुभव करते हुए (वृषण्वसू) ज्ञान धन आदि के वर्षाने वाले (सोमं पिबतं) पुत्र वा शिष्यवत् राज्य का पालन करें और ओषधिरस के समान अति स्वल्प मात्रा में (पिबतं) उसका उपभोग करो। आप दोनों (अस्मे) हमें (सर्ववीरं) सब प्रकार के वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिं) धन को (नि यच्छतम्) प्रदान करो और (स्वाभुवः) स्वयं उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) प्रेमयुक्त प्रजाजन (वां विशन्तु) तुम दोनों को प्राप्त करें।

बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११॥२७॥७॥

भा०—हे (बृहस्पते) वेदविद्या के पालक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! आप दोनों (सचा) सत्यपूर्वक सदा साथ रह कर (नः वर्धतम्) हमें बढ़ाओ। (वां) आप दोनों की (सा) वह, उत्तम (सु-मतिः) ज्ञान वाली परिषद् (अस्मे) हमारे हित के लिये (भूतु) होवे। आप लोग

(धियः) प्रजा और कर्मों तथा राष्ट्र की धारक प्रजाओं को (अविष्टम्) पालन करो (पुरं-धीः) देहवत् पुर को धारण करने वा बहुत से ऐश्वर्य और ज्ञानों के धारण करने वाली प्रजाओं वा सेनाओं को (जिगृतम्) सदा सावधान बनाओ। आप दोनों (अर्यः) स्वामी के तुल्य होकर (वनुषाम्) संविभाग करने योग्य ऐश्वर्यों को (अरातीः) न देने वाली (अर्यः) शत्रुसेनाओं का (जंजस्तम्) विनाश करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

[५१] वामदेव ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ९, ११ निचृत्-त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। १० भुरिक्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥

भा०—जैसे (पुरुतमं) सबसे अधिक आकाश देश को पूरने वाले सूर्य प्रकाश (पुरस्तात्) प्राची दिशा में (वयुनावत्) सब ज्ञानों, कर्मों से युक्त होकर (तमसः अस्थात्) रात्रि के अन्धकार में से ऊपर उठता है और (दिवः दुहितरः बिभातीः उषसः) देदीप्यमान सूर्य कन्याओं के समान, स्वप्रकाश युक्त उषा वेलाएं (जनाय गातुं कृणवन्) मनुष्यों के लिये पृथिवी को प्रकट करती हैं वैसे ही (इदम् उ) यह (त्यत्) वह प्रसिद्ध (पुरुतमं) समस्त विद्याओं से सबसे अधिक पूर्ण (ज्योतिः) वेदमय तेज है, जो (तमसः) दुःखदायी अज्ञान से भिन्न, (पुरस्तात्) सबसे पूर्व विद्यमान और (वयुनावित्) उत्तम ज्ञान और कर्मोपदेश से युक्त होकर (अस्थात्) सदा के लिये

स्थिर है। (नूनं) निश्चय से (दिवः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की (दुहितरः) कन्याओं के तुल्य (विभातीः) विविध ज्ञानों का प्रकाश करने वाली, (उषसः) पापों को जलाने वाली वेद वाणियां (जनाय) मनुष्य मात्र के लिये (गातुं) जानने योग्य ज्ञान और मार्ग को (कृणवन्) प्रकट करती हैं।

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू॒ व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अध्वरे) यज्ञ में (मिताः इव स्वरवः) गड़े हुए यूपांश स्थिर होते हैं और जैसे (अध्वरेषु) यज्ञों के निमित्त (स्वरवः) अति तेज से युक्त (मिताः इव) परिमित काल तक स्थिर (चित्राः उषसः) अद्भुत; उषाएं (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (अस्थुः) प्रकट होती हैं और वे (शुचयः) शुद्ध, (पावकाः) पवित्र होकर (व्रजस्य तमसः द्वारा उच्छन्तीः) वर्जने योग्य रात्रि के अन्धकार को प्रकट करती हुई (वि अव्रन्) व्याप लेती हैं वैसे ही (चित्राः) अद्भुत रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और वस्त्रादि से सुन्दर, चित्र विचित्र, (उषसः) कामना युक्त, कमनीय, (पुरस्तात्) आगे (मिताः इव) विद्या से ज्ञानयुक्त, (स्वरवः) तेजस्विनी, विदुषी कन्याएं (अध्वरेषु) हिंसा से रहित यज्ञों में (व्रजस्य तमसः उच्छन्तीः) गृह के अन्धकारयुक्त द्वारों को प्रकाशित करती हुई (शुचयः) स्वच्छाचार वाली (पावकाः) पवित्र यज्ञ अग्नि, आर्त्तवादि से शुद्ध होकर (वि अव्रन्) विशेष रूप से पति का वरण करें और हे ब्रह्मचारी! तुम भी ऐसी ही कमनीय कन्याओं का वरण किया करो।

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥

भा०—(पणयः) स्तुतिकर्त्ता लोग जो (अबुध्यमानाः) स्वयं स्तुति पाठ का अर्थ ज्ञान नहीं करते हैं वे जैसे (तमसः अचित्रे वि मध्ये) ज्ञानरहित

अन्धकार के बीच (ससन्तु) सोते हैं, मग्न रहते हैं वैसे ही (पणयः) स्तुत्य स्त्रियां और व्यवहारवान् गृहस्थ जन भी (अबुध्यमानाः) रात्रि काल में न जागते हुए (तमसः) अन्धकार के (अचित्रे मध्ये) चेतना रहित गाढ़ निद्रा के बीच (ससन्तु) सोते हैं जैसे (उपसः) प्रातः वेलाएं (उच्छन्तीः) प्रकट होती हुई (भोजान् चितयन्त) भोक्ता प्राणियों को जगाती हैं वैसे ही (उषसः मघोनीः) श्रीसम्पन्न स्त्रियां वा प्रजाएं भी (उच्छन्तीः) विशेष रूप से गुणों को प्रकट करती हुई (राधो-देयाय) धनों के दान के लिये (भोजान्) अपने पालक पतियों वा रक्षक राजाओं को (चितयन्त) सदा सचेत करती रहें।

कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (उषसः यामः सनयः अद्य नवः वा कुविद् भवति) उषा का अतिपुरातन भी गमनमार्ग प्रत्येक आज के दिन नया हो जाता है वैसे ही हे (देवीः उषसः) कमनीय पतिप्रिय....देवियो ! (वः) आप लोगों का (यामः) विवाह करने वाला पति (कुवित्) महान्, (सनयः) रथ के समान सनातन मार्ग से चलने वाला, (नवः) तरुण ही (बभूयात्) हो। (येन) जिससे आप लोग (नवग्वे) नव अर्थात् स्तुत्य वाणियों वा सदा तरुण इन्द्रिय गण से युक्त, (दशग्वे) दशों दिशाओं में भूमि के स्वामी वा दशों इन्द्रियों के दमनकारी (अंगिरे) अग्नि वा सूर्य के तुल्य तेजस्वी (सप्तास्ये) मुख पर सातों प्राण, आंख, नाक, कान, मुखादि अंग, एवं उनकी अविकल शक्तियों से युक्त पति के अधीन रह कर (रेवतीः) स्वयं धन सम्पन्न होकर (रेवत्) सम्पन्न जीवन की (ऊष) कामना करो।

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(देवी: उषस: ससन्तं जीवं प्रबोधयन्ती: यथा ऋतयुग्भि: अश्वै: भुवनानि परि प्रयन्ति) जैसे प्रकाश युक्त प्रभात बेलाएं सोते हुए जीव गण को जगाती हुई तेजयुक्त किरणों से लोकों में दूर-दूर तक जाती हैं वैसे ही हे (उषस: देवी:) पति आदि की कामना करने वाली देवियो ! गृह-पत्नियो ! (यूयं) आप भी (ऋतयुग्भिरश्वै:) वेगयुक्त अश्वों से दूर-दूर के स्थानों तक, (ऋतयुग्भि: अश्वै:) सत्य मार्ग से युक्त भोक्ता या उत्तम गुणों से युक्त अश्ववत् बलवान् पतिजनों से युक्त होकर (सद्य:) शीघ्र ही (भुवनानि) उत्तम-उत्तम गृहों को (परि प्रयाथ) प्राप्त होवो। (उषस:) प्रभात वेलाओं के समान ही (द्विपात्) दोपाये, भृत्यों और बन्धुजनों तथा (चतुष्पात्) चौपाये गौ आदि पशु (ससन्तं) सोते हुए (जीवं) जीवगण को (चरथाय) कर्म करने के लिये (प्र-बोधयन्ती:) जगाती रहो। इति प्रथमो वर्ग: ॥

क्वं स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (शुभ्रा: उषस: शुभं चरन्ति) दीप्तिमती प्रभात वेलाएं उज्वल प्रकाश करती हैं, वे सब (सदृशी: सत्य: अजुर्या:) एक समान रहकर पुरानी नहीं मालूम होतीं और (आसां कतमा पुराणी) उन उषाओं के बीच में कौन सी पुरानी है और (क्व स्वित्) वह वेला कहां रहती है ? (यया) जिसमें (ऋभव:) प्रकाश से दीप्त किरणें अपने (विधाना विदधु:) नाना प्रकाश, ताप आदि कर्म करते हैं, वैसे ही (यत्) जो (शुभ्रा:) लावण्य, तेज आदि से उज्ज्वल, (उषस:) कान्तिमती कन्याएं (अजुर्या:) वयस् और बल की हानि न करती हुई (सदृशी:) बल वीर्य में अपने पतियों के तुल्य रहकर (शुभ्रं) विवाहादि शोभा युक्त कार्य करती हैं। वे (न विज्ञायन्ते) विपरीत नहीं जानी जाती। (आसां पुराणी कतमा) उनमें से कौन श्रेष्ठ वा आयु में बड़ी है (यया) जिसके साथ विद्वान् जन (ऋभूणां) विद्वानों के बनाये (विधाना) यज्ञादि अनुष्ठानों को (क्वस्विद्)

किस-किस दशा में और कहां-कहां (विदधुः) करते हैं। अर्थात् ब्रह्मचारिणी स्त्रियें सदृश पति को प्राप्त होकर बलवती दीर्घायु सर्वत्र साथ देने वाली हों।

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (उषसः) प्रभात वेलाएं (भद्राः) सुखकारिणी (अभिष्टि-द्युम्ना) फैलने वाले प्रकाश से युक्त, (ऋत-जात-सत्याः) तेज से सत्य पदार्थों का प्रकाश करने वाली होती हैं। (यासु ईजानः उक्थैः शशमानः स्तुवन् शंसन् सद्यः द्रविणम् आप) जिनमें प्रातः यज्ञ अर्थात् वेद-मन्त्रों से ईश्वर की स्तुति करने वाला, स्तुतिशील वेदमन्त्रपाठी पुरुष शीघ्र ही अभीष्ट धन और ज्ञान प्राप्त करता है वैसे ही जो (उषसः) उत्तम कन्याएं भी (परा) पूर्व जीवन में (अभीष्टि द्युम्नाः) इच्छानुसार धनैश्वर्य प्राप्त करने वाली (ऋतजात-सत्याः) यज्ञ और धर्ममार्ग में सत्यप्रतिज्ञा को प्रकट करने वाली होती हैं (ताः) वही निश्चय से (भद्राः) कल्याणकारिणी होती हैं। (यासु) जिन्हों के संग (ईजानः) यज्ञ करता हुआ, जिन्हों से संगति करता हुआ (शशमानः) शमादि साधनों का अभ्यासी पुरुष (उक्थैः) उत्तम वचनों से (स्तुवन्) उनकी स्तुति (शंसन्) और प्रशंसा करता हुआ, (सद्यः) शीघ्र ही (द्रविणं) ऐश्वर्य (आप) प्राप्त करता है।

ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥ ८ ॥

भा०—(देवीः उषसः गवां सर्गाः न सदसः बुधानाः) तेज युक्त जगत् की प्रकाशक उषाएं गौओं अर्थात् रश्मियों की बनी हुई, गृहों को चमकाती हुई (ऋतस्य जरन्ते) प्रकाशमान सूर्य की कथा कहती हैं, (समना) एक साथ मिलकर (पुरस्ताद् आ चरन्ति) पूर्व दिशा में फैलती हैं वैसे ही (ताः) वे (उषसः) उत्तम कामना वाली स्त्रियां (पुरस्तात्) सबके समक्ष (समना) एक चित्त होकर (समानतः) अपने समान गुण वाले पुरुषों से (समना)

संगत होकर (पप्रथानाः) अपने वैभव और प्रजाओं का विस्तार करती हुईं; (देवीः) उत्तम स्त्रियें (सदसः बुधानाः) उपस्थित सभ्य जनों को सम्बोधन करती हुईं (गवां सर्गाः न) उस समय प्रतिज्ञावाणियों को उत्पन्न करने वाले विद्वान् वक्ताओं के तुल्य (ऋतस्य जरन्ते) सत्य प्रतिज्ञावचन युक्त वेद मन्त्रों का (जरन्ते) उच्चारण करें।

ता इन्न्वे३व स॒मना॑ समा॒नीरमी॑तवर्णा उ॒षस॑श्चरन्ति ।
गूह॑न्ती॒रभ्व॒मसि॑तं॒ रुश॑द्भिः शु॒क्रास्त॒नूभि॒ः शुच॑यो रुचा॒नाः ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (उषसः समानीः अमीतवर्णाः समना चरन्ति) उषाएं एक रूप होकर अपने रूप रंग का नाश न करती हुईं एक समान आगे बढ़ती हैं और (रुशद्भिः रुचानाः शुचयः शुक्राः अभ्वं असितं गूहन्तीः) दीप्तियों से, चमकती हुई, स्वयं शुद्ध रूप से रात्रि के अन्धकार के साथ मानों आलिंगन करती हैं, वैसे ही (ताः) वे (समनाः) स्त्रियां अपने पतियों के साथ समान चित्त वाली (समानीः) पतियों के समान आदर से युक्त, (अमीत-वर्णाः) अपने वर्ण धर्म का लोप न करने वाली, (उषसः) पतियों की हृदय से कामना करने वाली, (शुचयः) शुद्ध (रुशद्भिः) कान्ति से युक्त, (तनूभिः) देहों से (रुचानाः) अन्यों को मनोहर प्रतीत होती हुईं, (असितं) अपने से एक मात्र सम्बद्ध (अभ्वम्) एवं गुण और बल में आदरणीय पति को (गूहन्तीः) अंगीकार करती हुईं (चरन्ति) सदाचार से वर्त्तें, (ताः इत् नु) उनको ही विवाह में ग्रहण करें।

र॒यिं दि॒वो दु॑हितरो विभा॒तीः प्र॒जाव॑न्तं यच्छता॒स्मासु॑ दे॒वीः ।
स्यो॒ना॒दा वः॑ प्रति॒बुध्य॑मानाः सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥ १० ॥

भा०—(दिवः दुहितरः विभातीः देवीः रयिं यच्छन्ति) प्रकाश को देने वाली वा सूर्य की कन्याओं के तुल्य उषाएं प्रकाश देती हैं वैसे ही (दिवः दुहितरः) कामनाओं को पूर्ण करने वाली (विभातीः) कान्ति से युक्त हे

(देवीः) उत्तम स्त्रियो! आप (अस्मासु) हमें (प्रजावन्तम्) पुत्रादि से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (यच्छत) दो। (स्योनात्) सुख युक्त गृह से (वः) आप लोगों को अपना अभिप्राय (प्रतिबुध्यमानाः) उत्तम रीति से शिक्षित करके ही हम लोग (सुवीर्यस्य) उत्तम बल के (पतयः) पालक (स्याम) हों।

तद्वो॑ दि॒वो दु॑हितरो विभा॒तीरुप॑ ब्रुव उषसो य॒ज्ञके॑तुः।
व॒यं स्या॑म य॒शसो॒ जने॑षु॒ तद् द्यौश्च॑ ध॒त्तां पृ॑थि॒वी च॑ दे॒वी ॥११॥२॥

भा०—जैसे (यज्ञकेतुः दिवः दुहितरः विभातीः उषसः उपब्रूते) यज्ञ वा उपास्य प्रभु को जानने वाला योगी ज्ञान प्रकाश देने वाली, सूर्य की कन्या के तुल्य दीप्तियुक्त उषाओं और विशोका प्रज्ञाओं को लक्ष्य कर स्तुति करते हैं। वैसे ही (यज्ञकेतुः) परस्पर सत्कार और दान प्रतिदान को जानने वाला, होकर मैं (दिवः दुहितरः) कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ (विभातीः) गुणों से प्रकाश युक्त, (उषसः) कमनीय (वः) आपके सम्बन्धों में (तत् उप ब्रुवे) वह वचन कहता हूँ जिससे (वयं) हम सब (जनेषु) मनुष्यों के बीच (यशसः) यशस्वी (स्याम) हों। (तत्) मेरे कहे उस वचन को (द्यौः च) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष और (देवी पृथिवी च) पृथिवी के समान सुख, सन्तान, अन्नादि देने वाली स्त्री दोनों (धत्तां) धारण करें। इति द्वितीयो वर्गः॥

[५२] वामदेव ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ६ निचृद्गायत्री। ५, ७ गायत्री॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्रति॒ ष्या सू॒नरी॒ जनी॑ व्यु॒च्छन्ती॒ परि॒ स्वसुः॑।
दि॒वो अ॑दर्शि दुहि॒ता॥ १॥

भा०—जैसे (दिवः दुहिता) सूर्य की कन्या के समान उषा (सूनरी=सु नरी) उत्तम रीति से सूर्य की अग्रगामिनी होकर (जनी) सब पदार्थों को

प्रकट करती हुई (प्रति अदर्शि) प्रत्यक्ष सबको दिखाई देती है वैसे ही (स्या) वह (जनी) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ (स्वसुः परि) अपनी अन्य भगिनी जन के समीप या उससे भी अधिक (वि उच्छन्ती) विविध प्रकार से शोकादि को हरती हुई (दिवः) कामना युक्त पति की मनोकामना को (दुहिता) पूर्ण करने वाली होकर (प्रति अदर्शि) दिखाई दे ।

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।
सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥

भा०—जैसे (उषा) प्रभात वेला (अश्विनोः) दिन और रात्रि के बीच उनकी (सखा) सखी के तुल्य या उनके नाम से कहानी है। वह (ऋतावरी) तेज से युक्त (गवां माता) किरणों को माता के समान जनने वाली, (अरुषी) ललाई लिये हुए, (अश्वा इव) व्यापक, वा घोड़ी तुल्य (चित्रा) अद्भुत रूप वाली होती है। वैसे ही (उषाः) पति की कामना करने वाली, स्त्री भी (अश्विनोः) देह के भोक्ता इन्द्रिय रूप अश्वों के स्वामी जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों में (सखा-अभूद्) मित्र तुल्य एक ही समान नाम और कीर्ति से कहलाने योग्य है। अर्थात् दम्पति में पति के नाम से ही स्त्री को बुलाया जाना उचित है। वह (ऋतावरी) सत्य व्यवहार वाली, (गवां माता) उत्तम वेदवाणियों की जानने वाली, वह (अरुषी) प्रेम से युक्त और पति वा सन्तान के प्रति रोष से रहित हो। वह (अश्वा इव) शीघ्रगामिनी घोड़ी के समान गृहस्थरथ को चलाने वाली (चित्रा) अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाली आदर से युक्त हो।

उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (उषः) प्रभात वेला के समान तू पूर्वोक्त प्रकार से (अश्विनोः सखा असि) दिन रात्रिवत् युगल की मित्र-तुल्य

सहायक है। (उत) और (गवां माता असि) गौओं की मातृवत् पालक घी आदि पदार्थों की उत्पादक और ज्ञान वाणियों की जानने वाली हो। (उत वस्वः) बसने योग्य घर की तू (ईशिषे) मालकिन हो।

यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि ।
प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥ ४ ॥

भा०—हे (चिकित्वित्) उत्तम रीति से बालकों को ज्ञान कराने वाली! हे (सूनृतावरि) उत्तम वचन बोलने वाली! हम (स्तोमैः) उत्तम प्रशंसा वचनों से (यावयद्-द्वेषसं) द्वेष के भावों और द्वेष करने वाले अप्रिय, पदार्थों और पुरुषों को दूर करने वाली (त्वा प्रति अभुत्स्महि) तुझको प्रत्येक कार्य का बोध करावें।

प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः ।
ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥ ५ ॥

भा०—जब (उषाः उरु-ज्रयः आ अप्राः) प्रभात वेला, उषा बहुत तेज को पूर्ण करती है तब जैसे (भद्राः गवां सर्गाः न) सुखदायिनी, गौओं वा वाणियों की रचना के तुल्य (रश्मयः प्रति अदृक्षत) रश्मियें देखने में आती हैं वैसे ही जब, (उषाः) पति के प्रिय गुणों से युक्त स्त्री (उरु) बहुत (ज्रयः) वीर्य को (आ अप्राः) धारण कर लेती है तब (गवां) जंगम सन्तानों की (सर्गाः) नाना सृष्टियाँ भी (रश्मयः न) उषा की किरणों के तुल्य ही (भद्राः) कल्याण गुण से युक्त (प्रति अदृक्षत) देखी जाती हैं।

आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः ।
उषो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (विभावरी आपप्रुषी तमः ज्योतिषा वि आवः, अनु स्वधाम् अवति) कान्ति से युक्त प्रभात वेला, उषा व्यापती हुई या प्रकाश से अन्धकार

को दूर करती है और अपने पीछे 'स्वधा' अर्थात् अपने को धारण करने वाले सूर्य को भी सुरक्षित रखती और प्रकट करती है वैसे ही हे (विभावरि) विशेष विचार और शक्ति से सम्पन्न स्त्री ! तू (ज्योतिषा) अपने ज्ञान-प्रकाश से (आ-पप्रुषी) सर्वत्र पूर्ण करती हुई (तमः वि आवः) दुःखों के अन्धकार को दूर कर। और हे (उषः) कमनीये ! तू (स्वधाम्) स्व अर्थात् धनैश्वर्य के धारक पति के (अनुअव) अनुकूल होकर उसका अनुगमन कर, उसकी आज्ञाकारिणी हो।

आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम्।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ७ ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (उषा शुक्रेण शोचिषा रश्मिभिः द्याम् अन्तरिक्षम् उरु च आतनोति) प्रभात वेला शुद्ध कान्ति से और किरणों से प्रकाश को विशाल अन्तरिक्ष में फैलाती है वैसे ही हे (उषः) कमनीये स्त्री ! (रश्मिभिः) उत्तम किरणों वा प्रेम-बन्धनों से (द्याम्) अपने कमनीय और (अन्तरिक्षम्) अपने अन्तःकरण में बसे (उरु) बहुत अधिक (प्रियं) प्रिय पति को (आ तनोषि) आदरपूर्वक स्वीकार कर, उसमें व्याप। इति तृतीयो वर्गः ॥

[५३] वामदेव ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृज्जगती ॥ २ विराड् जगती। ४ स्वराड् जगती। ५ जगती ॥

सप्तर्चं सूक्तम् ॥

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१॥

भा०—जैसे (असुरस्य) प्राणों के देने वाले (सवितुः देवस्य वार्यम् महत्) सूर्य का जलों के उत्पन्न करने में समर्थ बड़ा तेज है। (येन छर्दि यच्छति) जिस से वह स्वयं सबको गृह या आश्रय देता है और स्वयं भी (देवः अक्तुभिः महान् उद् अयात्) वह सूर्य प्रकाश युक्त किरणों से सब दिन

स्वयं उदय को प्राप्त होता है वैसे ही हम लोग भी (प्र-चेतसः) उत्तम ज्ञानवान् (असुरस्य) सब के प्राणदाता (सवितुः) सर्वोत्पादक (देवस्य) प्रभु, राजा वा विजिगीषु के (तत् महत् वार्यम्) उस महान् वरण योग्य बल, ऐश्वर्य का (वृणीमहे) वरण करें (येन) जिससे वह (त्मना) स्वयं (दाशुषे) कर देने वाले प्रजाजन को (छर्दिः यच्छन्ति) गृह के समान शरण देता है। वह (देवः) विद्वान् पुरुष (अक्तुभिः) प्रकाशक, कमनीय गुणों से महान् होकर दिनों दिन (उत् अयान्) उदय को प्राप्त हो और (नः तत् यच्छति) हमें भी वही तेज प्रदान करे।

दि॒वो ध॒र्त्ता भुव॑नस्य प्र॒जाप॑तिः पि॒शङ्गं॑ द्रा॒पिं प्रति॑ मुञ्चते क॒विः ।
वि॒च॒क्ष॒णः प्र॒थय॑न्नापृ॒णन्नु॒र्वजी॑जनत्सवि॒ता सु॒म्नमु॒क्थ्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा पालक परमेश्वर, प्रजा पालक राजा और विद्या सम्बन्ध से प्रजापति आचार्य, सूर्य के तुल्य ही (दिवः धर्त्ता) ज्ञान, प्रकाश और विजय कामना को धारण करता हुआ (भुवनस्य) लोकों का पालनकर्त्ता है। वह (कविः) अन्तर्यामी होकर भी सेनापतित्व (पिशङ्ग) उज्वल (द्रापिं) सुवर्णमय कवच के तुल्य उज्वल स्वप्रकाशमय रूप को (प्रतिमुञ्चते) धारण करता है। वह (विचक्षणः) विविध लोकों और विद्याओं का द्रष्टा (उरु) विस्तृत ज्ञान या जगत् को (प्रथयत्) फैलाता हुआ, (आपृणन्) सबको पूर्ण एवं पालन करता हुआ (सुम्नम्) सुखकारी (उक्थम्) प्रशंसा योग्य ज्ञान-प्रवचन को भी (अजीजनत्) उत्पन्न करता है।

आप्रा॒ रजां॑सि दि॒व्यानि॒ पार्थि॑वा॒ श्लोकं॑ दे॒वः कृ॑णुते॒ स्वाय॒ धर्म॑णे ।
प्र बा॒हू अ॑स्राक्सवि॒ता सवी॑मनि नि॒वे॒शय॑न्प्रसु॒वन्न॒क्तुभि॒र्जग॑त् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे सूर्य (दिव्या पार्थिवा रजांसि आ अप्रात्) आकाश और पृथिवी के समस्त लोकों को व्याप लेता है, वह (देवः) प्रकाशमान सूर्य

(अक्तुभिः जगत् सवीमनि निवेशयन् सविता बाहू अस्राक्) अपने प्रकाशक और वर्षक रश्मियों और मेघों से जगत् को प्रकाश और ऐश्वर्य में स्थापित करता और प्रेरित करता हुआ अपनी बाहुतुल्य दोनों शक्तियों को आगे निरन्तर प्रकट करता है वैसे ही (देवः) सर्व सुखों का दाता और ज्ञानों का प्रकाशक, प्रभु (दिव्यानि रजांसि) आकाश में स्थित तेजोमय, सूर्यों, अग्निमय लोकों और (पार्थिवा रजांसि) पृथिवी रूप, जीवसर्ग के आश्रय लोकों को (आ अप्राः) सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है। वह (सविता) परमेश्वर (जगत्) इस जगत् को (अक्तुभिः) प्रकट करने, वर्षाने और चमकाने वाले ज्ञान, जल और अग्नि प्रकाश आदि साधनों से (सवीमनि) अपने शासन, जगद्-उत्पादन के कार्य में (निवेशयन्) स्थापित करता हुआ और (प्र-सुवन्) आगे भी निरन्तर उसको उत्पन्न करता हुआ अपने धारक और उत्पादक दोनों (बाहू) शक्तियों को दो बाहुओं के तुल्य (प्र अस्राक्) प्रकट करता है और (स्वाय धर्मणे) और ईश्वरीय धर्म-व्यवस्था को प्रकट करने के लिये वह (देवः) ज्ञान-प्रकाशक प्रभु (श्लोकं कृणुते) वेद-वाणी को प्रकट करता है।

अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद्व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥ ४ ॥

भा०—जैसे सूर्य (भुवनानि प्र-चाकशत्) समस्त लोकों को प्रकाशित करता है। (व्रतानि अभि रक्षते) सबके व्रतों की रक्षा करता है, (महः अज्मस्य राजति) महान् जगत् में स्वयं चमकता है वैसे ही परमेश्वर (अदाभ्यः) अविनाशी, (देवः) सुखों का दाता, (सविता) सर्वोत्पादक है वह (भुवनानि प्र-चाकशत्) लोकों, उत्पन्न जन्तुओं को प्रकाश और चेतना से प्रकाशित करता है। वही (व्रतानि) कर्त्तव्यों की (अभिरक्षते) रक्षा करता है। वह (धृतव्रतः) सब व्रतों का धारण करने वाला, (अज्मस्य भुवनस्य) आकाश में संचालित, संसार के बीच (राजति) राजा के तुल्य विराजता है और (भुवनस्य प्रजाभ्यः) समस्त जगत् की प्रजाओं के लिये (बाहू) पिता

के तुल्य बाहुओं को (प्र अस्राक्) आगे बढ़ाता है। प्रकाशक और व्रतपालक जीवनदायक दो शक्तियां बाहुएं परमात्मा की हैं।

त्रिरुन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥५॥

भा०—(सविता) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर (परिभूः) सर्व-व्यापक है। वह (अन्तरिक्षं) भीतर बाहर व्याप्त आकाश को भी (त्रिः) तीनों प्रकारों से (इन्वति) व्यापता है वह अपने (महित्वना) महान् सामर्थ्य से, (रजांसि) समस्त लोकों को (त्रिः) तीन बार वा तीनों प्रकार के लोकों को (त्रीणि रोचना) तीन प्रकार के तेजस्वी, दीप्तिमान् पदार्थों और (तिस्रः) तीनों प्रकार के (दिवः) तेजों को और (तिस्रः पृथिवीः) तीनों प्रकार की भूमियों को (इन्वति) व्यापता है। वह (त्रिभिः) तीन प्रकारों के (व्रतैः) कर्मों वा नियमों से (त्मना) स्वयं (नः) हमें (अभि रक्षति) सब प्रकार से रक्षा करता है। तीन प्रकार के अन्तरिक्ष—महान् आकाश, मध्याकाश और हृदयाकाश। तीन प्रकार के रजस् या लोक—ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक, भूलोक वा सात्विक राजस वा तामस जन; तीन प्रकार के रोचन पदार्थ, सूर्य, चन्द्र अग्नि वा सूर्य, अग्नि, विद्युत् तीन। (दिवः) प्रकाश अर्थात् रक्त, नील, पीत। तीन प्रकार के व्रत सृष्टि, स्थिति, संहार। तीन भूमियें सूर्य, वायु वा अन्तरिक्ष और यह भूमि।

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर (बृहत् सुम्नः) बड़े भारी सुख का स्वामी (प्रसवीता = प्रसविता) समस्त संसार को उत्तम रीति से उत्पन्न करके सञ्चालन करने हारा, (निवेशनः) सबको यथास्थान स्थापित करने वाला, (जगतः) गतिशील, चर और (स्थातुः) स्थिर, स्थावर (उभयस्य) दोनों

प्रकार की सृष्टि को (यः-वशी) जो वश में करने वाला है, (सः) वह (देवः सविता) सर्वोत्पादक, देव (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख दे और (अस्मे) हमारे (क्षयाय) निवास के लिये (अंहसः) पाप और आघात से (त्रि-वरूथम्) त्रिविध प्रकारों से बचाने में समर्थ गृह वा शरण (यच्छतु) प्रदान करे।

आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥७॥४॥

भा०—(देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य जैसे ऋतुओं द्वारा बसे जगत् को बढ़ाता है। उत्तम प्रजा और अन्न देता, दिन और रात हमारी वृद्धि करता है वैसे ही (देवः) सुखों को देने और सूर्यादि को प्रकाशित करने वाला (सविता) सबका उत्पादक और सञ्चालक परमेश्वर (क्षयं) जगत् में बसे सर्ग को (ऋतुभिः) प्राणों के बल से (वर्धतु) बढ़ावे। वह (क्षपाभिः अहभिः च) दिन और रात सदा (नः जिन्वतु) हमें बढ़ावे और (अस्मे) हमें (प्रजावन्तं) उत्तम सन्तति से युक्त (रयिम् सम् इन्वतु) ऐश्वर्य प्रदान करे। इति चतुर्थो वर्गः॥

[५४] वामदेव ऋषिः॥ सविता देवता॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥

भा०—(देवः) ज्ञानवान्, सुखों का दाता, (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी, राजा, परमात्मा और विद्वान् आचार्य (नु) निश्चय से (नः) हमारा (वन्द्यः) स्तुति योग्य (अभूत्) है। वह (अह्नः) दिन के (इदानीम्) इस काल में भी (नृभिः) श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा (उपवाच्यः) स्तुति योग्य है। (यः) जो (मानवेभ्यः) मननशील पुरुषों और शिष्यों को

(रत्ना) उत्तम ऐश्वर्य, सुखप्रद ज्ञान (वि भजति) विविध प्रकार से विभक्त करता है। वही प्रभु, राजा और आचार्य (नः) हमें और हमारे बीच (श्रेष्ठं द्रविणं) उत्तम ऐश्वर्य (यथा) यथायोग्य (दधत) प्रदान करे।

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ २ ॥

भा०—हे (सवितः) जगत् के उत्पादक परमेश्वर तू! तू (यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) यज्ञ, उपासना और भक्ति करने में श्रेष्ठ पुरुषों के हितार्थ (उत्तमम् भागम्) उत्तम, सेवन योग्य, (अमृतत्वं) मोक्ष, सुख (सुवसि) प्रदान करता है और (आत् इत्) अनन्तर (दामानं) दानशील राजा एवं अपने को प्रभु के प्रति सौंप देने वाले पुरुष को (वि ऊर्णुषे) विविध प्रकार से आच्छादित करता है और (मानुषेभ्यः) समस्त मननशील पुरुषों के हितार्थ (अनूचीना जीविता) सुखप्रद जीवन देता है।

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमात्मन्! राजन्! हम (अचित्ती) बिना ज्ञान के, स्वयं (दीनैः) वेतनादि देने योग्य भृत्यों, (दक्षैः) कुशल पुरुषों और (प्रभूती) विभूतिमान् और (पुरुषत्वता) बहुत से पुरुषों से युक्त सैन्य से भी (दैव्ये जने) विद्वानों में कुशल और राजा से नियुक्त पुरुष और (देवेषु) विद्वानों और (मानुषेषु) साधारण मनुष्यों पर भी (यत्) जो अपराध करें, हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो! सञ्चालक राजन्! (त्वं) तू (नः) हमें (अत्र) इस अवसर में (अनागसः) अपराध रहित (सुवतात्) कर।

न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥

भा०—(यथा) जैसे (दैव्यस्य) प्रकाशमान 'देव' अर्थात् किरणों के स्वामी (सवितुः) सूर्य का (तत्) वह महान् सामर्थ्य (न प्रमिये) कभी नष्ट नहीं होता; (यत्) जो (विश्वं भुवनं धारयिष्यति) समस्त संसार को बराबर धारण करता और भविष्य में भी धारण करता रहेगा, जो (पृथिव्याः वरिमन्) भूमि के विशाल पृष्ठ पर और (दिवः वर्ष्मन्) आकाश के भी वर्षणकारी मेघ में (सु-अंगुरिः) उत्तम उंगलियों वाले, उत्तम साधनों वाले, पुरुष के समान किरणों से सम्पन्न सूर्य (सुवति) जल और अन्न को उत्पन्न करता है (अस्य तत् सत्यम्) उसका यह सब सामर्थ्य सत्य है। वैसे ही (दैव्यस्य सवितुः) सूर्यादि के स्वामी, परमेश्वर का (तत् न प्रमिये) वह सामर्थ्य भी कभी नष्ट नहीं होता (यत् विश्वं भुवनं) जो समस्त जगत् को धारण करता और आगे भी करेगा। (यत्) और जो (पृथिव्या वरिमन् दिवः वर्ष्मन्) भूमि और आकाश के महान् पृष्ठ पर (सुअंगुरिः) उत्तम हस्तवान्, कुशल शिल्पी के समान (आ सुवति) जीवगण सूर्यादि लोक को उत्पन्न करता है (तत् अस्य सत्यम्) वह सब परमेश्वर का बनाया जगत् और उत्पादक सामर्थ्य 'सत्य' है, मिथ्या नहीं।

इन्द्र॑ज्येष्ठान्बृ॒हद्भ्यः॒ पर्व॑तेभ्यः॒ क्षयाँ॑ एभ्यः सुवसि प॒स्त्याव॑तः ।
यथा॑यथा प॒तय॑न्तो वियेमि॒र ए॒वैव त॑स्थुः सवितः स॒वाय॑ ते ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! (बृहद्भ्यः) बड़े-बड़े (पर्वतेभ्यः) मेघों को जैसे सूर्य (पस्त्यावतः इन्द्रज्येष्ठान् क्षयान् सुवति) जल धाराओं से युक्त विद्युत्, वायु आदि बड़े-बड़े शक्तिमान् तत्वों वाले अन्तरिक्षादि प्रदेश प्रदान करता है वैसे ही तू भी (पर्वतेभ्यः) प्रजा के पालनकारी सामर्थ्यों से युक्त (बृहद्भ्यः) बड़े, बड़े (एभ्यः) इन पुरुषों को (इन्द्रज्येष्ठान्) राजा, सेनापति आदि श्रेष्ठ पदों से युक्त, (पस्त्यावतः) निवास गृहों से युक्त (क्षयान्) उत्तम स्थान, पद (सुवति) प्रदान करता है। हे (सवितः) तेजस्विन् ! राजन् ! वे

(पतयन्तः) प्रजा के पालक, सेनापाल, आदि नाना अध्यक्ष (यथायथा) जैसे-जैसे भी (वि ये मिरे) प्रजा का विशेष नियन्त्रण करते हैं (एवएव) उसी-उसी प्रकार (ते) वे सब (ते) तेरे ही (सवाय) शासन और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (तस्थुः) विराजें।

ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥५॥

भा०—हे (सवितः) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (ये) जो (सवासः) उत्तम ऐश्वर्यवान्, अभिषिक्त पदाधिकारी लोग (दिवे दिवे) दिनों दिन (त्रिः) तीन बार वा तीनों प्रकार से (ते) तेरे (सौभगम्) ऐश्वर्य को (आसुवन्ति) बढ़ाते हैं उन (आदित्यैः) बारह मासों से सूर्य के तुल्य (इन्द्रः) शत्रुहन्ता और (अद्भिः सिन्धुः न) जलों से पूर्ण महानद वा आकाश के तुल्य विशाल और सौख्यवृष्टि आदि का दाता (अदितिः) अखण्डित शासक और (द्यावापृथिवी) सूर्य, भूमि के तुल्य माता पिता होकर (नः) हमें तू (शर्म यंसत्) सुख शरण प्रदान करे।

[५५] वामदेव ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ५ भुरिक् पंक्तिः। ६, ७ स्वराट् पंक्तिः। ८, ९ विराड् गायत्री। १० गायत्री॥

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः॥ १॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष! हे सबके स्नेहिन्! मृत्यु से बचाने हारे! हे (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले जनो! (वः) आप लोगों में से (कः) कौन आप दोनों का (त्राता) रक्षक है? और (कः) कौन (वरूता) आप दोनों को अपनाने और विभाग कर-कर रखने वाला है? हे (द्यावाभूमी) आकाश वा सूर्य और भूमि के समान आकाश जल, अन्न और आश्रय दाता माता और पिता! हे (अदिते) अनुल्लंघनीय आज्ञा वाले माता पिता! आप दोनों (नः)

हमें (सहीयसः मर्तात्) बहुत बलवान् मनुष्य से (त्रासीथाम्) बचावें। हे (देवः) विद्वान् और दानशील पुरुषो ! (अध्वरे) यज्ञादि कार्य में (कः) कौन आप लोगों को (वरिवः धाति) धनैश्वर्य देता है।

प्र ये धामा॑नि पू॒र्व्याण्यर्चा॒न्वि यदु॒च्छान्वि॑यो॒तारो॒ अमू॑राः ।
वि॒धा॒तारो॒ वि ते द॑धु॒रज॑स्रा ऋ॒तधी॑तयो रुरुचन्त द॒स्माः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो (पूर्व्याणि) पूर्व पुरुषों से प्राप्त (धामानि) स्थानों, पदों को (प्र अर्चान्) आदर पूर्वक देखते हैं और (यत्) जो उनको (वि उच्छान्) प्रकट करते हैं (ते) वे (वि-योतारः) विविध प्रकारों के संकटों से छुड़ाने वाले (अमूराः) मोहरहित, (वि-धातारः) कर्मों को करने वाले (अजस्राः) अहिंसक (ऋत-धीतयः) सत्य व्रतों के धारक होकर (विदधुः) विविध कर्म करते और वे (दस्माः) दुःखों के नाशक होकर (रुरुचन्त) सबको भले लगते हैं और सबकी दृष्टियों में शोभा पाते हैं।

प्र प॒स्त्या॑३॒॑मदि॑तिं॒ सिन्धु॑म॒र्कैः स्व॒स्तिमी॑ळे स॒ख्याय॑ दे॒वीम् ।
उ॒भे यथा॑ नो॒ अह॑नी नि॒पात॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ करता॒मद॑ब्धे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (पस्त्याम्) साक्षात् गृहस्वरूप, (अदितिम्) माता स्वरूप, (सिन्धुम्) प्रेम से बांधने वाली, (सख्याय) मित्रभाव के लिये (स्वस्ति) कल्याण करने वाली, स्त्री का (अर्कैः) सत्कार युक्त वचनों से (ईळे) सम्मान करूं। जिससे (नः) हमारे बीच (उषासा-नक्ता) दिन रात्रि के समान कामना युक्त स्त्री और अव्यक्त भाव वाला पुरुष (उभे) दोनों ही (अहनी) जीवन में दुखी न रहते हुए (अदब्धे) चिरजीवी होकर (निपातः) परस्पर रक्षा करें।

व्य॑र्य॒मा वरु॑णश्चेति॒ पन्था॑मि॒षस्पति॑ः सुवि॒तं गा॒तुम॒ग्निः ।
इन्द्रा॑विष्णू नृ॒वदु॒ षु स्तवा॑ना॒ शर्म॑ नो यन्त॒मम॑वद्वरू॑थम् ॥ ४ ॥

भा०—(अर्यमा) दुष्टों को संयम में रखने वाला न्यायशील (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (पन्थाम्) मार्ग को (विचेति) विशेष रूप से जनाता है और (इषः

पतिः अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक अन्न का स्वामी और कामनाओं का पालक होकर (सुवितम् गातुम्) सुख से चलने योग्य मार्ग और सुख सौभाग्य सम्पन्न भूमि को (विचेति) प्राप्त करे। (इन्द्रविष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य वाले विद्युत् और वायु के तुल्य दीप्ति और बल से युक्त स्त्री पुरुष (नृवत्) नायकों के तुल्य (नः) हमारे बीच (सु स्तुवाना) उत्तम स्तुति के पात्र होते हुए (अमवत्) सुख और सहायकों से युक्त (वरूथम्) गृह और (शर्म) शरण (यन्तम्) प्राप्त करें।

आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—मैं वधू (मरुताम्) वायुओं के तुल्य बलवान् विद्वान् पुरुषों के बीच (पर्वतस्य) मेघ के समान पालक (देवस्य) कामना करने वाले, (भगस्य) ऐश्वर्यवान् (त्रातुः) दुःखों से पालन करने वाले पुरुष के (अवांसि) रक्षाओं, प्रिय पदार्थों और अन्नों को (अव्रि) वरण करती हूं। वह (मित्रः) मित्र के तुल्य स्नेही (पतिः) पालक (नः) हमें (जन्यात्) आगे होने वाले या जन समूह में होने वाले (अंहसः) पाप और दुःख से (पात्) बचावे (उत) और वह (मित्रियात्) मित्र जनों से होने वाले दुराचारादि से भी (उरुष्येत्) रक्षा करे।

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो ३ अप व्रन् ॥ ६ ॥

भा०—(न) जैसे (संचरणे) चलने में (सनिष्यवः) जल को विभक्त कर लेने वाली (नद्यः) नदियें (धर्म-स्वरसः) बहते जलों से पूर्ण होकर (समुद्रम् अप व्रन्) समुद्र को वरण करती हैं। वैसे ही (सनिष्यवः) ऐश्वर्य को चाहने वाली, (नद्यः) नदियों के तुल्य सुख से युक्त स्त्रियें भी (संचरणे) समान पद पर आचरण करने के लिये (समुद्रं) समुद्र के समान उदार पुरुष के प्रति (धर्म-स्वरसः) उज्वल स्वर से प्रसन्नता युक्त होकर (अप-व्रन्) उसके प्रति प्रेम प्रकट

करें और लोग (अप्येभिः इष्टैः) आप्त जनों के योग्य इष्ट वचनों और सत्कारों से और (बुध्न्येन अहिना) आकाश में स्थित मेघ या सूर्य के तुल्य शान्तिप्रद वर के मिष से (रोदसी नु) आकाश और पृथिवी के तुल्य वर वधू दोनों की ही (स्तुवीत) स्तुति करें।

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥ ७ ॥

भा०—(देवी) गुण युक्त स्त्री (अदितिः) अखण्ड चरित्र रखती हुई (नः) हमें (देवैः) गुणों से, किरणों से सूर्य के तुल्य (नि पातु) पालन करे। (देवः) व्यवहारज्ञ पुरुष (त्राता) पालक होकर (अप्र-युच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (त्रायताम्) वन्धुजन की पालना करे। हमें (मित्रस्य) स्नेही (वरुणस्य) सर्व-श्रेष्ठ और (अग्नेः) अग्नि के समान ज्ञान से युक्त पुरुष के (सानु धासिम्) उपभोग योग्य और दान देने योग्य धारक पोषक अन्न आदि वृत्ति को (प्रमियं नहि अर्हामसि) कभी नष्ट न करना चाहिये।

अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य।
तान्यस्मभ्यं रासते ॥ ८ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् नायक पुरुष (वसव्यस्य) गृहों में बसे लोगों के हितकारी ऐश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (महः सौभगस्य) उत्तम सौभाग्य का (ईशे) स्वामी हो। वह (तानि) उन धनों और सौभाग्यों का (अस्मभ्यं) हमें (रासते) प्रदान करे।

उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु।
अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥ ९ ॥

भा०—हे (उषः) उषावत् कान्ति युक्त विदुषि ! हे (मघोनि) समृद्धि से सम्पन्न ! हे (सूनृते) उत्तम वाणी बोलने और अन्न उपयोग करने हारी ! हे

(वाजिनीवति) क्रिया तथा ज्ञानयुक्त विद्या वाली तू (अस्मभ्यम्) हमें (पुरु) बहुत से (वार्या) वरण योग्य ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त करा ।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥ १० ॥ ७ ॥

भा०—(सविता) सूर्यवत् तेजस्वी (भगः) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) श्रेष्ठ, सब दुःखों व कष्टों का वारक, (मित्रः) सबका स्नेही, (अर्यमा) शत्रुओं को नियम में रखने वाला, (इन्द्रः) वायु के समान बलवान्, पुरुष पति रूप में (तत्) उस नाना प्रकार के (राधसा) कार्य साधक धन सहित (सु गमत्) सुख को प्राप्त हो । इति सप्तमो वर्गः ॥

[५६] वामदेव ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्ति ॥ ५ निचृद् गायत्री । ६ विराड् गायत्री । ७ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥ १ ॥

भा०—(इह) इस संसार में जैसे (द्यावापृथिवी महीः शुचयद्भिः अर्कैः रुचा ज्येष्ठे भवताम्) सूर्य और पृथिवी दोनों बड़ी होकर पवित्रकारी तेजों से सर्वोत्तम होते हैं। वैसे ही सूर्य-पृथिवीवत् पुरुष और स्त्री (मही) गुणों में आदरणीय होकर (शुचयद्भिः-अर्कैः) पवित्र करने वाले वेदमन्त्रों और अन्नों से और (रुचा) कान्ति और उत्तम रुचि से (ज्येष्ठे) सबसे उत्तम (भवताम्) होकर रहें और जैसे (उक्षा) जल सेचन करने और सबको धारण करने वाला मेघ (वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् पथानेभिः एवैः रुवत्) बड़ी-बड़ी सूर्य पृथिवी उन दोनों को व्यापता हुआ व्यापक तेजों और वायुओं द्वारा ध्वनित करता है वैसे ही (उक्षा) ज्ञान धाराओं का सब पर समान भाव से सेचन करने वाला पुरुष (यत्) जो (सीम्) सब प्रकार से (वरिष्ठे बृहती) सबसे अधिक वरणीय,

बड़े-बड़े दोनों स्त्री और पुरुष को (विमिन्वन्) विशेष रूप से ज्ञानवान् करता हुआ (पप्रथानेभिः) अति विस्तृत (एवैः) ज्ञानों वा अर्थज्ञापक वचनों से (रुवत्) उपदेश करे।

वी दे॒वेभि॑र्यज॒ते यज॑त्रै॒रमि॑नती तस्थतुरु॒क्षमा॑णे।
ऋ॒तावरी अ॒द्रुहा॑ दे॒वपु॑त्रे य॒ज्ञस्य॑ ने॒त्री शु॒चय॑द्भिर॒र्कैः॥ २॥

भा०—सूर्य और पृथिवी के समान वर और वधू, दोनों (देवी) गुणों के प्रकाशक (यजत्रैः देवेभिः) दानशील, पूज्य विद्वानों के साथ सदा (यजते) सत्संग करने वाले (अमिनती) सन्तानों और सद्व्रतों को पीड़ित न करते हुए (उक्षमाणे) परस्पर निषेक आदि व्यवहार करते, एक दूसरे को बढ़ाते हुए (तस्थतुः) स्थिर होकर रहें। वे दोनों (ऋत-वरी) सत्य, ज्ञान और धन के मालिक होकर, (अद्रुहा) एक दूसरे का प्रोत्साहन करते हुए, (देव-पुत्रे) विद्वान् माता पिता और आचार्य के पुत्र वा शिष्य होकर (शुचयद्भिः) पवित्र कारक (अर्कैः) तेजों और अन्नों से (यज्ञस्य नेत्री तस्थतुः) आपसी संग से बने गृहस्थ कर्म के नायक होकर विराजें।

स इत्स्व॒पा भुव॑नेष्वास॒ य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी ज॒जान॑।
उ॒र्वी ग॑भी॒रे रज॑सी सु॒मेके॑ अवं॒शे धीरः॒ शच्या॒ समै॑रत्॥ ३॥

भा०—(सः इत् सु-अपाः) वह परमेश्वर ही शुभ कर्म करने वाला, होकर (भुवनेषु) समस्त लोकों में (आस) व्यापक है (यः इमे) जो इन दोनों (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी को (जजान) उत्पन्न करता है और (सः इत्) वह ही (धीरः) सबकी बुद्धियों में रमण करने वाला, समस्त संसार को धारण करने वाला है, जो (उर्वी) इन दोनों विशाल, (गभीरे) गंभीर (सुमेके) सुरूप, सुसम्बद्ध, (अवंशे) वंशादि स्थूल आधार के विना ही रहने वाले (रजसी) दोनों लोकों को (शच्या) बड़ी भारी शक्ति से (सम् ऐरत्) चला रहा है।

नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ४ ॥

भा०—(नु) निश्चय से स्त्री और पुरुष दोनों (रोदसी) सूर्य पृथिवी के तुल्य एक दूसरे को रोकने वाले और एक दूसरे के प्रेमवश, सुखों, दुःखों, हर्षों और विषादों में एक दूसरे के लिये रोने वा रुलाने वाले हों। वे दोनों (सजोषाः) प्रीति युक्त होकर (बृहद्भिः) बड़े-बड़े, (पत्नीवद्भिः) पालक स्त्री पत्नी, वा मालिकन से युक्त (वरूथैः) गृहों से (इषयन्ती) बहुत अन्नादि संग्रह करते हुए (उरूची) बहुत ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हुए (यजते) परस्पर संगत रह कर (विश्वे) एक दूसरे के हृदय में प्रविष्ट होकर (नि पातं) प्रजाओं का पालन करें। जिससे हम लोग (धिया) बुद्धि और पोषण आदि उत्तम कर्म से (रथ्यः) उत्तम रथादि से युक्त और (सदासाः) उत्तम सेवकों से युक्त (स्याम) हों।

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों सूर्य और पृथिवी के समान ही (द्यवी) ज्ञान वा हर्ष प्रकाश से एक दूसरे को स्तुति गुणों से प्रकाशित करने वाले और (शुची) एक दूसरे के प्रति स्वच्छ ईमानदार होकर रहो। (वां) आप दोनों को (अभि) लक्ष्य करके हम लोग (उप-स्तुतिं प्र भरामहे) कथोपकथन से उपदेश प्रस्तुत करते हैं और (प्र-शस्तये) आप लोगों की कीर्त्ति के लिये हम (उप स्तुतिं प्र-भरामहे) ये सब उत्तम वचन कहते हैं। आप दोनों उस पर आचरण करो।

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥

भा०—जैसे सूर्य और पृथिवी दोनों एक दूसरे को अपने (तन्वा पुनाने) विस्तृत तेज और जल से पवित्र करते (स्वेन दक्षेण राजथः) अपने-अपने दाहक

तेज प्रकाश और भीतरी अग्नि के बल से प्रकाशित होते हैं और (सनात्) सृष्टि के आरम्भ से अनन्त काल तक (ऋतम् ऊह्याथे) इस जगत् को धारण करते हैं। वैसे ही स्त्री और पुरुष दोनों (मिथ:) एक दूसरे को (तन्वा) शरीर से सम्पर्क द्वारा (पुनाना) पवित्र करते हुए (स्वेन दक्षेण) अपने बुद्धि और धन, बल से (राजथ:) शोभा पावें और (सनात्) सनातन से प्राप्त (ऋतम्) वेद, पैतृक धन और धार्मिक सत्य व्यवहार को (ऊह्याथे) धारण करें।

मही मित्रस्यं साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनों (मही) एक दूसरे की दृष्टि में आदर योग्य होकर (तरन्ती) एक दूसरे के सहाय से सब कष्टों को पार करते हुए (ऋतम्) ज्ञान और तेज को (पिप्रती) पूर्ण रूप से धारण करते हुए (मित्रस्य) परस्पर स्नेह वाले व्यक्ति को (साधथ:) प्राप्त हों और (यज्ञं परि) यज्ञ में परिक्रमा करके (नि सेदथु:) विराजें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[५७] वामदेव ऋषिः ॥ १-३ क्षेत्रपतिः । ४ शुनः । ५, ८ शुनासीरौ । ६, ७ सीता देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ७ अनुष्टुप् । २, ३, ८ त्रिष्टुप् । ५ पुर-उष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥

भा०—(क्षेत्रस्य) बीज वपन करने योग्य क्षेत्र के तुल्य गृहपत्नी के (पतिना) पालक, (हितेन) हितकारी एवं कर्त्तव्य में बद्ध के सदृश पुरुष से ही (वयम्) हम (गाम्) गौ, भूमि, इन्द्रियों और गवादि पशु गण, (अश्वं) अश्वादि साधन और (पोषयित्नु) पोषक धन, अन्नादि सब (जयामसि) प्राप्त करते हैं (सः) वह (न:) हमें (ईदृशे) ऐसे पद पर विराज कर (आ मृडाति) सब प्रकार से सुखी करे।

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥

भा०—जैसे क्षेत्र का स्वामी कृषक व जमींदार, अन्न समृद्धि को प्राप्त करता और औरों को देता है वैसे ही हे (क्षेत्रस्य पते) स्त्री, गृह आदि निवास योग्य पदार्थों के पालक पुरुष ! (पयः धेनुः इव) गौ को दूध के तुल्य (अस्मासु) हमें (मधुमन्तम् ऊर्मिम्) मधुर वचन आदि से युक्त उत्तम आनन्द को (धुक्ष्व) प्रदान कर। वह (घृतम्-इव सु-पूतम्) घी के तुल्य उत्तम रीति से छने हुए पवित्र (मधु-श्चुतम्) मधुर सुखप्रद पदार्थ को प्रदान कर और (नः) हमें (ऋतस्य पतयः) धनैश्वर्य, सत्य वचन और अन्न के पालक जन (मृडयन्तु) सुखी करें।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥

भा०—(नः) हमारे लिये (ओषधीः) ओषधि गण (मधुमतीः सन्तु) मधुर गुण वाली हों। (द्यावः) सब भूमियें (मधुमतीः सन्तु) अन्नों से युक्त हों। (आपः मधुमतीः सन्तु) जल धाराएं, नदियें सब मधुर जल वाली हों। (नः अन्तरिक्षं मधुमत् अस्तु) हमारे लिये अन्तरिक्ष मधुर जल से युक्त हो। (नः क्षेत्रस्य पतिः) हमारे खेत का पालक और हम में से स्त्री और गृह के पालक पुरुष (मधुमान् अस्तु) अन्नों से युक्त हों। हम (अरिष्यन्तः) किसी की हिंसा न करते हुए (एतं अनु चरेम) गृहपति के अनुकूल, उसकी आज्ञा में, सुविधानुसार रहें। (क्षेत्रस्य पतिः—क्षेत्रं क्षियतेर्निवासकर्मणः तस्य पाता पालयिता वा तस्यैषा भवति। क्षेत्रस्य पतिनेत्यादि० निरु० १०।२।१॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥

भा०—(वाहाः) हल वाले बैल, अश्व आदि पशु (शुनं) सुख से हल चलावें, (नरः शुनं कृषन्तु) मनुष्य भी सुख से हल वाहें। (लाङ्गलं शुनं कृषतु) हल भी सुख से क्षेत्र को खोदे। (वरत्राः) रस्सियां (शुनं) सुख से (वध्यन्ताम्) पशुओं को बांधी जावें। हे पुरुष! तू (अष्ट्राम्) चाबुक को (शुनं) सुख से (उद् इङ्गय) चला।

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (शुनासीरौ) 'शुन' सुखप्रद अन्नादि पदार्थ और 'सीर' अर्थात् हल के स्वामी क्षेत्रपति और भृत्य, सेवकादि जनों! आप दोनों (यत्) जो (दिवि) भूमि पर (पयः) पोषणकारी अन्न को आकाश में जल को सूर्य और वायु के तुल्य (चक्रथुः) उत्पन्न करते हो वे दोनों (इमां) इस (वाचम्) वाणी को (जुषेथाम्) व्यवहार में लाओ और (तेन) उससे (माम्) मुझ प्रजाजन को भी (उप सिञ्चतम्) जल से वृक्षादि के समान अन्नादि से बढ़ाओ।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥ ६ ॥

भा०—हे (सीते) हल के अग्रभाग, फाली! हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यवति! तू (अर्वाची) भूतल के नीचे जाने हारी (भव) हो। (त्वा वन्दामहे) तेरे ऐसे गुणों का हम वर्णन करें (यथा) जिससे (नः सुभगा असति) हमें सौभाग्य देने वाली हो और (यथा नः सुफला असति) जैसे तू हमें उत्तम अन्न समृद्धि रूप फल देने वाली हो। हल की फाली से उत्तम रूप से खेत जोतने पर ही फसल की उत्तमता निर्भर है। इसलिये हल की फाली के नाना गुणों का अनुशीलन करना चाहिये।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष भूमि को हल से विदारण करने वाला कृषक जन (सीतां निगृह्णातु) हल की फाली को अच्छी प्रकार दवाकर रखे। (ताम्) हल की फाली को (पूषा) भूमि (अनु यच्छतु) अनुकूल होकर ग्रहण करे। तब (सा) वह भूमि (पयस्वती) जल और अन्न से पूर्ण होकर (उत्तराम् उत्तराम् समाम्) उत्तरोत्तर प्रतिवर्ष (दुहाम्) दूध को गौ के समान अन्नादि समृद्धि प्रदान करती हैं।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥९॥

भा०—(नः फालाः) हमारी हल की फालियां (भूमि) भूमि को (शुनं) सुखपूर्वक (वि कृषन्तु) विविध प्रकार से खोदें। (कीनाशाः) कृषक (वाहैः) बैलों और घोड़ों से (शुनम्) सुख-पूर्वक (अभि यन्तु) चलें। (पर्जन्यः) मेघ (मधुना) मधुर अन्न से और (पयोभिः) जलों से पूर्ण होकर बरसे और (शुनासीराः) सुखपूर्वक हल चलाने वाले कृषक स्त्री पुरुष (शुनम्) सुखप्रद अन्न (अस्मासु) हमारे बीच (धत्तम्) धारण करें। इति नवमो वर्गः ॥

[५८] वामदेव ऋषिः ॥ अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतं वा देवताः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्। २, ८, ९, १० त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। ४ अनुष्टुप्। ६, ७ निचृदनुष्टुप्। ११ स्वराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृदुष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १ ॥

भा०—जैसे (समुद्रात् मधुमान् ऊर्मिः उद् आरत्) समुद्र से जलमय तरंग ऊपर आता है वैसे ही (समुद्रात्) समुद्र के तुल्य अति विशाल महान् आकाश से (मधुमान् ऊर्मिः) शक्तिमय, ऊपर गति करने वाला सूर्य (उद् आरत्) उदय को प्राप्त होता है। वैसे ही जलमय समुद्र से जल से भरा तरंगवत् मेघ भी ऊपर उठता है। प्रजागण के समुद्र से (मधुमान्) शत्रुकंपन

और शत्रु-संतापक बल से युक्त (ऊर्मिः) सर्वोपरि शत्रुओं को उन्मूलन करने वाला वीर पुरुष उदय को प्राप्त होता है। जैसे समुद्र से उठा जल (अंशुना) सूर्य के किरणसमूह से (अमृतत्वं) अमृत रूप अन्नभाव को (सम-आनट्) प्राप्त कर लेता है वैसे ही मेघ भी बरसकर अमृत अन्न वा जल में परिणत होता है। (यत्) जो (घृतस्य) जल, घृत वा तेज का (गुह्यं नाम अस्ति) गुप्त, अप्रकट स्वरूप है, अग्नि में पड़ा घी जैसे (देवानां जिह्वा) प्रकाशयुक्त अग्नि आदि की ज्वाला बन जाता है, आकाश का जल जैसे विद्युत् की ज्वाला रूप से प्रकट होता है, वैसे ही (घृतस्य) तेज का (गुह्यं नाम) गुप्त, व्यापक रूप (यत् अस्ति) जो है वह (देवानाम्) सूर्य आदि प्रकाशवान् पदार्थों की (जिह्वा) रसादि ग्रहण करने की शक्ति रूप है। (अमृतस्य नाभिः) जैसे जल प्राण वा जीवन को बांधने वाला है वैसे ही वह तेज भी जीवन को बांधने वाला है।

व॒यं नाम॒ प्र ब्र॑वामा घृ॒तस्या॒स्मिन्य॒ज्ञे धा॑रयामा॒ नमो॑भिः ।
उप॑ ब्र॒ह्मा शृ॑णवच्छ॒स्यमा॑नं॒ चतुः॑शृ॒ङ्गोऽवमीद्गौ॒र ए॒तत् ॥ २ ॥

भा०—जिस ज्ञान को (चतुः शृङ्गः) अज्ञान के नाशक चार वेदमय ज्ञानों को धारण करता हुआ (ब्रह्मा) वेदज्ञ पुरुष (शस्यमानम्) गुरु से उपदेश किये हुए को (उप शृणवत्) गुरु के समीप बैठकर श्रवण करता है और जिसको (चतुः-शृंगः) चार सींगों वाले मृग के तुल्य, अन्धकार रूप, अज्ञान के नाशक एवं (गौरः) उत्तम वेदवाणी में रमण करने वाला विद्वान् ही (अवमीत्) धाराप्रवाह से उपदेश करे। (अस्मिन् यज्ञे) इस प्रकार के 'यज्ञ' अर्थात् ज्ञानमय वेद के दान-प्रतिदान कर्म द्वारा हम (घृतस्य) इस ज्ञान को (प्र ब्रवाम) अन्यों को उपदेश करें और स्वयं भी (नमोभिः) बड़ों के प्रति सेवा शुश्रूषा, भेंट पूजा अन्न-दक्षिणादि द्वारा (धारयाम) धारण करें।

च॒त्वारि॒ शृङ्गा॒ त्रयो॑ अस्य॒ पादा॒ द्वे शी॒र्षे स॒प्त हस्ता॑सो अस्य ।
त्रिधा॑ ब॒द्धो वृ॑ष॒भो रो॑रवीति म॒हो दे॒वो मर्त्याँ॒ आ वि॑वेश ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसके (चत्वारि शृङ्गा) चार सींग हैं, (अस्य त्रयः पादाः) इसके तीन पाद् अर्थात् चरण हैं। (द्वे शीर्षे) दो सिर हैं। (अस्य हस्तासः सप्त) इसके हाथ सात हैं। वह (त्रिधा बद्धः) तीन प्रकार से बंधा है वह (वृषभः रोरवीति) वरसते मेघ के तुल्य वा बलवान् सांड के समान ऋषभ स्वर से (रोरवीति) शब्द करता है, वह (महः देवः) महान् विद्वान् (मर्त्यान् आविवेश) मनुष्यों के बीच में प्रवेश करता है। अज्ञान नाशक चार वेद चार शृंग के समान हैं, ऋग, यजुः और साम गान से तीन प्रकार उसके तीन चरण हैं, अभ्युदय और निःश्रेयस् दो सिर हैं, मुख्य ध्येय हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण और आत्मा ये हाथ अर्थात् साधन हैं। वह वाणी, कर्म, और मन तीनों के नियमों में बंधा है। (२) यज्ञमय पुरुष के पक्ष में—निरुक्त यास्क के अनुसार चार वेद चार सींग, तीन सवन तीन चरण हैं, सात हाथ सात छन्द, दो सिर दो सिरे प्रायणीय और उदयनीय। वह मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प तीनों से बद्ध है वह सर्वसुखवर्षी यज्ञ सब मनुष्यों को प्राप्त है। (३) प्राणमय आत्मा पक्ष में—अन्तःकरण चतुष्टय ४ सींग, मन वाणी काय तीन पाद, प्राण उदान दो सिर, सात शीर्षगत अंग सात हाथ, शिर कण्ठ नाभि तीन स्थान पर बद्ध है। वह बलवान् प्राण सबमें विद्यमान है। (४) सूर्य पक्ष में क्रम से—चार दिशा, तीन चातुर्मास्य ऋतु, दो अयन, सात मास, तीन लोकों में बद्ध होकर संवत्सर रूप होकर व्याप रहा है। राजा, यज्ञ, शब्द, मस्तिष्क, आत्मा, परमात्मा आदि पक्षों में विवरण देखो (यजु० अ० १७।८१)।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः॥ ४॥

भा०—(पणिभिः) व्यवहार कुशल विद्वान् पुरुषों ने जैसे घी को (त्रिधा हितम्) तीन भेदों से प्राप्त किया जाता है दूध, दही और घी और (देवासः) घृत के इच्छुक, विद्वान् जन उस (घृतम्) घृत अर्थात् द्रवीभूत (गवि) गोदुग्ध में ही (गुह्यमानं) छुपे हुए पदार्थ को (अनु अविन्दन्) अनुकूल साधनों से

प्राप्त कर लेते हैं। जैसे (पणिभिः) विद्वानों द्वारा तीनों रूपों से धारण किये गये (देवासः) सूर्य के रश्मिगण या विद्वान् गण (गवि गुह्यमानं) सूर्य या रश्मियों में छुपे हुए (घृतं) तेज को (अनु अविन्दन्) अनुकूल साधनों से प्राप्त करते हैं वैसे ही (पणिभिः) उपदेष्टा और अभ्यासकर्त्ता शिष्य जनों द्वारा (त्रिधा हितम्) ऋग्, यजुष्, सामगान इन तीन भेदों से व्यवस्थित, (घृतम्) आहुति रूप से पड़ कर अग्नि में चमकाने वाले घृत के समान शिष्य गण के आत्मा को चमकाने वाले (देवासः) अर्थप्रकाशक गुरु जन, विद्या के इच्छुक शिष्य जन (गवि गुह्यमानं) वेद वाणी में निगूढ़ रूप से विद्यमान, ज्ञान को (अनु अविन्दन्) लक्षण प्रमाणों द्वारा परीक्षा कर ग्रहण करें और जैसे (एकं) एक 'घृत' अर्थात् जल को (इन्द्रः जजान) जलप्रद मेघ उत्पन्न करता है, (सूर्यः एकं) सूर्य एक प्रकार के वाष्प रूप जल को मेघ रूप में प्रकट करता है, वायु गण मिल कर (स्वधया) अपने पोषण बल से वा जल के द्वारा या अन्न रूप में (वेनात्) कान्तिमय विद्युत्, चन्द्र या सूर्य से ही प्राप्त करते हैं। वैसे ही एक ज्ञान को (इन्द्रः जजान) साक्षात् द्रष्टा ऋषि जन प्रकट करते हैं। (सूर्यः एकं जजान) एक प्रकार के ज्ञान को सूर्य के समान अर्थ प्रकाशक विद्वान् प्रकट करता है और (एकं) एक प्रकार ज्ञान को (वेनात्) कान्तिमय तेजस्वी जन से (स्वधया) आत्मा के धारण या उपासना द्वारा (निः ततक्षुः) प्राप्त करते हैं।

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम्॥५॥१०॥

भा०—जैसे (समुद्रात्) आकाश वा मेघ से (घृतस्य धाराः अर्षन्ति) जल की धाराएं आती हैं और वे (शत व्रजाः) सैकड़ों मार्गों से बहती हैं और (आसाम् मध्ये) इनके बीच में (हिरण्ययः वेतसः) सुवर्ण के रंग का चमकता हुआ दण्ड के समान विद्युत्-दण्ड दिखाई देता है वैसे ही (एता) ये (घृतस्य) गुरुसे शिष्य के प्रति बहने वाले ज्ञान की (धाराः) वाणियें (हृद्यात्) हृदय

के (समुद्रात्) समुद्र से (अर्षन्ति) निकलती हैं और वे (शत व्रजाः) सैकड़ों अर्थों का बोध कराती हैं। वे (रिपुणा) राग-द्वेष आदि मल से युक्त, मलिन चित्त, द्रोही व्यक्ति से (अवचक्षे) साक्षात् करने योग्य नहीं हैं। उनका अर्थ गुरुद्रोही नहीं समझ सकता और मैं (आसाम्) उनके (मध्ये) बीच में (हिरण्ययः) घृत की धाराओं के बीच अग्नि-ज्वाला के समान प्रकाशित होकर स्वयं भी सर्वहितकारी, सबको सुखी करने वाला (वेतसः) ज्ञानवान् होकर (अभि चाकशीमि) उनको साक्षात् करूं।

सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ६ ॥

भा०—ये (धेनाः) वाणियां (अन्तः) अन्तःकरण में (हृदा) हृदय और (मनसा) मन से (पूयमानाः) पवित्र होती हुईं (सरितः न) नदियों के समान (सम्यक्) भली प्रकार अर्थ का प्रकाश करती हुईं (स्रवन्ति) बहती हैं। (घृतस्य) अर्थ का प्रकाश करने वाले ज्ञान के (एते ऊर्मयः) ये तरंग, (ऊर्मयः इव) जल तरङ्गों के समान ही (क्षिपणोः ईषमाणाः) प्रेरक गुरु से प्रेरित होकर ऐसे (अर्षन्ति) वेग से निकलती हैं जैसे (क्षिपणोः) व्याध से (ईषमाणाः) भयभीत हुए (मृगाः इव) मृग वेग से भागते हैं।

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥

भा०—(सिन्धोः इव घृतस्य धाराः) जैसे नदी के जल की धाराएं (यह्वाः शूघनासः प्राध्वने पतयन्ति) बड़ी होकर वेग से जाती हुईं गमन करती हैं, वैसे ही (घृतस्य धाराः) अर्थप्रकाशक ज्ञान की वाणियां भी (शू-घनासः) वेग से निकलती हुईं, (यह्वाः) अर्थ में गम्भीर, (वात-प्रमियः) ज्ञानवान् पुरुष से अच्छी प्रकार उपदेश की हुईं (प्र-अध्वने) उत्कृष्ट मार्ग में ले जाने के लिये (पतयन्ति) प्रभु के समान आचरण करती हैं, और जैसे (अरुषः वाजी न)

रुचिर वर्ण का अश्व (काष्ठाः भिन्दन्) दिशाओं को पार करता हुआ (ऊर्मिभिः पिन्वमानः) तरंगों से परिरुष्ट होता जाता है वैसे ही (वाजी) ज्ञानैश्वर्य से सम्पन्न पुरुष (अरुषः) दीप्तिमान् एवं रोग आदि से रहित (काष्ठाः) काष्ठों को अग्नि के तुल्य वा कुठार के समान (काष्ठाः) कुत्सित चित्त वृत्तियों को (भिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (ऊर्मिभिः) उन्नत वासनाओं से (पिन्वमानः) बढ़ता हुआ (प्राध्वने) उत्तम मार्ग, मोक्ष के लिये (पतयति) प्रयाण करता है.।

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य१ः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ८ ॥

भा०—(समना-इव) पति के साथ एक चित्त, (कल्याण्यः योषाः स्मयमानासः) सुन्दर मङ्गल चिह्नों से अलंकृत, मुसकराती हुईं स्त्रियां (अग्निम् अभि प्रवन्त) अग्नि के चारों ओर गति करती, फेरे लेती हैं और (ताः) उनको (जातवेदः जुषाणः हर्यति) ज्ञानवान्, धनवान् वर कामना करता है और जैसे (घृतस्य धाराः अग्निम् अभि प्रवन्त) घी की धाराएं यज्ञ में अग्नि के प्रति पड़ती हैं (ताः समिधः नसन्त) वे समिधाओं को प्राप्त होती हैं और (ताः जातवेदः हर्यति) उनको अग्नि स्वीकार करता है। वैसे ही (घृतस्य धाराः) अर्थप्रकाशक ज्ञान की वाणियें (समना) उत्तम मनन योग्य ज्ञान से युक्त, (कल्याण्यः) विश्व कल्याण करने वाली, (स्मयमानासः) हर्ष उत्पन्न करती हुई, (अग्निम् अभि) विनयशील पुरुष को साक्षात् (प्रवन्त) प्राप्त होती हैं। वे (समिधः) प्रकाशित होने वाले शिष्यों को, वा वे स्वयं प्रकाशित होती हुई, (नसन्त) प्राप्त होती हैं। (ताः) उनको (जातवेदाः) ज्ञानवान् पुरुष, (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हर्यति) सदा कामना करता है।

कुन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥ ९ ॥

भा०—(यत्र सोमः सूयते) जहां सोम नाम ओषधि का सवन होता है अर्थात् सोमयाग होता है, (यत्र यज्ञः) वा जहां यज्ञ होता है वहां (कन्याः इव) जैसे कन्याएं (अञ्जि अञ्जानाः) अपने कान्तियुक्त रूप और आभूषणादि को प्रकट करती हुई (वहतुम् एतवा) विवाहकर्त्ता पति को प्राप्त करने के लिये (तत् अभि पवन्ते) यज्ञ में सबके समक्ष आती हैं और जैसे सोमयागादि में (घृतस्य धाराः अञ्जि अञ्जानाः) घी की धाराएं कान्ति सी चमकती हुई (वहतुम्) घृत लेने वाले अग्नि को प्राप्त होती हैं। वैसे ही (यत्र सोमः सूयते) जहां सोम्य गुण युक्त शिष्य विद्या के गर्भ से उत्पन्न होता है (यत्र यज्ञः) जहां ज्ञान का दान और प्रतिग्रह है (तत्) वहां (घृतस्य धाराः) ज्ञान की वाणियां (अञ्जि अञ्जानाः) अर्थप्रकाशक रूप प्रकट करती हुई (वहतुम् एतवा) धारण करने में समर्थ शिष्य को प्राप्त होने के लिये (तत् अभि पवन्ते) उसके प्रति जाती हैं, मैं उनको (अभि चाकशीमि) प्रकाशित करूं।

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! हे उत्तम शिष्यगण! आप लोग (सुस्तुतिम्) स्तुति वा उपदेश को (अभि अर्षत) गुरु के समक्ष बैठ कर प्राप्त करो और उसी प्रकार (गव्यम्) गो दुग्ध के तुल्य आप लोग (गव्यम्) वाणी के भीतर विद्यमान ज्ञान प्राप्त करो और (आजिम्) उत्तम लक्ष्य को प्राप्त करो। आप विद्वान् लोग (अस्मासु) हममें (भद्रा द्रविणानि) सुखप्रद ज्ञान-ऐश्वर्य (धत्त) प्राप्त कराइये। (इमं) इस (यज्ञं) परस्पर के ज्ञान दान को हमें (देवता) आप विद्वान् गण (नयत) प्राप्त कराइये। (घृतस्य धाराः) अग्नि पर घृत की धाराओं के तुल्य ज्ञान की वाणियां (मधुमत्) मधुर ज्ञान से युक्त होकर (पवन्ते) हमें पवित्र करें।

धाम॑न्ते॒ विश्वं॒ भुव॑न॒मधि॑ श्रि॒तम॒न्तः स॑मु॒द्रे हृ॒द्य१॒॑न्तरायु॑षि ।
अ॒पामनी॑के समि॒थे य आभृ॑त॒स्तम॑श्याम॒ मधु॑मन्तं त ऊ॒र्मिम् ॥ ११ ॥ ११ ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर (ते धामन्) तेरे आश्रय पर (विश्वं भुवनम् अधि श्रितम्) समस्त जगत् स्थित है और (ते) तेरा (ये) जो महान् प्रेरक बल (समुद्रे अन्तः) समुद्र के भीतर, (हृदि) हृदय में, (आयुषि अन्तः) जीवन के निमित्त प्राण में, (अपाम् अनीके) जलों के संघात में और (समिथे) जीव गण के संग्राम में (आभृतः) प्रकट होता है, हम लोग (ते) तेरी उस (ऊर्मिम्) प्रेरक (मधुमन्तं) बल आदि सम्पन्न महान् शक्ति को (अश्याम) प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ पञ्चमं मण्डलम्

बुधगविष्ठिरावात्रेयावृषी ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ७, १० त्रिष्टुप् । ५, ८ स्वराड् पंक्तिः । ९ पंक्तिः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒ प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् ।
य॒ह्वा इ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः॒ प्र भा॒नवः॑ सिस्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥ १ ॥

भा०—जैसे (आयतीम् इव धेनुम्) आती हुई गौ का आश्रय करके (जनानाम् अग्निः समिधा प्रति अबोधि) मनुष्यों का यज्ञाग्नि जगता है वैसे ही (उषासम् आयतीम्) आती हुई कान्तियुक्त उषा को देखकर (जनानां) मनुष्यों के बीच में उनकी (समिधा) समिधा से यज्ञाग्नि (प्रति अबोधि) प्रत्येक गृह में जगे और ऐसे ही (आयतीम् धेनुम् इव उषासम्) आदरपूर्वक प्रकट

होती हुई, ज्ञान-रस को देने वाली मातृतुल्य गुरुवाणी को उद्देश्य करके इसको लेने के अभिप्राय से (जनानां) प्रकट हुए शिष्य जनों की (समिधा) समिधा से (अग्निः प्रति अबोधि) आचार्य का अग्नि प्रतिदिन और प्रत्येक शिष्य द्वारा जगना चाहिये। जैसे (यह्वाः इव) बड़े-बड़े वृक्ष (वयाम् उज्जिहानाः) शाखाओं को दूर-दूर तक ऊंची ओर फैलाते हुए (नाकम् अच्छ प्रसिस्रते) आकाश की ओर ऊंचे बढ़ जाते हैं और जैसे (यह्वा भानवः) बड़े सूर्य किरण (वयाम् प्र उज्जिहानाः) कान्ति को विस्तारते हुए (नाकं प्र सिस्रते) आकाश में खूब दूर-दूर तक फैल जाते हैं वैसे ही (यह्वाः) बड़े आदमी (भानवः) कान्ति से चमकते हुए तेजस्वी, विद्वान् पुरुष और कुल भी (वयाम्) शाखा प्रशाखा सम्पत्ति आदि वा वेद की गुरूपदेश से प्राप्त शाखा प्रशाखा को भी (प्रउद्, जहानाः) अच्छी प्रकार फैलाते हुए (नाकम् अच्छ) दुःखों से रहित स्वर्ग वा मोक्ष लोक को (प्रसिस्रते) प्राप्त हों।

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्।
समिद्धस्य रुशदर्दर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अग्निः) प्रकाशस्वरूप अग्नि वा सूर्य (ऊर्ध्वः) सबसे ऊंचे पद पर विराजता है, (होता) प्रकाशदाता वा मेघादि द्वारा जलदाता होकर (देवान् यजथाय) इच्छुक प्राणियों को वा प्रकाशादि किरणों को देने के लिये (अबोधि) प्रकाशित होता है। वैसे ही (सुमनाः) उत्तम ज्ञानवान् (अग्निः) अग्नि वा सूर्यवत् तेजस्वी (होता) ज्ञान के देने और लेने हारा (देवान् यजथाय) विद्या के अभिलाषी शिष्य जनों के प्रति विद्यादि देने के लिये (अबोधि) स्वयं ज्ञानवान् हो। वह सूर्य के तुल्य ही (प्रातः) जीवन के प्रभात काल ब्रह्मचर्य आश्रम में (ऊर्ध्वः) उन्नत (अस्थात्) स्थिति प्राप्त करे। (समिद्धस्य) व्रत आदि से तेजस्वी हुए उसका (रुशत् पाजः) अति उज्वल बल वीर्य (अदर्शि) सूर्य के तेज के समान सबको दीखे। वह (महान्) गुणों में महान् होकर (देवः) विद्या का दाता और विद्या का अभिलाषी गुरु वा शिष्य होकर

(तमसः) अविद्यान्धकार से (निर् अमोचि) स्वयं और अन्यों को भी मुक्त करे।

यदीं गुणस्यं रशुनामजींगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरुग्निः ।
आदाक्षिणा युज्यते वाजुयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (शुचिः अग्निः) दीप्तिमान् यज्ञाग्नि वा सूर्य (शुचिभिः गोभिः) दीप्तियुक्त किरणों से (अङ्क्ते) प्रकट होता है और (गणस्य) समस्त पदार्थ वा प्राणियों के बीच (रशनाम्) व्याप्त शक्ति को (अजीगः) ग्रहण करता है और (आत्) उसके अनन्तर (वाजयन्ती) उत्साह उत्पन्न करने वाली, यज्ञ में (दक्षिणा) दक्षिणा और भूमि में अन्न समृद्धि (युज्यते) प्राप्त होती है और (उत्तानाम्) उत्तान पड़ी अन्नशालिनी भूमि को वह सूर्य (ऊर्ध्वः) उच्च स्थान अन्तरिक्ष में स्थिर रहकर (जुहूभिः) रस ग्रहण करने वाली किरणों और जल देने वाली मेघ-मालाओं से (अधयत्) स्वयं रस पान करता और इसको कराता है वैसे ही (अग्निः) तेजस्वी राजा व ज्ञानवान् विद्वान् गुरु और विनीत शिष्य, (शुचिभिः गोभिः) शुद्ध वेद-वाणियों और इन्द्रियों से युक्त होकर स्वयं (शुचिः) तेजस्वी पवित्र होकर (अङ्क्ते) तेजस्वी होता और विद्या से स्नान करता है, (यत् ईम्) और जब वह इस (गणस्य) शिष्य गण वा जनसमूह, सैन्य समूह को नायकवत् (रशनाम्) बागडोर को (अजीगः) वश में करता है (आत्) तभी (वाजयन्ती) युद्ध-सामर्थ्य और ज्ञान को समृद्ध करती हुई (दक्षिणा) बलवती क्रियाशक्ति, (युज्यते) प्राप्त होती है। इस दशा में वह (ऊर्ध्वः) उत्कृष्ट पद पर स्थित, सावधान होकर (उत्तानाम्) उत्सुक भूमि, राष्ट्र की प्रजा, या ऊपर हाथ जोड़े शिष्य मण्डली को (जुहूभिः) वाणियों द्वारा (अधयत्) शासन करे, ज्ञानोपदेश करे।

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥ ४ ॥

भा०—(उषसा विरूपे) भिन्न-भिन्न रूप के दिन और रात्रि जैसे (ईं सुवाते) इस अग्नि को उत्पन्न करते हैं और (अह्नाम् अग्ने) दिनों के पूर्व भाग में (श्वेतः) श्वेत सूर्य (जायते) उत्पन्न होता है, वैसे ही (यत्) जब (उषसा) एक दूसरे को भलीभांति चाहने वाले (विरूपे) भिन्न-भिन्न रूप के या विशेष कान्तियुक्त, सुरूप माता पिता (ईं सुवाते) इस पुत्र को उत्पन्न करते हैं तब (अह्नाम् अग्रे) जीवन के दिनों के पूर्व भाग में (वाजी जायते) बलवान् पुत्र उत्पन्न होता है और वैसे ही जब (उषसा विरूपे) विविध रूपों से युक्त पाप अज्ञान के दाहक, आचार्य और सावित्री (ईं सुवाते) इस शिष्य को उत्पन्न, करते हैं, तब भी (अह्नां अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में सूर्य के तुल्य, जीवन के प्रथम भाग में (श्वेतः वाजी जायते) शुद्ध, आचारवान्, ज्ञानयुक्त, बलवान् शिष्य उत्पन्न होता है। वैसे ही विद्वान् और अविद्वानों के बीच (श्वेतः वाजी) सूर्यवत् तेजस्वी बलवान् राजा उत्पन्न होता है। (देवयतां चक्षूंषि इव) प्रकाश की किरणों की कामना करने वाले मनुष्यों की आंखें जैसे (सूर्ये संचरन्ति) सूर्य के आधार पर आगे बढ़ती हैं वैसे ही (देवयतां) ज्ञान प्रकाश की कामना करने वाले पुरुषों के (मनांसि) मन भी (अग्निम्) विद्वान्, तेजस्वी पुरुष और परमेश्वर को (अच्छ संचरन्ति) भली प्रकार प्राप्त होते हैं।

जनि॑ष्ट॒ हि जेन्यो॒ अग्रे॒ अह्नां॑ हि॒तो हि॒तेष्व॑रु॒षो वने॑षु।
दमे॑दमे स॒प्त रत्ना॒ दधा॑नो॒ऽग्निर्होता॒ नि ष॑सादा॒ यजी॑यान्॥ ५॥

भा०—(अह्नां अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में जैसे (अरुषः) उज्ज्वल वर्ण से युक्त (अग्निः) सूर्य और अग्नि (वनेषु हितः) किरणों और काष्ठों में स्थित होकर (जेन्यः हि) सर्व विजयी और प्रादुर्भाव होने के सामर्थ्य से युक्त होकर (जनिष्ट) प्रकट होता है और वह (सप्तरत्ना) सातों प्रकार के उत्तम प्रकाशयुक्त किरणों, सात प्रकार की ज्वालाओं को (हितेषु) हितैषियों में (दधानः) धारण कराता है वैसे ही (जेन्यः) विजयशील, (अरुषः) रोषरहित, ब्रह्मचारी (अह्नां अग्रे) जीवन के पूर्व भाग में (वनेषु) वनस्थों के बीच में (हितः) परिपालित

होकर (जनिष्ट) विद्या में जन्म ग्रहण करता है (हितेषु) हितकारी और राज्य के (वनेषु हितः) विभाग योग्य, प्राप्तव्यपदों पर स्थापित होकर, (अह्नां अग्रे) प्रजाओं और पुरुषों के मुख्य पद पर स्थित होकर प्रादुर्भूत होता है। वह (अग्निः) सर्वाग्रणी ज्ञानी (दमे दमे) घर-घर में (यजायान्) अति दानशील और (होता) सबसे विज्ञान का ग्रहीता होकर (सप्त रत्ना दधानः) सातों प्रकार के रमणीय रत्न, अन्न आदि, वा शिरोगत चक्षु, नाक, कान, मुख आदि प्राणगण और सातों रत्न, ऐश्वर्यादि को (दधानः) धारण करता हुआ (नि ससाद) विराजे।

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥१२॥

भा०—(यजीयान्) ऐश्वर्य आदि का अच्छी प्रकार देने एवं सत्संग करने हारा (अग्निः) विद्वान् और तेजस्वी पुरुष और विनयशील शिष्य (मातुः उपस्थे) माता की गोद में बालक के समान पृथिवी के ऊपर आचार्य के समीप (सुरभौ लोके उ) और उत्तम कर्म वाले लोक समूह में (नि असीदत्) विराजे और वह (युवा) बलवान् (कविः) विद्वान् (पुरुनिष्ठः) इन्द्रियों के बीच निष्ठावान्, जितेन्द्रिय और पालनीय प्रजाजनों के बीच स्थिर होकर (ऋतावा) सत्य अन्न और न्यायशासन से युक्त होकर (कृष्टीनां धर्त्ता) विषयों में खेंचने वाले इन्द्रियगण और कृषक प्रजाजनों का धारक होकर (उत मध्येइद्धः) उनके बीच में प्रदीप्त अग्नि वा सूर्य के समान तेजस्वी होकर (नि असीदत्) विराजे। इति द्वादशो वर्गः ॥

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥ ७ ॥

भा०—जैसे लोग (अध्वरेषु साधुम्) यज्ञों में, कार्य साधक अग्नि को (नमोभिः ईडते) नमस्कार वचनों से स्तुति करते हैं और (घृतेन मृजन्ति)

अन्नादि चरुसम्पन्न अग्नि को घी से चमका देते हैं वैसे ही (अध्वरेषु) हिंसा से रहित, प्राणियों के पालनादि उत्तम कर्मों में (साधु) क्रियाकुशल (त्वं) इस (विप्रम्) विद्वान् (अग्निं) सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी (होतारम्) सबको वश करने और ऐश्वर्य अधिकार पद आदि के दाता पुरुष को लोग (नमोभिः) नमस्कार वचनों से (ईडते) आदर करें, जैसे अग्नि वा सूर्य (ऋतेन रोदसी आ ततान) जल वा तेज से आकाश और पृथिवी को पूर्ण करता है वैसे ही (यः) जो (रोदसी) माता पिता और राजा प्रजा दोनों को (ऋतेन) सत्य ज्ञान, अन्न वा प्रजा, न्याय-शासन द्वारा (आ ततान) स्थिर बनाये रखता है उस (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानी, ऐश्वर्यवान् पुरुष को लोग भी (घृतेन) घृत आदि पोषक, पदार्थ, ज्ञान आदि प्रकाश से (नित्यं) सदा (मृजन्ति) परिष्कृत करें।

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥ ८ ॥

भा०—(मार्जाल्यः) सबको शोधने हारा, सूर्य वा अग्नि जैसे (दमूनाः) सबको प्रकाश देता हुआ (स्वे मृज्यते) अपने प्रकाश के आधार पर शुद्ध रहता, उसे शोधने के लिये अन्य शोधक की आवश्यकता नहीं है, वैसे ही (मार्जाल्यः) अन्यों को ज्ञान-दीक्षा आदि से पवित्र करने वाला (कवि-प्रशस्तः) क्रान्तदर्शी पुरुषों से प्रशंसित (दमूनाः) जितेन्द्रियचित्त होकर (स्वे मृज्यते) अपने ही आप पवित्र होता है, वह (नः अतिथिः) हम सबका पूज्य और (शिवः) मङ्गलकारी हो। वह तू (सहस्रशृङ्गः) सहस्रों सींगों के तुल्य किरणों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी (वृषभः) मेघ के तुल्य सुखों का वर्षक और (तदोजः) अपने पराक्रम से सम्पन्न होकर हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! (सहसा) सर्वोपरि बल से (अस्मान् प्र असि) सबसे उत्कृष्ट हो।

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष ! तू (अन्यान्) अन्यों से (सद्यः) शीघ्र ही (प्र एषि) बढ़ जाता और (अति एषि) उनको अतिक्रमण कर जाता है और (अस्मै) जिसके उपकार के लिये तू (चारुतमः) सबसे उत्तम, सुन्दर वा देश-देशान्तर में चलने हारा होकर प्राप्त (बभूथ) होता है वह भी (ईडेन्यः) वाणी द्वारा सत्कार योग्य, (वपुष्यः) उत्तम शोभा युक्त, (विभावा) विविध कान्ति से युक्त और (मानुषीणाम् विशाम्) मानव प्रजाओं का (प्रियः अतिथिः) प्रिय, अतिथि तुल्य हो जाता है।

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०॥

भा०—हे (यविष्ठ) बलवान् । युवा पुरुष ! (तुभ्यम्) तेरे लिए (क्षितयः) राष्ट्र में बसे प्रजाजन, (अन्तितः उत दूरात्) समीप और दूर से भी (बलिम्) भोग्य, अन्न ऐश्वर्यादि समृद्धि (भरन्ति) लाते और देते हैं। तू (भन्दिष्ठस्य) अति कल्याणप्रिय जन को (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान का (चिकिद्धि) उपदेश कर। हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते) तेरा (शर्म) गृह (बृहत्) बड़ा (महि) पूज्य और (भद्रम्) कल्याणकारी हो।

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्व१न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥ ११ ॥

भा०—हे (भानुमः) सूर्य के तुल्य तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशक, पुरुष ! नायक ! तू (अद्य) आज (यजतेभिः) उत्तम रीति से सुसंगत अश्वादि से युक्त (समन्तम्) सर्वाङ्ग सुदृढ़ (रथम्) रथ पर (आ तिष्ठ) विराज। सूर्य जैसे जलादि ग्रहण करने के लिये अपनी किरणों को विशाल अन्तरिक्ष पार करके भी पृथिवी तक भेजता है तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (पथीनाम्) मार्गों के (उरु-अन्तरिक्षम्) भारी अन्तर या फासले को लांघकर (देवान्) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को (हविः अद्याय) अन्न और ज्ञानादि प्राप्त करने के लिये (आ वक्षि) दूर-दूर देशों में ले जा।

अवो॑चाम क॒वये॒ मेध्या॑य॒ वचो॑ व॒न्दारु॑ वृष॒भाय॒ वृष्णे॑ ।
गवि॑ष्ठिरो॒ नम॑सा॒ स्तोम॑म॒ग्नौ दि॒वीव॑ रु॒क्मम॑रु॒व्यञ्च॑मश्रेत् ॥१२॥१३॥

भा०—हम लोग (मेध्याय) पवित्र वा अन्नादि सत्कार और सत्संग योग्य, (कवये) मेधावी, (वृषभाय) बलवान्, मेघवत् निष्पक्ष होकर ज्ञान देने वाले (वृष्णे) बलिष्ठ पुरुष के लिये (वन्दारु वचः) वन्दनायोग्य, नमस्कार आदि वचन (अवोचाम) कहा करें। जैसे (गविष्ठिरः) रश्मियों पर स्थित पुरुष (दिवि अग्नौ इव स्तोमम् रुक्मम् उरु व्यञ्चम् अश्रेत्) आकाश में स्थित सूर्य में उत्तम विशाल विविध दिशागामी प्रकाश को प्रकट करता है वैसे ही (गविष्ठिरः) वेदवाणी के निमित्त स्थिर चित्त होने वाला शिष्य (नमसा) आदर वचनों सहित (अग्नौ) मार्गदर्शी आचार्य के अधीन (उरु) विशाल (व्यञ्चम्) यज्ञों को दर्शाने वाले (रुक्मम्) रुचिकर (स्तोमं) वेदमन्त्र समूह को (अश्रेत्) प्राप्त करे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[२] कुमार आत्रेयो वृशो वा जार उभा वा । २, ९ वृशो जार ऋषिः । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७,८ त्रिष्टुप् । ४, ५, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ ११ विराट् त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । १२ निचृदतिजगती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

कु॒मा॒रं मा॒ता यु॑व॒तिः समु॑ब्धं॒ गुहा॑ बिभर्ति॒ न द॑दाति पि॒त्रे ।
अनी॑कमस्य॒ न मि॒नज्जना॑सः पु॒रः प॑श्यन्ति॒ निहि॑तमर॒तौ ॥ १ ॥

भा०—जैसे (युवतिः माता) जवान माता (समुब्धं) सम्पूर्णांग (कुमारं) बालक को (गुहा) गृह या अपने गर्भ में (बिभर्ति) धारण करती है और स्नेह वश (पित्रे न ददाति) पालन पोषणार्थ पिता को नहीं देती वैसे ही (माता) सर्वोत्पादक पृथिवी (कुमारं) शत्रुजनों को बुरी तरह से मारने वाले (समुब्धम्) समुन्नत, सर्वाङ्गदृढ़ पुरुष को (गुहा बिभर्ति) गूढ़ स्थानों में धारण करती है और उसे (पित्रे) पालक पिता वा कृपकादि के अधीन नहीं (ददाति) देती,

वैसे ही (माता) मातृवत् पूज्य आचार्य भी (समुब्धं कुमारं) विद्या से पूर्ण कुमार को (गुहा विभर्त्ति) अपने गर्भ तुल्य सुरक्षित विद्या गर्भ में रखता है, उसे (पित्रे) उसके पालक, माता पिता के हाथ नहीं सौंपता। (अस्य) इस सुरक्षित राजा और व्रती कुमार के (अनीकम्) सैन्य बल और तेज को भी (जनासः) साधारण जन (न मिनत्) नष्ट नहीं कर सकते। प्रत्युत वे भी (अरतौ) अरमण योग्य, असह्य रूप में, संग्रामादि के अवसर में उसे (पुरः) आगे अग्रणी पद पर (निहितम्) स्थित (पश्यन्ति) देखते हैं।

कमे॒तं त्वं यु॑वते कु॒मा॒रं पेषी॑ बिभर्षि॒ महि॑षी जजान ।
पू॒र्वीर्हि गर्भः॑ श॒रदो॑ व॒वर्धाप॑श्यं जा॒तं यदसू॑त मा॒ता ॥ २ ॥

भा०—जैसे कोई (पेषी) पति के पास जाने वाली स्त्री (कुमारं विभर्त्ति) बालक को गर्भ में धारण करती है। (यत् माता असूत तत् जात पश्यन्ति) और जब गर्भस्थ बालक को माता जनती है तब बालक को सब देखते हैं और वह (पूर्वीः शरदः ववर्ध) अपने पूर्व अर्थात् प्रारम्भ की आयु के वर्षों में बढ़ता है वैसे ही हे (युवते) बल आदि का मिश्रण करने हारी माता के तुल्य पृथिवी! (त्वम्) तू (एतं) इस (कं) किसी (कुमारं) शत्रुओं को बुरी तरह मारने वाले वीर को (पेषी सती विभर्षि) अति दानशील होकर धारण करती है और फिर (महिषी सती) तू रानी के तुल्य होकर ही (जजान) उसको उत्पन्न करती है। तू (माता) माता के तुल्य होकर (यत् असूत) उसको जब उत्पन्न करती है तब मैं प्रजाजन भी (जातं) उत्पन्न बालक के तुल्य ही उसे रूप गुणों में विख्यात हुआ (अपश्य) देखूं। वह (गर्भः) राष्ट्र को वश करने में समर्थ नव राजा भी नवजात शिशु के तुल्य ही (पूर्वीः शरदः हि ववर्ध) अपने प्रथम वर्षों में खूब बढ़े।

हिर॑ण्यदन्तं॒ शुचि॑वर्णमा॒रात्क्षेत्रा॑दपश्यमायु॒धा मिमा॑नम् ।
द॒दा॒नो अ॑स्मा अ॒मृतं॑ वि॒पृक्व॒त्किं माम॑नि॒न्द्राः कृ॑णवन्ननु॒क्थाः ॥३॥

भा०—जैसे (क्षेत्रात्) मूल स्थान, काष्ठ से (शुचिवर्णं हिरण्यदन्तं) शुद्ध वर्ण वाले, स्वर्णतुल्य दन्त के समान उज्ज्वल ज्वाला युक्त अग्नि को सब देखते हैं वैसे ही मैं प्रजाजन (क्षेत्रात्) युद्ध क्षेत्र के (आरात्) दूर और समीप (आयुधा मिमानं) नाना अस्त्रों शस्त्रों को चलाते हुए (हिरण्यदन्तं) लोह के बने शस्त्र वाले, (शुचिवर्णम्) उज्ज्वल वर्ण वाले, राजा को (अपश्यम्) देखूं। वह सदा (अस्मा) इस प्रजाजन के (विपृक्ववत्) पापादि को दूर करने वाले वीर पुरुषों से युक्त (अमृतं) अविनाशी वल वा ऐश्वर्य (ददानः) देता रहे। तव (माम्) मेरे प्रति (अनुक्थाः) अप्रशस्त (अनिन्द्राः) ऐश्वर्य और उत्तम शत्रुहन्ता राजा से रहित शत्रु जन (किं कृणवन्) क्या विगाड़ सकते हैं।

क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (क्षेत्रात् चरन्तं शोभमानं वालकं) अपने उत्पत्ति क्षेत्र मातृ-शरीर से उत्पन्न पुत्र को बाहर आते लोग देखते हैं और उसको (न ताः अगृभ्रन्) माताएं तव अधिक काल तक गर्भ में धारण नहीं कर सकतीं और (सः हि सुमत् अजनिष्ट) वह स्वयं ही अनायास उत्पन्न होता है, (युवतयः पलिक्नीः इत् भवन्ति) युवती माताएं भी वाद में स्वयं वृद्धा हो जाती हैं वैसे ही (क्षेत्रात्) युद्ध क्षेत्र से (सनुतः) सुरक्षित रूप में (पुरु शोभमानं) वहुत अधिक शोभा से युक्त (यूथं न) गौ समूह के समान ही (चरन्तं) विचरते हुए वीर पुरुष को मैं प्रजाजन (अपश्यम्) देखूं। उसको (ताः) वे परराष्ट्र की सेनाएं भी (न अगृभ्रन्) पकड़ न सकें और उसकी निज प्रजाएं (पलिक्नीः इत्) वृद्धाओं के समान निर्वल रहकर भी (युवतयः भवन्ति) युवतियों के समान हृष्ट पुष्ट हो जावें और ऐसे ही पर-सेनाएं (युवतयः पलिक्नीः इत् भवन्ति) जवान, हृष्ट पुष्ट भी वृद्धा के समान निर्वल हो जावें।

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥

भा०—(येषां) जिन लोगों के बीच (गोपाः अरणः चित् न आस) जितेन्द्रिय पुरुष नहीं होता है उन मनुष्यों को सम्पत्तियों से च्युत करते हैं वैसे ही (येषां) जिनके बीच कोई भी (गोपाः) भूमिपति (अरणः चित्) और स्वामी भी (न आस) नहीं है वे (के) कौन हैं जो (मे) मुझ प्रजाजन के (मर्यकं) रक्षक पुरुष को (गोभिः) भूमियों से (वि च्यवन्त) पृथक् कर सकते हैं ? (ये ईम्) जो शत्रुगण उसको (जगृभुः) पकड़ भी लेते हैं वे (अव सृजन्तु) उससे दबकर छोड़ दें । वह (चिकित्वान्) ज्ञानी (नः) हमें (पश्वः) पशुपाल के समान रक्षक होता हुआ (उप अजाति) हमारे समीप रहकर सन्मार्ग में चलावे ।

वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच में (अरातयः) अपना धन दूसरों को उपभोग के लिये न देने वाले लोग जिन (ब्रह्माणि) बहुत धनों को (नि दधुः) गाढ़ कर, गुप्त रक्खें वे नाना धन और (अत्रेः) स्वयं भी धन का उपभोग न करने वाले कंजूस के धन (वसां जनानां) राष्ट्र वासी जनों के बीच (राजानम्) राजा और उनके (वसतिं) नगर के समान बसाने वाले आश्रयदाता पुरुष को (अवसृजन्तु) सब प्रकार के बन्धनों को छुड़ावें और (तं निन्दितारः) उस राजा के निन्दक लोग (निन्द्यासः) निन्दा योग्य (भवन्तु) हों । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥ ७ ॥

भा०—राजा का कर्त्तव्य । जैसे हे राजन् ! हे परमात्मन् ! (शुनःशेपं चित्) सुख के प्राप्त करने वाले (नि-दितम्) खूब कर्म बंधनों से बंधे जीव को भी (सहस्राद्) सहस्रों मोहजनक बन्धनों से (अमुञ्चः) मुक्त कर देते हो (हि) क्योंकि वह (अशमिष्ट हि) प्राकृतिक भोगों और पापाचारों से उपरत हो

जाता है। (एव) ऐसे ही हे (अग्ने) ज्ञान प्रकाशक प्रभो! और तेजस्वी राजन्! हे (होतः) ज्ञान और ऐश्वर्य-पदाधिकार देने वाले! हे चिकित्वः) ज्ञानवन्! तू (इह तु) यहां इस न्यायासन पर (नि-सद्य) सर्वोपरि विराज कर (अस्मत्) हमसे (पाशान्) बन्धनों को (वि मुमुग्धि) विशेष रूप से दूर कर।

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! राजन्! (हृणीयमानः) क्रोध या तिरस्कार करता हुआ तू (मत्) मुझसे (हि) कभी (अप ऐयेः) कुमार्ग में भी जा सकता है। इसलिये जो (देवानां) विद्वानों के (व्रत-पाः) कर्त्तव्यों का पालक (विद्वान् इन्द्रः) तत्वदर्शी न्यायशासक पुरुष (मे प्रोवाच) मुझे सत्कर्मों का उपदेश करता है वह (त्वा अनुचचक्ष) तुझे सदा कर्त्तव्यों का उपदेश करे। (तेन अनु शिष्टः) उससे अनुशासित होकर (अहम् आ अगाम्) मैं आगे बढ़ता हूं।

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥ ९ ॥

भा०—(अग्नि) अग्नि वा सूर्य जैसे (बृहता ज्योतिषा वि भाति) भारी प्रकाश से चमकता और (महित्वा) भारी सामर्थ्य से (विश्वानि आविः कृणुते) सब पदार्थों को प्रकट कर देता है वैसे ही (अग्निः) नायक और विद्वान् पुरुष (बृहता) भारी (ज्योतिषा) ज्ञान और तेज से (वि भाति) चमके और (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (विश्वानि) सब सत्य ज्ञानों और ज्ञातव्य पदार्थों को प्रकाशित करे। वह (महित्वा) तेजःप्रभाव से ही (अदेवीः) तेजस्वी, विद्वान् पुरुषों से भिन्न बुरे लोगों की (दुरेवाः) दुःखदायक (मायाः) कपटादियुक्त अन्धकार में होने वाली दुश्चेष्टाओं को (सहते) पराजित करता है, और वह

(शृङ्गे) प्रकट और अप्रकट दुष्टों के नाशकारी साधनों को (रक्षसे) विघ्नकारी पुरुषों के (विनिक्षे) विनाश करने के लिये (शिशीते) तीक्ष्ण करे।

उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥ १० ॥

भा०—(उत) और (अग्नेः) तेजस्वी पुरुष के (स्वानासः) उपदेश और आज्ञा वचन, अग्नि के चटचटा शब्दों के तुल्य (दिवि) ज्ञान के निमित्त (सन्तु) हों और उसके (तिग्मायुधाः) तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले, वीर पुरुष (रक्षसे) दुष्ट पुरुष के हनन के लिये (सन्तु) हों। (अस्य मदे) इसके दमनकारी शासन में (भामाः) क्रोधयुक्त वीर जन (अदेवीः परिबाधः) बुरे आदमियों की खड़ी की हुई विघ्नकारी चेष्टाओं को (प्र रुजन्ति) कुचल डालें और शत्रु सेनाएं उसको (न वरन्ते) निवारण न कर सकें।

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥ ११ ॥

भा०—हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध प्रभो! राजन्! (सु-अपाः न) उत्तम कर्म कुशल, कारीगर जैसे (रथं) रथ बनाता वैसे ही (ते) तेरे लिये (एतं) इस (स्तोमं) उपदेश युक्त वचन को मैं (विप्रः) विद्वान् (धीरः) बुद्धिमान् (अतक्षम्) प्रकट करता हूं। हे (अग्ने) प्रभो! राजन्! हे (देव) देव! (यदि इत्) यदि (त्वं) तू (प्रति हर्याः) इसे स्वीकार करे तो हम (स्वर्वती) नाना सुखों से युक्त (अपः) कर्मों और आप्त प्रजाओं को भी (एना) इस उत्तम उपदेश द्वारा (जयेम) विजय करें।

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—जैसे अग्नि (वेदः अशत्रु सम् अजाति) तेज को विना रोक के सब ओर फेंकता है। वैसे ही (तुविग्रीवः) बहुत सी गर्दनों, अर्थात् राज्यभार वाहक समर्थ पुरुषों से सहायवान् होकर (वृषभः) बलवान् (अर्यः) स्वामी पुरुष (अशत्रु) शत्रुरहित, निष्कण्टक, शत्रु के (वेदः) धनैश्वर्य को (समृअजाति) समान रूप से प्रदान करता है। (इति) इसी कारण (इमम्) उस पुरुष को (अमृताः) दीर्घायु (अग्निम् अवोचन्) 'अग्नि' कहते हैं। वह (वर्हिष्मते) वृद्धिशील प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुरुष को (शर्म यंसत्) सुख देता है और (हविष्मते) अन्नादि से समृद्ध (मनवे) पुरुष को (शर्म यंसत्) सुख देता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[३] वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—निचृत्पंक्तिः । ११ भुरिक् पंक्तिः । २, ३, ५, ९, १२ निचृत्-त्रिष्टुप् । ४, १० त्रिष्टुप् । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! तेजस्विन् ! राजन् ! गुरो ! हे परमेश्वर (यत्) क्योंकि तू (वरुणः) सब कष्टों का निवारक (जायसे) है और (यत्) जो तू (समिद्धः) उत्तेजित और उग्र होकर भी (मित्रः भवसि) सबका स्नेही और सबको मरने से बचाने वाला 'मित्र' बना रहता है। इसलिये हे (सहसः पुत्र) बलवान् पुरुष के पुत्र वा बल की एकमात्र मूर्त्ति ! (विश्वे देवाः) सब विद्वान् और नाना कामनावान् जन (त्वे) तेरे ही पर आश्रित रहते हैं। (त्वम्) तू भी (दाशुषे मर्त्याय) आत्मसमर्पक मनुष्य के लिये (इन्द्रः) सूर्य वा मेघ के तुल्य ऐश्वर्य का दाता है।

त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! जैसे अग्नि (कनीनां अर्यमा) सुन्दर आभूषण वस्त्रादि से युक्त, सौभाग्यवती एवं पति कामना करने वाली कन्याओं का 'अर्यमा', स्वामी के तुल्य न्यायानुसार योग्य पात्र में देने वाला होता है वैसे ही हे राजन्! तू भी (कनीनां) तेजस्विनी सेनाओं और ऐश्वर्य चाहने वाली प्रजाओं का (अर्यमा) स्वामी और शत्रुओं का नियन्ता (भवसि) होता है। हे (स्वधावन्) आत्मशक्ति और स्व अर्थात् धनादि धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन्! तू स्वयं (गुह्यं) बुद्धि और रक्षा के अनुकूल अपने (नाम) शत्रु नमाने के बल को भी (बिभर्षि) धारण करता है। (सुधितं) सुखपूर्वक आसन पर बैठे (मित्रं) अर्थात् स्नेहयुक्त पुरुष के प्रति कन्या के बन्धुजन जैसे (गोभिः न) गौ के दुग्ध रस मधु आदि द्वारा (अञ्जन्ति) अपना आदर भाव प्रकट करते हैं और (सुधितं) अच्छी प्रकार कुण्ड में आहुति किये अग्नि को (गोभिः अञ्जन्ति) गो दुग्ध के विकार रूप घृतों से प्रदीप्त करते हैं वैसे ही (सुधितम्) उत्तम रीति से स्थापित (मित्रं) सबको मृत्यु से बचाने वाले राजा को (गोभिः) गोदुग्ध, दधि, मधु आदि वा उत्तम वाणियों, गवादि पशु सम्पदाओं और भूमियों से (अञ्जन्ति) आदर सत्कार युक्त करें। (यत्) क्योंकि तू ही (दम्पती) पति और पत्नी को (समनसा) आवसथ्य अग्नि के तुल्य एक मन वाला (कृणोषि) करता है।

तव॑ श्रि॒ये म॒रुतो॑ मर्जयन्त॒ रुद्र॒ यत्ते॒ जनि॑म॒ चारु॑ चि॒त्रम्।
प॒दं यद्विष्णो॑रुप॒मं नि॒धायि॒ तेन॑ पासि॒ गुह्यं॒ नाम॒ गोना॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने, उनको मर्यादा में रोक रखने हारे तेजस्विन्! जैसे (मरुतः अग्नेः चित्रं जनिम श्रिये मर्जयन्त) वायुगण अग्नि के अद्भुत रूप को और अधिक कान्ति की वृद्धि के लिये प्रदीप्त करते हैं वैसे ही (मरुतः) विद्वान् और बलवान् पुरुष (यत् ते) जो तेरा (चारु) सुन्दर (चित्रम्) अद्भुत (जनिम) जन्म या देह है उसको (श्रिये) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये और अधिक (मर्जयन्त) अभिषेक, अलंकार आदि द्वारा शुद्ध और अलंकृत करें।

(यत्) जिस कारण (ते पदम्) तेरा पद, (विष्णोः उपमं) तेजस्वी सूर्य और वायु के तुल्य (निधायि) निहित है इस कारण (तेन) उस पद या अधिकार से तू (गोनाम् गुह्यं) किरणों के गुप्तरूप को सूर्यवत् और मेघस्थ जलधाराओं के गुप्त रूप को वायु के तुल्य ही (गोनाम्) भूमियों और उनमें वसी प्रजाओं के (गुह्यं नाम) गुप्त, वशकारक बल को (पासि) पालन कर।

तव॑ श्रि॒या सु॒दृशो॑ देव दे॒वाः पु॒रू दधा॑ना अ॒मृतं॑ सपन्त।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दुर्दश॒स्यन्त॑ उ॒शिजः॒ शंस॑मा॒योः ॥ ४ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! हे ऐश्वर्य देने हारे! (सुदृशः देवाः) तत्वदर्शी पुरुष! (तव श्रिया) तेरी सेना ऐश्वर्य से (पुरु अमृतं दधानाः) बहुत प्रकार के अमृत, अन्न, जल और दीर्घजीवन को धारण करते हुए (सपन्त) मिलकर रहें। (आयोः) दीर्घ जीवन की (उशिजः) कामना वाले (मनुषः) मनुष्य (शंसम्) अति प्रशंसनीय वचन और द्रव्य को (दशस्यन्तः) आदर पूर्वक देते हुए (होतारम्) सर्वैश्वर्य दाता (अग्निम्) तेजस्वी, नायक को प्राप्त होकर स्वयं (नि सेदुः) उत्तम आसनों वा पदों पर विराजें।

न त्वद्धोता॒ पूर्वो॑ अग्ने॒ यजी॑या॒न्न काव्यैः॑ प॒रो अ॑स्ति स्वधावः।
वि॒शश्च॒ यस्या॒ अति॑थि॒र्भवा॑सि॒ स य॒ज्ञेन॑ वनवद्देव॒ मर्ता॑न् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! हे राजन्! (त्वत् पूर्वः) तेरे से पूर्व, तेरे से उत्कृष्ट दूसरा (होता) दान देने और प्रजाओं को अपनाने वाला (न अस्ति) नहीं है और हे (स्वधावः) ऐश्वर्य के स्वामिन्! (त्वत् यजीयान्) तेरे से अधिक सत्संग योग्य और (काव्यैः) विद्वानों के लिये उत्तम स्तुति-वचनों द्वारा प्रशंसा और उपदेशों के योग्य सत्पात्र भी (न अस्ति) नहीं है। (च) और (यस्याः विशः) जिस प्रजा का भी तू (अतिथिः भवसि) अतिथि के तुल्य पूज्य और अध्यक्ष रूप से शासक होता है (सः) वह तू हे (देव) तेजस्विन्! (यज्ञेन) दान, सत्संग द्वारा ही उस प्रजा के (मर्त्तान्) मनुष्यों को (वनवत्) ऐश्वर्य समान रूप से विभक्त कर देता है।

व॒यम॑ग्ने वनुयाम॒ त्वोता॑ वसू॒यवो॑ ह॒विषा॒ बुध्य॑मानाः ।
व॒यं स॑म॒र्ये वि॒दथे॒ष्वह्नां॑ व॒यं रा॒या स॑हसस्पुत्र॒ मर्ता॑न् ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सहसः पुत्र) बल स्वरूप ! हे शक्ति पालक ! (अग्ने) नायक, तेजस्विन् ! (वसूयवः) धनों की कामना करते हुए और (हविषा) ग्रहण योग्य उत्तम वचन से (बुध्यमानाः) ज्ञानवान् होते हुए (वयम्) हम (त्वा उताः) तेरे द्वारा रक्षित होकर (वनुयाम) ऐश्वर्यों का भोग और दान करें और (वयं) हम (समर्ये) संग्राम में और (विदथेषु) ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति, ग्रहण और दान आदि कार्यों में (अह्नाम्) सब दिनों (वनुयाम) लगे रहें और (वयं) हम (राया) धनैश्वर्य के बल पर (मर्त्तान्) मनुष्यों को सहायक आदि रूपों में (वनुयाम) प्राप्त करते रहें ।

यो न॒ आगो॑ अ॒भ्येनो॒ भरा॒त्यधी॒दघ॒शंसे॒ दधात ।
ज॒ही चि॑कित्वो अ॒भिश॑स्तिमे॒तामग्ने॒ यो नो॑ म॒र्चय॑ति द्व॒येन॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (नः) हमारे बीच में (एनः) अपराध (अभि भराति) करे राजा (अघशंसे) उस पापाचरण वाले चोर पुरुष पर (अघम् अधि दधात) पाप का खूब कठोर दण्ड दे । हे (चिकित्वः) राज्य से रोगों के तुल्य दुष्टों को दूर करने हारे ! (नः) हमारे बीच (यः) जो भी (द्वयेन) बाहर और भीतर, प्रकाश और अप्रकाश दोनों रीति से (नः मर्चयति) हमें पीड़ित करता है तू उनकी (एताम् अभिशस्तिम्) इस प्रकार सब ओर की हिंसा को (जहि) दण्डित कर ।

त्वाम॒स्या व्युषि॑ देव॒ पूर्वे॑ दू॒तं कृ॑ण्वा॒ना अ॑यजन्त ह॒व्यैः ।
सं॒स्थे यद॑ग्न॒ ईय॑से रयी॒णां दे॒वो मर्तै॒र्वसु॑भिरि॒ध्यमा॑नः ॥ ८ ॥

भा०—(व्युषि पूर्वे दूतं अग्नि कृण्वानाः हव्यैः अयजन्त, इध्यमानः वसुभिः संस्थे अग्निः ईयसे) जैसे भोर काल में वृद्धजन संतापजनक अग्नि को उत्पन्न करतेहुए घृत अन्नादि हवियों सेयज्ञ करते हैं और वह अपने वसने योग

से चमकता हुआ अग्नि गृह में प्राप्त किया जाता है वैसे ही हे (अग्ने) अग्निवत् अग्रणी नायक ! हे (देव) तेजस्विन् ! (अस्याः) इस प्रजा के (वि-उषि) विशेष प्रवल कामना हो जाने पर (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, वृद्ध जन (त्वाम्) तुझको (दूतं) शत्रुसंतापक, प्रतापी (कृण्वानाः) वनाते हुए (हव्यैः) उत्तम ऐश्वर्यों से (अयजन्त) तेरा आदर सत्कार करें (यत्) जो तू (देवः) तेजस्वी होकर (वसुभिः) धनैश्वर्यों और राष्ट्र में वसे प्रजाजनों, (मर्त्तैः) और शत्रुमारक वीर पुरुषों से (इध्यमानः) वहुत दीप्त होकर (रयीणां संस्थे) ऐश्वर्यों के एकमात्र आश्रय इस राष्ट्र में (ईयसे) प्राप्त है ।

अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥ ९

भा०—(सहसः सूनो) बलवान् वलवीर्य के पालक पिता के पुत्र के तुल्य वा राष्ट्रपालक सैन्य के सञ्चालक राजन् ! (अहं ते ऊहे) मैं तेरे लिये सदा यह विचार करता हूँ कि (यः) जो तू (पुत्रः) वहुतों का पालक है वह तू (विद्वान्) विद्वान् होकर (कदा) कब (पितरं) अपने पालक पिता को पुनः देखना (अव स्पृधि) चाहे और (कदा अव योधि) कब उनको कष्टों से छुड़ावे । हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! तू (नः अभिचक्षसे) हमें कब उत्तम उपदेश करे और (ऋतचित् सन् कदा नः यातयासे) सत्य ज्ञान का संचय करने हारा तू हमें तेजस्वी सूर्य के तुल्य कव सन्मार्ग पर चलावे ?

भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥ १० ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र को बसाने वाले राजन् ! (यदि) यदि तू (तत्) उस (नाम) शत्रु को नमाने वाले बल को (जोषयासे) चाहे तो (पिता) पालक पिता जैसे पुत्र का उत्तम नाम रखता है वैसे ही पालक प्रजाजन भी (भूरि वन्दमानः) वहुत-बहुत तेरी स्तुति, विनय दर्शाता हुआ तेरे (भूरि नाम दधाति)

राजा, नृप, भूपति आदि बहुत से नाम रख देता है और स्वयं भी (भूरि नाम दधाति) बहुत सा शत्रुनमनकारी बल धारण करता है। (अग्निः) तेजस्वी नायक (कुवित्) बहुधा (देवस्द) अपने को चाहने वाले और कर आदि देने वाले देशवासी जन के (सुम्नम्) सुख की (चकानः) कामना करता हुआ स्वयं भी (वावृधानः) बढ़ता हुआ (वनते) सुख प्राप्त करता है। वैसे ही प्रजाजन ! यदि तू चाहे तो तेरा (पिता) पालक राजा, स्तुति प्राप्त करके तेरे बहुत से स्वरूपों वा नाम अर्थात् बलों वा पदों को धारण करे अर्थात् प्रजा की इच्छानुसार राजा अपने सैन्यादि बढ़ावे।

त्वम॒ङ्ग ज॑रि॒तारं॑ यविष्ठ॒ विश्वा॑न्यग्ने दुरि॒ताति॑ पर्षि ।
स्ते॒नाऽदृश्र॑न् रि॒पवो॒ जना॒सोऽज्ञा॑तकेता वृजि॒ना अ॑भूवन् ॥ ११ ॥

भा०—(अङ्ग अग्ने) हे तेजस्विन् ! हे (यविष्ठ) बलिष्ठ ! (त्वं) तू (विश्वानि) सब प्रकार के (दुरिता) पापाचारों और दुर्गम संकटों को (अति) पार करके (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष को (पर्षि) पालन कर। जो (स्तेनाः) चोर और (रिपवः) शत्रुगण (अदृश्रन्) दिखाई दें और जो (अज्ञात-केताः) अज्ञात स्थान में रहने वाले, वा ज्ञान शून्य (जनासः) मनुष्य होते हैं वे भी (वृजिनाः) वर्जन योग्य ही (अभूवन्) होते हैं।

इ॒मे यामा॑सस्त्व॒द्रिग॑भूव॒न्वस॑वे॒ वा॒ तदिदागो॑ अवाचि ।
नाहा॒यम॒ग्निर॒भिश॑स्तये॒ नो॒ न रीष॑ते वावृ॒धानः॒ परा॑दात् ॥ १२ ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्, आचार्य ! (इमे) ये (यामासः) यम नियमों के पालक शिष्यजन और नियम-व्यवस्था में बद्ध प्रजाजन, वा सैन्य गण (वसवे) बसे राष्ट्र वा अन्तेवासी वा बसाने वाले राजा वा आचार्य के निमित्त (त्वद्-रिक् अभूवन्) तेरे ही से यत्नशील, तेरे ही अधीन होते हैं। अतः (तत् इत् आगः) वह सब अपराध (वसवे) प्रजा को बसाने वाले का ही (अवाचि) कहा

जाता है। इसलिये (अयम् अग्निः) वह नेता पुरुष (नः) हमें (अभिशस्तये) परस्पर हिंसा आदि अपराध के लिये हिंसा करने वाले के हाथ (न परा दात्) न त्याग दे और स्वयं (वावृधानः) बढ़ता हुआ भी हमें (रीषते न परा दाद्) हिंसक के हाथों न सौंप दे। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[४] वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १०, ११ भुरिक् पंक्तिः। स्वराट् पंक्तिः। २, ९ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन्।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान्! हे (राजन्) राजन्! (वसूनां) वसे जनों के बीच (वसुपतिम्) धनपति (त्वाम्) तुझको मैं (अध्वरेषु) हिंसारहित प्रजा पालनादि कार्यों में स्थित देख कर (प्र मन्दे) तेरे गुणानुवाद करता हूं। हम प्रजाजन (त्वया) तुझ द्वारा (वाजं वाजयन्तः) संग्राम विजय करते हुए (जयेम) विजय प्राप्त करें और (मर्त्यानाम्) हमें मारने वाले मनुष्यों की (पृत्सुतीः) सेनाओं को हम (अभि स्याम) पराजित करें।

हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २ ॥

भा०—(हव्यवाट्) ग्रहण योग्य ऐश्वर्यों के धारक (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (अजरः) कभी नाश न होने वाला (नः पिता) हमारा पालक हो। वह (विभुः) विशेष सामर्थ्यवान्, (विभावा) दीप्तिमान्, (सुदृशीकः) उत्तम द्रष्टा (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये हो। वह तू हे राजन्! (सुगार्हपत्याः) उत्तम गृहपति के योग्य (इषः) अन्नों को (सं दिदीहि) दे और (अस्मद्र्यक्) हमें प्राप्त होने वाले (श्रवांसि) ज्ञानों को (स मिमीहि) अच्छी प्रकार बढ़ा।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम्।
नि होतारं विश्ववविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (शुचिं) ईमानदार, धार्मिक, तेजस्वी, (पावकं) पवित्र करने वाले, (घृतपृष्ठम्) तेज और स्नेह से पूर्ण रूप वाले अग्नि के तुल्य दानशील, (विश्वविदम्) सर्वज्ञानी पुरुष को (विशां) प्रजाओं का (विश्पतिं) प्रजापति (दधिध्वे) बनाओ । (सः) वह ही (वार्याणि) नाना उत्तम (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषुओं और कामनावान् पुरुषों में (वनते) विभाग करता है ।

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानः) सूर्य की किरणों से क्रियावान् होकर अग्नि (समिधं) काष्ठ को ग्रहण करता और (हविः-अद्याय) चरु आदि को भस्म करने के लिये (देवान् वहति) ज्वालाओं को धारण करता है वैसे ही हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य शत्रुओं को भस्म करने हारे ! तू (इडया) वाणी और भूमिवासिनी प्रजा से (सजोषाः) समान रूप से सेवित एवं प्रेमयुक्त होकर (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की रश्मियों के तुल्य अपने अधीन शासकों सहित (यतमानः) सदा यत्न करता हुआ (नः समिधं जुषस्व) हमारे सहयोगी पराक्रम को प्राप्त कर और हे (जातवेदः) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष ! तू (नः) हमारे (हविः-अद्याय) खाने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (नः) हममें से (देवान्) तेजस्वी पुरुषों को (जुषस्व) ग्रहण कर (वक्षि च) अपने पर ले, अर्थात् उनका पोषण अपने पर ले ।

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५॥१८॥

भा०—जैसे गृह में अग्नि यज्ञ को प्राप्त होता है और सब दोषों को दूर करके भोजन प्राप्त कराता है वैसे ही हे (अग्ने) विनयशालिन् ! तू (दमूनाः) जितेन्द्रिय और (जुष्टः) हमारे प्रेमपात्र, (अतिथिः) अतिथि के तुल्य पूज्य

(विद्वान्) ज्ञानी होकर (दुरोणे) गृह में (नः) हमारे (इमं यज्ञम्) इस सत्कार को (उपयाहि) प्राप्त कर और (विश्वाः अभि-युजः) समस्त आक्रमण करने वाली सेनाओं को (विहृत्य) विविध उपायों से दण्डित करके (शत्रूयताम्) शत्रु समान व्यवहार करने वालों के (भोजनानि) खाने और रक्षा करने के साधनों और शस्त्रास्त्रों को भी (आ भर) छीन ला। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥६॥

भा०—हे (सहसः पुत्र) देशपालक बलवान् पिता के पुत्र के समान स्वयं उससे सुरक्षित और संवर्धित राजन्! तू (वधेन) शस्त्र बल से (दस्युं) नाशकारी दुष्ट पुरुष को (प्र चातयस्व) नष्ट कर और (स्वायै तन्वे) अपने शरीर का (वयः कृण्वानः) बल बढ़ाता हुआ (यत्) जो तू (देवान् पिपर्षि) विजयेच्छु लोगों को पालता है, (सः) वह तू हे (नृतम) श्रेष्ठ पुरुष! (अग्ने) तेजस्विन्? (अस्मान्) हमें (वाजे) संग्राम में (पाहि) पालन कर।

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! (वयम्) हम (उक्थैः विधेम) उत्तम वचनों से तेरी स्तुति करें। हे (पावक) राज्य को पापों से रहित करने हारे! हे (भद्रशोचे) कल्याणकारी तेज वाले! (वयं) हम (ते) तेरी (हव्यैः) धन आदि उत्तम पदार्थों से परिचर्या करें। तू (अस्मे) हमें (विश्वावारं) वरण करने योग्य (रयिं) ऐश्वर्य (समिन्व) प्राप्त करा। (अस्मे) हमें (विश्वानि) सब प्रकार के धन (धेहि) प्रदान कर।

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! तू (अस्माकं) हमारे बीच (अध्वरं) हिंसा से रहित पालक पद को (जुषस्व) स्वीकार कर। हे (सहसः सूनो) सैन्य बल के सञ्चालक ! हे (त्रिसधस्थ) जल, स्थल, पर्वत तीनों स्थानों पर स्थित वा प्रजा, भृत्य और स्वजन तीनों के साथ निष्पक्षपात होकर रहने वाले ! तू (अस्माकं हव्यं जुषस्व) हमारे ऐश्वर्य को प्राप्त कर। (वय देवेषु) हम विद्वानों में (सुकृतः स्याम) उत्तम कर्म करने वाले हों और तू (त्रिवरूथेन शर्मणा) तीनों तापों, गर्मी, सर्दी, वर्षा तीनों के निवारक गृह, वा शत्रु नाशक तीनों प्रकार के सैन्य से (नः पाहि) हमारी रक्षा कर।

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अत्रिवत् अग्ने) राष्ट्र, प्रजाओं और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों के प्राप्त करने हारे ! (सिन्धुं नावा न) बड़ी नदी वा समुद्र को नौका या जहाज के तुल्य तू (नः) हमें (विश्वानि) समस्त (दुरिता अति पर्षि) दुःखदायी पापों से पार कर। तू (नमसा गृणानः) नमस्कार वचन से स्तुति किया जाता हुआ (अस्माकं तनूनां) हमारे शरीरों का (अविता बोधि) रक्षक होकर सदा सावधान रह।

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो मैं (मर्त्यः) शत्रुओं का मारने वाला साधारण पुरुष (त्वा अमर्त्यं) तुझ अमर्त्य अर्थात् असाधारण पुरुष को (कीरिणा हृदा) स्तुतिशील चित्त से (मन्यमानः) आदर करता हुआ (जोहवीमि) प्रार्थना करता हूं वह तू हे (जातवेदः) उत्पन्न समस्त प्रजाजनों के जानने हारे विद्वन् ! प्रभो ! तू (अस्मासु) हम में (यशः धेहि) अन्न और कीर्त्ति प्रदान कर। हे (अग्ने)

नायक ! मैं प्रजाजन (प्रजाभिः) सन्तानों से (अमृतत्वम्) अविनाशी स्वरूप को (अश्याम्) प्राप्त करूं ।

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥११॥१९॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले ! हे (अग्ने) राजन् ! (त्वं) तू (यस्मै सुकृते) जिस उत्तम कर्म करने वाले को (स्योनं लोकं कृणवः) सुखदायक लोक या स्थान देता है (सः) वह (अश्विनं) उत्तम अश्व, (पुत्रिणं) पुत्र और (गोमन्तं) गवादि समृद्ध और (वीरवन्तं) वीर पुरुष से सम्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य को (स्वस्ति नशते) सुखपूर्वक प्राप्त करता है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५] वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ आप्रीः देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६, ७, ९, १० गायत्री । ३, ८ निचृद् गायत्री । ११ विराड् गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री । २ आर्च्युष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥

भा०—(सुसमिद्धाय) प्रदीप्त, तेजस्वी (शोचिषे) पवित्र करने वाले (जातवेदसे) ज्ञानसम्पन्न और ऐश्वर्य के उत्पादक (अग्नये) अग्रणी विद्वान् वा विनीत पुरुष के लिये (तीव्रं घृतं) अग्नि को तीव्र करने वाले घृत के समान उसकी शक्ति और सामर्थ्य की वृद्धि करने वाले, घृतयुक्त अन्न, तेज दायक ज्ञान और प्रकाश को (जुहोतन) प्रदान करो ।

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः ।
कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥

भा०—(मधुहस्त्यः) मधुर अन्नादि सुखदायी पदार्थों को अपने हाथ में कर लेने में कुशल, (कविः) बुद्धिमान् पुरुष (अदाभ्यः) कभी पीड़ित नहीं होता

और वह (नराशंसः) सब मनुष्यों के बीच सबसे प्रशंसा योग्य होकर (इमं यज्ञम्) इस परस्पर देने लेने योग्य ज्ञानोपदेश को (सु सूदति) अच्छी प्रकार धारा के रूप से प्रवाहित करता है।

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्।
सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! तेजस्विन्! राजन्! प्रभो! तू (ईडितः) स्तुति योग्य है। तू (इह) यहां इस राष्ट्र में (ऊतये) रक्षा और उपभोग के लिये (सुखैः रथेभिः) सुखकारक रम्य पदार्थों वा रथ, यान आदि साधनों से (चित्रं) अद्‌भुत (प्रियम्) प्रिय (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुषों और नाना ऐश्वर्यों को (आ वह) अग्नि के तुल्य प्राप्त करा।

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्यर्का अनूषत।
भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऊर्णम्रदाः) ऊन के समान अतिमृदु, सुखकारी, एवं स्वयं राष्ट्र के रक्षक बीरों से दुष्टों का मानमर्दन करने वाले! हे (शुभ्र) शुभ ऐश्वर्यों के दाता तुझको (अर्काः) स्तुतिशील और सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् लोग तेरी स्तुति करते वा तुझे उपदेश करते हैं। तू (वि प्रथस्व) विविध रूप से बढ़ और ख्यातिमान् हो। (नः) हमारे (सातये) धनैश्वर्य-विभाग के लिये (भव) नियुक्त हो।

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये।
प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—हे (देवीः) ऐश्वर्यों की कामना करने वाली (द्वारः) द्वारों के तुल्य शत्रुओं का वारण करने वाली सेनाओ! आप (सु प्रायणाः) उत्तम-उत्तम 'अयन' अर्थात् पदाधिकार वा स्व-स्व नियत स्थान धारण करते हुए (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (वि श्रयध्वम्) विविध प्रकार से राष्ट्र की सेवा करो

और (यज्ञं) दानशील, सत्संग योग्य, एवं पूज्य राजा वा राज्य-प्रबन्ध को (प्र-प्र पृणीतन) खूब पूर्ण, समृद्ध एवं प्रसन्न करो।

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा।
दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सु-प्रतीके) उत्तम ज्ञानयुक्त, (वयोवृधा) आयु और बल बढ़ाने वाले (यह्वीः) पूज्य (ऋतस्य) ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के (मातरा) स्वयं जानने और औरों को उपदेश करने वाले हो। हम लोग आप दोनों को (दोषाम् उषासम्) रात्रि और दिन के तुल्य सबको सुखदायक और प्रकाश-ज्ञानदाता जान करके (ईमहे) ज्ञानादि की याचना करते हैं।

वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः।
इमं नो यज्ञमा गतम् ॥ ७ ॥

भा०—(दैव्या होतारा) धनादि की कामना वाले शिष्यों और दानशील, ज्ञानी स्त्री पुरुषो ? आप दोनों (वातस्य पत्मन्) प्रबल वायु के मार्ग में स्थित विद्युत् के तुल्य बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष के योग्य मार्ग में जाते हुए (ईडिता) प्रशंसा के पात्र हो। आप लोग (मनुषः) मनुष्यों और (नः इमं यज्ञम्) हमारे इस सत्संग को (आगतम्) प्राप्त होवो।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ८ ॥

भा०—(इडा) स्तुतियोग्य विद्या, (सरस्वती) ज्ञानमयी वाणी और (मही) विशाल भूमि, इन तीनों के समान (इडा) उत्तम इच्छा वाली, (सरस्वती) ज्ञान वाली और (मही) गुणों में पूज्य (तिस्रः) तीनों प्रकार की (देवीः) स्त्रियां, प्रजाएं वा सभाएं (मयोभुवः) सुख उत्पन्न करने वाली हों और वे (अस्रिधः) हिंसा आदि न करती हुईं (बर्हिः) वृद्धि युक्त आसन वा प्रजामय राष्ट्र पर (सीदन्तु) विराजें।

शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना ।
यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥

भा०—हे (त्वष्टः) सब दुःखनाशक ! हे शिल्पज्ञ ! तू (शिवः) कल्याणकारी, (विभुः) व्यापक सामर्थ्य वाला, (उत) और (पोषः) पोषक होकर (इह आ गहि) यहां आ और (यज्ञे-यज्ञे) प्रत्येक आदर योग्य व्यवहार में (नः उद् अव) हमारे बीच उत्तम पद पर स्थित होकर हमारी रक्षा कर ।

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि ।
तत्र हव्यानि गामय ॥ १० ॥

भा०—हे (वनस्पते) वनों, किरणों के पालक, तेजस्विन् ! वट आदि के तुल्य आश्रित जनों के पालक ! तू (यत्र) जहां भी (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (गुह्या) बुद्धि में स्थित, बुद्धिपूर्वक (नामानि) उत्तम बलों, रूपों, चिह्नों को (वेत्थ) जाने (तत्र) वहां (हव्यानि) देने वा लेने योग्य अन्न आदि साधनों को (गामय) प्राप्त करा ।

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः ।
स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥ २१ ॥

भा०—(अग्नये हविः स्वाहा) तेजस्वी, विद्वान् पुरुष के लिये अन्न आदरपूर्वक वाणी से प्रदान करो । (वरुणाय हविः स्वाहा) कष्टों के वारक पुरुष को अन्न उत्तम वाणी सहित प्रदान करो । (इन्द्राय हविः स्वाहा) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को अन्न आदरपूर्वक प्रदान करो । (मरुद्भ्यः) शत्रुओं को मारने वा वायु वेग से जाने वाले (देवेभ्यः) धन के इच्छुक वा दानशील, विद्वान् मनुष्यों को (हविः) ग्रहण योग्य पदार्थ, धन, अन्न आदि सब प्रेमपूर्वक (स्वाहा) प्रदान किया जावे ।

[६] वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८, ९ निचृत् पंक्तिः । २, ५ पंक्तिः । ७ विराट पंक्तिः । ३, ४ स्वराड् बृहती । ६, १० भुरिग्बृहती ॥

अ॒ग्निं तं म॑न्ये॒ यो वसु॒रस्तं॒ यं यन्ति॑ धे॒नवः॑ ।
अस्त॒मर्व॑न्त आ॒शवोऽस्तं॒ नित्या॑सो वा॒जिन॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥१॥

भा०—मैं (तम्) उसको (अग्निं मन्ये) 'अग्नि' मानता हूँ, उसको 'अग्नि' अर्थात् ज्ञानवान् पुरुष मानता हूँ वा उस विद्वान् को मैं माननीय समझता हूँ (यः वसुः) जो स्वयं 'वसु' अर्थात् २४ वर्ष तक न्यून से न्यून, आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक वसे, वा अपने अधीन अन्यों को अन्तेवासी वा प्रजा रूप में राजवत् बसाने हारा है। (य अस्तं) जिसके घर में (धेनवः) गौएं (यन्ति) प्राप्त हों, (यं अस्तं) जिस के घर में, (अर्वन्तः) गतिमान् अश्व, वा विद्वान् जन, (आशवः) वेग से चलने वाले पदार्थ रथ आदि और (नित्यासः वाजिनः) सदा ज्ञान बल, और ऐश्वर्य से युक्त पुरुष (य अस्तंयन्ति) जिसको शरण जानकर प्राप्त होते हैं। हे विद्वन् ! तू (स्तोतृभ्यः) विद्योपदेष्टा पुरुषों को (इषम् आ भर) अन्न और कामना योग्य पदार्थ प्राप्त करा। हे नायक ! तू विद्वानों के हितार्थ (इषम्) सेनादि का सञ्चालन कर।

सो अ॒ग्निर्यो वसु॑र्गृ॒णे सं यमा॒यन्ति॑ धे॒नवः॑ ।
समर्व॑न्तो रघु॒द्रुवः॒ सं सु॑जा॒तासः॑ सू॒रय॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥२॥

भा०—(यः वसुः) जो अपने अधीन अन्यों को यम नियम से बसाता है, (यम् धेनवः सम् आयन्ति) जिसको प्रजागण, गौओं के तुल्य समृद्ध और एकत्र होकर प्राप्त होते हैं (यं रघुद्रुवः अर्वन्तः सम्) जिसको वेग से जाने वाले अश्व और अश्वारोही गण प्राप्त होते हैं और (सुजातासः सूरयः) उत्तम प्रकार से विद्या आदि शुभ गुणों में विख्यात विद्वान् (यं सम् आयन्ति) जिसका सत्संग करते हैं (सः अग्निः) वह अग्रणी, ज्ञान प्रकाशक तेजस्वी, पुरुष 'अग्नि' है।

हे ऐसे नायक पुरुष ! तू (स्तोतृभ्यः) विद्वान्, उपदेष्टा पुरुषों को (इषम् आ भर) अन्नादि इच्छायोग्य पदार्थ प्राप्त करा।

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

भा०—(अग्निः हि) वह वस्तुतः नायक होने योग्य है जो (विश्व-चर्षणिः) सब अधीन पुरुषों को अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश से यथार्थ तत्व का दर्शन करावे वही (विशे) अपने अधीन बसी प्रजाओं को (वाजिनं) ज्ञानवान् पुरुष (ददाति) प्रदान करता है। (सः) वह (अग्निः) विद्वान् नेता (प्रीतः) प्रसन्न होकर (स्वाभुवं) सब ओर से, सुखपूर्वक उत्पन्न होने वाले (वार्यम्) वरण योग्य ऐश्वर्य को (राये) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (याति) प्राप्त करता है। हे विद्वन् ! तू (स्तोतृभ्यः इषम् आ भर) विद्वान् पुरुषों को अन्न आदि काम्य पदार्थ प्राप्त करा।

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

भा०—हे (देव) दानशील ! (अग्ने) तेजस्विन् ! हम लोग (ते) तेरे (द्युमन्तं) दीप्ति युक्त (अजरं) न नाश होने वाले कोष या स्वरूप को (आ इधी-महि) आदरपूर्वक अधिक प्रदीप्त करें, (यत्) क्योंकि (ते) तेरे ही, (पनीयसा) सबसे अधिक उत्तम उपदेश देने वाली (सम्-इद्) अग्नि में लगी समिधा के तुल्य अच्छी प्रकार अर्थों का प्रकाश करने वाला (स्या) वह वाणी (ह) निश्चय से (द्यवि) ज्ञान प्रकाश करने के अवसर में (दीदयति) खूब प्रकाशित होती है। तू (स्तोतृभ्यः) अध्येता जनों को (इषम् आ भर) अन्न और ज्ञान प्राप्त करा।

आ ते॑ अग्न ऋ॒चा ह॒विः शु॒क्रस्य॑ शोचिषस्पते ।
सुश्च॑न्द्र॒ दस्म॒ विश्प॑ते॒ हव्य॑वा॒ट् तुभ्यं॑ हूयत॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र
॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! हे (शोचिषः पते) पवित्र ज्ञान के पालक ! (ते) तेरे लिये (हविः) उत्तम ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थ (ऋचा) आदर वा ज्ञान प्रकाशक वाणी से, हवनाग्नि में मन्त्र से हवि के समान (आ) प्रदान किया जाता है ! हे (सुश्चन्द्र) उत्तम सुवर्णादि और गुणों से युक्त ! हे (दस्म) दुःख के नाशक ! हे (विश्-पते) प्रजाओं के पालक ! हे (हव्य वाट्) अन्नादि स्वीकार करने हारे ! (तुभ्यं हविः हूयते) तेरे हितार्थ अन्नादि दिया जाता है । हे विद्वन् ! तू (स्तोतृभ्यः) विद्याध्येता जनों के लिये (इष) अन्नादि इच्छा योग्य पदार्थ (आभर) प्राप्त करा । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

प्रो त्ये अ॒ग्नयो॒ऽग्निषु॒ विश्वं॑ पुष्यन्ति॒ वार्य॑म् ।
ते हि॑न्वि॒रे॒ त इ॑न्वि॒रे॒ त इ॑षण्यन्त्यानु॒षगिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (अग्नयः अग्निषु वार्यं पुष्यन्ति) ये सामान्य अग्नियें उन सूर्य आदि अग्नियों के आश्रय पर ही इस जगत् को पुष्ट करते हैं और जैसे ज्ञानी पुरुष, विद्युत् आदि पदार्थों के आधार पर उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं वैसे ही (त्ये) वे (अग्नयः) नेता लोग (अग्निषु) पूर्वगामी विद्वान पुरुषों के आश्रय और अधीन रहकर (विश्वं वार्यम्) समस्त वरणीय ज्ञान, धन की वृद्धि करते हैं । (ते) वे ही (हिन्विरे) औरों को तृप्त और पुष्ट करते, (ते इन्विरे) विद्याओं में आगे बढ़ते और (ते) वे ही (आनुषक्) एक दूसरे का विरोध न करके, प्रेमपूर्वक (इषण्यन्ति) अन्नादि इच्छानुकूल पदार्थों की कामना करते हैं । हे विद्वन् ! तू (स्तोतृभ्यः) ऐसे विद्वानों को (इषम् आ भर) अन्न वा ज्ञान प्राप्त करा ।

तव॒ त्ये अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ महि॑ व्राधन्त वा॒जिनः॑ ।
ये पत्व॑भिः श॒फानां॑ व्र॒जा भु॒रन्त॒ गोना॒मिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥७॥

भा०—जैसे (अर्चयः वाजिनः व्राधन्त) अग्नि की ज्वालायें अन्न आदि चरु खाकर बढ़ती हैं और वे (गोनां व्रजा भुरन्त) रश्मियों के समूहों को पुष्ट करती हैं वैसे ही हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! (तव) तेरे (त्ये) वे (अर्चयः) उपासना करने वाले (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् लोग वा वेग से जाने वाले अश्वारोही गण, (शफानां पत्वभिः) समवेत शब्दों या वर्णों के बने पदों के अभ्यास द्वारा (गोनां व्रजा भुरन्त) वेद-वाणियों के समूहों को प्राप्त करते हैं। वीर पुरुष (शफानां पत्वभिः) अश्वों के कदमों के आगे बढ़ने से वा ललकार वाले सैन्यों से भूमि समूहों वा पशु सम्पदाओं का विजय करते हैं। (स्तोतृभ्यः इषम् आभर) हे विद्वन्! राजन्! तू उन स्तुतिकर्त्ताओं को ज्ञान, धनादि पदार्थ प्राप्त करा।

नवा॑ नो अग्न॒ आ भ॑र स्तो॒तृभ्यः॑ सुक्षि॒तीरिषः॑ ।
ते स्या॑म॒ य आ॑नृ॒चुस्त्वादू॑तासो॒ दमे॑दम॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! तू (नः स्तोतृभ्यः) हमारे स्तुतिकर्त्ता पुरुषों को (सुक्षितीः) उत्तम निवास योग्य (इषः) इच्छानुकूल अन्नादि सामग्री की स्वामिनी प्रजाएं (आ भर) प्राप्त करा। (ये) जो (त्वा-दूतासः) तुझको उपास्य, या प्रमुख वनाकर (दमे-दमे) प्रत्येक दमन या शासन के कार्य या प्रतिगृह में (आनृचुः) तेरी स्तुति और आदर करते हैं वे हम (ते स्याम) तेरे ही उपासक होकर रहें, तू उन (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) उन स्तुतिशील पुरुषों को अन्नादि प्राप्त करा।

उ॒भे सु॑श्चन्द्र स॒र्पिषो॒ दर्वी॑ श्रीणीष आ॒सनि॑ ।
उ॒तो न॒ उत्पु॑पूर्या उ॒क्थेषु॑ शवसस्पत॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥ ९ ॥

भा०—हे (सु-चन्द्र) आह्लादक, स्वर्णादि सम्पत्तियुक्त नायक ! जैसे होता (आसनि) अग्नि-मुख में (उभे सर्पिषः दर्वी श्रीणीषे) दो घी से पूर्ण चमस रखकर तपाता है वैसे तू (सर्पिषः) आगे बढ़ने वाले सैन्य बल की (दर्वी) शत्रुओं को विदारण करने वाली दो पलटनों को (आसनि) शत्रुओं को उखाड देने के कार्य में (श्रीणीषे) अभ्यस्त कर, सेवा में नियुक्त कर। (उतो) और हे (शवसः पते) सैन्य पालक सेनापते ! तू (उक्थेषु) प्रशंसा योग्य पदों पर (नः) हमें (उत् पुपूर्याः) उत्तम रीति से पूर्ण कर। (स्तोतृभ्यः इषम् आ भर) विद्वानों को अन्न आदि प्रदान कर।

एवाँ अ॒ग्निम॑जुर्यमुर्गी॒र्भिर्य॒ज्ञेभि॑रानु॒षक् ।
दध॑द॒स्मे सु॒वीर्य॑मु॒त त्यदा॒श्वश्व्य॒मिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥१०॥२३॥

भा०—(एवां) इस प्रकार विद्वान् लोग ही (गीर्भिः) उत्तम वाणियों, (यज्ञेभिः) आदर सत्कारों से (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानी, पुरुष को (आनुषक्) अपने अनुकूल करके (अजुः यमुः) प्राप्त करते और नियम में व्यवस्थित कर लेते हैं। वह (अस्मे) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम बल (उत) और (त्यत्) वह (आशु-अश्व्यम्) शीघ्र वेग युक्त अश्व सैन्य वा बलवान् इन्द्रियों वाला तपोबल, (दधत्) धारण करावे। वह तू (स्तोतृभ्यः) अध्येताओं और स्तुति कर्त्ताओं को (इषम् आ भर) ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करा। इति त्रयोविंशो वर्गः।

[७] इष आत्रेय ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्द—१ विराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ४, ५, ८, ९ निचृदनुष्टुप्। ६, ७ स्वराडुष्णिक्। निचृद् बृहती॥ नवर्चं सूक्तम्॥

सखा॑यः॒ सं वः॑ स॒म्यञ्च॒मिषं॒ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑ ।
वर्षि॑ष्ठाय क्षिती॒नामू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) एक ही समान नाम से पुकारे जाने योग्य मित्रो ! (नः क्षितीनाम्) राष्ट्र में वसने वाले आप लोगों के बीच (अग्नये) ज्ञानवान्

(वर्षिष्ठाय) सबसे बड़े बलवान्, सबको प्रवन्ध में बांधने वाले, (उर्जः, नप्त्रे) पराक्रम युक्त सैन्य के प्रवन्धक (सहस्वते) शत्रु पराजयकारी सैन्य के स्वामी के पद के लिये आप लोग (सम्यञ्चम्) सम्यक् प्रकार से (इषं) सबके प्रेरक (स्तोमं) स्तुति योग्य पुरुष को (सम्) मिलकर स्थापित करो।

कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते सञ्जनयन्ति जन्तवः ॥ २ ॥

भा०—कैसा नायक चुनें। (नरः) विद्वान् लोग (नृ-सदने) प्रमुख पुरुषों की सभा में (यस्य सम्-ऋतौ) जिसकी निष्पक्षपात ज्ञानयुक्त मति में रहकर (कुत्रचित्) कहीं भी हों (रण्वाः) सुप्रसन्न ही रहते हों और वे (अर्हन्तः चित्) पूजा योग्य, उत्तम लोग (यम्-इधन्ते) जिसको यज्ञाग्नि के तुल्य ही प्रज्वलित करते हैं, (जन्तवः) सब जने जिसको (सं जनयन्ति) मिलकर नायक बनाते हैं वही पुरुष नायक वा प्रमुख 'दैशिक' होने योग्य है।

सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥ ३ ॥

भा०—जैसे सूर्य अपने (शवसा) तेज से (ऋतस्य रश्मिम्) जल ग्रहण करने वाले किरण को धारण करता है उससे प्राणी जन (इषः हव्या) अन्नादि खाद्य पदार्थ, वा वृष्टियां प्राप्त करते हैं वैसे ही (यत्) जिस पुरुष से हम लोग (इषः) अन्न आदि इच्छा योग्य पदार्थ और (मानुषाणां हव्या) मनुष्यों के लेने योग्य पदार्थ (वनामहे) प्राप्त करते हैं और (यत्) जो (शवसा) बल पराक्रम से (द्युम्नस्य) ऐश्वर्य और (ऋतस्य) ज्ञान वा न्याय के (रश्मिम्) बागडोर को (आददे) सम्भालता है वही उत्तम 'अग्नि' नायक है।

सः स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे अग्नि (अजरः पावकः वनस्पतीन्) स्वयं अविनाशी होकर बड़े वृक्षों को जला देता है और (सते नक्तं दूरे केतुम् आकृणोति) दूर विद्यमान पुरुष के लिये रात को दूर तक प्रकाश कर देता है और जैसे सूर्य स्वयं (अजरः) कभी जीर्ण न होकर (पावकः) जल मलादि को पवित्र करने वाला होकर (वनस्पतीन् प्र मिनाति) पालक रश्मियों को दूर तक फेंकता है, (सते) विद्यमान जगत् के उपकार के लिये (नक्तं) रात्रि के अन्धकार को (दूरे कृणोति, केतुम् आ कृणोति) दूर करता और प्रकाश को सर्वत्र फैला देता है वैसे ही (सः स्म) वह नायक पुरुष भी (पावकः) राष्ट्र का शोधक होकर स्वयं (अजरः) अविनाशी होकर (वनस्पतीन् प्र मिनाति) भोग्य पदार्थों के पालक बड़े-बड़े शत्रु राजाओं को भी वायुवत् प्रचण्ड होकर उखाड़ देता है और (सते) राष्ट्र के हित के लिये (नक्तं चित्) रात्रि को सूर्यवत् (दूरे) दूर करता और (केतुम्) अपना ज्ञापक, झण्डा (आ कृणुते) सर्वत्र फैलाता है ।

अव॑ स्म॒ यस्य॒ वेष॑णे॒ स्वेदं॑ प॒थिषु॒ जुह्व॑ति ।
अ॒भीमह॒ स्वजे॑न्यं॒ भूमा॑ पृ॒ष्ठेव॑ रुरुहुः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—जैसे अग्नि वा सूर्य के (वेषणे) ताप के व्यापने पर (पथिषु) मार्गों में चलने वाले लोग (स्वेदं जुह्वति) पसीना छोड़ते हैं और जैसे उनसे उत्पन्न ज्वाला वा किरणादि पिता की पीठ पर पुत्रों के तुल्य, उसके ही पृष्ठ पर स्थित रहते हैं वैसे ही (यस्य वेषणे) जिसके राज्य या प्रताप के फैलने में लोग (पथिषु) उत्तम मार्गों में वा युद्ध मार्गों में (स्वेदं) अपना ऐहिक सर्वस्व तन, धन (अव जुह्वति स्म) आहुति कर देते हैं और (यस्य स्व जेन्यं) जिसका स्वयं उत्पन्न किया राष्ट्र वा स्वबाहु वीर्य से विजय किया (भूम) बहुत बड़ा राष्ट्र बहुतसी प्रजाएं उसके पुत्र के तुल्य होकर (ईम् अह पृष्ठा इव) उसके ही पीठों पर (आ रुरुहुः) चढ़ जाते, उसका आश्रय लेते हैं, वह अग्रणी 'अग्नि' है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥ ६ ॥

भा०—(चित्) जैसे मनुष्य (पितूनां स्वादनं अस्ततातिं) अन्नों को स्वादु बना देने वाले और गृह के कल्याणकारी अग्नि को सबके पोषणार्थ प्राप्त करता है वैसे ही (पुरु-स्पृहम्) सब मनुष्यों को प्रेम करने वाले, (पितूनां) उत्तम अन्नों के (स्वादनं) खिलाने वाले, (आयवे चित् अस्ततातिं) प्रत्येक शरणागत की रक्षा के लिये गृह के तुल्य कल्याणकारी (यं) जिस पुरुष को (मर्त्यः) जन साधारण (प्र विदत्) अच्छी प्रकार प्राप्त करता और उच्चकोटि का जानता है वही नायक है ।

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥ ७ ॥

भा०—(न) (हिरि-श्मश्रुः) पीली किरण रूप मूंछ, दाढ़ी वाला सूर्य, (ऋभुः) तेजस्वी होकर (आ-क्षितं धन्व आदाति) सर्वत्र फैले जल को वाष्प करके खण्डित करता है, वह (पशुः) प्रकाश द्वारा दर्शाता है । वैसे ही (सः) वह राजा, (दाता) शत्रु बल का खण्डन करने वाला (पशुः न) उत्तम द्रष्टा, विवेकी पुरुष के समान (हि) ही (आ-क्षितं धन्व) चारों ओर बसे भूमि प्रदेश को (आ दाति) सर्वत्र क्षेत्रों में विभक्त करे और बांट दे और वह (हिरि-श्मश्रुः) चमकीले केश मूंछ दाढ़ी वाला (शुचि-दन्) शुद्ध स्वच्छ दांतों से सुशोभित (ऋभुः) सत्य ज्ञान से चमकने वाला, (अनिभृष्ट-तविषिः) शत्रु द्वारा अपीड़ित सैन्य का स्वामी हो ।

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥ ८ ॥

भा०—(शुचिः स्वधितिः अत्रिवत् रीयते) जैसे काष्ठों को खा जाने वाले अग्नि के तुल्य शुद्ध चमकती धार वाली कुल्हाड़ी चलती है, वैसे ही (यस्मै)

जिसको (अत्रिवत्) भोक्ता के तुल्य स्वामी वा त्रिविध एषणाओं से रहित त्यागी के समान निःस्वार्थ जान कर (शुचिः) शुद्ध चित्त वाली (स्वधितिः) स्वयं अपने को वा 'स्व' अर्थात् धन समृद्धि धारण करने वाली प्रजा, साध्वी पत्नी के समान अनन्यभाव से (प्र रीयते) प्राप्त होती है और (यत्) जिसकी (माता) पृथिवी (सुभ्वः) माता के तुल्य उत्तम रीति से ऐश्वर्य देने वाली होकर (भगं ऋाणा) ऐश्वर्य उत्पन्न करती हुई (आनशे) प्राप्त होती है वही उत्तम नायक है।

आ यस्ते॑ स॒र्पिरा॑सु॒तेऽग्ने॒ शमस्ति॒ धाय॑से ।
ऐषु॑ द्यु॒म्नमु॒त श्रव॒ आ चि॒त्तं मर्त्ये॑षु धाः ॥ ९ ॥

भा०—(सर्पिरासुते) जैसे स्तुतियुक्त घी को अन्नवत् खाने वाला अग्नि है, वैसे ही राजा भी सर्पणशील अग्रयायी, अनुयायी जनों द्वारा 'आसुति' अर्थात् सब ओर से ऐश्वर्य और अभिषेक प्राप्त करने वाला, वा घृतादि युक्त पदार्थों को भोजन करता है। वैसे हे (सर्पिः-आसुते) जनों से अभिषिक्त ! हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! (यः) जो (ते) तेरे (धायसे) राष्ट्र को पोषण करने के लिये (शम् अस्ति) शान्तिदायक है तू उसका पालन कर। (एषु द्युम्नम् आ धाः) इन राष्ट्रों के वासी जनों में धनैश्वर्य दे। (उत एषु मर्त्येषु) इन मनुष्यों में (श्रवः आ धाः) श्रवण योग्य ज्ञान धारण करा और (चित्तं आ धाः) ज्ञानयुक्त, सुहृदय चित्त धारण करा।

इति॑ चि॒न्मन्यु॑म॒ध्रिज॒स्त्वादा॑त॒मा प॒शुं द॑दे ।
आद॑ग्ने॒ अपृ॑ण॒तोऽत्रिः॑ सासह्या॒द्दस्यू॑नि॒षः सा॑सह्या॒न्नॄन् ॥१०॥२५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो पुरुष (अध्रिजः) अधृष्य वा राष्ट्र के धारकों में प्रसिद्ध होकर (मन्युम्) ज्ञान और उग्र बल को (पशुम्) दर्शक प्रकाश वा दम्य पशु के तुल्य धारण करता है वह (अत्रिः) तीनों एषणा और तीनों दुःखों से रहित होकर (अपृणतः) पालन वा प्रसन्न न करने वाले, (दस्यून्) विनाशकारी, बाह्य और भीतर शत्रुओं को (सासह्यात्) वश करता है और

वह (इषः) इच्छाओं और कामनावान् प्रजाओं और (नॄन्) नायक मनुष्यों को भी (सासह्यात्) वश करता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[८] इष आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ४, ७ निचृज्जगती । ६ विराड् जगती ॥
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

त्वाम॑ग्न ऋ॒ता॒यवः॒ समी॑धिरे प्र॒त्नं प्र॒त्नास॑ ऊ॒तये॑ सहस्कृत ।
पु॒रु॒श्च॒न्द्रं य॑ज॒तं वि॒श्वधा॑यसं॒ दमू॑नसं गृ॒हप॑तिं॒ वरे॑ण्यम् ॥ १ ॥

भा०—जैसे (ऋतायवः अग्निं समिन्धते) ऐश्वर्य के इच्छुक यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करते हैं। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (सुहस्कृत) बाधाओं को पराजित करने वाले विद्वन् (प्रत्नासः) सनातन से प्राप्त (ऋतायवः) ज्ञान से युक्त वेद, वेदज्ञ विद्वान् जन (ऊतये) ज्ञान और रक्षा के लिये (पुरु-चन्द्रं) बहुतों को चन्द्रवत् आह्लादक (यजतं) दानी (विश्व-धायसं) समस्त विश्व के पालक, (दमूनसम्) जितेन्द्रिय, मन को वश करने वाले, (गृहपतिम्) गृह के पालक, (वरेण्यम्) वरण योग्य, श्रेष्ठ (त्वाम्) तुझको (सम् ईधिरे) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें।

त्वाम॑ग्ने॒ अति॑थिं पू॒र्व्यं विशः॑ शो॒चिष्के॑शं गृ॒हप॑तिं॒ नि षे॑दिरे ।
बृ॒हत्के॑तुं पुरु॒रूपं॑ धन॒स्पृतं॑ सु॒शर्मा॑णं॒ स्वव॑सं जर॒द्विष॑म् ॥ २ ॥

भा०—जैसे अग्नि तेजोमय होने से 'अग्नि' है, व्यापक होने से 'अतिथि' है, किरणों वा ज्वालाओं को केशों के समान धारण करने से 'शोचिष्केश' है, दीप वा चूल्हे की आग के रूप में गृह का पालक होने से 'गृहपति' है, बहुत प्रकाश होने वा बड़ी धूमध्वजा होने से 'बृहत्केतु' है, नाना रुचिकर रूप होने से 'पुरुरूप', ऐश्वर्य धन देने से 'धनस्पृत्', अच्छी प्रकार रोग जन्तुओं का नाशक होने से 'सुशर्मा' और देहों और जन्तुओं की आग्नेयास्त्रादि से रक्षा करने से 'सुअवस्' सर्पादि के विष का नाशक होने से 'जरद्-विष' है और लोग उसी

को स्थापित करते और आश्रय लेते हैं वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन् ! (विशः) लोग जो तेरे अधीन तेरे आश्रम में प्रवेश करते हैं वे (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य सत्कार योग्य, (पूर्व्यम्) पूर्वाचार्यों से उपदिष्ट वा सबसे पूर्व भोजनादि सत्कार पाने योग्य, (शोचिः केशं) तेजों, किरणों को केशवत् धारण करने वाले वा केश-लोमों को अपवित्र न करने वाले, ब्रह्मचारी, (गृह-पतिम्) गृह स्वामी, (बृहत् केतुम्) बड़े ज्ञान वाले (पुरु-रूपं) जनों के बीच रूपवान्, (धन-स्पृहं) ऐश्वर्य की कामना वाले, (सु-शर्माणं) उत्तम गृह से युक्त, (सु-अवसं) उत्तम रक्षक (जरद्विषं) शत्रु रूप विष को शमन करने वाले, ज्ञान का उपदेश करने वाले (त्वाम्) तुझको प्राप्त करके (नि षेदिरे) उत्तम आसन पर स्थापित करें और स्वयं भी नियम से व्यवस्थित हों।

त्वाम॑ग्ने॒ मानु॑षीरीळते॒ विशो॑ होत्रा॒विदं॒ विवि॑चिं रत्न॒धात॑मम् ।
गुहा॒ सन्तं॑ सुभग वि॒श्वद॑र्शतं तुविष्व॒णसं॑ सु॒यजं॑ घृत॒श्रिय॑म् ॥ ३ ॥

भा०—यह अग्नि, आहुति लेने से 'होत्रावित्', पदार्थों को पृथक्-पृथक् विश्लिष्ट करने से 'विविचि' है, रत्नों का धारक होने से 'रत्नधा', घृत का पाक करने से 'घृतश्री' है। वैसे ही हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! (मानुषीः विशः) मनुष्य प्रजाएं (होत्राविदं) उत्तम वेद वाणी जो गुरु द्वारा शिष्य के प्रति देने और शिष्य द्वारा गुरु से लेने योग्य होने से 'होत्रा' है, उसको जानने वाले (विवचिम्) सत्-असत्, धर्माधर्म का विवेक करने वाले, (रत्न-धातमम्) रमणीय गुणों और उत्तम रत्नों और राष्ट्र में, गृह में, नररत्न, पुत्ररत्न, स्त्री-रत्न आदि को उत्तम रीति से धारण करने हारे, (गुहा सन्तं) वाणी में सुरक्षित, गृह में विद्यमान, (विश्वदर्शतं) सबको देखने वाले (तुवि स्वनसं) बहुत उपदेशमय शब्दों को जानने वाले, (सु-यजं) दानशील, सत्संग-योग्य, (घृत-श्रियम्) दीप्तिमय शोभा से युक्त (त्वाम्) तुझको ही हे (सुभग) ऐश्वर्य वाले ! (ईडते) चाहते हैं।

त्वाम॑ग्ने धर्ण॒सिं वि॒श्वधा॑ व॒यं गी॒र्भिर्गृ॒णन्तो॒ नम॒सोप॑ सेदिम ।
स नो॑ जुषस्व समिधा॒नो अ॑ङ्गिरो दे॒वो मर्त॑स्य य॒शसा॑ सु॒दीतिभिः॑ ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! (वयं) हम लोग (धर्णसिं) सबको धारण करने वाले, (त्वाम्) तुझको (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नमसा) आदर वचन से (विश्व-धा) सब प्रकार से (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (अंगिरः) अंगों में रस वा जल के तुल्य रोगों के समान पापों को भस्म करने हारे (सः) वह तू (देवः) तेजस्वी, (मर्तस्य यशसा) मनुष्यों के उचित अन्न और (सुदीतिभिः) उत्तम कान्तियों से (सम्-ईधानः) खूब प्रदीप्त होकर अग्नि के समान (नः जुषस्व) हमें प्रेम कर।

त्वम॑ग्ने पुरु॒रूपो॑ वि॒शेवि॑शे॒ वयो॑ दधासि प्र॒त्नथा॑ पुरुष्टुत ।
पु॒रूण्यन्ना॒ सह॑सा॒ वि रा॑जसि॒ त्विषिः॒ सा ते॑ तित्विषा॒णस्य॒ नाधृषे॑ ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन्! राजन्! हे (पुरुस्तुत) बहुतों में प्रशंसित! (त्वम्) तू (पुरु रूपः) बहुतों के बीच रुचिकर एवं रूपवान् होकर (विशे-विशे) प्रत्येक प्रजा के हितार्थ उनको (वयः) दीर्घ जीवन, अन्न, बल आदि (दधासि) धारण कराता है। उनको (पुरूणि अन्ना) बहुत अन्न, खाद्य पदार्थ भी देता है और जिस (सहसा) बल से तू (वि राजसि) सूर्यवत् प्रकाशित होता है, सो वह (तित्विषाणस्य) निरन्तर चमकने वाले (ते) तेरी (त्विषिः) तीक्ष्ण कान्ति (न अधृषे) पराजित होने के लिये नहीं है।

त्वाम॑ग्ने समिधा॒नं य॑विष्ठ्य दे॒वा दू॒तं च॑क्रिरे हव्य॒वाह॑नम् ।
उ॒रु॒ज्रय॑सं घृ॒तयो॑नि॒माहु॑तं त्वे॒षं चक्षु॑र्दधिरे चोद॒यन्म॑ति ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! हे (यविष्ठ्य) बलवन्! (देवाः) विद्वान् लोग (सम्-इधानं) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले, (हव्य-वाहनं) ग्राह्य गुणों के धारक (त्वां) तुझको (दूतं) दूत के समान प्रमुख (चक्रिरे) बनाते हैं

और (उरुज्रयसं) अति वेगवान्, (घृतयोनिम्) तेजस्वी पद पर स्थित, (त्वेषं) कान्तिमान्, (आहुतं) आदर पूर्वक स्वीकृत, (त्वाम्) तुझको ही (चोदयन्-मति) ज्ञान का प्रेरक (चक्षुः) आंख के समान यथार्थ ज्ञान का देने वाला जान (दधिरे) धारण वा स्थापित करते हैं।

त्वाम॑ग्ने प्र॒दिव॒ आहु॑तं घृ॒तैः सु॑म्ना॒यव॑ः सुष॒मिधा॒ समी॑धिरे ।
स वा॑वृधा॒न ओष॑धीभिरु॒क्षि॒तो॒३॒॑ऽभि ज्रयां॑सि॒ पार्थि॑वा॒ वि ति॑ष्ठसे ॥ ७ ॥ २६ ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (घृतैः आहुतं सु-समिधा) घृतों से आहुति किये अग्नि को समिधा से प्रदीप्त करते हैं, वैसे ही हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन्! (प्र-दिवः) उत्तम ज्ञान प्रकाश और व्यवहार के लिये (घृतैः आ-हुतम्) स्नेहों से सिक्त, (त्वाम्) तुझको (सुम्नायवः) सुख चाहने वाले लोग (सु-समिधा) उत्तम दीप्ति से (समीधिरे) प्रकाशित करें। (सः) वह तू (ओषधीभिः) अन्न, सोम, आदि रोगनाशक ओषधियों से (उक्षितः) पोषित होकर, काष्ठों, चरुओं से बढ़े अग्नि के तुल्य (वावृधानः) बढ़ता हुआ, (पार्थिवा) पृथिवी के स्वामियों के योग्य (ज्रयांसि) बलशाली कर्मों को (वि तिष्ठसे) विविध प्रकार से कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

॥ इति तृतीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

इति श्रीप्रतिष्ठितविद्यालंकार—मीमांसातीर्थ—श्री पं० जयदेवशर्मणा कृते
ऋग्वेदालोकभाष्ये तृतीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽष्टकः

❀-❀-❀

अथ प्रथमोऽध्यायः

[६] गय आत्रेयः ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक ।
२ निचृदनुष्टुप् । ३, ४ भुरिगुष्णिक् । ५ स्वराड् बृहती ।
६ विराडनुष्टुप् । ७ पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ओ३म् । त्वाम॑ग्ने ह॒विष्म॑न्तो दे॒वं मर्ता॑स ईळते ।
मन्ये॑ त्वा जा॒तवे॑दसं॒ स ह॒व्या व॑क्ष्यानु॒षक् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (हविष्मतः) ज्ञान, आदि दान देने योग्य पदार्थों के स्वामी (मर्त्तासः) लोग भी (त्वां देवं) तुझ सर्वप्रकाशक की (ईडते) स्तुति करते तुझे चाहते हैं । (जातवेदसं) चराचर के ज्ञाता, वा सबको विदित (त्वा) तुझको (मन्ये) मैं भी जानूं और मान करूं । (सः) वह तू (हव्या) लेने और देने योग्य, अन्नों, धनों को (आनुषक् वक्षि) अनुकूल करके धारण कर और हमें प्राप्त करा ।

अ॒ग्निर्होता॒ दास्व॑तः॒ क्षय॑स्य वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
स य॒ज्ञास॒श्चर॑न्ति॒ यं सं वाजा॑सः श्रव॒स्यवः॑ ॥ २ ॥

भा०—(यं) जिसको (यज्ञासः) उपासक और सत्संगी पुरुष (सं चरन्ति) प्राप्त होते हैं और (यं) जिसको (श्रवस्यवः) ज्ञान और यश की कामना वाले (वाजासः) ऐश्वर्यवान् और युद्धकुशल, अश्व सैन्यादि (सं चरन्ति) अच्छी प्रकार प्राप्त होकर उसके साथ विचरते हैं वह (अग्निः) नायक पुरुष (वृक्तबर्हिषः) वृद्धिशील राष्ट्र के प्रजाजन को विभक्त करने वाले (दास्वतः) ऐश्वर्यों के दाता (क्षयस्य) गृह, वैभव आदि का (होता) देने वाला हो ।

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्त्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जैसे (अरणी) दो अरणी नाम की लकड़ियां (सु-अध्वरं नवं अग्निं जनिष्ट) उत्तम यज्ञयोग्य स्तुत्य अग्नि को उत्पन्न करती हैं (उत) और जैसे (अरणी) परस्पर सुसंगत माता पिता (नवं शिशुं जनिष्ट) नये बालक को उत्पन्न करते हैं वैसे ही (मानुषीणां) मननशील मनुष्य (विशां) प्रजाओं के (धर्त्तारं) धारक (नवं) स्तुत्य (यं) जिस (अग्निं) अग्रणी (सु अध्वरम्) उत्तम रीति से प्रजा को नष्ट न होने देने वाले, पालक राजा को भी (अरणी) राज-परिषद् और प्रजा-परिषद् मिलकर (जनिष्ट स्म) उत्पन्न करें ।

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाऽग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥

भा०—(ह्वार्याणाम् पुत्रः न) कुटिलगामी सर्पों का बच्चा जैसे (दुर्गृभीयते) बड़ी कठिनता से पकड़ में आता है और जैसे अग्नि दाहक होने से कठिनता से पकड़ा जाता है और जैसे अग्नि (वना दग्धा) वनों को भस्म करता है और जैसे (यवसे पशुः न) घास चारा खाने के लिये पशु उत्सुक होता हैं वैसे ही हे (अग्ने) अग्नि तुल्य तेजस्विन् ! तू भी (ह्वार्याणाम्) वक्र गति से जाने वाले सैन्यों का (पुत्रः) पालक होकर (दुर्-गृभीयसे) शत्रुओं के हाथ बड़ी कठिनाई से आ । वे तुझे सहज ही वश न कर सकें । (यः) जो तू (वना इव) जंगलों को अग्नि के तुल्य ही (पुरु) बहुत से शत्रुओं को (दग्धा) भस्मसात् करने वाला हो और (यवसे) शत्रुओं के नाश के निमित्त (पशुः) उत्तम द्रष्टा, विवेकी होकर रह ।

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥ ५ ॥

भा०—जैसे (घूमिनः अर्चयः सम्यक् सं यन्ति) घूम वाले अग्नि की ज्वालाएं अच्छी प्रकार एक साथ ही उठती हैं वैसे ही (यस्य) जिस (धुमिनः) शत्रु को कंपा देने वाले सैन्य बल के स्वामी के (अर्चयः) ज्वालावत् तीक्ष्ण एवं आदर योग्य सैन्य जन (सम्यक्) अच्छी प्रकार व्यवस्थित होकर (सं यन्ति) एक साथ गति करते हैं (यत्) और (यथा) जैसे (ध्मातरि सति) धौंकने वाले के रहते हुए अग्नि (शिशीते) तीक्ष्ण होता है और (ध्माता इव) धौंकने वाले के समान उत्तेजक होकर (धमति) और अधिक भड़कता है वैसे ही (यत्) जो पुरुष (ईम्) सब प्रकार से (त्रितः) सब दुःखों से और सब विद्याओं के पार पहुंचा हुआ (दिवि) आकाश में सूर्यवत् विद्या और विजयादि की कामना के निमित्त (ध्माता इव) शब्दसंयोगकारी गुरुवत्, प्रेरक होकर (धमति) सबको उत्तेजित करे, जो (ध्मातरि) अन्य के उत्तेजक होने पर स्वयं भी (शिशीते) असह्य होता है वही उत्तम 'अग्नि' अर्थात् नायक होने योग्य है ।

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! विद्वन् ! (अहम्) मैं (तव) तेरे (ऊतिभिः) रक्षा और ज्ञानयुक्त उपायों और (मित्रस्य) स्नेहवान् और मृत्यु से बचाने वाले तेरे (प्र-शस्तिभिः) उत्तम शासनों से युक्त होऊँ और हम (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (द्वेषः-युतः) द्वेषयुक्त शत्रुओं के समान (दुरिता) दुर्गम मार्गों और दुष्टाचरणों को तेरे (ऊतिभिः) शासनों से (तुर्याम) पार करें ।

तं नो अग्ने अभी नरो र॒यिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥१॥

भा०—हे (सहस्वः) बलशालिन् ! (अग्ने) अग्रणी ! (सः) वह तू (नः नरः) हमारा नायक होकर (नः) हमें (तम् रयिम्) वह ऐश्वर्य (अभि आ भर) प्राप्त करा तू (क्षेपयत्) हमें सन्मार्ग से चला। (सः पोषयत्) हमें परिपुष्ट

कर (पृत्सु) संग्रामों में (नः) हमारे (वाजस्य सातये) अन्नादि ऐश्वर्यादि, वल की (नः वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) हो । इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०] गय आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृदनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप् । २, ३ भुरिगुष्णिक् । ४ स्वराड्वृहती । ७ निचृत् पंक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि तुल्य विद्वन् ! हे (अध्रिगो) न धारण करने योग्य, असह्य वल वाले ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ओजिष्ठम्) उत्तम वल युक्त (द्युम्नम्) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा और (परीणसा) वहुत अधिक (राया) ऐश्वर्य के साथ (नः) हमारे (वाजाय) वल और ज्ञान वृद्धि का उचित (पन्थाम्) मार्ग (प्र रत्सि) वना ।

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यं१ मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥ २ ॥

भा०—हे (अद्भुत) अपूर्व वलशालिन् ! हे (अग्ने) नायक ! विद्वन् ! तू (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से और (दक्षस्य) चतुर पुरुष के (मंहना) महान् सामर्थ्य से वड़ा हो । तू (यज्ञियः) आदर सत्कार के योग्य (मित्रः न) सर्वस्नेही सखा के समान (असुर्यं) असुरों के नाशक वल का (क्राणा) सम्पादन करता हुआ पुरुष (त्वे) तेरे आश्रय पर (आ अरुहत्) आगे वढ़े ।

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे प्रभो ! (ये) जो (सूरयः) विद्वान् (नरः) नेता लोग (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों और ज्ञानों से (मघानि) धनों को (प्र

आनशुः) प्राप्त करते हैं (नः) हमारे (एषां) उन लोगों के (गयं पुष्टिं च) पुत्र, गृह आदि समृद्धि को (वर्धय) बढ़ा।

ये अ॑ग्ने चन्द्र ते॒ गिरः॑ शु॒म्भन्त्यश्व॑राधसः।
शुष्मे॑भिः शु॒ष्मिणो॒ नरो॑ दि॒वश्चि॒द्येषां॑ बृ॒हत्सु॑की॒र्तिर्बोध॑ति॒ त्मना॑ ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे नायक (चन्द्र) आह्लादक! (ते) तुझे (अश्वराधसः) अश्वों को साधने वाले, वीर पुरुष और (गिरः) स्तुतियां और स्तुतिकर्त्ता जन भी (शुम्भन्ति) सुशोभित करें और (शुष्मिणः नरः) वे बलवान् नायक लोग (शुष्मेभिः) बलों से युक्त होकर (दिवः चित् ते) सूर्य समान तेजस्वी तुझे सुशोभित करें (येषां) जिनकी (बृहत् सुकीर्त्तिः) उत्तम कीर्त्ति (त्मना बोधति) स्वयं बोध कराती है।

तव॒ त्ये अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ भ्राज॑न्तो यन्ति धृष्णु॒या।
परि॑ज्मानो॒ न वि॒द्युतः॑ स्वा॒नो र॒थो॒ न वा॑ज॒युः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष! (तव) तेरे (त्ये) वे (धृष्णुया) शत्रुओं का पराजय करने वाले (भ्राजन्तः) सूर्य के समान चमकने वाले, वीर पुरुष (अर्चयः) स्वयं सत्कार योग्य होकर (यन्ति) आगे बढ़ें। वे (परि-ज्मानः) चारों ओर की भूमि के स्वामी होकर (विद्युतः) विद्युतों के समान तेजस्वी हों और (रथः न) वे रथ के समान (स्वानः) शब्द करते हुए और (वाजयुः) धन और संग्राम की कामना करने हारे हों।

नू नो॑ अग्न ऊ॒तये॑ स॒बाध॑सश्च रा॒तये॑।
अ॒स्माका॑सश्च सू॒रयो॒ विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! (सबाधसः) शत्रुपीड़क उपायों में कुशल, (अस्माकासः) हमारे वीर लोग (नः ऊतये) हमारी रक्षा (रातये च) और ऐश्वर्य दान के लिये हों और (सूरयः) विद्वान् लोग भी (विश्वाः आशाः) सब कामनाओं को (तरीषणि) पार करने में समर्थ हों।

त्वं नो॑ अग्ने अङ्गिरः स्तु॒तः स्तवा॑न॒ आ भ॑र ।
होत॒र्विभ्वा॒सहं॑ र॒यिं स्तो॒तृभ्य॒: स्तव॑से च न उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ॥
७ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (अङ्गिरः) प्राणप्रिय ! (त्वं) तू (स्तुतः) प्रशंसित होकर (स्तवानः) अन्यों को विद्या आदि का उपदेश करता हुआ (नः) हमें (विभ्व-सहं) बड़ों-बड़ों को पराजित करने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा और (नः स्तोतृभ्यः) हमारे स्तुतिकर्त्ता विद्वान् उपदेष्टाओं को भी (स्तवसे) उत्तम उपदेश के निमित्त (रयिम् आ भर) धन दे और (पृत्सु) संग्रामों वा प्रजाओं के बीच (च) भी (नः वृधे) हमारी बढ़ती के लिये (एधि) हो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[११] सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृज्जगती। ४, ६ विराड् जगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

जन॑स्य गो॒पा अ॑जनिष्ट॒ जागृ॑वि॒र॒ग्निः सु॒दक्षः॑ सु॒वि॒ताय॒ नव्य॑से ।
घृ॒तप्र॑तीको बृह॒ता दि॑वि॒स्पृशा॑ द्यु॒मद्वि भा॑ति भर॒तेभ्य॒: शुचिः॑ ॥ १ ॥

भा०—जैसे (अग्निः सुदक्षः) आग जलाने में समर्थ, (जनस्य गोपाः) मनुष्य का रक्षक, (सु-विताय) सुख से मार्ग गमन में सहायक (घृत प्रतीकः) घृत से उज्ज्वल, (दिवि-स्पृशा वृहता द्युमत् शुचिः) प्रकाशप्रद बड़े तेज से चमकने वाला, पवित्र होकर (वि भाति) चमकता है वैसे ही (सु-दक्षः) उत्तम क्रियाकुशल (अग्निः) अग्रणी पुरुष भी (जनस्य गोपाः) प्रजा का पालक, (जागृविः) सावधान (अजनिष्ट) हो। वह (नव्यसे) स्तुत्य पद पाने और (सुविताय) सुख से मार्ग पर जाने में सहायक हो। वह (घृत-प्रतीकः) तेज से युक्त मुख वाला (दिवि-स्पृशा) ज्ञानप्रकाश के आश्रय पर सूक्ष्मतत्व तक पहुँचते वाले (वृहता) बड़े भारी सामर्थ्य से सूर्य के समान (शुचिः) पवित्र होकर (भरतेभ्यः) पोषक मनुष्यों के लिये (वि भाति) विविध प्रकार से विराजे।

यज्ञस्य॑ केतुं प्र॑थमं पुरोहि॑तमग्निं नर॑स्त्रिषधस्थे समी॑धिरे ।
इन्द्रे॑ण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता॑ यजथा॑य सुक्रतुः ॥ २ ॥

भा०—(नरः) विद्वान् लोग (त्रि-सधस्थे) साथ बैठने के तीनों स्थानों, सभा भवनों में (यज्ञस्य) सम्मति देने आदि व्यवस्था के (केतुम्) जानने और जनाने वाले (पुरःहितम्) प्रधान पद पर स्थित (अग्निम्) ज्ञानयुक्त, (प्रथमं) श्रेष्ठ और (इन्द्रेण) विद्युत् के तुल्य तेजस्वी, राजा और (देवैः) विद्वान् पुरुषों के साथ (स-रथम्) समान रथ में जाने वाले मान्य पुरुष को (सम्-ईधिरे) मिलकर अग्नि तुल्य प्रदीप्त करें। उसे उचित साधनों द्वारा उत्साहित करें। (सः) वह (सु-क्रतुः) कर्म कुशल, प्रज्ञावान् पुरुष (होता) अन्यों को वेतनादि देने वाला होकर (बर्हिषि) वृद्धियुक्त प्रधान आसन के ऊपर (यजथाय) राष्ट्र में व्यवस्था करने के लिये (नि सीदत्) अध्यक्ष रूप से विराजे ।

असं॑मृष्टो जायसे मा॒त्रोः शुचि॑र्म॒न्द्रः क॒विरुद॑तिष्ठो वि॒वस्व॑तः ।
घृ॒तेन॑ त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते॑ के॒तुर॑भवद्दि॒वि श्रि॒तः ॥ ३ ॥

भा०—(मात्रोः असं-मृष्टः) जैसे अग्नि अपने उत्पादक काष्ठों से विना स्पर्श किये ही उत्पन्न होता है वा बालक जैसे अपने माता पिता से प्रथम (असं-मृष्टः) कान्तिरहित, संस्कार-रहित ही उत्पन्न होता है और बाद में यज्ञादि द्वारा संस्कार किया जाता है वैसे ही हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप भी (असं-मृष्टः) उपनयन आदि ब्राह्म संस्कार से रहित ही (जायसे) उत्पन्न होते हैं और फिर (विवस्वतः) सूर्यवत् प्रकाशक, विविध वसु, ब्रह्मचारियों के स्वामी आचार्य से विद्या पढ़ कर (शुचिः) आचारवान् (मन्द्रः) सुशिक्षित, (जायसे) उत्पन्न होते हो और (उत् अति-ष्ठाः) उत्तम पद पर स्थित होते हो। हे (आहुत) आदर पूर्वक सब ओर से आचार्य द्वारा गृहीत, जैसे यज्ञकर्त्ता लोग अग्नि को घी से बढ़ाते हैं वैसे ही विद्वान् लोग (त्वा) तुझको (घृतेन) प्रदान

योग्य ज्ञानैश्वर्य से (अवर्धयन्) बढ़ावें और (धूमः केतुः दिवि श्रितः) जैसे अग्नि का धूम ध्वजावत् आकाश में रहता है वैसे ही (ते) तेरा (धूमः) शत्रुओं को कंपा देने वाला (केतुः) ज्ञान (दिवि श्रितः) प्रकाश युक्त मन में स्थित (अभवत्) रहे।

अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥ ४ ॥

भा०—(साधुया) सब कार्यों को साधने वाला, (अग्निः) विद्वान् पुरुष (नः यज्ञम्) हमारे सुसंगत यज्ञ, राष्ट्र व्यवस्था में, (उप वेतु) प्राप्त हो। (नरः) नायक पुरुष ऐसे (अग्नि) अग्नि को यज्ञाग्निवत् (गृहे गृहे वि भरन्ते) प्रति गृह में रक्खें और उसका पालन पोषण करें। (हव्य-वाहनः) ग्राह्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला (अग्निः) ज्ञानी अग्नि के तुल्य ही (दूतः) शत्रु-संतापक और सदेशहारक (अभवत्) हो। (वृणानाः) वरण करने वाले जन भी (कविक्रतुम्) दूरगामी बुद्धि वाले (अग्निम्) तेजस्वी पुरुष को ही (वृणते) नायक चुनें।

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! नायक ! प्रभो ! (इदम्) यह (मधुमत्-तमं वचः) मधुरता से युक्त वचन (तुभ्यम् इत्) तेरे ही लिये है। (इयम् मनीषा) यह ज्ञान वा मन की प्रेरणा भी (तुभ्यं हृदे शम् अस्तु) तेरे हृदय को शान्तिदायक हो। (महीः अवनीः सिन्धुम् इव) जैसे वड़ी भूमियां या नदियाँ जलों से समुद्र को पूर्ण करती हैं वैसे ही (गिरः) वाणियां भी (त्वां आ पृणन्ति) तुझको पूर्ण बना रही हैं और (शवसा) ज्ञान और बल से (त्वां वर्धयन्ति च) तुझ को बढ़ा रही हैं।

त्वाम॑ग्ने॒ अङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने ।
स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत्त्वामा॑हुः॒ सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः ॥६॥३॥

भा०—(वने-वने शिश्रियाणं गुहा-हितम् अंगिरसः अनु अविन्दन्) जैसे प्रत्येक काष्ठ में विद्यमान अग्नि को अग्नि जलाने में कुशल पुरुष अरणियों के छिद्र रूप गुहा में उसको अनुकूल साधनों से प्राप्त करते हैं (सः मथ्यमानः जायते, तं सहसः पुत्रम् आहुः) वह अग्नि मथा जाकर उत्पन्न होता है और उसको बल से उत्पन्न पुत्रवत् ही प्राप्त करते हैं वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (अंगिरसः) ज्ञानी, तेजस्वी वा प्राण विद्या के वेत्ता लोग (वने-वने) प्रत्येक वन अर्थात् सेवने योग्य ऐश्वर्य वा उत्तम पद पर (शिश्रियाणं) आश्रय लेने वाले (गुहा हितम्) सुरक्षित स्थान में स्थित (त्वाम्) तुझको (अनु अविन्दन्) तेरे अनुकूल होकर प्राप्त हों। (सः) वह तू (मथ्यमानः) स्पर्द्धा द्वारा मथित होकर, वाद-विवाद के अनन्तर (जायसे) प्रकट होता है। हे (अङ्गिरः) प्राणवत् प्रिय ! (सहसः पुत्रम्) सैन्य को एक मात्र कष्टों से बचाने वाले (त्वाम्) तुझको ही विद्वान् लोग (महत्-सहः) बड़ा बल (आहुः) बतलाते हैं। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१२] सुतंम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

प्राग्नये॑ बृह॒ते य॒ज्ञिया॑य ऋ॒तस्य॒ वृष्णे॒ असु॑राय॒ मन्म॑ ।
घृ॒तं न य॒ज्ञ आ॒स्ये॒३॒॑ सुपू॑तं॒ गिरं॑ भरे वृष॒भाय॑ प्रती॒चीम् ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य वृष्णे असुराय यज्ञे सुपूतं घृतं न) जैसे जल वर्षाने वाले, सबको प्राणप्रद मेघ की वृद्धि के लिये उत्तम रीति से पवित्र घृत यज्ञ में देते हैं वैसे ही मैं (बृहते) सबसे बड़े, (यज्ञियाय) दान, सत्संग, देववत् पूजा के योग्य (ऋतस्य) ज्ञान, अन्न वा धन के (वृष्णे) वर्षण करने वाले, (असुराय) सबको जीवनवृत्ति देने वाले समीप बसे अन्तेवासियों में विद्यादान करने वाले,

(वृषभाय) सर्वपुरुषोत्तम (अग्नये) ज्ञानवान् पुरुष राजा और आचार्य के (आस्ये) मुख में विद्यमान (प्रतीचीम्) सन्मुख स्थित पुरुष को प्राप्त होने वाली (गिरं) आज्ञामय वाणी और (मन्म) मनन योग्य ज्ञान को (भरे) ग्रहण करूं।

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः॥ २॥

भा०—हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! तू (ऋतम् ऋतम् इत्) सत्य ही सत्य (चिकिद्धि) ज्ञान कर और (पूर्वीः ऋतस्य धाराः) पूर्व विद्यमान एवं ज्ञान से पूर्ण और पूर्वाचार्यों से उपदिष्ट, वेद वाणियों को (अनु तृन्धि) गुरु-उपदेश के अनुसार विच्छिन्न कर, खोल-खोल कर उनका रहस्य प्राप्त कर (अहं) मैं (अरुषस्य) रोषरहित सौम्य (वृष्णः) मेघवत् ज्ञानवर्षक आचार्य के (ऋतम्) सत्योपदेश को (यातुं सहसा न सपामि) एक ही वार सारा प्राप्त नहीं कर सकता हूँ एकदम और (न द्वयेन) न दो प्रकार के झूठ सच मिले, दुरंगे, छलमय व्यवहार से ही (सपामि) ज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ।

कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः॥ ३॥

भा०—(भुवः नवेदाः ऋतेन कया ऋतयन्) भूमि को प्राप्त न करने वाला, भूमिरहित पुरुष केवल जल से भला कैसे अन्न प्राप्त कर सकता है? ऐसे ही हे (अग्ने) विद्वन्! आचार्य! आप (नव्यः) नये-नये ज्ञानों को प्राप्त करने वाले और नये-नये शिष्यों के हितकारी होकर भी (भुवः न-वेदः) ज्ञान-बीजों को उत्पन्न करने योग्य शिष्य रूप भूमि को विना प्राप्त किये ही भला (कया) किस उपाय से (उचथस्य) उपदेश योग्य वेद के (ऋतेन) ज्ञान से (ऋतयन्) अन्यों को सत्य ज्ञानयुक्त कर सकते हो। आप (देवः) सब ज्ञानों के दाता सूर्य के तुल्य तेजस्वी और (ऋतूनां) ऋतुओं के बीच स्थित सूर्यवत्

समस्त सत्य ज्ञानों के (ऋतु-पाः) पालक हैं। आप (मे वेद) मुझे प्राप्त कीजिये. मुझ शिष्य को ज्ञानोपदेश की उचित भूमि जानिये। (अहं) मैं शिष्य (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य और (सनितुः) सुखपूर्वक सेवा करने वाले शिष्य के (पतिं) पालक गुरु को (न वेद) नहीं पा रहा हूं।

के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! हे आचार्य (ते रिपवे) तेरे शत्रु के (बन्धनासः के) बांधने वाले कौन, वा क्या-क्या बन्धनोपाय हैं? और (ते के पायवः) तेरे कौन-कौन से रक्षक, वा क्या-क्या रक्षोपाय हैं। (के द्युमन्तः सनिषन्त) कौन-कौन तेजस्वी लोग तेरी सेवा करते हैं। हे (अग्ने) नायक! तेरे शासन में (के) कौन-कौन हैं जो (अनृतस्य धासिम् पान्ति) असत्य व्यवहार के धारण करने वाले को बचाते हैं और (के) कौन ऐसे हैं जो (असतः वचसः गोपाः) असत्य वचन का असत् पालन करते हैं।

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन्।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) आचार्य!' तेजस्विन्! राजन्! (ते एते) तेरे ये (विषुणाः) विविध विद्याओं से सम्पन्न (सखायः) मित्र जन (शिवासः) कल्याण करने वाले (सन्तः) सज्जन ही होते हैं और जो (अशिवाः) कल्याणकारक नहीं हैं और (ऋजूयते) धर्माचरण करने वाले पुरुष को (वृजनानि) वर्जने योग्य पापाचारों वा असत् मार्गों का (ब्रुवन्तः) उपदेश करते रहते हैं (एते) वे सब (स्वयम्) आप से आप (वचोभिः) अपने ही वचनों से (अधूर्षत) नष्ट हों।

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! राजन्! विद्वन्! (यः) जो (अरुषस्य) अहिंसक, प्रेमयुक्त (वृष्णः) मेघवत् ऐश्वर्य के देने वाले, उदार (ते) तेरे (यज्ञम्) सत्संग को (नमसा ईट्टे) विनय से प्राप्त करता है (सः) वही (ऋतम्) धन और ज्ञान-समृद्धि को (पाति) पाता है। (तस्य प्र-सर्स्राणस्य) तेरी परिचर्या करते हुए उसका (क्षयः पृथुः) रहने का भी विशाल गृह और उस (नहुषस्य) पुरुष का (शेषः साधुः) पुत्र आदि भी उत्तम (आ एतु) प्राप्त होता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१३] सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृद् गायत्री। २, ६ गायत्री। ३ विराड् गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि।
अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! प्रभो! हम लोग (अर्चन्तः अर्चन्तः) निरन्तर सेवा करते हुए, (त्वा हवामहे) तुझे स्वीकार करते तुझे अपनाते हैं और (त्वा समिधीमहि) यज्ञाग्निवत् तुझे प्रदीप्त करते हैं। (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये तुझे अपने हृदय में प्रज्वलित करते हैं।

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः।
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ २ ॥

भा०—हम (द्रविणस्यवः) ऐश्वर्य और ज्ञान की कामना वाले होकर (दिवि-स्पृशः) आकाश में व्यापक, सूर्यवत् तेजस्वी प्रभु से आनन्द का लाभ करने वाले, (देवस्य) ज्ञानप्रद (अग्नेः) तेजस्वी, विद्वान्, राजा और प्रभु का (सिध्रं) नित्य सिद्ध, (स्तोमं) स्तुति योग्य वचन और ज्ञानोपदेश वेद का (मनामहे) मनन करें।

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा।
स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाशक और (मानुषेषु) मनुष्यों में (होता) ज्ञानों और ऐश्वर्यों का देने वाला है वह (नः गिरः) हमारी वाणियों को (आ जुषत) स्वीकार करे। (सः) वह (दैव्यं जनम्) विद्वानों के हितकारी लोगों का भी (यक्षत्) आदर करे और उनको सुख, ज्ञान, ऐश्वर्यादि दान करे।

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः।
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान नायक! विद्वन्! प्रभो! (त्वम्) तू (सप्रथाः असि) कीर्त्तिमान्, सब प्रकार से बड़ा है। तू (जुष्टः) सबके प्रेम और आदर के योग्य, (होता) सब सुखों का दाता और (वरेण्यः) वरने योग्य वा श्रेष्ठ मार्ग में ले चलने हारा है। (त्वया) तुझ साक्षी द्वारा विद्वान् लोग (यज्ञं) संगति और दान प्रतिदान (वितन्वते) करते हैं।

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम्।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! विद्वन्! प्रभो! (विप्राः) विद्वान् लोग (सु-स्तुतम्) उत्तम स्तुति योग्य, (वाज-सातमं) बल आदि के दायक, विभाजकों में सर्वोत्तम (त्वाम्) तुझको ही (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं। (सः) वह तू (नः) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम बल (रास्व) दे।

अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि।
आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—(नेमिः अरान् इव परिभूः) परिधि जैसे चक्र के अरों से सब ओर रहती है वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (देवान्) धन आदि के इच्छुक जनों के (परिभूः असिः) ऊपर सबका रक्षक हो, तू (चित्रम् राधः) अद्भुत ऐश्वर्य (आ ऋञ्जसे) सब प्रकार से देता है। इति पञ्चमो वर्गः॥

[१४] सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६ निचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ३ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं स्तोमे॑न बोधय समिधा॒नो अम॑र्त्यम् ।
ह॒व्या दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ १ ॥

भा०—जो (नः) हमारे (हव्या) ग्रहण करने और देने योग्य अन्नादि नाना पदार्थों को (देवेषु) दिव्य पदार्थों, विद्वानों और उन पदार्थों की कामना करने वालों में (दधत्) धारण कराता, उनको देता है, उस (अमर्त्यम्) असाधारण (अग्नि) तेजस्वी विद्वान् वा शिष्य को (स्तोमेन) उत्तम उपदेश द्वारा (समिधानः) अग्नि के समान प्रदीप्त करता हुआ (बोधय) ज्ञानवान् कर।

तम॑ध्व॒रेष्वी॑ळते दे॒वं मर्ता॒ अम॑र्त्यम् ।
यजि॑ष्ठं॒ मानु॑षे॒ जने॑ ॥ २ ॥

भा०—(मानुषे जने) मनुष्यों में (यजिष्ठं) सबसे बड़े दानी, पूज्य, सत्सग योग्य, (अमर्त्यं) मरणरहित, (देवं) दानशील, तेजस्वी, सर्वप्रकाशक (तं) उसको (अध्वरेषु) हिंसादि से रहित, यज्ञ, प्रजापालनादि कार्यों में (मर्ता) लोग (ईडते) चाहते और स्तुति करते हैं।

तं हि शश्व॑न्त॒ ईळ॑ते स्रु॒चा दे॒वं घृ॑त॒श्चुता॑ ।
अ॒ग्निं ह॒व्याय॒ वोळ्ह॑वे ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (शश्वन्तः) स्तुतिशील जन (हव्याय वोळ्हवे) हव्य चरू आदि पदार्थों को भस्म कर सर्वत्र फैला देने के लिये (घृत-श्चुता स्रुचा) घृत चुआ देने वाले स्रुचा नाम पात्र से (देवं ईडते) देदीप्यमान अग्नि को प्राप्त करते हैं वैसे ही (शश्वन्तः) नित्य जीव गण और विद्वान् लोग (घृत-श्चुता) तेज को देने वाले (स्रुचा) 'स्रुच' गतिशील प्राण के द्वारा (हव्याय वोळ्हवे) खाद्य पदार्थ को अपने भीतर लेने के लिये जठराग्नि को और (घृत-श्चुता स्रुचा हव्याय

वोळ्हवे) तेज और जल के बरसाने वाले सूर्य और मेघ द्वारा अन्न जल के प्राप्त कराने के लिये (तं) उस तेजोमय सूर्य की ही (ईडते) प्रशंसा करते हैं।

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः।
आविन्दुद्गा अपः स्वः॥ ४॥

भा०—(अग्निः) आग जैसे (जातः) प्रकट होकर (अरोचत) प्रकाशित होता है और (ज्योतिषा तमः घ्नन्) प्रकाश से अन्धकार को नष्ट करता हुआ, (गाः अपः स्वः अविन्दद्) किरणों, जलों और प्रकाश को प्राप्त करता है ऐसे ही (अग्निः) अग्रणी पुरुष (जातः) प्रसिद्ध होकर (दस्यून् घ्नन्) दुष्टों का नाश करता हुआ (अरोचत) सबको प्रिय लगे, (गाः) भूमियों को, (अपः) कर्मों और प्रजाओं को और (स्वः) सुख ऐश्वर्यों को भी (अविन्दत) प्राप्त करे।

अग्निमीळेन्यं कुविं घृतपृष्ठं सपर्यत।
वेतु मे शृणवद्धवम्॥ ५॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (ईडेन्यं) पूजनीय, (घृत-पृष्ठं) तेजस्वी वा जलवत् शीतल वचनों वाले (अग्नि) ज्ञानी पुरुष की (सपर्यत) पूजा करो। वह (वेतु) हमें प्राप्त हो और (मे हव शृणवत्) मेरे स्तुति वा प्रार्थनावचन को श्रवण करे।

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम्।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः॥ ६॥ ६॥ १॥

भा०—विद्वान् लोग, (घृतेन अग्निम्) घी से अग्नि के तुल्य (विश्व-चर्षणिम्) सब के द्रष्टा, सबके प्रकाशक, सब मनुष्यों के स्वामी को (स्तोमेभिः) स्तोत्रों, स्तुति वचनों तथा (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यानाभ्यासों और (वचस्युभिः) उत्तम वचनों से (वावृधुः) बढ़ावें, उस को फैलावें। इति षष्ठो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[१५] वरुण अङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ स्वराट् पंक्तिः । २, ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्त्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १ ॥

भा०—मैं (कवये) ज्ञानवान् (वेद्याय) ज्ञान को धारण करने कराने में उत्तम (पूर्व्याय) पूर्व विद्वानों के हितैषी (यशसे) यशस्वी पुरुष की (गिरं) उपदेश वाणी को (प्र भरे) धारण करूं, (घृत-प्रसत्तः) अग्नि जैसे घृत से तीव्र होकर काष्ठों को भस्म करता है, वैसे ही विद्वान् और राजा भी घृत अर्थात् अर्घ्य, पाद्य, आदि जलों से उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होता है, वह (असुरः) शत्रुओं को बलपूर्वक उखाड़ने वाला, (सुशेवः) उत्तम सेवनीय, (रायः धर्त्ता) ऐश्वर्य धारण करने वाला, (वस्वः) अपने अधीन बसे भृत्य, शिष्यादि का (धरुणः) धारक, आश्रय और (अग्निः) अग्निवत् प्रकाशक और तेजस्वी हो ।

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो लोग (दिवः धरुणे) सूर्य के धारण करने वाले वा ज्ञान के धारक (धर्मन्) धर्मस्वरूप परमपद में (सेदुषः) स्थिर होने वालेविद्वान् पुरुषों को और (जातैः सह अजातान् नॄन्) प्रसिद्ध पुरुषों के साथ अप्रसिद्ध पुरुषों को भी (अभि ननक्षुः) प्राप्त होते हैं वे (यज्ञस्य) परम पूज्य, संगति योग्य, (परमे व्योमन्) परम, सर्वोत्कृष्ट, विविध प्रकार से सबकी रक्षा करने वाले, (धरुणे) सबके धारक, आश्रय रूप (शाके) शक्तिशाली पद पर स्थित होकर (ऋतं) सत्य न्यायमय तेज को (ऋतेन) सत्यमय वेद से (धारयन्त) धारण करें ।

अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥ ३ ॥

भा०—(अहं:-युवः) पापों को दूर करने वाले वीर पुरुष (पूर्व्याय) अपने पूर्व, मुख्य पद के योग्य पुरुष के हितार्थ (तन्वः) शरीर के (महत्) बड़े भारी (दुःतरम्) दुस्तर, अजेय (वयः) बल को (वि तन्वते) विविध उपायों से प्राप्त करें। (सः) वह अग्रणी नायक पुरुष (नव-जातः) नया ही प्रसिद्ध, नवाभिषिक्त होकर (संवतः) समवाय बनाकर आने वाले शत्रुओं को (तुतुर्यात्) विनाश करे। अपने पक्ष के लोग (सिंहं क्रुद्धं न) क्रुद्ध सिंह के तुल्य पराक्रमी पुरुष के (परि स्थुः) चारों ओर खड़े रहें।

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४ ॥

भा०—जैसे जठर अग्नि, (माता इव धायसे चक्षसे च जनं जनं भरसे) सब मनुष्यों को पोषण करने और चक्षु द्वारा दिखाने के लिये होता और सबको पुष्ट करता है, वह (वयः वयः जरसे) प्रत्येक अन्न को जीर्ण करता, (त्मना विषुरूपः जिगाति) स्वयं नाना रूप होकर देह में व्यापता है वैसे ही (यत्) जो तू विद्वान् पुरुष (पप्रथानः) विख्यात होकर (जनं जनं) प्रत्येक राष्ट्रवासी पुरुष को (माता-इव) माता के तुल्य (भरसे) पालता है और (धायसे) उनको तू धारण करने और (चक्षसे च) उनको देखने के लिये भी समर्थ होता है और जो तू (दधानः) प्रजा जन को धारण करता हुआ (वयः वयः) प्रत्येक प्रकार के बल और ज्ञान का (जरसे) उपदेश करता है और (त्मना) स्वयं (विषु रूपः) नाना रूप होकर (परि जिगासि) सब को उपदेश करता है।

वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (शवसः उरुं अन्तं) बल की विशाल अन्त या विद्युत् की परली सीमा को और (रायः धरुणं) ऐश्वर्य के धारक और (दोघं) सुखदायक

रूप को (वाजः पाति) विद्युत् अर्थात् तीव्र वेगवान् अग्नि पालन करता है, वैसे ही हे राजन् ! (वाजः) संग्राम और ऐश्वर्य ही (ते) तेरे (शवसः) पराक्रम और सैन्य बल के (उरुम्) बड़ी (अन्तं) चरम सीमा को (पातु) सुरक्षित रक्खे । ऐसे ही हे (देव) दानशील राजन् ! (वाजः) बलवान् ज्ञानी पुरुष ही (ते रायः) तेरे ऐश्वर्य के (दीर्घं धरुणं पातु) सम्पूर्ण सुखदायक आश्रय की रक्षा करे । हे राजन् ! जैसे (महः राये) बड़े भारी धन को लेने के लिये (तायुः न) चोर गुफा या घर में पैर धरता है वैसे ही साहसी और सावधान होकर तू भी (महः राये) बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (गुहा) बुद्धि और रक्षार्थ गुहा गर्भ में (पदं दधानः) अपना स्थान रखता हुआ और (चितयन्) स्वयं सब बातों को जानता हुआ, (अत्रिम्) राष्ट्र में विद्यमान प्रजा जन को (अस्पः) प्रसन्न रख । इति सप्तमो वर्गः ॥

[१६] पूरुरात्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ भुरिगुष्णिक् । ५ बृहती ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥

भा०—जैसे अग्नि को (भानवे) तेज या प्रकाश के लिये (मर्त्तासः मित्रं न पुरः दधिरे) मनुष्य मित्र तुल्य जान कर अपने आगे रखते हैं । वैसे ही (यं) जिस विद्वान् पुरुष को (मर्त्तासः) सब मनुष्य (मित्रं न) मित्र के तुल्य जानकर (प्रशस्तिभिः) अधिकारों वा उत्तम स्तुति वचनों सहित (पुरः दधिरे) प्रमुख पद पर स्थापित करते हैं, उस (भानवे) सर्वप्रकाशक, (अग्नये) अग्रणी पुरुष के (बृहद् वयः) बड़े भारी ज्ञान और बल का (अर्च) आदर कर ।

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः भगः न वारम् ऋण्वति) सूर्य जैसे वरणीय, उत्तम जल वा प्रकाश को देता है वैसे ही (सः अग्निः) वह अग्रणी, नायक पुरुष (जनानां) मनुष्यों की (बाह्वोः) बाहुओं में (दक्षस्य होता) बल को देने और जनों के बाहुओं के बल को अपने अधीन रखने वाला होकर (आनुषक्) निरन्तर (भगः न भगः) सूर्यवत् ऐश्वर्यवान् होकर (हव्यं वारम्) ग्रहण योग्य वरणीय धन, ज्ञान को (वि ऋण्वति) विविध प्रकार से देता, विभक्त करता है।

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः॥ ३॥

भा०—(तुवि-ष्वणि) बल पूर्वक बहुत ऐश्वर्यों के सेवन करने वाले (यस्मिन् अर्ये) जिस स्वामी में (विश्वाः) सब प्रजाएं (शुष्म आदधुः) बल को धारण कराती हैं (अस्य) इस (मघोनः) धन-सम्पन्न (वृद्ध-शोचिषः) तेजस्वी पुरुष के (स्तोमं) स्तुति कर्म में (सख्ये) मित्र भाव में रहें।

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः॥ ४॥

भा०—जो (एषां) इन वीर पुरुषों के (सु-वीर्यस्य मंहना) उत्तम पराक्रम के महान् सामर्थ्य से हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू बलवान् हो। (यह्वं न रोदसी) महान् सूर्य पर, पृथिवी और आकाशवत् राजा और प्रजा दोनों (तम् इत्) उस तुम (यह्वं) महान् पर ही आश्रय लेकर (श्रवः परि बभूवतुः) ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे॥५॥८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः एहि) हमें प्राप्त हो। तू (गृणानः) स्वयं स्तुति योग्य होकर (नः वार्यम् आभर) हमें उत्तम ज्ञान और धन दे और

(ये वयं ये च सूरयः) जो हम और अन्य विद्वान् पुरुष हैं वे सब (सचा) मिल कर (स्वस्ति धामहे) कल्याण को धारण करें और तू (पृत्सु) संग्रामों में (नः वृधे एधि) हमारी वृद्धि के लिये यत्नवान् हो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१७] पूरुरात्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक् । २ अनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । ५ भुरिग् बृहती ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! (मर्त्यः) मनुष्य लोग (ऊतये) रक्षा और (अवसे) विद्या ज्ञान के लिये (तव्यांसम् अग्निं) ज्ञानवान्, पुरुष का (सु-अध्वरे कृते) उत्तम हिंसारहित प्रजा पालनादि कर्म के निमित्त (यज्ञैः) उत्तम सत्कारों द्वारा (ईडीत) मान आदर करें ।

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥ २ ॥

भा०—हे (विधर्मन्) विशेष रूप से धर्म का अनुष्ठान करने हारे ! तू (अस्य आसा) इसके मुख या शासन से (स्वयशस्तरः) अपने आप अधिक यशस्वी होकर भी (मन्यसे) मनन कर । तू (तं) उसको (मनीषया) अपनी बुद्धि से (नाकं) दुःखों से रहित, (चित्रशोचिषं) अद्भुत कान्ति वाले (मन्द्रं) आनन्ददायक (आसा मनीषया च परः) मुख, वाणी और बुद्धि से भी परे विद्यमान (मन्यसे) जान ।

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (तुजः) पालन करने में समर्थ और (गिरा) उपदेशप्रद वाणी से (अयुक्त) औरों को युक्त करता है, (यस्य दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी जिसके (रेतसा) बल से (बृहत् अर्चयः) ज्वाला और किरणों के तुल्य तेजस्वी अन्य शासक गण भी (शोचन्ति) प्रकाशित होते हैं (अस्य) उसके (अर्चिषा) ज्ञानमय प्रकाश से (असौ उ वै) वह शिष्य भी (आ युक्त) युक्त होता है।

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥

भा०—(विचेतसः) ज्ञानवान्, (दस्मस्य) दुःख नाशक (अस्य) उस राजा वा विद्वान् के (क्रत्वा) विद्या और पराक्रम से (रथे वसु आ) रथ आदि बल और रमणीय वचन द्वारा सब ओर से धन तथा अन्तेवासी शिष्य वा प्रजाजन आते हैं। (अध) और (विश्वासु विक्षु) समस्त प्रजाओं में (हव्यः) स्तुत्य और युद्धादि कुशल विद्वान्, राजा (प्र शस्यते) प्रशंसा प्राप्त करता है।

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥

भा०—(नः) हमारे बीच (सूरयः) विद्वान् और तेजस्वी लोग (आसा) मुख द्वारा उपदेश से और (आसा) उपवेशन तथा स्थिति प्राप्त करके (वार्यम्) उत्तम धन और ज्ञान (सचन्त) प्राप्त करते हैं। हे विद्वन्! राजन्! तू (ऊर्जः) बल वीर्य को (न-पात्) नष्ट न होने देकर (अभीष्टये) अपने इष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये (पाहि) उसकी रक्षा कर। (स्वस्तये) कल्याण की प्राप्ति के लिये (शग्धि) तू शक्तिशाली बन (उत) और (पृत्सु) संग्रामों और मनुष्यों में तू (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) हो। इति नवमो वर्गः ॥

[१८] द्वितो मृक्तवाहा आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराडनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३ भुरिगुष्णिक्। ५ भुरिग्-बृहती ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

प्रातर॒ग्निः पु॑रुप्रि॒यो वि॒शः स्त॑वे॒ताति॑थिः ।
विश्वा॑नि॒ यो अम॑र्त्यो ह॒व्या मर्ते॑षु॒ रण्य॑ति ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तेषु) सामान्य मनुष्यों में, (अमर्त्यः) चिरंजीव असाधारण भोक्ता होकर योग्य पदार्थों में आत्मा के तुल्य (विश्वानि) सब प्रकार के (हव्या) ऐश्वर्य (रण्यति) चाहता है, वह (अतिथिः) शत्रु कुलों पर आक्रमण करने हारा (पुरुः प्रियः) बहुतों का प्रिय होकर (विशः) सबको बसाने वाला, राजा (प्रातः स्तवेत) सबसे प्रथम प्रजाओं को आज्ञा करे और वह भी (प्रातः स्तवेत) प्रातः स्मरण योग्य है ।

द्वि॒ताय॑ मृ॒क्तवा॑हसे॒ स्वस्य॑ द॒क्षस्य॑ मं॒हना॑ ।
इन्दुं॒ स ध॑त्त आनु॒षक्स्तो॒ता चि॑त्ते अमर्त्य ॥ २ ॥

भा०—हे (अमर्त्य) दीर्घजीविन् ! विद्वन् ! जो (ते) तेरे अधीन (आनुषक्) तेरे से निरन्तर सम्बद्ध शिष्य (स्तोताचित्) विद्या का अभ्यास करता है, (सः इन्दुं धत्ते) वह तेरे प्रवाहित ज्ञान रस को औषधि रस के तुल्य ही धारण करता है। (स्वस्य दक्षस्य मंहना) अपने दाहक बल के महान् सामर्थ्य से जैसे अग्नि (इन्दुं) प्रकाश को चाहता है वैसे ही (द्विताय मृक्त-वाहसे) दो जन्मों को प्राप्त, उपनीत और शुद्ध विद्या के ग्रहण करने वाले शिष्य के उपकारार्थ (स्वस्य दक्षस्य मंहना) अपने ज्ञान के महान् सामर्थ्य से (सः) वह आचार्य भी (इन्दुं धत्ते) अपने ज्ञान को धारण करावे ।

तं वो॑ दी॒र्घायु॑शोचिषं गि॒रा हु॑वे म॒घोना॑म् ।
अरि॑ष्टो॒ येषां॒ रथो॒ व्य॑श्वदाव॒न्नीय॑ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्वदावन्) व्यापक विज्ञान आदि गुणों के दाता, अश्व सैन्य, व्यापक राष्ट्र के देने वाले राजन् ! प्रभो ! (येषां) जिन वीर पुरुषों का (रथः) रथ और देह (अरिष्टः) सुखपूर्वक (वि ईयते) विविध मार्गों में गति करता है, (तेषाम्) उन (वः) आप (मघोनाम्) ऐश्वर्यवान् पुरुषों में

(तम्) उस (दीर्घायुशोचिषम्) दीर्घायु से देदीप्यमान, तेजस्वी पुरुष का मैं प्रजाजन (गिरा हुवे) उत्तम वाणी से सत्कार करूं ।

चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

भा०—(येषु) जिनमें (चित्रा दीधितिः) आश्चर्यकारी धारण योग्य वाणी है और (ये) जो (आसन्) मुख में (उक्था पान्ति) उत्तम वेद वचनों की रक्षा करते हैं और जो (स्वर्णरे) सूर्यवत् तेजस्वी नायक पुरुष के अधीन (स्तीर्णम् बर्हिः) विस्तृत प्रजाजन और (श्रवांसि दधिरे) ऐश्वर्यों को धारण करते हैं उनके गुरु वा नायक पुरुष का हम आदर करें ।

ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥१०॥

भा०—(ये) जो (मे) मुझे (सध-स्तुति) एक समान वर्णन योग्य (अश्वानां द्युमत् पञ्च-शतम्) अश्ववत् वेगयुक्त रथादि पदार्थों के ५०० का दल (ददुः) प्रदान करते या अपने अधीन शासन करते हैं, हे (अमृत) आयुष्मन् ! हे (अग्ने) नायक ! राजन् ! तू उन (मघोनाम्) धनैश्वर्य सम्पन्न (नृणां) पुरुषों का (महिः) बड़ा (बृहत्) विशाल (नृवत्) बहुत से नायकों और नृसैन्य से युक्त (श्रवः) प्रसिद्ध सैन्य (कृधि) बना । इति दशमो वर्गः ॥

[१९] वव्रिरात्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ३ अनुष्टुप् । ४ भुरिगुष्णिक् । ५ निचृत्पंक्तिः ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत ।
उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥ १ ॥

भा०—(वव्रेः) रूपवान् देह की (अवस्थाः) ज्यों ज्यों अवस्थाएं (अभि प्र जायन्ते) उत्तरोत्तर आती जाती हैं त्यों त्यों (वव्रिः) देहवान् पुरुष वा गुरुरूप से स्वीकार करने वाला शिष्य (वव्रेः) शिष्य को अंगीकार करने वाले गुरुजन से (प्र चिकेत) उत्तम उत्तम ज्ञान प्राप्त करे। वह (मातुः उपस्थे) माता की गोद में बालक के समान ज्ञानदाता गुरु के समीप (वि चष्टे) विविध विद्याओं का साक्षात् करे।

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति।
आ दृळ्हां पुरं विविशुः॥ २॥

भा०—जो (चितयन्तः) उत्तम ज्ञान सम्पादन करते हुए लोग (वि जुहुरे) परस्पर लेते, देते रहते हैं और (अनिमिषं) रात दिन वा विना आंखें झपके, निश्छल रह कर (नृम्णं पान्ति) धनैश्वर्य और ज्ञान की रक्षा करते हैं वे ही (दृढां पुरं) दृढ़ नगरी में (आ विविशुः) प्रवेश करते हैं।

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः॥ ३॥

भा०—(श्वैत्रेयस्य) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ के जल से जैसे (कृष्टयः जन्तवः) किसान लोग, प्रजाए, जन्तुगण (द्युमत् वर्धन्त) अच्छी प्रकार बढ़ते हैं वैसे ही मेघ तुल्य दानशील राजा वा गुरु की (कृष्टयः) प्रजाएं भी (द्युमत् आ वर्धन्त) खूब वृद्धि को प्राप्त होती हैं और (वाजयुः मध्वा न) जैसे अन्नाभिलाषी जन जल से अन्न समृद्धि प्राप्त करता, वह भी स्वयं (निष्क-ग्रीवः) सुवर्णादि के आभूषण गले में पहरे, (बृहद्-उक्थः) बहुत उत्तम वचन कहने वाला और (वाजयुः) ऐश्वर्य की कामना करने वाला (एना मध्वा) इस मधुर अन्न-सम्पदा, मधुर वचन और शत्रुनाशक बल से (वर्धते) बढ़ता है।

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः॥ ४॥

भा०—जैसे बालक (जाम्योः सचा) उत्पन्न करने वाले माता पिता के बीच में स्थित (प्रियं अजामि काम्यं) प्रिय, निर्दोष, कामना योग्य (दुग्धं न) दुग्ध को प्राप्त करके बढ़ता है और जैसे (जाम्योः सचा घर्मः न) भूमि और आकाश दोनों के बीच में सेचन समर्थ मेघ वा सूर्य (दुग्धं काम्यं प्राप्य वर्धते) उत्तम जल को पाकर बढ़ता है और जैसे (वाज-जठरः) अन्न को पेट में पचाने वाला पुरुष बढ़ता है वैसे ही (घर्मः न) सूर्यवत् तेजस्वी, (वाज-जठरः) ऐश्वर्य को अपने वश कर भोगने वाला, (अ दब्धः) शत्रुओं से पीड़ित न होकर (शश्वतः) न्याय से स्थिर, (दभः) दुष्टों का दण्ड दाता होकर (जाम्योः सचा) बहिन-भाईवत् विराजने वाली धर्मसभा और राजसभा इन दोनों के (सचा) बीच समान भाव से मध्यस्थ होकर (दुग्धं न) दूध के तुल्य हर्षादि से प्राप्त (काम्यं) कामना योग्य (प्रियं) सर्व प्रिय (अजामि) निर्दोष निर्णय को प्राप्त करके वृद्धि को प्राप्त होता है।

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥११॥

भा०—जैसे अग्नि (भस्मना वायुना) भस्म अर्थात् प्रकाश और वायु से (सं वेविदानः) अच्छी प्रकार आत्मलाभ करता हुआ, (क्रीडन् आभुवः) खेलता सा है। (वक्षणे स्थाः वक्ष्यः तिग्माः न) उसके बीच में स्थित ज्वालाएं जैसे तीखी होती हैं वैसे ही हे (रश्मे) सूर्यवत् प्रकाशक तेजस्विन्! हे रस्से के समान दुष्टों का दमन करने हारे! तू भी (भस्मना) तेजस्वी (वायुना) ज्ञान युक्त वा वेगयुक्त सैन्य से (सं-वेविदानः) अच्छी प्रकार बल प्राप्त करके (नः) हमारे बीच (क्रीडन्) विनोद करता हुआ (आ भुवः) आदरयुक्त हो। (अस्य) इस नायक के (ताः) वे नाना (वक्षणे-अस्थाः) आज्ञा और राज्य भार को धारण करने के कार्य में स्थित (वक्ष्यः) सेनाएं (सु-संशिताः) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण, (तिग्माः) तीखी ज्वालाओं के समान ही (धृषजः) शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ एवं प्रसिद्ध (सन्) हों। इत्येकादशो वर्गः॥

[२०] प्रयस्वन्त अत्रय ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ४ पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रमुख नायक ! हे (वाज-सातम) ज्ञान और ऐश्वर्य को देने में सर्वश्रेष्ठ (त्वं) तू (यम्) जिस (रयिम्) धन सम्पदा को (मन्यसे चित्) स्वयं उत्तम जानता है (तं) उस (श्रवाय्यं) श्रवण योग्य (युजम्) हित में लगाने वाले सहायकारी ऐश्वर्य और ज्ञान का (नः) हमें (देवत्रा) विद्वानों के बीच, ज्ञान कामना वाले शिष्य जन को (गीर्भिः पनय) उत्तम वाणियों से उपदेश कर ।

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! (ये) जो (वृद्धाः) मान, ज्ञान आदि से सम्पन्न वा आयु आदि से वृद्ध, सम्पन्न होकर भी (ते) तेरे (उग्रस्य शवसः) उग्र बल को देख कर (न ईं ईरयन्ति) विचलित नहीं होते (ते) वे (अन्यव्रतस्य) शत्रुवत् द्वेष तुल्य काम करने वाले (द्वेषः) द्वेष और (ह्वरः) कौटिल्य को (अप सश्चिरे) दूर करते हैं ।

होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे नायक ! पुरुष ! (दक्षस्य) बल और ज्ञान के (साधनम्) उत्पन्न करने और उसको वश करने वाले (होतारं) दानशील (त्वा) तुझको दाहक बलप्रद अग्निवत् हम लोग (प्र-यस्वन्तः) प्रयत्नशील होकर (वृणीमहे) वरण करते हैं और (पूर्व्यम्) पूर्व के गुरु जनों द्वारा

शिक्षित, पूर्व, सबसे प्रथम आदर योग्य, तुझको हम (यज्ञेषु) परस्पर के सत्संगों में (गिरा) वाणी द्वारा (हवामहे) आदर से बुलावें, स्तुति करें।

इत्था यथा त ऊतये सहसावन् दिवेदिवे ।
राय ऋतार्य सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः
॥ ४ ॥ १२ ॥

भा०—हे (सहसावन्) शत्रु पराजय करने वाले बल से सम्पन्न ! विद्वन् ! राजन् ! (इत्था) ऐसी रीति से (दिवे दिवे) दिनों दिन तेरे (राये) ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये (ते ऋताय) तेरे धन और ज्ञान की वृद्धि करने के लिये, (ते ऊतये) तेरी रक्षा के लिये (यथा) जैसे भी हो हम यत्न करें, (गोभिः) वाणियों और भूमियों सहित होकर हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्मशील ! (सध-मादः स्याम) हम सब एक साथ हर्ष युक्त हों और (वीरैः) वीरों और पुत्रों सहित (सध-मादः स्याम) एक साथ प्रसन्न रहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[२१] सस आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् । ३ स्वराडुष्णिक् । ४ निचृद् बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि ! विद्युत् ! (त्वा) तुझको हम (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के तुल्य (नि धीमहि) अन्नादि में स्थापित करें और (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य ही जान कर (सम् इधीमहि) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करें। हे (अंगिरः) प्रीतियुक्त अंशों वाले अग्ने ! तू भी (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के तुल्य ही (देवयते) प्रकाश आदि पदार्थ चाहने वाले को (देवान्) किरण, प्रकाश आदि दिव्य पदार्थ (यज) दे।

त्वं हि मानुषे जने अग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! (हि) निश्चय से (त्वं) तू (मानुषे जने) मननशील मनुष्य पर (सु-प्रीतः) सुप्रसन्न होकर (इध्यसे) ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित होता है। हे (सु-जात) पुत्रवत् उत्तम गुणों से प्रसिद्ध जन ! (सर्पिः आसुते) द्रव रूप घृत से आदीप्त गुरु से शिष्य के प्रति प्राप्त होने वाले ज्ञान से प्रकाशित विद्वन् ! (आनुषक्) निरन्तर (स्रुचः) प्राण और इह लोक भी (त्वा यन्ति) तुझे अनुकूल होकर प्राप्त होते हैं।

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥ ३ ॥

भा०—(विश्वे) समस्त (स जोषसः) समान रूप से प्रीति वाले, (देवासः) विद्वान् विद्याभिलाषी और विजयेच्छुक पुरुष (त्वाम्) तुझको (दूतम्) दूतवत् संदेशहर (अक्रत) बनावें और हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! वे (यज्ञेषु) सत्संगों में (सपर्यन्तः) सत्कार करते हुए (देवं त्वां) विजिगीषु तेजस्वी तुझको (ईडते) स्तुति करते और चाहते हैं।

देवं वो देवयज्ययाऽग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्रदीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४॥१३॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के बीच (देवं) ज्ञान के प्रकाशक (अग्निम्) तेजस्वी पुरुष को (मर्त्यः) प्रजाजन (देव यज्यया) तेजस्वी राजा के योग्य सत्कार से (ईडते) सत्कृत करें और उसे चाहें। हे (शुक्र) तेजस्विन् ! तू (समिद्धः) खूब प्रदीप्त होकर (दीदिहि) प्रकाशित हो और (ऋतस्य योनिम्) ज्ञान-ऐश्वर्य के प्रधान पद को (आ असदः) प्राप्त हो और तू (ससस्य) प्रशंसा योग्य, प्रधान पुरुष के (योनिम्) आश्रय योग्य पद को (आ असदः) प्राप्त हो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[२२] आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् ।
२, ३ स्वराडुष्णिक् । ४ बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥

भा०—हे (विश्वसामन्) समस्त सामों, गायनों के ज्ञाता विद्वन् ! (यः) जो (अध्वरेषु) प्रजापीड़नादि से रहित प्रजापालन आदि कार्यों में (ईड्यः) स्तुति योग्य (होता) ऐश्वर्य देने वाले (विशि) प्रजा में (मन्द्र-तमः) अति आनन्दयुक्त एवं स्तुत्य है, उस (पावकशोचिषे) पापनिवारक, सर्वशोधक, तेजस्वी पुरुष का तू (अत्रिवत्) यहां विद्यमान व्यक्ति के तुल्य (अर्च) आदर कर ।

न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥

भा०—(अद्य) आज, (देवव्यचस्तमः) सूर्य के प्रकाशवत् दूर दूर तक व्यापक, (यज्ञः) पूज्य पुरुष (आनुषक्) निरन्तर सबके अनुकूल होकर (प्र एतु) प्रधान पद को प्राप्त हो । हे विद्वान् लोगो ! आप (जातवेदसम्) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक अग्नि के समान ही प्रत्येक तत्व को जानने वाले, (देवम्) तेजस्वी (ऋत्विजम्) ऋतु ऋतु में सूर्यवत् राजसभासदों में पूज्य, (अग्निं) अग्रणी पुरुष को (नि दधात) प्रतिष्ठित करो ।

चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (वरेण्यस्य) वरण योग्य, वा श्रेष्ठ मार्ग में ले चलने वाले, (अवसः) सर्व रक्षक, (ते) तेरे शरण (इयानासः) आते हुए (मर्त्तासः) मनुष्य हम लोग (ऊतये) ज्ञान और रक्षा के लिये (चिकित्विन्-

मनसं) विज्ञान युक्त विद्वानों के समान ज्ञान और मननशक्ति वाले (त्वा देवं) तुझ तेजस्वी का (अमन्महि) आदर करते हैं।

अग्ने चिकिद्ध्य॒स्य न॑ इ॒दं वच॑ः सहस्य ।
तं त्वा॑ सुशिप्र दम्पते॒ स्तोमै॑र्वर्धन्त्यत्रयो गी॒र्भिः शु॑म्भन्त्यत्रय॑ः ॥४॥१४॥

भा०—हे (सहस्य) शत्रुपराजयकारी सैन्य के योग्य सेनापते ! (अग्ने) प्रतापिन् ! नायक ! तू (अस्य चिकिद्धि) इस राष्ट्र के सम्बन्ध में उत्तम रीति से जान और (नः) हमारे (इदं वचः चिकिद्धि) इस उत्तम वचन को जान। हे (सुशिप्र) उत्तम मुखनासिका वाले ! हे (दम्पते) स्त्री के पति के तुल्य प्रजा के स्वामिन् ! (अत्रयः) यहां, इस राष्ट्र के वासी विद्वान् (तं त्वा) उस प्रसिद्ध तुझको (स्तोमैः) स्तुत्य वचनों से (वर्धन्ति) वढ़ाते हैं और (अत्रयः) काम, क्रोध, लोभ तीनों से रहित लोग (त्वा) तुझे (गीर्भिः) वाणियों से (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२३] द्युम्नो विश्वचर्षणिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । ४ निचृत्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अग्ने॒ सह॑न्तमा भ॑र द्यु॒म्नस्य॑ प्रा॒सहा॑ र॒यिम् ।
विश्वा॒ यश्च॑र्ष॒णीर॒भ्या॒३॒॑सा वाजे॑षु सा॒सह॑त् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वाः) समस्त (चर्षणीः) प्रजाओं का कर्षण करने वाली सेनाओं को भी (वाजेषु) ऐश्वर्यों और संग्रामों के बल पर (आसा) प्रमुख पद से (अभि सासहत्) सबके सन्मुख, सर्वोपरि विजयी होता है, वह तू हे (अग्ने) नायक ! तेजस्विन् ! (द्युम्नस्य) ऐश्वर्य को (सहन्तं) जीतने वाले सैन्यगण और (प्रासहा रयिं) सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कर।

तम॑ग्ने पृतना॒षहं॑ र॒यिं स॑हस्व॒ आ भ॑र ।
त्वं हि स॒त्यो अद्भु॑तो दा॒ता वाज॑स्य॒ गोम॑तः ॥ २ ॥

भा०—हे (सहस्वः) शत्रुविजयी सैन्य के स्वामिन् ! (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! (त्वं हि) तू निश्चय से (सत्यः) सत्यशील, (अद्भुतः) आश्चर्यकारी, (गोमतः) भूमि और गौ आदि पशुओं से समृद्ध, (वाजस्य) ऐश्वर्य का (दाता) दान देने हारा है। तू (पृतना-सहं) सेनाओं को वश करने वाले (तं रयिं) उस ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा।

विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! हे नायक ! (विश्वे) समस्त (स-जोषसः) समान प्रीति वाले (वृक्त-बर्हिषः) वृद्धिशील राष्ट्र का संविभाग करने में कुशल (जनासः) पुरुष (होतारं) दानशील, (प्रियं) सर्वप्रिय (त्वां) तुझको (व्यन्ति) प्राप्त होते और (सद्मसु) राजभवनों में (पुरु) बहुत प्रकार के (वार्या) उत्तम धनों को भी (व्यन्ति) प्राप्त करते हैं।

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४॥१५॥

भा०—(सः विश्व-चर्षणिः) वह सबका द्रष्टा होकर (अभिमाति) अभिमान योग्य (सहः) प्रबल सैन्य को (दधे) धारण करे। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (एषु क्षयेषु) इस निवास योग्य भवनों में रहता हुआ हे (शुक्र) शुद्धाचरण वाले ! तू (नः) हमारे (रेवत्) उत्तम धन से युक्त राष्ट्र को (दीदिहि) प्रकाशित कर और हे (पावक) पवित्रकारक ! तू स्वय हमें (द्युमत्) तेजोयुक्त ऐश्वर्य (दीदिहि) प्रदान कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२४] बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहत्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती। ३, ४ पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ १, २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नः) हमारे (अन्तमः) सदा समीप रहने वाला, परम प्रमाण, (उत त्राता) रक्षक और (वरूथ्यः) उत्तम गृहों में वास करने वाला व उत्तम रक्षा-साधनों से सम्पन्न (भव) हो। तू स्वयं (वसुः) लोकों को बसाने वाला, (वसु-श्रवाः) शिष्यों द्वारा गुरुवत् आदर से श्रवण योग्य, वा ऐश्वर्यों से यशस्वी, होकर (अच्छा) भली प्रकार (उत्तमं रयिं नक्षि) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कर और हमें भी (दाः) प्रदान कर।

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३,४॥१६॥

भा०—हे (शोचिष्ठ) तेजस्विन् ! (सः) वह तू (नः) हमें (बोधि) ज्ञानवान् कर। (नः हवम्) हमारे वचन को (श्रुधि) सुन। (नः) हमें (समस्मात् अघायतः) सब प्रकार के पापाचार करने वाले दुष्ट जनों से (उरुष्य) बचा। हे (दीदिवः) सत्य के प्रकाशक ! (नूनम्) निश्चय से हम लोग (सुम्नाय) सुख प्राप्त करने और (सखिभ्यः) अपने मित्रजनों के हितार्थ (त्वा ईमहे) तुझसे प्रार्थना करते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[२५] वसूयव आत्रेया ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृदनुष्टुप् । २, ५, ६, ९ अनुष्टुप् । ३, ७ विराडनुष्टुप् । ४ भुरिगुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (वः) हमें (अवसे) रक्षा के लिये (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी (देवं) विजिगीषु, व्यवहारज्ञ पुरुष का (अच्छा गासि) अच्छी प्रकार उपदेश कर। (सः) वह (नः) हमारा (वसुः) वसाने वाला हो। वह (ऋषूणाम् पुत्रः) वेदार्थ द्रष्टा विद्वानों के बीच पुत्र के समान होकर (ऋतावा) न्याय और धन का स्वामी होकर (रासत्) धन व सुख प्रदान करे। (द्विष) और अप्रीतियुक्त शत्रु जनों को पार करे।

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥ २ ॥

भा०—(देवासः चित् ईधिरे सः सत्यः) जैसे किरणगण सूर्य को प्रदीप्त करते हैं और वह सदा सत्य है ऐसे ही (पूर्वे देवासः) पूर्व के तेजस्वी, विद्वान् और (देवासः) सूर्यादि लोक भी (यम्) जिसको (ईधिरे) बतलाने और प्रकाशित करते हैं (सः हि सत्यः) वह ही निश्चय से सत्यस्वरूप सत् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ है। उस (होतारम्) सर्वदाता (मन्द्र-जिह्वम्) आनन्दप्रद वाणी के बोलने हारे, (सु-दीतिभिः) उत्तम दीप्तियों से युक्त (विभा-वसुम्) उत्तम कान्ति युक्त ऐश्वर्य के स्वामी को (देवासः) समस्त विद्वान्, धनार्थी और ज्ञानार्थीजन (ईधिरे) प्रकाशित करते हैं।

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! प्रतापिन् ! (सः) वह तू (नः) हमें (वरिष्ठया) सर्वोत्तम (धीती) धारणायुक्त शक्ति और (श्रेष्ठया) श्रेष्ठ (सु-मत्या) उत्तम बुद्धि से और (सुवृक्तिभिः) उत्तम पापादि के वर्जने योग्य दमनकारी शक्तियों से युक्त कर और हे (वरेण्य) सर्वश्रेष्ठ ! (नः रायः दीदिहि) हमें ऐश्वर्य प्रदान कर।

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन्।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष ही (देवेषु) प्रकाशयुक्त सूर्यादि पदार्थों में अग्नि के तुल्य विद्वान् पुरुषों में (राजति) राजावत् प्रकाशित होता है। वह (अग्निः) नायक ही (मर्त्तेषु) मरणधर्मा जीवों के भीतर जाठर अग्नि के तुल्य उनके भीतर भी (आविशन्) आदर पूर्वक प्रवेश करता है। वह (अग्निः) सबके आगे विनयशील होकर (नः) हमारा (हव्यवाहनः) यज्ञाग्नि वा यन्त्र में लगे अग्नि, विद्युत् आदि के तुल्य (हव्यवाहनः) ग्रहण योग्य पदार्थों को वहन या धारण करने वाला है। हे विद्वान् पुरुषो! आप उस (अग्निं) नायक की (धीभिः) उत्तम कर्मों और स्तुतियों से (सपर्यत) सेवा शुश्रूषा करो।

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम्।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे॥ ५॥ १७॥

भा०—(अग्निः) विद्वान्, आचार्य एवं नायक वा परमेश्वर (दाशुषे) दानशील पुरुष को (तुविश्रवस्तमम्) बहुत प्रकार के अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों से युक्त और (तुवि-ब्रह्माणम्) बहुत से धनों और वेद ज्ञानों से युक्त, (उत्तमं) उत्तम (अतूर्त्तं) अपीड़ित, (श्रावयत्-पतिं) ज्ञानोपदेश श्रवण कराने वाले पालक से युक्त (पुत्रं) उत्तम पुत्र (ददाति) प्रदान करता है। इति सप्तदशो वर्गः॥

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम्॥ ६॥

भा०—(यः) जो (युधा) युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करने वाले सैन्य से और (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (ससाह) शत्रुओं को पराजित करता है (अग्निः) नायक राजा वा प्रभु, ऐसे (सत्पतिम्) सज्जनों का प्रतिपालक पुरुष (ददाति) प्रदान करे। वही (अग्निः) नायक राष्ट्र को (रघुष्यदं) वेग से जाने वाला (अत्यं) वेगवान् अश्व सैन्य और (अपराजितम्) न हारने वाला (जेतारम्) विजेता सेनापति (ददाति) दे।

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ७ ॥

भा०—(यद्) जो भी (वाहिष्ठम्) सबसे अधिक उत्तरदायित्व वाला पद है (तत्) वह (अग्नये) अग्नि के तुल्य तेजस्वी नायक को दिया जाता है। इसलिये हे (विभावसो) तेजस्वी पुरुष ! तू (बृहद्-अर्च) बड़ा सत्कार प्राप्त कर। (महिषी इव) रानी के तुल्य ही (त्वत्) तुझसे (रयिः) सुख देने वाला धनैश्वर्य (उत् ईरते) उत्पन्न होता, (वाजाः) समस्त बल सैन्यादि भी (त्वत्) तुझ से ही (उत् ईरते) उत्पन्न होते और तेरे ही उपभोग में आते हैं।

तवं द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! (तव) तेरे (अर्चयः) सूर्य के से किरणें (द्युमन्तः) बहुत प्रकाश वाले हों। तेरा (बृहत्) बड़ा भारी यश, बल वा स्वरूप (ग्रावा इव) मेघ वा पर्वत के समान विशाल एवं शस्त्रास्त्रबल शिलावत् शत्रुओं को चकनाचूर करने वाला (उच्यते) कहा जाता है। (उतो) और (यथा) जैसे (दिवः) बिजली का (तन्यतुः) गर्जन हो वैसे ही (ते स्वानः) तेरा महान् शब्द या घोष, आज्ञा-वचन आदि (अर्त्त) उत्पन्न हो।

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥ ९ ॥ १८ ॥

भा०—(वसूयवः) धन की अभिलाषक हम प्रजाजन (सहसानं) सबका पराजय करने वाले (अग्नि) नायक की (एव) इस प्रकार ही (ववन्दिम) स्तुति करें। (सः) वह (सु-क्रतुः) कार्यकुशल पुरुष (नः) हमें (नावा इव) नौका से नदी के तुल्य (द्विषः) शत्रुओं के (अति पर्षत्) पार करे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२६] वसूयव आत्रेया ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९ गायत्री । २, ३, ४, ५, ६, ८ निचृद् गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने॑ पावक रो॒चिषा॑ म॒न्द्रया॑ देव जि॒ह्वया॑ ।
आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रगण्य पद पर विराजमान आचार्य ! राजन् ! प्रभो ! हे (पावक) पाप को दूर कर ज्ञान और आचार से पवित्र करने हारे ! आप (रोचिषा) सबको प्रिय लगने वाले तेज और (मन्द्रया) गम्भीर, स्तुत्य (जिह्वया) वाणी से हे (देव) अर्थों के प्रकाशक गुरो ! हे स्वयं प्रकाश प्रभो ! (देवान्) वीरों, विद्वान्, विद्याभिलाषी शिष्यों को (वक्षि) धारण करो और (यक्षि च) संगत करो, मिलाओ ।

तं त्वा॑ घृतस्नवीमहे॒ चित्र॑भानो स्व॒र्दृश॑म् ।
दे॒वाँ आ वी॒तये॑ वह ॥ २ ॥

भा०—जैसे (घृतस्नुः चित्रभानुः) घृत-स्रवण से युक्त अग्नि अद्भुत, अधिक प्रकाश युक्त होता है और (वीतये देवान् आवहति) प्रकाश के लिये किरणों को धारण करता है, वैसे ही सूर्य मेघजल से जगत् को पवित्र करता है, और वैसे ही हे (घृतस्नो) ज्ञान-जल से शिष्यादि के अन्तःकरणों को पवित्र करने हारे ! हे (चित्रभानो) अद्भुत विद्या-प्रकाशों से युक्त विद्वन् ! प्रभो ! (स्वः-दृशं) ज्ञान-प्रकाश को स्वयं देखने और अन्यों को दर्शाने वाले (तं त्वा) उस तुझको हम (ईमहे) प्रार्थना करते हैं । तू (देवान्) विद्याभिलाषी जनों को (वीतये) ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने के लिये (आ वह) सब प्रकार से धारण कर ।

वी॒तिहो॑त्रं त्वा कवे द्यु॒मन्त॒ं समि॑धीमहि ।
अग्ने॑ बृ॒हन्त॑मध्व॒रे ॥ ३ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् मेधाविन् ! (अग्ने) हे अग्नि के तुल्य प्रकाश वाले ! (अध्वरे) इस प्रजापालन वा अध्ययन-अध्यापनादि कार्य में (बृहन्तं) महान् शक्तिशाली (वीतिहोत्रं) दीप्ति के निमित्त ग्रहण करने योग्य (द्युमन्तं) तेजस्वी (त्वा) तुझको हम अग्निवत् ही (सम् इधीमहे) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करें।

अग्ने॒ विश्वे॑भि॒रा ग॑हि दे॒वेभि॑र्ह॒व्यदा॑तये ।
होता॑रं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानयुक्त ! तेजस्विन् ! आप भी (हव्यदातये) स्वीकार योग्य ज्ञान ऐश्वर्य के देने के लिये (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् उत्तम जनों सहित (आ गहि) आइये। (होतारं त्वा) दान देने हारे तुझ उदार पुरुष को हम (वृणीमहे) स्वीकार करें।

यज॑मानाय सुन्व॒त आग्ने॑ सु॒वीर्यं॑ वह ।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (सुन्वते यजमानाय) यज्ञ करते प्रजाजन के हितार्थ तू (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम को (आ वह) सब प्रकार से धारण कर और (देवैः) विद्वानों के साथ (बर्हिषि) आसन एवं वृद्धिशील प्रजाजन पर (आ सत्सि) आदरपूर्वक विराजमान हो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स॒मि॒धा॒नः स॑हस्र॒जि॒दग्ने॒ धर्मा॑णि पुष्यसि ।
दे॒वानां॑ दू॒त उ॒क्थ्यः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(समिधानाः अग्निः सहस्रजित्) खूब प्रदीप्त जैसे सहस्रों सैन्यों को जीतता, और (देवानां दूतः) किरणों सहित प्रतापयुक्त एवं दूतवत् संदेश को भी दूर देश तक पहुँचाने वाला है वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू भी (सम्-इधानः) अच्छी प्रकार तेजस्वी होकर (सहस्रजित्) सहस्रों शत्रुओं को

जीतने वाला हो। तू (धर्माणि) समस्त धर्मयुक्त कर्मों को (पुष्यसि) पुष्ट करता है। तू (देवानां) विद्वान् पुरुषों के वीच उनका (उक्थ्यः) उत्तम वचन कहने हारा (दूतः) संदेश-हर और प्रतापी हो।

न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम्।
दधाता देवमृत्विजम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप (जात-वेदसम्) ऐश्वर्य के स्वामी, प्रत्येक पदार्थ के ज्ञाता, (होत्र-वाहं) उत्तम वाणी और आदर से दान योग्य पदार्थों के धारक (यविष्ठचम्) सब पुरुषों में श्रेष्ठ, (ऋत्विजम्) राजकीय सभ्यों से संगति करने हारे (देवम्) तेजस्वी (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को (नि दधात) उच्च पद पर स्थापित करो।

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः।
स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८ ॥

भा०—(देव-व्यचस्तमः) विद्वानों में विविध विद्याओं में सबसे अधिक गति वाला, (यज्ञः) सत्संगति योग्य पुरुष (आनुषग्) निरन्तर (प्र एतु) उत्तम पद पर आवे और हे विद्वान् जनो ! आप लोग (आसदे) उसके विराजने के लिये (वर्हिः) वृद्धियुक्त श्रेष्ठ आसन (स्तृणीत) विछाओ।

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः।
देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥ २० ॥

भा०—(मरुतः) विद्वान्, बलवान् वीर पुरुष, (अश्विना) स्त्री-पुरुष, वा अध्यापक और उपदेशक, (मित्रः) मित्र वर्ग और (वरुणः) दुष्टों के वारक श्रेष्ठ जन ये सभी (इदं) इस उत्तम आसन को (आ सीदन्तु) आदर पूर्वक प्राप्त करें और (देवासः) सभी उत्तम जन (सर्वया विशा) सब प्रकार की प्रजा सहित (आ सीदन्तु) आकर विराजें। इति विंशो वर्गः ॥

[२७] त्र्यरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा ऋषयः ॥ १-५ अग्निः । ६ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ५, ६ भुरिगुष्णिक् ॥ षड्‌ृचं सूक्तम् ॥

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १ ॥

भा०—(सत्पतिः) सज्जनों का पालक, (चेतिष्ठः) सबसे अधिक ज्ञानवान्, (असुरः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, (मघोनः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (चिकेत) अच्छी प्रकार जाने। वह (मे) मुझ प्रजाजन के हितार्थ (अनस्वन्ता गावा) शकट आदि से युक्त दो बैलों को जैसे सारथी चलाता है वैसे ही वह मेरे नायकों से युक्त राज्य को (मामहे) चलावे। वह (त्रैवृष्णः) शास्य, शासक जन और राजसभा इन तीनों में सूर्यवत् बलवान् प्रबन्धकर्त्ता और (त्र्यरुणः) आदि, मध्य, अन्त तीनों दशाओं में तेजस्वी होकर (अग्ने) तेजस्विन्! हे (वैश्वानर) समस्त नरों के हितकारिन्! (सहस्रैः दशभिः) दश सहस्र किरणों से तेजस्वी होकर दस हजार सैन्य बलों सहित (चिकेत) सब पर शासन करे, राष्ट्र के पीड़ाकारियों का नाश करे।

यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (मे) मुझे (गोनां) गौओं, वेद वाणियों वा भूमियों की (शता च विंशति च) बीसों सौ देता है और (सुधुरा) सुख से शकट धारक (युक्ता) जुते हुए (हरी च) और दूर तक ले जाने वाले अश्व, बैलों के जोड़े और उनके समान धुरन्धर स्त्री पुरुष मुझ राष्ट्र को प्रदान करता है, हे (वैश्वानर अग्ने) समस्त मनुष्यों के हितकारिन् नायक! तू (सु स्तुतः) उत्तम रीति से स्तुति योग्य होकर (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ उस (त्र्यरुणाय) तीनों

कालों वा तीनों पदों पर शोभा देने वाले पुरुष को (शर्म) उत्तम गृह आदि आश्रय (यच्छ) प्रदान कर।

एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (यः) जो (ते सुमतिं) तेरी उत्तम मति और (नवमं) नये उत्तम ज्ञान को (चकानः) चाहता हूं उस (नविष्ठाय) अति नवीन (मे) मुझ बालक को आप (त्र्यरुणः) तीनों में अरुण अर्थात् तीनों वेद विद्याओं, मन, वाणी और शरीर तीनों के तपों के पारंगत, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (तुविजातस्य) बहुत से नायक पुरुषों वा प्रजाजनों में प्रसिद्ध यशस्वी गुरु की (युक्तेन) दत्तचित्त से (पूर्वीः) पूर्व विद्वानों से सेवित, (गिरः) वेदवाणियों का (अभि गृणाति) उपदेश करता है वह (त्रसदस्युः) दुष्ट भावों को भयभीत करने वाला, होकर आ, हे (अग्ने) तेजस्विन्! (नविष्ठाय) अति नवीन, एवं स्तुत्य शिष्य को (ते सुमतिं) तेरी अपनी शुभ मति और ज्ञान (एव) और (नवमं) नये से नया उपदेश (चकानः) प्रेम पूर्वक चाहता हुआ गुरु तुझे (अभि गृणाति) उपदेश करे।

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये।
दद‍ृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते॥ ४॥

भा०—हे आचार्य! (यः) जो (अश्वमेधाय) अश्व के समान बल युक्त एवं पवित्र शरीर अथवा यज्ञ वा युद्ध के लिये सन्नद्ध अश्व के समान सदा सज्ज और (सूरये) विद्वान् पुरुष के लिये (मे) यह मेरा है (इति) इस प्रकार से (प्रवोचति) कहता है वह तू (यते) यत्नवान् शिष्य को (ऋचा) ऋग्वेद के मन्त्रगण से (सनिं ददत्) विभाग करने और सेवन करने योग्य उत्तम ज्ञान दे। वह आप (ऋतायते) ज्ञान के इच्छुक मुझे (मेधाम् ददत्) उत्तम बुद्धि दे वह भी शिष्य को (मे इति प्र-वोचति) मेरा है इस प्रकार अपना कर ही ज्ञान का प्रवचन करे।

यस्यं मा परुषाः शतमुंद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥ ५ ॥

भा०—(उक्षणः) विद्योपदेश करने और ज्ञान से सेचन करने वाले (यस्य) जिस गुरु के (शतम्) सैकड़ों (परुषाः) वास्तविक क्रोध से रहित, प्रेममय वचन (मा उद् हर्षन्ति) मुझको उत्साहित करते हैं उस (अश्व-मेधस्य) राष्ट्र पालक राजा के तुल्य गुरु के (दानाः) ज्ञान देने वाले उपदेश भी (त्र्याशिरः) बालक, युवा, वृद्ध तीनों द्वारा वा वसु, रुद्र, आदित्य तीनों से उपभोग करने योग्य, (सोमाः इव) ऐश्वर्यों के तुल्य होते हैं।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि दोनों तत्व जैसे (दिवि बृहत् सूर्यम् इव) आकाश में बड़े भारी सूर्य को धारण करते हैं वैसे ही हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों, (शतदाव्नि) सैकड़ों ऐश्वर्य देने वाले (अश्वमेधे) अश्वमेध अर्थात् राष्ट्र में (सुवीर्यम्) बल युक्त, (बृहत्) बड़ा भारी (सूर्यम् अजरम्) तेज से युक्त अविनाशी, (क्षत्रं) सैन्य बल (धारयतम्) धारण करो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२८] विश्वावारात्रेयी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १ ॥

भा०—जैसे (समिद्धः) देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि, सूर्य (दिवि) प्रकाश और आकाश में (शोचिः) प्रकाशमय विद्युत् को (अश्रेत्) धारण करता है और (उषसम् प्रत्यङ्) उषा को प्राप्त होकर (उर्विया वि भाति) खूब प्रकाशित होता है वैसे ही (अग्निः) नायक, तेजस्वी युवा पुरुष (दिवि समिद्धः) ज्ञान-प्रकाश

विद्या, एवं विजय कामना में खूब दीप्त होकर (शोचिः अश्रेत्) प्रखर तेज को धारण करे। वह (उषसम् प्रति-अङ्) कामना युक्त प्रजा को प्राप्त होकर (उर्विया वि भाति) खूब चमके। जैसे (विश्व-वारा घृताची) समस्त जनों से वरणीय तेज से युक्त उषा (देवान् ईडाना) प्रकाश किरणों को प्रस्तुत करती हुई (प्राची एति) आगे आगे बढ़ती हुई या पूर्व दिशा में आती है, वैसे ही (विश्व-वारा) समस्त अनभीष्ट जनों का वारण या तिरस्कार करती हुई (घृताची) घृतादि स्नेहयुक्त पदार्थ को देह पर मले सुन्दर, सुशोभित होकर (देवान् ईडाना) विद्वानों की स्तुति करती हुई या अभीष्ट गुण युक्त प्रियजनों को (नमोभिः) विनय सत्कारों से चाहती हुई, (हविषा) ऐश्वर्य सहित (प्राची) उत्तम पद को प्राप्त, या आगे प्रस्तुत विदुषी स्त्री एवं राजा के प्रजाजन भी (एति) आगे आवे और अपने पालक पति का वरण करे।

समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥२॥

भा०—(समिध्यमानः अमृतस्य राजसि) जैसे सूर्य खूब प्रकाशित होता हुआ मेघोपयोगी 'अमृत' अर्थात् जल और उससे उत्पन्न अन्न में प्रकाशित होता है वैसे ही हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! राजन् ! (समिध्यमानः) तू खूब तेजस्वी होकर (अमृतस्य) उत्तम सत्कारोपयोगी, दीर्घायु वा ज्ञान से प्रकाशित हो। तू (स्वस्तये) शान्ति के लिये (हविः कृण्वन्तम्) अन्न आदि उत्पन्न करने वाले को (सचसे) आदरपूर्वक प्राप्त हो। हे विद्वन् ! राजन् ! तू (यम्) जिसको प्राप्त होकर (आतिथ्यम्) आतिथ्य (इन्वसि) लाभ करता है (सः) वह मनुष्य (विश्वं द्रविणं) समस्त ऐश्वर्य (धत्ते) धारण करता है और वही (पुरः) तेरे समक्ष आतिथ्य योग्य पदार्थ (नि धत्ते च) रखता है।

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्, नायक ! तू (महते सौभगाय) बड़े धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (शर्ध) शत्रुओं का पराजय कर, अथवा हे (शर्ध) बलवन् ! (तव द्युम्नानि) तेरे धनैश्वर्य (उत्तमानि) उत्तम और (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य के लिये (सन्तु) हों। तू (जास्पत्यं) स्त्री पुरुषों के पति पत्नी के सम्बन्ध को (सुयमम्) सुखपूर्वक बंधने योग्य, सुदृढ़ (सं आकृणुष्व) उत्तम रीति से सम्पन्न करा, (शत्रूयताम्) शत्रुवत् व्यवहार करने वाले के (महांसि) पराक्रमों, बड़े सैन्यों को (अभि तिष्ठ) पराजित कर।

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि सम॑ध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (प्र-महसः) बड़े तेजस्वी (समिद्धस्य) देदीप्यमान (तव) तेरी (श्रियम्) सम्पदा की मैं (वन्दे) प्रशंसा करता हूं। तू (वृषभः) प्रजा के प्रति सुखों को वर्षाने हारा और (द्युम्नवान् असि) ऐश्वर्य का स्वामी है। तू (अध्वरेषु) प्रजापालन, न्यायशासन आदि कार्यों में (इध्यसे) खूब तेजस्वी बन।

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर ।
त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! हे (आहुत) आदर पूर्वक स्वीकृति एवं कर आदि देने के पात्र रूप ! हे (स्वध्वर) उत्तम यज्ञशील ! उत्तम अहिंसक ! तू (समिद्धः) खूब तेजस्वी होकर भी (देवान् यक्षि) विद्वानों को दान दे, और उनका सत्संग कर। क्योंकि (त्वं) तू (हि) निश्चय से (हव्यवाड् असि) दान योग्य अन्नादि पदार्थों को धारण करने और देने हारा है।

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे ।
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अध्वरे प्रयति) प्रयत्न से साध्य, हिंसादि-रहित प्रजापालनादि यज्ञ में (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को (आ जुहोत) आदर पूर्वक बुलाओ। (दुवस्यत) उसका आदर सत्कार, सेवा करो और (हव्य-वाहनम्) ग्राह्य और दान योग्य पदार्थों के धारण करने वाले को ही (वृणीध्वम्) वरण करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२९] गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः ॥ १-८, ९-१५ इन्द्रः। ९ इन्द्रः उशना वा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः। ८ स्वराट् पंक्तिः। २, ४, ७ त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ९, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। १२, १३, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप्। पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मनुषः) मननशील जन (अर्यमा) शत्रुओं को संयम वा बन्धन करने वाले (त्री) तीन और (दिव्या) दिव्य गुणों से युक्त (रोचना) प्रकाश करने वाले (त्री) तीन साधनों को (देवताता) देवों, विद्वानों के उचित कार्य व्यवहार में (धारयन्त) धारण करें। अर्थात् दुष्टों को संयमन करने के लिये उनके पास तीन साधन, मन्त्रबल, सैन्यबल और ऐश्वर्यबल हों और ज्ञान-प्रकाश करने के लिये तीन वेदों के जानने वाले वा राजसभा, धर्मसभा और विद्यासभा तीन हों। वे (मरुतः) मनुष्य (पूतदक्षाः) पवित्र बल से युक्त होकर (त्वा अर्चन्ति) तेरी ही पूजा करें और (त्वम्) तू (धीरः) धैर्यवान्, राष्ट्र शक्ति का धारक होकर (एषाम्) इनको (ऋषिः) मन्त्रार्थ दिखाने वाला, मार्ग सञ्चालक होकर (असि) रह।

अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य।
आ दत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥ २ ॥

भा०—(सुतस्य) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को (पपिवांसं) भोगने वाले (मन्दसानं) स्तुति योग्य एवं सुसन्तुष्ट (इन्द्रं) शत्रुहन्ता राजा का (मरुतः) विद्वान् और बलवान् वीर जन (यत्) जब (अनु आ अर्चन्) निरन्तर अनुकूल होकर आदर करते हैं तब वह भी (वज्रम्) शत्रु निवारक शस्त्र बल और वीर्य पराक्रम को (आ दत्त) धारण करता है, (यत्) जब वह (अहिं) अभिमुख आये शत्रु और मेघ को विद्युत् वा सूर्यवत् (अभिहन्) मुकाबले पर मारता है, तब जैसे सूर्य वा विद्युत् (यह्वीः अपः) बड़ी बड़ी जलधाराएं चला देते हैं वैसे ही वह बड़ी आप्त प्रजाओं, सेनाओं की (यह्वीः) बड़ी बड़ी पंक्तियों को (सर्त्तवा असृजत्) सरण या आक्रमण करने के लिये प्रेरित करे।

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और (ब्रह्माणः मरुतः) वेद विद्याओं को जानने वाले विद्वान् और वायुवत् तीव्रवेग से शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ वीर पुरुष तथा हे इन्द्र ! तू (इन्द्रः) सूर्य के तुल्य प्रतापी, तेजस्वी राजा (मे) मेरे (अस्य) इस (सु-सुतस्य) उत्तम पुत्रवत् पालने योग्य एवं अभिषेकादि द्वारा सम्पादित (सोमस्य) ऐश्वर्य का (पेयाः) पालन और उपभोग कर। (तत्) वह राष्ट्र ही उसका (हव्यम्) ग्रहण योग्य कर आदि है। उसके निमित्त यह राजा (मनुषे) मनुष्यों के उपकारार्थ (गाः) नाना देश, भूमियों को (अविन्दत्) प्राप्त करे और (अहिं) सामने आये बाधक शत्रु मेघ को विद्युत्वत् (अहन्) प्रहार कर दण्ड दे और (इन्द्रः) वह शत्रुहन्ता राजा ही (अस्य पपिवान्) इस राष्ट्रैश्वर्य का उपभोग करने वाला हो।

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥ ४ ॥

भा०—राजा (आत्) अनन्तर, (रोदसी) पृथिवी और आकाश दोनों को सूर्यवत् एक दूसरे का बलपूर्वक रोक रखने में समर्थ तुल्य बल स्वपक्ष और

परपक्ष की दोनों सेनाओं को (वितरम्) विशेष रूप से अच्छी प्रकार (वि स्कभायत्) विविध उपायों से थाम ले। (चित् मृगं भियसे कः) जैसे सिंह मृग को भय देने के लिये गर्जना करता है वैसे ही वह राजा भी (सं विव्यानः) अच्छी प्रकार मिलकर आगे वढ़ता हुआ शत्रु को (भियसे) डराने के लिये उसको (मृगं कः) मृग के समान भीरु करे। इस प्रकार वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (जिर्गात्तिम्) अपने राष्ट्र को निगलने वाले शत्रु को (अप जर्गुराणः) दूर भागता हुआ (श्वसन्तं) हांपते हुए, (तं) उस (दानवं) प्रजानाशक दुष्ट पुरुष का (प्रति अव हन्) मुकाबला करे।

अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम्।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५॥२३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन्! (विश्वे) समस्त (देवाः) राष्ट्र वासी मनुष्यगण (तुभ्यम्) तुझे (क्रत्वा अनु) कर्म के अनुसार (सोम-पेयम्) राष्ट्रैश्वर्य का उपभोग योग्य अंश (अददुः) दें। (अध) और (यत्) जब तू (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी तेरे (पुरः) आगे (पतन्तीः) चलने हारी, एवं ऐश्वर्य से समृद्ध होती हुई (हरितः) तीव्र वेग से जाने वाली सेनाओं, (उपराः) समीप में विद्यमान (सतीः) आप्त प्रजाओं को भी (एतशे) अश्ववत् बलवान् पुरुष के उपभोग के लिये, (कः) करे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत्।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥ ६ ॥

भा०—(मघवा) उत्तम सम्पदा का स्वामी (अस्य) इस प्रजाजन या राष्ट्र के (नव नवतिं च भोगान्) ९९ भोग योग्य, पालने योग्य और प्रजाओं का पालन करने वाले नगरों और नाना भोग्य पदार्थों को (वज्रेण साकं) शस्त्रास्त्र वल के साथ साथ उसके साहाय्य से, उसी प्रकार (विवृश्चत्) तैयार करावे जैसे विश्वकर्मा शिल्पी अपने औजारों से सेना के उपयोगी पदार्थों को वनाता है।

(मरुतः) सब मनुष्य (सधस्थे) एक साथ बैठने के स्थान में (इन्द्रं) समृद्धिमान् पुरुष की (अर्चन्ति) स्तुति करें और (त्रैष्टुभेन वचसा) तीनों मान्य परिषदों द्वारा प्रस्तुत प्रशंसित (वचसा) राजकीय शासन से (द्यां) पृथिवी का (बाधत) शासन करे।

सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥ ७ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् विद्वान् नायक पुरुष (सखा) मित्र होकर (तूयम्) अति शीघ्र ही (अस्य क्रत्वा) इस राजा या सेनापति की बुद्धि के निमित्त या उसके अनुसार (त्री शतानि महिषा) तीन सौ बड़े बड़े बलवान् पुरुषों को (अपचत्) परिपक्व करे, कार्य में खूब सु-अभ्यस्त करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (साकम्) सबके साथ मिलकर (मनुषः) मननशील प्रजाजन के (त्री सरांसि) तीन 'सरस्' अर्थात् उत्तम ज्ञान वाली तीन परिषदों वा तीन प्रकार से अभिसरण करने वाले सैन्यों को (अपचत्) परिपक्व करे और पालन करे। इस प्रकार (वृत्र-हत्याय) बढ़ते शत्रु का नाश करने के लिये प्रजाजन का (सुतम्) पुत्रवत् (अपिबत्) पालन करे और (सोम) ऐश्वर्यमय राष्ट्र का ओषधि रस के समान गुणकारी रूप से (अपिबत्) पालन, उपभोग करे। तीन-तीन सौ जवानों को सधाने वाले गुरु या नायक 'अग्नि' हों।

त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! (यत्) जो तू (महिषाणां) बड़े, बल, ऐश्वर्य के स्वामी लोगों के (त्री शता) तीन सौ जनों का स्वयं (अघः) अदण्डनीय और (माः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ होकर (आपाः) पालन करता है और (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (त्री) तीन (सोम्या) सोम, राष्ट्रैश्वर्य के हितैषी (सरांसि) उत्तमज्ञान सम्पन्न परिषदों का भी (आपाः) पालन करता है (यद्) जो (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त पद को प्राप्त करने के लिये (अहिं जघान) मुकाबले

पर आये शत्रु को दण्डित करता है तब उसी कारण (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् पुरुष (भरम्) सबके भरण करने वाले तुझको (कारं न) समर्थ कार्यकर्त्ता सा जानकर (अह्वन्त) आदर से बुलावें।

उशना यत्सहस्यै३ रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! राजन्! तू (उशनाः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ और सैन्यगण दोनों (यत्) जब (सहस्यैः) बलवान्, (जुजुवानेभिः) वेगवान् (अश्वैः) घुड़सवारों सहित (गृहम् अयातम्) अपने घर को आते हों, तब तू (अत्र) इस राष्ट्र में (वन्वानः) ऐश्वर्य का भोग करता हुआ, (सरथं) रथ सैन्य के साथ (ययाथ) प्रयाण कर और (कुत्सेन) शस्त्र बल और (देवैः) विद्वानों, वीर पुरुषों सहित (शुष्णम्) शत्रुशोषक सैन्य बल की (अवनोः) रक्षा कर और (शुषाम्) प्रजाशोषक दुष्ट जनों का (अवनोः) विनाश कर।

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥१०॥२४॥

भा०—हे राजन्! तू (सूर्यस्य) तेजस्वी राजा के (अन्यत् चक्रम्) एक चक्र को (कुत्साय) शस्त्रास्त्र बल के धारण के लिये (प्र अवृहः) खूब उन्नत कर। और (अन्यत्) दूसरे सैन्यचक्र को (वरिवः यातवे) धनैश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (अकः) तैयार कर। (अनासः) नाक, मुख अर्थात् प्रमुख नायक रहित, (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों का (वधेन) शस्त्र द्वारा वध करके (अमृणः) विनाश कर और (मृध्रवाचः) मर्मवेधी वचन बोलने वालों को (दुर्योणे नि आवृणक्) कारागार में बन्द रख। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम्।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! (गौरिवीतेः) वाणी के प्रकाशक वाग्मी जन के (स्तोमासः) स्तुति वचन तथा उसके अधीन (स्तोमासः) प्रशंसित वीर समूह (पिप्रुम्) राष्ट्र को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाले (त्वा) तुझको (अवर्धन्) सदा बढ़ावें। तू (वैदथिनाय) धन तथा ज्ञान को प्राप्त करने वाले जनों के उपकार के लिये (अरन्धयः) शत्रु का नाश कर। (ऋजिश्वा) कुत्ते के समान भोजनमात्र से प्रेम-बद्ध स्वामिभक्त भृत्यजन (त्वाम्) तुझको (सख्याय आ चक्रे) मित्र भाव के लिये स्वीकार करें। तू (पक्तीः) पकाने या सु-अभ्यस्त करने योग्य नाना पदार्थों वा कार्यों को (पचन्) पकाता वा दृढ़ करता हुआ (अस्य) इस राष्ट्र के (सोमम्) ऐश्वर्य का (अपिबः) उपभोग कर।

नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥ १२ ॥

भा०—(नवग्वासः) विद्या मार्ग में नये ही गमन करने वाले (सुतसोमासः) पुत्रवत् सावित्री में उत्पन्न सौम्य शिष्य गण (दशग्वासः) दशों इन्द्रियों को विजय करके (इन्द्रं) तत्व के साक्षात् करने वाले गुरु को (अर्कैः) अर्चना करने योग्य शुश्रूषा आदि उपायों से देववत् (अभि अर्चन्ति) सब प्रकार से आदर सत्कार करते हैं। (चित् नरः अपिधानवन्तं गव्यम् ऊर्वम् यथा अप व्रन्) जैसे लोग ढकनेदार गोदुग्ध से पूर्ण बड़े पात्र को खोलते हैं और उसमें से अभीष्ट गोरस लेकर पान करते हैं वैसे ही (शशमानाः नरः) उसकी स्तुति करने वाले छात्र लोग (अपि-धानवन्तं) आच्छादन से युक्त (ऊर्वम्) अज्ञाननाशक (गव्यं) वेदवाणी के पात्र रूप (तं) उस आचार्य को भी (अप व्रन्) अपने प्रति खोलें, उसे प्रसन्न कर उसका ज्ञान प्राप्त करें।

कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥ १३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य एवं ज्ञान से सम्पन्न प्रभो ! विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरी मैं (कथो नु) कैसे (परि चराणि) सेवा करूं ! हे (शविष्ठ) सर्व-

शक्तिमन् ! तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (या वीर्या अकर्थ) जिन बलों को प्राप्त करता है, (या चो) और जिन बलयुक्त कार्यों या शक्तियों को (नु) शीघ्र ही (नव्या) नये रूप से (कृणवः) प्राप्त करता है, (ते ता) तेरे उन बलयुक्त कार्यों को हम लोग (विदथेषु) संग्राम और ज्ञानोपदेशादि के अवसरों में (प्र ब्रवाम) अच्छी प्रकार कहें।

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अपरीतः) किसी से विना रुके, (जनुषा वीर्येण) जन्मसिद्ध स्वाभाविक, बल से (एता विश्वा भूरि) इन समस्त बहुत से कार्यों को (चकृवान्) करता हुआ (दधृष्वान्) शत्रुओं का धर्षण करता हुआ, (या चित् नु) और जिन जिन कार्यों को भी तू (कृणवः) करे (ते अस्याः तविष्याः) तेरी इस बड़ी शक्ति या बलवती सेना का दूसरा (दधृष्वान् वर्ता च नास्ति) पराजयकारी और वशकारी भी नहीं है।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५॥२५॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! (या) जिन (नव्या) उत्तम स्तुत्य, (ब्रह्म) धनों, ऐश्वर्यों को हम (अकर्म) उत्पन्न करें और (या क्रियमाणा) जो किये जा रहे हैं उन सबको तू (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर। मैं (अपाः) उत्तम काम करने हारा (धीरः) बुद्धिमान् होकर (वसूयुः) सबको बसाने वाले तेरी कामना करता हुआ (सुकृता) उत्तम रीति से बनाये (भद्रा) सुखकारी (वस्त्रा इव) वस्त्रों के समान वा (रथं न) रथ के समान रमणीय (अतक्षम्) बनाऊं।

[३०] बभ्रुरात्रेय ऋषिः ॥ इन्द्र ऋणञ्चयश्च देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ७, ११, १२ त्रिष्टुप् । ६,

१३ पंक्तिः । १४ स्वराट् पंक्तिः । १५ भुरिक् पंक्तिः ॥
पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

क्व१॒स्य वी॒रः को अ॑पश्य॒दिन्द्रं॑ सु॒खर॑थ॒मीय॑मानं॒ हरि॑भ्याम् ।
यो रा॒या व॒ज्री सु॒तसो॑मम॒िच्छन्तदोको॒ गन्ता॑ पुरुहू॒त ऊ॒ती ॥ १ ॥

भा०—(स्यः वीरः) वह विविध प्रकार से गति उत्पन्न करने वाला विद्युत् तत्व (क्व) कहां विद्यमान् है ? (हरिभ्याम् ईयमानम्) गति करने वाले दो तत्वों से प्रकट होने वाले (सुख-रथम्) सुखकारी रथ को चलाने वा सुख से आकाश [ईथर] में वेग से जाने वाले (इन्द्रं कः अपश्यत्) 'इन्द्र' विद्युत् को कौन देखता है ? (यः) जो विद्युत् तत्व (वज्री) अति बलवान् होकर (राया) अपने ऐश्वर्य से (सुत-सोमम्) रसादि साधन करने वाले को चाहता हुआ (पुरुहूतः) नाना प्रकार से वर्णित या प्राप्त किया जाकर (ऊती) अपने वेग से (तत्-ओकः गंता) उन उन नाना स्थानों को प्राप्त होता है ।

अवा॑चचक्षं प॒दम॑स्य स॒स्वरु॒ग्रं नि॑धा॒तुरन्वा॑यमि॒च्छन् ।
अपृ॑च्छम॒न्याँ उ॒त ते म॑ आहु॒रिन्द्रं॒ नरो॑ बुबु॒धाना॑ अशेम ॥ २ ॥

भा०—मैं (अस्य) इस (निधातुः) संसार को नियम में धारण करने वाले परमेश्वर के (स-स्वः) सुख युक्त तेजोमय (उग्रम्) दुष्टों के लिये भयप्रद (पदम्) स्वरूप का (अव चचक्षम्) विनयपूर्वक दर्शन करूं और उसी को (इच्छन्) चाहता हुआ (अनु आयम्) निरन्तर प्राप्त होऊं। (अन्यान् अपृच्छम्) मैं और विद्वानों से प्रश्न करूं। (उत) और (ते) वे (मे-आहुः) मुझे उपदेश करें कि (बुबुधानाः नरः) ज्ञान करते हुए हम ज्ञानी, प्रबुद्ध लोग ही (इन्द्रं अशेम) 'इन्द्र' परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं।

प्र नु व॒यं सु॒ते या ते॑ कृ॒तानीन्द्र॒ ब्रवा॑म॒ यानि॑ नो॒ जुजो॑षः ।
वेद॒दवि॑द्वाञ्छृ॒णव॑च्च वि॒द्वान्वह॑ते॒ऽयं म॒घवा॒ सर्व॑सेनः ॥ ३ ॥

हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! विद्वन् ! (सुते) पालनीय प्रजाजन, एवं ऐश्वर्यों के प्राप्त होने पर (या ते कृतानि) तेरे हित के जो कर्त्तव्य हैं (यानि) जो तुझे (नः जुजोषः) हमारे हितार्थ करने चाहियें (वयं) हम उनको (ते प्रब्रवाम नु) तुझे अवश्य बतलावें। (अविद्वान्) ज्ञान से रहित पुरुष को चाहिये कि वह (वेदद्) ज्ञान प्राप्त करे और (शृणवत् च) सदा उपदेश श्रवण करे। क्योंकि (अयं) यह पुरुष (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर ही (मघवा) ऐश्वर्यवान् (सर्वसेनः) सब सेनाओं का स्वामी होता और (वहते) राष्ट्र के कार्यों को ऊपर उठाता है।

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन् ! राजन् ! तू (जातः) ऐश्वर्य से प्रसिद्ध होकर अपने (मनः) मन को (स्थिरं चकृषे) स्थिर कर। क्योंकि एकाग्र चित्त मनुष्य (एक) अकेला भी (भूयसः चित्) बहुत से लोगों के भी मुकाबले पर (वेषीत्) जाने में समर्थ होता है। जैसे सूर्य (शवसा अश्मानं दिद्युतः) अपने तेजो बल से मेघ को चमका देता है वैसे ही हे राजन् ! विद्वन् ! तू भी (शवसा) सैन्यबल और ज्ञानबल से (अश्मानं) व्यापक सैन्य वा शस्त्र बल को (दिद्युतः) प्रकाशित कर और (उस्रियाणाम् गवाम्) सूर्य जैसे ऊपर निकलने वाली किरणों को लाभ करता है वैसे ही तू भी उन्नति पथ पर जाने वाली (गवाम्) भूमियों और उन्नति की ओर ले जाने वाली वेदवाणियों का (वि विदः) लाभ और ज्ञान कर।

परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत्।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥२६॥

भा०—हे तेजस्विन् ! (यत्) जो (त्वं) तू (परमः) सबसे अधिक शक्ति-शाली होकर (परः) दूर तक भी (आ अजनिष्ठाः) आदर से सर्वत्र प्रसिद्ध होता है और (परावति) दूर देश में भी (श्रुत्यं) श्रवण योग्य (नाम बिभ्रत्) नाम

को धारण करता है। (अतः चित्) इसीलिये (इन्द्राद्) विद्युत् के तुल्य तीव्र और बलवान् तुझसे (देवाः) सब विद्वान्, विजिगीषु लोग भी (अभयन्त) भय करते हैं और वह राजा (विश्वाः दासपत्नीः) समस्त नाशकारी शत्रुजनों, भृत्यजनों को अपना पति बनाने वाली, उसके अधीन स्थित सेनाओं और (अपः) आप्त प्रजाओं को (अजयत्) विजय करता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

तुभ्येदे॒ते म॒रुत॑: सु॒शेवा॒ अर्च॑न्त्य॒र्कं सु॒न्वन्त्यन्ध॑: ।
अहि॑मोहा॒नम॒प आ॒शया॑नं॒ प्र मा॒याभि॑र्मा॒यिनं॑ सक्ष॒दिन्द्र॑: ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! जैसे (सुशेवाः मरुतः अर्चन्ति, अन्धः सुन्वन्ति) उत्तम सुखकारी वायु चलते हैं और अन्न को भूमि पर उत्पन्न करते हैं और (इन्द्रः अपः आशयानम् ओहानम् अहिम् मायाभिः सक्षत्) विद्युत् वा सूर्य अन्तरिक्ष या सूक्ष्म जलों में विद्यमान गतिशील मेघ को अपनी शक्तियों से व्यापता है वैसे ही हे राजन् ! हे विद्वन् ! (एते मरुतः) ये बलवान् वीर पुरुष, व्यापारी और प्रजाजन, (सुशेवाः) उत्तम सुखसमृद्ध होकर (तुभ्य इत) तेरे लिये ही (अर्कं) अर्चना योग्य वचन (अर्चन्ति) कहते हैं और (अन्धः सुन्वन्ति) तेरे लिये भूमि में अन्न और उत्तम उत्तम भोजन उत्पन्न करते हैं। तू (इन्द्रः) विद्युत् के समान उग्र, (मायाभिः) अपनी हिंसाकारी शक्तियों से सम्पन्न होकर उनसे (अपः आशयानम्) आप्त प्रजाजनों के बीच गुप्त रूप से छुपे (ओहानम्) सत् कर्म-पथ का त्याग करने वाले, (मायिनम्) मायावी, (अहिम्) सर्पवत् हिंसक, दुष्ट वा शत्रुजन को (प्रसक्षत्) नष्ट करे।

वि षू मृधो॑ ज॒नुषा॒ दान॒मिन्व॒न्नह॒न्गवा॑ मघव॒न्त्सञ्चका॒नः ।
अत्रा॑ दा॒सस्य॒ नमु॑चे॒: शिरो॒ यद॒वर्त॑यो॒ मन॑वे गा॒तुमि॒च्छन् ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य युक्त ! तू (सञ्चकानः) प्रजा की स्वयं कामना करता हुआ, (गवा दानम् इन्वन्) 'गौ' के तुल्य दुग्धवत् भूमि से करादि ऐश्वर्य दान को प्रजा से प्राप्त करता और (जनुषा) प्रसिद्धि वा स्वभाव से ही (मृधः) संग्रामकारी शत्रुओं को (सु) सुखपूर्वक (वि अहन्) विविध उपायों से मारे और

(यत्) जो राजा (मनवे) प्रजा हित के लिये (गातुम्) भूमि को (इच्छन्) चाहता है वह तभी (अत्र) इस राष्ट्र में (न-मुचेः) विना दण्ड दिये कभी न छोड़ने योग्य (दासस्य) प्रजा के विनाशक शत्रु का (शिरः) शिर (अवर्त्तयः) काट डालता है।

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं १ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्रः) शत्रुहन्तः राजन् ! सेनापते ! (नमुचेः दासस्य शिरः मथायन्) जैसे जल न त्यागने वाले मेघ के शिर, अर्थात् उत्तम भाग को छिन्न भिन्न करता हुआ सूर्य (मरुद्भ्यः प्रवर्त्तमानं स्वयं अश्मानम् चक्रिया इव रोदसी प्रवर्त्तयति) वायुओं के संघर्ष से उत्पन्न शब्दकारी विद्युत् को दो चक्रों के बीच लगे धुरे के समान आकाश और भूमि के बीच घुमा देता है, वैसे ही हे (इन्द्र) राजन् तू ! (माम् युजं हि अकृथाः) मुझको अपना सहायक बना ले। (आत्) अनन्तर (नमुचेः) जीता न छोड़ने योग्य (दासस्य शिरः मथायन्) नाशकारी शत्रु के शिर को कुचलता हुआ (अश्मानं चित्) विद्युत् के समान व्यापक (स्वर्यं) शत्रु को पीड़ा देने वाले और (वर्त्तमानं) आगे बढ़ते हुए सैन्यबल को (मरुद्भ्यः) अपने वीरों के हितार्थ (प्र वर्त्तयः) आगे बढ़ा और (रोदसी) एक दूसरे को रोकने वाली उभय पक्ष की सेनाओं को (चक्रिया इव) दो चक्रों के तुल्य चला।

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥

भा०—(दासः) नाशकारी शत्रु जिन (आयुधानि) शस्त्रों को (चक्रे) बनाता है वे (स्त्रियः हि) स्त्रियों के समान भीरु और निर्बल हैं। (अस्य) उसकी (अबलाः) बल रहित (सेनाः) सेनाएं (मा) मेरे प्रति (किं करन्) क्या कर सकतीं हैं ? (अस्य) इस शत्रु की (उभे) दोनों (धेने) सेनाओं को राजा (अन्तः अख्यत्)

भीतर तक खूब देख ले। (अथ) और उसके बाद (इन्द्रः) बलवान् सेनापति (युधये) युद्ध करने के लिये (दस्युम् प्रति) दुष्ट शत्रु को लक्ष्य करके (उप प्र ऐत्) प्रयाण करे।

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०॥२७॥

भा०—(यत्) जो राष्ट्र (इह इह) यहां, अनेक स्थानों परकी अपने (वत्सैः) भीतर बसने वाले प्रजाजनों से, (वियुताः आसन्) वियुक्त हों, वे (गावः) भूमियां या रियासतें (अभितः) सब ओर से आकर (अत्र) इस राजा के अधीन (सम् नवन्त) एक साथ मिलकर रहें। (अस्य) इस राजा के (शाकैः) शक्तिशाली सैन्यों से सहायवान् होकर (यत्) जब (सु-सुताः सोमासः) आदर-पूर्वक अभिषिक्त अध्यक्षजन (ईम् अमन्दन्) उसको प्रार्थना करें तब वह (इन्द्रः) पराक्रमी राजा (ताः सम् असृजत्) उन सबको मिलाकर बड़ी शक्ति बना ले। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (सोमाः) ऐश्वर्य युक्त अध्यक्ष जन (बभ्रुधूताः) अपने भरण करने वाले स्वामी से प्रेरित होकर (ईम्) अपने प्रबल स्वामी की (अमन्दन्) स्तुति करते हैं तब वह (वृषभः) बलवान् पुरुष (सदनेषु) नाना सभाओं के बीच (अरोरवीत्) आज्ञाएं प्रकट करे (अस्य) इस राष्ट्र का (पिपिवान्) पालनकर्त्ता (पुरन्दरः इन्द्रः) शत्रु गणों से लड़ने में समर्थ राजा (उस्रियाणाम् गवाम्) उत्तम उत्तम फलोत्पादक भूमियों को (पुनः अदात्) बार-बार प्रदान करे।

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ।। १२ ।।

भा०—(गवां चत्वारि सहस्रा ददतः सूर्यस्य रुशमाः) चार हजार किरणें देने वाले सूर्य के दीप्ति किरण जैसे (इदं मन्द्रम् अक्रन्) यह सब सुखदायक प्रकाश उत्पन्न करते हैं वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! (गवां चत्वारि सहस्रा ददतः) चार हजार आज्ञा-वाणियों या अध्यक्षों को इतनी भूमियां प्रदान करते हुए राजा के अधीन (रुशमाः) शत्रु हिंसक सैन्य (इदं भद्रम् अक्रन्) यह सुखकारी राज्यप्रबन्ध बनावें और हम (नृणां नृतमस्य) नायकों में श्रेष्ठ नायक राजा के भृत्यजन (ऋणञ्चयस्य) धन संग्रही राजा के (मघानि) उत्तम धनों को (प्रयता) प्रयत्न करके (प्रति अग्रभीष्म) स्वीकार करें ।

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ।। १३ ।।

भा०—लोग (गवां सहस्रैः) हजारों गौवों से (अस्तं) घर को जैसे (सुपेशसम्) उत्तम धनधान्य युक्त बना लेते हैं वैसे ही हे (अग्ने) नायक ! (रुशमासः) वीर पुरुष (गवां सहस्रैः) सहस्रों भूमियों से (मा) मुझ राष्ट्र वासी प्रजाजन को (सुपेशसं) सुवर्णादि से सम्पन्न (अव सृजन्ति) करें । (अक्तोः व्युष्टौ यथा सुतासः इन्द्रम् अममन्दुः) रात्रि के अनन्तर प्रातः उषाकाल होने पर जैसे बच्चे पिता को प्रसन्न करते हैं वैसे ही (परितक्म्यायाः व्युष्टौ) सब तरफ प्रसन्नता की वेला के आगमन पर (तीव्राः) तीव्र (सुतासः) अभिषिक्त वीर पुरुष भी (इन्द्रम् अममन्दुः) अपने राजा को प्रसन्न करें ।

औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ।। १४ ।।

भा०—(रुशमानां) वीर पुरुषों को (ऋणञ्चये राजनि) धन संग्रही राजा के रहते हुए (या) जो प्रजा (परितक्म्यायां) सब प्रकार के प्रमोदों से पूर्ण होती

है (सा) वह (रात्री) रात्रि के समान सुखदायक होकर भी (औच्छत्) सूर्य से रात्रिवत् ही और अधिक प्रकाशित हो जाती है। (वाजी अत्यः न) वेगवान् अश्ववत् सूर्य के तुल्य ही वह राजा सबको अतिक्रमण करके (रघुः) वेग से उन्नति-पथ पर जाने वाला (बभ्रुः) प्रजा का धारक और (अज्यमानः) स्वयं प्रकाशित होकर (चत्वारि सहस्रा) चारों सहस्रों भूमियों, या अध्यक्षों को, सहस्रों किरणों को सूर्यवत् (असनत्) उपभोग करता है।

चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥२८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हम प्रजाजन (गव्यस्य पश्वः चतुः सहस्रं) सबको दिखाने वाले प्रकाशक चार सहस्र किरणों को हम प्रत्यक्ष ग्रहण करते हैं वैसे ही प्रजाजन, हे (अग्ने) नायक ! हे राजा (गव्यस्य पश्वः चतुः सहस्रं) चार हजार गवादि रूप पशु के तुल्य तेरे अधीन रहने वाले भूमि के हितकारी प्रजा के कार्यव्यवहारों को देखने वाले हैं, हम उनमें के (प्रति अग्रभीष्म) प्रत्येक को स्वीकार करें और (यः) जो (अयस्मयः) लोह के शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न होकर (घर्मः चित्) सूर्य के समान (तप्तः) तप कर (प्रवृजे) शत्रु को भगा देने में (आसीत्) समर्थ हो, हे (विप्राः) विद्वान् पुरुषो ! हम (तम् उ आदाम) उसको ही अपना नायक स्वीकार करें। इस सूक्त में 'सहस्र' शब्द अनेक वाचक है। चारों दिशाओं की अपेक्षा वे चार सहस्र कह दिये हैं अर्थात् चारों दिशाओं में विस्तृत हजारों। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[३१] अवस्युरात्रेय ऋषिः ॥ १-८, १०-१३ इन्द्रः। ८ इन्द्रः कुत्सो वा। ८ इन्द्रः उशना वा। ९ इन्द्रः कुत्सश्च देवते ॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, १० त्रिष्टुप्। १३ विराट् त्रिष्टुप्। ८, १२ स्वराट् पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी राजा वा सेनापति (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (यम्) जिस भी (वाजयन्तम्) संग्राम करने वाले रथ सैन्य के प्रमुख पद पर रथवत् (अधि अस्थात्) अधिष्ठाता होकर विराजे वह सेनानायक सारथि के तुल्य ही उस (रथाय) रथ के सञ्चालन के लिये अपने को (प्रवतं करोति) सबसे अधिक योग्य बनावे क्योंकि वह (गोपाः) भूमिपति, सूर्य वा गोपाल के समान (पश्वः भूमा इव) सैन्य समूहों को, प्रकाश-किरण समूहों के तुल्य (वि उनोति) विविध दिशाओं में प्रेरित करता है। वह (अरिष्टः) स्वयं शत्रु से न मारा जा कर (सिषासन्) सैन्यों को विभाग करना, सबसे (प्रथमः) मुख्य होकर (याति) प्रयाण करता है।

आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्व सैन्यों के स्वामिन् ! तू (आ द्रव) सब तरफ जा, (प्र द्रव) आगे बढ़। (मा वि वेनः) कभी विपरीत कामना मत कर। हे (पिशङ्गराते) सुवर्ण के दान देने और करादि में भी सुवर्ण एवं परिपक्व धान्य लेने हारे ! तू (नः अभि सचस्व) हम से समवाय बनाकर रह। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (तत् अन्यत्) तुझसे दूसरा (वस्यः) श्रेष्ठ धनस्वामी भी (नहि अस्ति) नहीं है। आप ही (अमेनान् चित्) स्त्री रहित पुरुषों को (जनिवतः) स्त्री युक्त (चकर्थ) करो।

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जैसे (सहसः उद् आ अजनिष्ट) तेजस्वी सूर्य से उषा का तेज प्रकट होता है और वह (विश्वा इन्द्रियाणि देदिष्ट) समस्त चक्षुओं को सब पदार्थ दिखाता है वह (सुदुघाः प्र अचोदयत्) प्रकाश से पूर्ण करने वाली किरणों को आगे बढ़ाता और उनको ही (वव्रे अन्तः) अपने भीतर धारण

करता और (ज्योतिषा संववृत्वत् तमः वि अवः) तेज से ही सबको ढक लेने वाले अन्धकार को दूर कर देता है वैसे ही (यत्) जो राजा (सहसः) बल से स्वयं (सहः) शत्रु विजयी होकर (उद् आ अजनिष्ट) उदय को प्राप्त करता है, वह (इन्द्रः) सूर्यवत् प्रतापी पुरुष (विश्वा इन्द्रियाणि) समस्त इन्द्रियों को आत्मा के समान, ऐश्वर्यों और शत्रुहननकारी सैन्य बलों को (देदिष्ट) अपने वश करे। वह (वव्रे अन्तः) वरण करने वाले राष्ट्र के भीतर रहकर (सुदुघाः) गोष्ठ में स्थित दुधार गौओं के तुल्य, राष्ट्र में विद्यमान सुसम्पन्न प्रजाओं को (प्र अचोदयत्) अच्छी प्रकार शासन करे और (ज्योतिषा) अपने तेज से (संववृत्वत् तमः) खेदादि अज्ञान को (वि अवः) दूर करे।

अनंवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा आदर पूर्वक सेनापति या राजा रूप से स्वीकृत राजन् ! (अनवः) मनुष्य (ते अश्वाय) तेरे अश्व के लिये रथ (तक्षन्) तैयार करें। (त्वष्टा) शिल्पी (ते द्युमन्तं) तेरे लिये तेजस्वी (वज्रं तक्षत्) शस्त्र तैयार करें। इस प्रकार (इन्द्रं महयन्तः ब्रह्माणः) ऐश्वर्ययुक्त, शत्रुहन्ता पुरुष को वेदज्ञ विद्वान् धनी पुरुष (अर्कैः महयन्तः) अर्चना योग्य स्तुति-वचनों और अन्नों से सत्कार करते हुए (अहये हन्तवा) अभिमुख खड़े शत्रु को मारने के लिये (अवर्धयन्) उसे बढ़ावें।

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥२९॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! (यत्) जो (वृषणः) शत्रु पर शस्त्रास्त्रों के वर्षक वीर पुरुष (वृष्णे ते) तुझ बलवान् सेनापति के (अर्कम्) स्तुति योग्य पद को (अर्चान्) आदर करते हैं और (ये ग्रावाणः) जो शस्त्रधारी क्षत्रिय लोग और (यत् सजोषाः अदितिः) जो समान प्रीति वाली अदीन, अपने मनोभाव प्रकट करने में स्वतन्त्र प्रजा है और (ये) जो (पवयः) चक्रधारायें या वेगवान्

सैन्य हैं (अनश्वासः) अश्वों से रहित, (अरथाः) रथों से रहित पैदल रहकर भी (इन्द्रेषिताः) अपने सेनापति से प्रेरित होकर (दस्यून् अभि अवर्त्तन्त) दुष्ट शत्रुओं तक पहुँचें। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (शक्तीवः) शक्तिशालिन् ! (यः) जो तू (उभे रोदसी) अन्तरिक्ष और भूमि दोनों को जैसे धारण करता है वैसे ही (उभे रोदसी) एक दूसरे को रोक रखने वाली राजशक्ति, प्रजाशक्ति दोनों को (वि भर) विविध उपायों से धारण कर। (मनवे) मनुष्यों के हितार्थ तू (दानुचित्राः अपः जयन्) दान योग्य पदार्थों से अद्भुत रूप से समृद्ध प्रजाओं को भी धारण करता है इसलिये मैं विद्वान् जन (ते) तेरे (पूर्वाणि) पूर्व के पुरुषाओं से स्वीकृत (करणानि) कर्त्तव्य और (या नूतना चकर्थ) जो तू नये नये कार्य करे उन सबका मैं (प्र प्र वोचं) अच्छी प्रकार उपदेश करूं।

तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्र) राष्ट्र को पूर्ण करने वाले ! विद्वन् ! राजन् ! (यत्) जो तू (अहिम्) सन्मुख आये दुष्ट पुरुष को (घ्नन्) मारता हुआ (अत्र) उस राष्ट्र में (ओजः) पराक्रम, बल (समिमीथः) तैयार कर, (शुष्णस्य चित्) शत्रु के सतापक वल के समान ही (मायाः) शत्रु नाशकारी शक्तियों को भी (परि अगृभ्णाः) सब प्रकार से धारण कर और (प्रपित्वं) प्राप्य उद्देश्य को आगे (यन्) प्राप्त करता हुआ (दस्यून् अप असेधः) नाशकारी दुष्टों को दूर कर, हे (दस्म) राजन् ! (तत् इत्) यह ही (ते करणं) तेरा प्रधान कर्त्तव्य है।

त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं स ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वम् पारः) तू प्रजा का संकटों से तारक होकर (याद्वे) यत्नशील और (तुर्वशाय) धर्मार्थ काम मोक्ष चारों की कामना वाले प्रजाजन की समृद्धि के लिये (सुदुघाः) उत्तम अन्नादि देने वाली जलधारा और ज्ञान दोहन करने वाले आप्त जनों को (अरमयः) खूब प्रसन्न रख। तू (अयातम्) शत्रुओं से न प्राप्त होने योग्य (उग्रम्) प्रबल (कुत्सम् आवहः) शत्रुओं के अंगों को काटने में समर्थ तीक्ष्ण शस्त्र बल को धारण कर और (उशना देवाः) कामना युक्त मनुष्य (ह) भी (वां ह) सैन्य वल और तू दोनों को (सम् अरन्त) सदा प्रसन्न रक्खें।

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षींमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९॥

भा०—हे (इन्द्राकुत्सा) इन्द्र ! सेनापते ! हे कुत्स ! शत्रु का नाश करने वाले क्षात्रबल ! (रथेन वहमाना) रथ से ले जाते हुए (वाम्) आप दोनों को (अत्याः अपि) अश्व गण भी (कर्णे वहन्तु) अपने कान पर धारण करे। आप की आज्ञाएं कान लगा कर सुनें। आप दोनों (सीम्) सब ओर से (अद्भ्यः) प्राप्त प्रजाजनों के हित के लिये ही (निर्धमथः) उनके बीच से दुष्ट पुरुष को बाहर करो और (सधस्थात्) साथ रहने वाले (मघोनः हृदः) ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र के मध्य भाग से भी (तमांसि निर्वरथः) सब प्रकार के अन्धकारों को दूर करो।

वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥३०॥

भा०—(कविः चित्) जैसे विद्वान् पुरुष (अवस्युः यातस्य सुयुजः युक्तान् अश्वान्) गमन की इच्छा वाला होकर वायु के बल से सुख से जुड़ने वाले, जुते अश्वों वा आशुगामी यन्त्रों को (अजगन्) प्राप्त करता और चलाता है। उस समय सब वायु ही उसके मित्र सहायक होते हैं। वैसे ही (अवस्युः) प्रजा की रक्षा का इच्छुक रक्षक (एषः) वह राजा (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (सुयुजः)

उत्तम मनोयोग देने वाले, (वातस्य) वायुवद् बलवान् पुरुष के अधीन (युक्तान्) नियुक्त पुरुषों को (अजगन्) प्राप्त करे, (अत्र) इस राज्य कार्य में (ते विश्वे मरुतः) वे सब मनुष्य हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सखायः) मित्र होकर (ते ब्रह्माणि तविषीम् अवर्धन्) तेरे ज्ञानों और बलवती सेना की भी वृद्धि करें। इति त्रिंशो वर्गः ॥

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥ ११ ॥

भा०—(सूरः चित्) जैसे कोई विद्वान् (परितक्म्यायां) चारों तरफ कठिनाई से जाने योग्य भूमि में (उपरं जूजुवांसं रथं पूर्वं करत्) मेघ तक वेग से जाने वाले रथ को बनाता है, उसमें (एतशः चक्रम्) अश्व के समान उसके स्थानपाल एक चक्र [फ्लाई ह्वील या प्रोपेलर] ही उस रथ को (भरत्) गति देता है। वह (सं रिणाति) अच्छी प्रकार चलता है और (पुरः क्रतुं दधत्) रथ के अगले भाग में क्रियोत्पादक यन्त्र वा ऐञ्जिन रखता है। वैसे ही (सूरः) तेजस्वी पुरुष (परितक्म्यायाम्) सब तरफ आपत्ति युक्त संग्रामादि वेला में (पूर्वम्) सबसे पहले (उपरं जूजुवांसं) मेघ तक वेग से जाने वाले (रथं) रथ सैन्य (करत्) करे। स्वयं (एतशः) अश्वतुल्य अग्रगामी होकर (चक्रं भरत्) सैन्य चक्र को धारण करे। (सः क्रतुं दधत् पुरः सं रिणाति) वह प्रज्ञा को धारण करके आगे चले, (नः सनिष्यति) वह हम प्रजाजनों को विभक्त करे।

आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥ १२ ॥

भा०—हे (जनाः) प्रजाजनो ! (अयम् इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, राजा और विद्वान् (सखायं) अपने मित्र (सुत-सोमम्) पुत्रवत् प्रिय राष्ट्र को (इच्छन्) हृदय से चाहता (अभिचक्षे) उसको उपदेश करने के लिये (आ जगाम) सब ओर जाया करे। (ग्रावा) ज्ञान का उपदेष्टा विद्वान् और शिला के समान दुष्टों

का मर्दन करने वाला क्षत्रिय (वदन्) उपदेश और आज्ञा प्रदान करता हुआ, (वेदिं) प्राप्त भूमि को (भ्रियाते) पालन करें (यस्य) जिसकी (जीरं) प्रेरणा को (अध्वर्यवः) अपनी हिंसा न चाहने वाले समस्त प्रजा जन सदा (चरन्ति) आचरण करें, मानें।

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन्।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥ १३ ॥ ३१ ॥

भा०—हे राजन्! (ये मर्त्ताः) जो मनुष्य (ते) तुझे (चाकनन्त) चाहते हैं (ते) वे तुझे (चाकनन्त नु) सदा चाहते ही रहें। हे (अमृत) हे चिरंजीव! (ते) वे लोग (ते अंहः) तेरे पाप को (मो आरन्) प्राप्त न हों। (उत) और तू (यज्यून्) यज्ञशील, सत्संगी पुरुषों का (वावन्धि) सत्संग कर। (उत) और तू (तेषु ओजः धेहि) उनमें अपना तेज (धेहि) स्थापित कर (येषु जनेषु) जिन लोगों में रहते हुए हम (ते स्याम) तेरे ही होकर रहें। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[३२] गातुरात्रेय ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९, ११ त्रिष्टुप्। २, ३, ४, १०, १२ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ८ स्वराट् पंक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्विन् राजन्! जैसे सूर्य (उत्सम् अदर्दः) ऊपर आकाश में स्थित मेघ को छिन्न भिन्न करता है वैसे ही तू (उत्सं) वहने वाले झरने, कूप आदि राष्ट्र में (अदर्दः) खन। जैसे सूर्य (खानि वि असृजः) मेघस्थ अन्तरिक्ष छिद्रों को बनाता और उनमें प्रवेश करता है वैसे ही तू (खानि) अपनी इन्द्रियों को (वि असृजः) विविध मार्गों में प्रेरित कर। (बद्बधानान् अर्णवान् अरम्णाः) सूर्य जैसे बार-बार ताड़ित जलमय मेघों को ताड़ता वा, नदी तडागादि को सुभूषित करता है वैसे ही (त्वम्) तू भी (अर्णवान्) जल से युक्त

नदी धनाधिपतियों को (वद्धवधानान्) खूब सुप्रवद्ध कर (अरम्णाः) उनको प्रसन्न कर। जैसे सूर्य (महान्तं पर्वतं वि वः) बड़े भारी जगत्-पालक मेघ को विच्छिन्न करता है वैसे ही तू भी बड़े भारी पालक पुरुष को (वि वः) विविध उपायों से प्रसिद्ध कर। जैसे विद्युत् वा सूर्य (धाराः विसृज) जलधाराओं को प्रकट करता है वैसे ही तू आज्ञा वा उपदेश वाणियों को और राष्ट्र में जल-धाराओं को बना। (दानवं अव हन्) जैसे सूर्य या विद्युत् जलदाता मेघ को प्रहार कर नीचे गिराता, वरसाता है वैसे ही राजा तेजस्वी होकर (दानवं) राजनियमों और धर्म मर्यादाओं को भङ्ग करने वाले दुष्ट को (अवहन्) नीचे गिरा कर दण्ड दे।

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन्।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २ ॥

भा०—(वद्बधानान् उत्सान्) जैसे खेतिहर वंधे हुए, पक्के कुओं को (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार (अरंहत) चलाता है वा सूर्य या विद्युत् जैसे (ऋतुभिः वद्बधानान् उत्सान् अरंहत्) ऋतु, ग्रीष्मादि या अनावृष्टि आदि के कारण वंधे या रुके हुए उत्स अर्थात् जलधारा, नद नदियों या मेघस्थ जल-धाराओं को चलाता है और (पर्वतस्य ऊधः शयानं अहिम् जघन्वान् धत्ते) मेघ या पर्वत के जलधारक भाग को और आकाश में निश्चल स्थित मेघ को जैसे प्रहार करता हुआ सूर्य या विद्युत् वलवती शक्ति को धारण करता है वैसे ही हे (वज्रिन्) वलवन्! सेनापते! (त्वम्) तू (ऋतुभिः) राज सभा के सदस्यों से मिलकर उनकी अनुमति से (बद्बधानान् उत्सान्) वंधे हुए कूप, तड़ाग और वहते झरने और वंधों आदि जल स्थानों को उनमें नहरें या उनको गमनशील यन्त्रों में चालित कर। हे (वज्रिन्) अस्त्रों व शस्त्रों के स्वामिन्! (तविषीम्) वलवती, गज-पर्वतभेदिनी शक्ति को धारण कर और (पर्वतस्य ऊधः) पर्वत के जलाधार स्थान को और (प्रयुतं) लाखों करोड़ों मन (शयानं) प्रसुप्त (अहिं)

जल को (जघन्वान्) सुरंगादि से भेद कर उसको गति देता हुआ, नदी, नहर, नल आदि द्वारा चला, उनको प्राप्त कर।

त्यस्य॑ चिन्मह॒तो निर्मृ॒गस्य॒ वध॑र्जघान॒ तवि॑षीभि॒रिन्द्रः॑ ।
य एक॒ इद॑प्र॒तिर्मन्य॑मान॒ आद॑स्मा॒द॒न्यो अ॑जनिष्ट॒ तव्या॑न् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रु पद को तोड़ने हारा पुरुष (त्यस्य) उस (महतः) महान् (मृगस्य चित्) सिंहवत् पुरुष के भी (वधः) शस्त्र बल को (तविषीभिः) प्रबल सेनाओं से (जघान) मार गिरावे। (यः) जो (एकः) अकेला (अन्यः) शत्रु भी (अप्रतिः) अपने को अद्वितीय (मन्यमानः) मान रहा है (आत्) अनन्तर (अस्मात् अन्यः) उससे भिन्न दूसरा राजा (तव्यान्) बलवान् रूप में (अजनिष्ठ) प्रकट हो।

त्यं चि॑दे॒षां स्व॒धया॒ मद॑न्तं मि॒हो नपा॑तं सु॒वृधं॑ तमो॒गाम् ।
वृष॑प्रभर्मा दा॒नव॑स्य॒ भामं॒ वज्रे॑ण व॒ज्री नि ज॑घान॒ शुष्ण॑म् ॥ ४ ॥

भा०—(एषां) इन प्रजाओं के बीच (स्वधया मदन्तं) जल और अन्न से हर्षित करने वाले, (मिहः नपातम्) वृष्टि को न गिरने देने वाले, (तमोगां) अन्धकार रूप नीलता को प्राप्त मेघ को जैसे सूर्य (वज्रेण) विद्युत् द्वारा (नि जघान) ताड़ित करता है (चित्) वैसे ही (एषां) इन वीर प्रजाजनों के बीच (त्यं) उस (स्वधया) स्वयं अपने धन की धारणा शक्ति से (मदन्तं) हर्षित होते हुए और (मिहः न पातम्) ऐश्वर्य की वृष्टि न करने वाले (तमोगाम्) अज्ञानान्धकार को प्राप्त (सु-वृधं) खूब बढ़ने वाले, (दानवस्य भामं) दुष्ट पुरुष के क्रोध वा क्रुद्ध सैन्य और (शुष्णम्) प्रजा के प्राण शोषक बल को (वज्री) शस्त्रास्त्र बल से सम्पन्न राजा (वृष-प्र-भर्मा सन्) शस्त्रवर्षी वीर पुरुषों का भरणकर्त्ता होकर (नि जघान) बराबर नाश करता रहे।

त्यं चि॑द॒स्य॒ क्रतु॑भि॒र्निष॑त्तमम॒र्मणो॑ वि॒ददि॑द॒स्य॒ मर्म॑ ।
यदीं॑ सुक्षत्र प्रभृ॑ता॒ मद॑स्य॒ युयु॑त्सन्त॒ं तम॑सि ह॒र्म्ये धाः॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सु-क्षत्र) उत्तम बल सम्पन्न राजन्! (त्वं) तू (क्रतुभिः) बुद्धियों से, (अमर्मणः) निर्बल मर्म स्थानों से रहित (अस्य) इस शत्रुजन के (नि-सत्तम्) निश्चित रूप से विदित (त्यं मर्म) उस मर्म को (विदत्) जान ले (यत्) जिससे (मदस्य प्रभृता) मद के अधिक बढ़ जाने से (युयुत्सन्तं) युद्ध के इच्छुक उसको तू (तमसि हर्म्ये) अन्धकारवत् कष्टदायी और उसके बल, पद के हरने वाले कारागार या प्रासाद में उसे (धाः) बन्दी रख।

त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम्।

तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥३२॥

भा०—विद्युत् (कत्पयं असुर्ये तमसि शयानं वावृधानं) सुखकारी जल वाले, अन्धकार में विद्यमान और फैलते हुए मेघ को ताड़ता है, (इत्था चित्) ऐसे ही (कत्पयम्) सुखपूर्वक जलान्न का सेवन करने वाले वा संख्या में कई एक, (असूर्ये तमसि) सूर्यरहित, अन्धकार में पड़े और (वावृधानम्) बराबर बढ़ते हुए (त्यम्) उस शत्रु को भी (सुतस्य मन्दानः) अभिषेक में प्राप्त ऐश्वर्य के कारण तृप्त और प्रसन्न होकर (इन्द्रः) सेनापति, (उच्चैः अपगूर्य) शस्त्रास्त्र बल उद्यत करके, खूब सावधानी से (जघान) नष्ट करे। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम्।

यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार॥ ७॥

भा०—जैसे सूर्य (दानवाय महते वज्रम् उद् यमिष्ट) जलादि देने वाले मेघ को छिन्न भिन्न करने के लिये प्रताप को सर्वोपरि धारण करता है वैसे ही (यत्) जो (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (महते दानवाय) बड़े भारी दानशील प्रजाजन के पालन और प्रजा नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश के लिये (सहः) शत्रु पराजयकारी (अप्रतीतम्) अन्यों से प्रतीकार न करने योग्य भारी सैन्य बल को (उद्-यमिष्ट) सदा तैयार रखता है और जो (वज्रस्य प्रभृतौ) 'वज्र' अर्थात् शस्त्रबल के प्रहार करते ही शत्रु को (ददाभ) नाश कर डालता है, वह अवश्य

अपने शत्रु को (विश्वस्य जन्तोः) समस्त प्राणियों के (अधमं चकार) नीचे गिरा देता है।

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥ ८ ॥

भा०—जैसे विद्युत् वा प्रबल वायु (अर्णं) जलमय (मधुपं) जल वा अन्न के पालक, (शयानं) निश्चेष्ट, (असिन्वम्) अबद्ध, (वव्रम्) व्यापक, (अत्र) गतिशील (मृध्र-वाचम्) हिंसाकारी विद्युन्मय वाणी से युक्त मेघ को (महता वधेन) बड़े विद्युन्मय आघात से (आदद्) सब प्रकार से खण्डित करता है, (चित्) वैसे ही (उग्रः) प्रचण्ड राजा (त्यं) उस (अर्णं) जलवत् गम्भीर (मधुपं) 'मधु' अर्थात् अन्न, जल, राष्ट्र के उपभोक्ता, (असिन्वं) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ (वव्रं) सबसे वरणीय परन्तु (शयानं) लोकहित में उदासीन, अचेत (अत्रं) प्रजा के भक्षक, (अपादम्) पैररहित, भागने में असमर्थ (मृध्रवाचं) हिंसक, दुःखद वाणी बोलने वाले दुष्ट पुरुष को (दुर्योणे) दुःखदायी स्थान में बन्द करके (महता वधेन) बड़े भारी दण्ड से (आवृणक) दण्डित करे।

को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥ ९ ॥

भा०—(कः) कौन (अस्य) इस राजा के (शुष्मं) शत्रुशोषक बल, सुख-समृद्धि और (तविषीं) बलवती सेना को (वराते) अपने वश कर सकता है। वह (एकः) अकेला ही (अप्रतीतः) अद्वितीय रूप से सर्वोपरि होकर (धना भरते) सब समृद्धियों को प्राप्त करता है। (इमे देवी) ये दोनों धन वा विजय चाहने वाली सेना (अस्य) इस (ज्रयसः) विजयी (इन्द्रस्य) राजा के (ओजसः) पराक्रम के (भियसा) भय से (जिहाते) सत्पक्ष पर चलती है।

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥ १० ॥

भा०—(युवते इन्द्राय, स्वधाव्ने उशती इव येमे) जैसे युवा, ऐश्वर्य युक्त, अन्नादि समृद्धि, धनैश्वर्य और अपने शरीर को धारण पालन करने के सामर्थ्य से युक्त पुरुष की कामना करती हुई स्त्री उससे विवाह कर लेती है, वैसे ही (अस्मै) इस (इन्द्राय) शत्रुहन्ता, (युवते) युवावस्थापन्न, (स्वधाव्ने) ऐश्वर्य के स्वामी इस राजा के लिये (स्वधितिः देवी) अपने 'स्व' को धारण करने वाली शस्त्र शक्ति, और (गातुः) गमन करने योग्य भूमि, दोनों (नि जिहीते) विनीत होकर प्राप्त होतीं और (येमे) उसको स्वस्वामिभाव सम्बन्ध से बांध लेती हैं। (यत्) जब उसका (ओजः) पराक्रम (आभिः) इन प्रजाओं के साथ (सं येमे) उनको बांध लेता है तब (अनु) उसके अनुकूल होकर (क्षितयः सं नवन्त) समस्त मनुष्य उसके आगे झुकते हैं।

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥ ११ ॥

भा०—मैं (त्वा एकं नु) तुझ अकेले को ही (सत्पतिं) सज्जनों का पालक, (पाञ्चजन्यं) पांचों जन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और शासक वर्ग अर्थात् निषाद इन पांचों के हितकारी, (जनेषु जातम्) सब मनुष्यों में प्रसिद्ध, (यशसं) यशस्वी, (शृणोमि) सुनता हूँ। (मे) मुझ प्रजा के (नविष्ठं इन्द्रम्) सदा नवीन, रमणीय स्वामी को (आशसः) आदरपूर्वक स्तुति करने वाले और नाना कामनाओं से युक्त लोग (हवमानासः) आदरपूर्वक अपना प्रभु स्वीकार करते हुए (दोषा वस्तोः) दिन और रात (तं जगृभ्रे) उसको पकड़े रहें, उसको अपना आश्रय बनाये रहें।

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥ १२ ॥
३३ ॥ १ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (एव हि) इस प्रकार ही मैं सदा (ऋतुथा) उचित ऋतुओं के अनुसार (यातयन्तम्) सूर्यवत् समस्त प्रजाजनों को उद्योग

करते कराते हुए और (विप्रेभ्यः) बुद्धिमान् पुरुषों को (मघा ददतं) नाना धन देते हुए (शृणोमि) श्रवण करूं। हे राजन्! (ये) जो (त्वाया) तेरे आश्रय ही अपना (कामम्) समस्त अभिलषित (निदधुः) रखते हैं, वे वस्तुतः (ते सखायः) तेरे मित्र हैं। वे (ब्रह्माणः) विद्वान् जब (ते किं गृहते) तेरा ले भी क्या लेते हैं।

इति पञ्चमे मण्डले द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः । तृतीयोऽनुवाकः

[३३] संवरणः प्राजापत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७ पंक्तिः । ३ निचृत्पंक्तिः । ४, १० भुरिक्पंक्तिः । ५, ६ स्वराट्पंक्तिः । ८ त्रिष्टुप् । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

महिं मुहे तुवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तुवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो राजा (वाजसातौ) ऐश्वर्य लाभ और संग्राम विजय के लिये (स्तुतः समर्यः) प्रस्तुत होकर वीर पुरुषों सहित (अस्मै जने) इस राष्ट्र के वासी जनों के ऊपर शासक होकर (सुमतिं चिकेत) सन्मति को जानता और अन्यों को तदनुसार चलाने में समर्थ है (इत्था) ऐसे (तवसे इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन (अतव्यान् नॄन्) निर्बल पुरुषों को भी मैं (महे तवसे) बड़ा भारी बल सम्पादन करने के लिये (महि दीध्ये) पर्याप्त शक्तिशाली मानता हूं।

स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सः) वह (त्वं) तू (धियसानः) राज्य कार्यों की चिन्ता करता हुआ (अर्कैः) अर्चना योग्य साधनों से (हरीणां

ओक्तुम्) अश्वों के जोड़ने को सारथि के समान (हरीणां) राज्य कार्यों के सञ्चालक अध्यक्ष मनुष्यों को (योक्तुम् अश्वैः) नियोजन, परस्पर संयोग वा उनको नियुक्ति वा आश्रय देकर उत्तम पदों पर रख। हे (वृषन्) बलवान् राजन् ! हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (इत्था) इस प्रकार से तू (याः) जिन प्रजाओं का भार (अनुजोष) प्रतिदिन प्रेम से (वक्षः) अपने ऊपर लेता है उन (जनान् अभि) मनुष्यों के प्रति तू (अर्यः) स्वामिवत् (प्र सक्षि) सुदृढ़ समवाय बना कर रह।

न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (ऋष्व) महापुरुष ! (यत्) जो (अयुक्तासः) तेरे साथ योग न करें और जो (न ते) तेरे भी होकर न रहें और जो (अब्रह्मता) धनहीनता है, वह (ते अस्मद्) तेरे प्रजा रूप हम लोगों से (अभि) परे रहें। हे (वज्रहस्त) बल को अपने हाथ में रखने वाले ! तू (रथम् अधि तिष्ठ) जिस रथ पर आरूढ़ हो (तं) उसके (रश्मिं) रासों को (स्वश्वः) उत्तम अश्वारोही के तुल्य (यमसे) नियन्त्रण में रख।

पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो (ते) तेरे (उक्था) प्रशंसनीय कार्य हैं जिनको तू (गवे) पशु और भूमि की उन्नति के लिये (उर्वरासु युध्यन् चकर्थ) उपजाऊ भूमियों के निमित्त युद्ध करता हुआ करे, तब तू (वृषा) वर्षणशील होकर (सूर्याय) सूर्यवत् तेजस्वी पद के योग्य (स्वे ओकसि) अपने पद पर रहकर (समत्सु) संग्रामों में (दासस्य चित् नाम ततक्षे) मेघ के तुल्य उदार दाता और राष्ट्र सेवक रूप से ख्याति को उत्पन्न कर।

वय ते त इन्द्र येच नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (ये च) और जो (नरः) नायक लोग (ते शर्धः ज्ञानाः) तेरे बल को पैदा करने वाले और जो (याताः च रथाः) प्रयाणशील रथ हैं और (ते वयं) वे हम ही ते ; हि शुष्म) सर्वतोमुख जाने वाले बल के स्वामिन् ! (भगः न हव्यः) ऐश्वर्यवान् तुझ स्वामी के तुल्य स्तुत्य (प्रभृथेषु चारुः) उत्तम रीति से भरण योग्य परिजनों में श्रेष्ठ, (हव्यः) स्तुति योग्य (सत्वा) सात्विक पुरुष (अस्मान् आ जगम्यात्) हमें प्राप्त हो । इति थमो वर्गः ॥

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो र॒यिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वे हि) तेरे अधीन रहने ला, (ओजः) पराक्रम (पपृक्षेण्यम्) सदा सबके प्रश्न का विषय बना रहे और (त्वे नृम्णानि च) तेरे अधीन नाना ऐश्वर्य भी (पपृक्षेण्यानि) प्रश्न योग्य होकर रहें । वे अपार हों । (त्वे नृतमानः) तेरे अधीन नाचता हुआ, इशारे पर चलता हुआ मनुष्य भी (अमर्त्तः) साधारण मनुष्य से भिन्न होकर रहे । (सः) वह तू (एनीं वसवानः) शुक्लवर्णा, सदाचारिणी और प्राप्त होने योग्य मन्तव्या स्त्रीवत् उपभोग्य प्रजा को प्राप्त कर (वसवानः) उसे बसाता हुआ और उसमें वसुपति के समान रहता हुआ, तू (नः) हमें (रयिं दाः) ऐश्वर्य दे और प्रजागण (तुवि मघस्य) बहुत धनाढ्य (अर्यः) तुझ स्वामी के (दानम्) दान की (प्र स्तुषे) खूब स्तुति करें और तू भी (अर्यः सन् तुवि-मघस्य दानं प्र स्तुषे) स्वामी होकर बहुत समृद्ध राष्ट्र की स्तुति कर ।

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (एव) इस प्रकार तू (नः) हमारी (अव) रक्षा कर। (गृणतः) उपदेष्टा विद्वानों और (कारून्) क्रिया-कुशल शिल्पियों को हे (शूर) शूरवीर ! तू (पाहि) पालन कर। हे राजन् (उत) और (त्वचं) अपने शरीर की (वाजसातौ ददतः) संग्राम और अन्नोत्पादन, कृषि आदि के कार्य में लगाने वाले पुरुषों को (चारोः) उत्तम, गमनशील (सुसुतस्य) उत्तम रीति से तैयार किये (मध्वः) अन्न और जल से (पिप्रीहि) पूर्ण कर।

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गौरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥ ८ ॥

भा०—(उत) और (पौरुकुत्स्यस्य) बहुत सैन्य समुदाय के अध्यक्ष (सूरेः) विद्वान् (त्रसदस्योः) भय त्रस्त शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले (हिरणिनः) सुवर्णादि ऐश्वर्य के स्वामी के (रराणाः) अति चपल, क्रीड़ा से चलने वाले (त्ये) वे (श्येतासः) शुक्लवर्ण (दश) दशों अश्वसैन्य (मा वहन्तु) मुझ राष्ट्र के कार्य-भार को धारण करें और (अस्य) इस (गैरिक्षितस्य) आज्ञा आदि या वेद या परस्पर की स्थित शर्त्तों की मर्यादा में रहने वाले (अस्य) इस राजा के (क्रतुभिः) कर्मों और ज्ञानों से मैं (नु) शीघ्र ही (सश्चे) उत्तम रूप से प्रबन्ध युक्त हो जाऊं।

उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और (मारुत-अश्वस्य) वायु वेग से जाने वाले अश्वों के स्वामी (विदथस्य) नाना ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले राजा के (रातौ) दान में (त्ये) वे (शोणाः) लाल वर्ण के वा गतिशील, (क्रत्वा मघासः) कार्य और बुद्धि से उत्तम धन प्राप्त करने वाले भृत्य जन और (सहस्रा च्यवतानः) हजारों ऐश्वर्यों को देने वाला राजा और (ददानः) आभरण देने वाला (अर्यः) स्वामी ये सभी (मा) मुझे (वपुषे आनूकं न मे) मेरे राष्ट्रमय शरीर को देह को आभूषण के तुल्य (अर्चत्) सुशोभित करते हैं।

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१०॥२॥

भा०—(गावः व्रजं न) गौएं जैसे गौशाला को प्राप्त होती हैं और (ऋषेः संवरणस्य प्रयताः गावः व्रजं न) मन्त्रार्थद्रष्टा गुरु की प्रदान की हुई वाणियां जैसे समीप आये शिष्य को प्राप्त होती हैं वैसे ही (ध्वन्यस्य) उत्तम ध्वनि करने वाले, (लक्ष्मण्यस्य) राज-मुद्रा चिह्न से अंकित (रायः मह्ना) धनैश्वर्य के महान् सामर्थ्य से (संवरणस्य) मिलकर वरण किये गये राजा और वरण करने वाले प्रजाजन की (सुरुचः) सबको रुचने वाली मनोहर (यतानाः) यत्नशील (गावः) भूमियां और आज्ञा वाणियां (प्रयताः) नियत रूप होकर (व्रजं अपि ग्मन्) मार्ग और संसार को प्राप्त करें ।

[३४] संवरणः प्राजापत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ९ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृज्जगती । ३, ७ जगती । ८ विराड्जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥

भा०—(अजरा) जीर्ण न होने वाली, (स्ववंती) सुख से समृद्ध, (स्वधा) स्वयं अपने को धारण करने वाली, अपने धन को धारने वाली, राष्ट्रवासिनी प्रजा जरारहित युवती के समान ही (अजात शत्रुम्) शत्रुरहित, (दस्मम्) विघ्नों के विनाशक पुरुष को (ईयते) प्राप्त होती है । हे विद्वान् पुरुषों ! आप (पुरुस्तुताय) बहुतों से प्रशंसित (ब्रह्म-वाहसे) धन और ज्ञान के धारक विद्वान् और सम्पन्न पुरुष के आदरार्थं (सुनोतन) उत्तम ऐश्वर्यादि उत्पन्न करो, (पचत) उत्तम भोजन बनाओ और (प्रतरं) खुब अच्छी प्रकार दुःख संकटादि से तरने और दूर जाने के साधन नाव, रथादि (दधातन) बनाओ ।

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो राजा (सोमेन) ऐश्वर्य से (जठरम्) राष्ट्र के भीतरी भाग को (आ अपिप्रत) सब ओर से भर लेता है, वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्नादि से (अमन्दत) तृप्ति लाभ करे और (यत्) जो (ईम्) सब ओर केवल (हन्तवे मृगाय महावधः) हननशील हिंसक सिंह के पेट भरने के लिये अन्य जीवों के भारी वध के सदृश शत्रु राजा वा स्वयं हिंसा-व्यसनी राजा की सन्तुष्टि के लिये भारी जनसंहार हो तो ऐसे (सहस्रभृष्टिम्) हजारों जनों और जीवों को आग से भून देने वाले (वधं) हत्याकाण्ड को, (उशनाः) प्राणियों को सुखी चाहने वाला, राजा अवश्य (यमत्) रोक दे । ऐसे जनसंहार न होने दे ।

यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शुक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (घ्रंसे) दिन के समय (उत वा) अथवा (यः ऊधनि) प्रातः समय में अर्थात् दिन रात (अस्मै) इस राष्ट्र की वृद्धि के लिये (सोमं सुनोति) देह में औषध, जल या पुष्टिकर वीर्य के समान ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वह (अह) निश्चय से (द्युमान्) तेजस्वी (भवति) हो जाता है । (यः) जो पुरुष (कवासखः) विद्वान् पुरुषों का मित्र (मघवा) ऐश्वर्यवान् और (शक्र) शक्तिशाली होकर (तनूशुभ्रं) देह में वा राष्ट्र में शोभाजनक (ततनुष्टिम्) शक्ति की (ऊहति) वृद्धि करता है वह (अप-अप) सब रोगों और शत्रुओं को सदा दूर भगा देता है ।

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥ ४ ॥

भा०—(शक्रः) शक्तिशाली राजा (यस्य पितरम्) जिसके पिता को, (यस्य मातरं) जिसकी माता को वा (यस्य भ्रातरं) जिसके भाई को भी (अवधीत्) मारे, दण्ड दे और वह (अतः न ईयते) उससे भय न खावे वह (यतङ्करः) सदा यत्नशील रहकर (यस्य प्रयता इत् उ वेति) उसे वश करने की कामना करता रहे। वह (वस्वः आकरः) ऐश्वर्य को सब ओर से संग्रह करने में कुशल होकर (किल्विषात्) पापी पुरुष से (न ईषते) कभी भय न खावे।

न प॒ञ्चभि॑र्द॒शभि॑र्वष्ट्या॒रभं॒ नासु॑न्वता सचते॒ पुष्य॑ता च॒न।
जि॒नाति॒ वेद॑मु॒या हन्ति॒ वा॒ धुनि॒रा दे॑व॒युं भ॑जति॒ गोम॑ति व्र॒जे ॥५॥३॥

भा०—जो पुरुष अपने (पञ्चभिः) पांचों इन्द्रियों से और (दशभिः) दशों प्राणों से युक्त होकर (आरभं) कार्य करने का उद्योग (न वष्टि) नहीं करना चाहता उस (असुन्वता) निरुद्योगी और (पुष्यता चन) केवल मोटे ताजे पुरुष से भी (न सचते) विद्वान् पुरुष मैत्रीभाव नहीं करता। ऐसे व्यक्ति का तो (धुनिः) शत्रुओं को कंपा देने में समर्थ पुरुष (जिनाति वा) अवश्य तिरस्कार करे (वा) अथवा (हन्ति इत्) ऐसे पुरुष को दण्ड दे। (गोमति व्रजे) वाणियों से युक्त, आदरपूर्वक प्राप्तव्य गुरु तथा सूर्यवत् तेजस्वी और पृथिवी के स्वामी तथा शत्रु पर चढ़ने वाले सेनापति के अधीन रहने वाले (देवयुम्) विद्वानों और राजा की कामना करने वाले प्रिय पुरुष को (भजति) राजा आदर पूर्वक रक्खे।

वि॒त्वक्ष॑णः॒ सम्‌ऋ॑तौ च॒क्रमा॑स॒जोऽसु॑न्वतो॒ विषु॑णः॒ सुन्व॒तो वृ॒धः।
इन्द्रो॒ विश्व॑स्य दमि॒ता वि॒भीष॑णो यथाव॒शं न॑यति॒ दास॒मार्यः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (आर्यः) स्वामी, (सम्-ऋतौ) संग्राम तथा सभा आदि में (वित्वक्षणः) विद्युत्वत् विविध प्रकार से शत्रुओं का छेदन भेदन करने हारा (वि-त्व क्-सनः) सभादि में विविध विद्याओं के रहस्य खोलकर बतलाने हारा हो। सूर्य जैसे (चक्रमासजः) संवत्सर चक्र वा मास-मास में प्रकट होता है वैसे ही राजा भी, (चक्रम्-आसजः) राज-चक्र वा सैन्यचक्र के मुख स्थान

पर प्रकट हो। वह (असुन्वतः) अपुरुषार्थी पुरुष का (वि-षुणः) विरोधी और (सुन्वतः) पुरुषार्थी पुरुष का (वृधः) बढ़ाने वाला हो। वह (विभीषणः) विशेष रूप से भीषण होकर भी (विश्वस्य दमिता) समस्त राज्य का दमन करने हारा होकर (दासम्) भृत्य तथा प्रजानाशक शत्रु को भी (यथावशं) यथाशक्ति (नयति) सन्मार्ग पर चलावे।

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७॥

भा०—राजा (पणेः) व्यवहारकुशल पुरुष के (भोजनं) भोजन और पालन को (सम् अजति) प्राप्त कराता है और (मुषे) चोर के लिये (वि) उससे विपरीत दण्ड करता है, और (दाशुषे) आत्मसमर्पक प्रजा के हितार्थ (सूनरं) उत्तम नायकों से युक्त (वसु) वसने योग्य राष्ट्र और ऐश्वर्य को (वि भजति) यथायोग्य विभक्त करता है और (यः) जो (अस्य) इस राजा की (तविषीम्) शक्ति को (अचुक्रुधत्) क्रोधित कर दें वह (पुरु जनः) बहुत से लोग भी (विश्वे) सब (दुर्गे चन आध्रियते) दुर्ग के बीच कैद कर रख दिये जाते हैं।

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (जनौ) दो मनुष्य, दो नायक (सुधनौ) खूब धन से समृद्ध और (विश्व शर्धसौ) सब प्रकार के शस्त्रास्त्र बलों से सुदृढ़ हो जायं तो (मघवाः इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (शुभ्रिषु) रत्न और शोभादायी द्रव्यों से सम्पन्न (गोषु) भूमियों की रक्षा के निमित्त उन दोनों को (सम् अवेत्) परस्पर मिलाकर सन्धि पूर्वक रक्खे (अन्यम्) अपने से भिन्न शत्रु को भी (युजम् अकृत) अपना सहायक बना ले। यदि वह सामपूर्वक सहयोग न करे तो जैसे (प्रवेपनी धुनिः सत्वभिः गव्यं ईं उत्सृजते) वेग से चलने वाली नदी वेगों से चलकर भूमि के हितकर जल प्रदान करती है वैसे ही बलवान् राजा भ

(धुनिः) शत्रु को कंपा देने में समर्थ होकर (प्र-वेपनी) कंपा देने वाली सैन्य शक्ति के द्वारा (ईं) उसको प्रहार कर (सत्वभिः) अपने बलवान् वीरों से (गव्यम्) भूमि से प्राप्त समस्त धन (उत्सृजते) उससे छीन ले।

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! विद्वन्! जो (अर्यः) स्वयं स्वामी होकर (सहस्रसाम्) सहस्रों सुखों के दाता (आग्नि वेशिम्) अग्नि के अधीन निवासिनी प्रजाओं के हितार्थ (शत्रिम्) दुःखों के नाशक (उपमां) दृष्टान्त स्वरूप, (केतुम्) ज्ञान का (गृणीषे) उपदेश करे तो (तस्मै) उसको (संयतः) सुप्रबद्ध जल-धाराओं के सदृश आप्त प्रजाजन (पीपयन्त) खूब समृद्ध करती हैं और (तस्मिन्) उसके अधीन (क्षत्रम्) क्षत्रसैन्य बल (अमवत्) सहायक वा गृह के समान सुख दाता और (त्वेषम्) तेज के तुल्य प्रतापी (अस्तु) हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३५] प्रभूवसुराङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ७ अनुष्टुप्। २ भुरिगुष्णिक्। ४, ५, ६ स्वराडुष्णिक्। ८ भुरिग्बृहती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! गुरो! (यः) जो (ते) तेरा (साधिष्ठः) कार्य साधक, (क्रतुः) कर्मकौशल और ज्ञान है (तम्) उस (चर्षणीसहं) सब मनुष्यों को जीतने वाले, (सस्निं) अतिपवित्र और अन्यों को पवित्र करने वाले (वाजेषु) संग्रामादि में (दुस्तरम्) अपार सामर्थ्य को (अस्मभ्यम् आ भर) हमें प्राप्त करावे।

यदि॑न्द्र ते॒ चत॑स्रो॒ यच्छू॑र॒ सन्ति॑ ति॒स्रः ।
यद्वा॒ पञ्च॑ क्षि॒ती॒नामव॒स्तत्सु न॒ आ भ॑र ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो (ते) तेरी (चतस्रः) साम, दान, भेद और दण्ड ये चार वृत्तियां और (शूर यत् तिस्रः सन्ति) हे शूरवीर पुरुष ! जो तेरी तीन सभाएं वा दण्ड, धन और मन्त्र ये तीन शक्तियां हैं (यद् वा) और जो (क्षितीनाम् अवः) प्रजाओं के रक्षणार्थ पांच सहायक, साधन, उपाय, देश और काल की अनुकूलतायें हैं (तत्) उन सबको (नः) हमारे लिये तू (सु आ भर) सब प्रकार से प्राप्त करा ।

आ तेऽवो॒ वरे॑ण्यं॒ वृष॑न्तमस्य हूमहे ।
वृष॑जूति॒र्हि ज॑ज्ञि॒ष आ॒भूभि॑रिन्द्र तु॒र्वणिः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन् ! हे उत्तम प्रबन्धक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (आभूमिः) चारों ओर विद्यमान भूमियों से युक्त होकर (वृष जूतिः) बैलों को उत्तम रीति से जोतने वाला, बलवान् पुरुषों को वेग से युद्धादि में भेजने वाला और (तुर्वणिः) वीर को धनादि देने हारा भी (जज्ञिषे) हो (वृषन्तमस्य ते) सर्वोत्तम बलवान् सुप्रबन्धक तेरे (वरेण्यं) वरण योग्य (अवः) रक्षा कार्य को हम (हूमहे) प्राप्त करें ।

वृषा॒ ह्यसि॒ राध॑से ज॑ज्ञि॒षे वृष्णि॑ ते॒ शवः॑ ।
स्वक्ष॑त्रं ते धृ॒षन्मनः॑ सत्रा॒हमि॑न्द्र पौंस्य॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) बलवन् ! तू (वृषा हि असि) मेघ के तुल्य प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारा हो । तू (राधसे) सम्पदा की वृद्धि के लिये (जज्ञिषे) सदा कटिबद्ध रह । (ते शवः वृष्णि) तेरा बल सुखों का वर्षक हो । (ते मनः) तेरा मन (स्व-क्षत्रं) स्वयं बल सम्पन्न और (धृषत्) शत्रुओं को तुच्छ समझने वाला हो और (ते पौंस्यम्) तेरा पौरुष (सत्राहम्) शत्रु संघ को भी नष्ट करने वाला हो ।

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।

सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥ ५ ॥

हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! हे (अद्रिवः) शस्त्रबल के स्वामिन् ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजाओं वाले ! हे (शवसः पते) बल के स्वामिन् ! (त्वं) तू (तम्) उस (अमित्रयन्तम्) शत्रु के तुल्य आचरण वाले (मर्त्यम्) मारने योग्य जन को लक्ष्य करने (सर्वरथा नियाहि) समस्त रथ सैन्य सहित प्रयाण कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।

उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) बढ़ते शत्रु को मारने में समर्थ ! (वृक्त-बर्हिषः जनासः) इस भूमि को परस्पर विभक्त और सेवन करने वाले लोग (उग्रं) भीषण (पूर्वीषु पूर्व्यम्) पूर्व विद्यमान प्रजाओं में भी प्रथम सत्कार योग्य (त्वाम् इत्) तुझको ही (वाजसातये) संग्राम विजय के लिये (हवन्ते) बुलाते हैं।

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।

सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (दुस्तरं) सुदृढ़, (आजिषु) संग्रामों में (पुरोयावानम्) आगे-आगे चलने वाले, (धने धने) प्रत्येक धन लाभ के अवसर या प्रत्येक संग्राम में (स-यावानं) अन्य रथों के समान वेग से जाने वाले, (वाजयन्तम्) संग्राम करते हुए (रथं) रथ, या अश्वारोही की (अव) रक्षा का उपाय कर।

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।

वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (रथम्) रथ के समान रमण योग्य राष्ट्र को (पुरं-ध्या) पुर को धारण करने वाली नीति से (अव) रक्षा कर और (आ इहि) हमें प्राप्त हो। हे (शविष्ठ) बलवन् ! (वयम्) हम लोग (दिवि) इस पृथिवी पर (वार्यं) धारण योग्य (श्रवः) धन, ज्ञान और यश (दधीमहि) प्राप्त करें और (दिवि) उत्तम शासन, व्यवहार और मनोकामना में रहकर (स्तोमं) स्तुति, अध्ययन, शास्त्र आदि का (मनामहे) मनन करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[३६] प्रभूवसुरांगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ६ त्रिष्टुप् । ३ जगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (वसूनां) राष्ट्र में बसे प्रजा जनों में (रयीणां दामनः) ऐश्वर्यों के देने वाली प्रजाओं को (चिकेतत्) जाने और जो (वसूनां दातुं चिकेतत्) ऐश्वर्यों को स्वयं देना भी जानता है (सः) वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (आ गमत्) हमें प्राप्त हो। (धन्वचरः तृषाणः वंसगः चकमानं यथा जलं पिबति) जैसे मरुभूमि में विचरने वाला पियासा बैल जल चाहता हुआ, जल पीता है वैसे ही राजा भी (धन्व-चरः) धनुष के बल पर विचरता हुआ (वंस-गः) सत्यासत्य विवेकी पुरुषों के बीच स्थित (तृषाणः) पिपासितवत् (चकमानः) अर्थ कामना करता हुआ (दुग्धम्) प्रजा से प्राप्त (अंशुम्) अपने भाग को (पिबतु) गौ के वत्स के समान ही स्वल्प मात्रा में उपभोग करे।

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्व सैन्यों के स्वामिन् ! (शूर) शूरवीर ! जैसे (हनू) मुख पर लगे मुख नासिका वा दोनों जबाड़े (शिप्रे) सुन्दर प्रतीत हों वैसे ही

(ते हनू) तेरी हननकारिणी सेनाएं दायें वायें (शिप्रे) मुख पर लगी नासिकाओं वा जवाड़ों के तुल्य दृढ़ हों। (सोमः न) सोमलता जैसे (पर्वतस्य पृष्ठे) पर्वत के पीठ पर ही (रुहत्) उत्पन्न होती और वड़ी होती है वैसे ही (पर्वतस्य पृष्ठे) पालक शासक वा पर्व पर्व से युक्त शस्त्रवल के ही ऊपर (सोमः) ऐश्वर्य भी (रुहत्) उत्पन्न होता है। (अर्वतः न हिन्वन्) अश्वों को चलाने वाला सारथि जैसे अश्वों के पीछे-पीछे रहकर उसको सन्मार्ग पर चलाता है वैसे ही (त्वा अनु) तेरे पीछे रहकर हे (पुरु-हूत) वहुतों से प्रशंसित राजन् ! (विश्वे) हम सब (गीर्भिः) उत्तम वाणियों से (मदेम) आनन्द लाभ करें।

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरुवसुः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों से युक्त सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे (पुरुहूत) वहुतों से प्रशंसित ! (रथाद् वृत्तं चक्रं न) रथ से पृथक् हुए चक्र के समान (मे अमतेः) मुझ ज्ञानरहित प्रजा का (मनः) मन (भिया वेपते) भय से कांपता है। हे (सदावृध) प्रजा के सदा बढ़ाने हारे ! हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! (कुवित् जरिता) बड़े-बड़े स्तुतिकर्त्ता और (पुरुवसुः) बहुत से वासियों से सम्पन्न राष्ट्र (त्वा) तुझको (अधि स्तोषन्) अपना अध्यक्ष होने के लिये प्रस्ताव करें।

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एषः) यह (ग्रावा इव) शिला समान शत्रु को कुचल देने वाले क्षात्रवर्ग के समान ही (जरिता) उपदेष्टा विद्वान् भी (बृहद् आशुषाणः) बड़े ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करता हुआ, (ते वाचं) तेरी हितकारी वाणी को (इयर्त्ति) प्राप्त हो और तुझे उपदेश करे। हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू भी (बृहद् आशुषाणः) बड़ा राष्ट्र प्राप्त करता हुआ

(सव्येन) बायें से (रायः प्रयंसि) ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार सुरक्षित कर तो (दक्षिणित्) दायें से (प्र यंसि) अच्छी प्रकार दान कर। हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! तू (मा वि वेनः) विपरीत आचरण की कभी कामना न कर।

वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम्।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥ ५ ॥

भा०—(वृषा द्यौः) राज्य प्रवन्ध में कुशल सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (वृषणं त्वा वर्धतु) बलवान् तुझको बढ़ावे। तू (वृषभ्यां हरिभ्यां) बलवान् अश्वों से (वहसे) धारण किया जाय! हे (सुशिप्र) उत्तम मुख नासिका वाले! (सः) वह तू भी (वृषा) उत्तम प्रवन्धकर्त्ता और (वृषरथः) बलवान् अश्वों से युक्त रथ वाला हो। हे (वृषक्रतो) बलवान् पुरुषों के तुल्य वीरता के कर्म करने वाले! हे (वज्रिन्) शस्त्र बल के स्वामिन्! तू (वृषा) बलवान् ही (भरे) संग्राम में, पालन पोषण में (नः धाः) हमें पुष्ट कर।

यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६॥७॥

भा०—(यः) जो (वाजिनीवान्) सेना का स्वामी होकर (त्रिभिः शतैः) तीन सौ जवानों के साथ (सचमानौ) समवाय बनाकर रहने वाले (रोहितौ वाजिनौ) सूर्यवत् बलवान् दो अध्यक्षों को (अदिष्ट) आज्ञा देता है (अस्मै यूने) उस युवा, (श्रुतरथा) प्रसिद्ध महारथी के आदर के लिये (क्षतयः) सामान्य प्रजाजन और (मरुतः) वायुवत् वेग से जाने वाले और शत्रु हन्ता वीरगण भी (दुवोया) उसकी सेवा करते हुए (सं नमन्ताम्) आदरपूर्वक झुकें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[३७] अत्रिऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। २ विराट्त्रिष्टुप्। ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। पंचर्चं सूक्तम् ॥

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो कोई (इति आह) ऐसा कह देता है कि हम (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् महाराज के लिये ही (सुनवाम) समस्त ऐश्वर्य उत्पन्न करते हैं (तस्मै) उसके लिये (उषसः) शत्रु को दग्ध कर देने वाली सेनायें भी (अमृध्राः) अहिंसक होकर (वि उच्छान्) विविध रूपों में प्रकट होती हैं। वह राजा (सूर्यस्य) सूर्य के तेज से युक्त होकर (सं यतते) यत्न करता है, वह शत्रु विजय किया करे और वह (घृत पृष्ठः) घृत को प्राप्त करके उज्वल होने वाले अग्नि के तुल्य तेजस्वी (सु-अञ्चाः) उत्तम रीति से पूजनीय होकर (आजुह्वानः) शत्रुओं का आह्वान करता हुआ (सं यतते) युद्धादि उद्योग किया करे।

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (इषिरम्) अभिलषित कार्य को (ग्रावाणः) उपदेष्टा और शत्रुओं को कुचलने वाले शस्त्रधर वीर सैन्यबल (वदन्ति) बतलाते और (यस्य) जिसके (सिन्धुं) सुप्रबद्ध सैन्य वा प्रजा के सागर को (अध्वर्युः) राष्ट्र को मरने से बचाने में कुशल नायक (हविषा) कर संग्रहादि उपायों से (अव अयत्) अपने अधीन नियम में रखता है वह राजा (समिद्धाग्निः) अग्नि के समान दीप्त होकर (स्तीर्णं बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र को विस्तृत करके (युक्तग्रावा) अपने देश में विद्वानों और प्रबल पुरुषों को नियुक्त तथा (सुतसोमः) पुत्रवत् राज्य को पालता हुआ (जराते) शासन करे।

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (ईम्) इस (इषिराम्) इच्छायुक्त स्त्री को (महिषीम्) सौभाग्यवती जानकर (वहाते) उससे विवाह करता है (इयं वधूः)

वह नववधू भी (पतिम् इच्छन्ती) अपना पति चाहती हुई (एति) उसे प्राप्त होती है। इसी प्रकार (यः) जो वीर पुरुष (इषिराम्) ऐश्वर्य देनेवाली (महिषीम्) वड़े भारी ऐश्वर्य को देने और सेवने वाली इस भूमि का भार (वहाते) अपने कन्धों पर उठाता है वह वधूवत् उसको (पतिम् इच्छन्ती) अपना स्वामी बनाना चाहती हुई उसे ही प्राप्त होती है। वह राष्ट्र प्रजा (अस्य) इस राजा का (आ श्रवस्यात्) यश चाहे। (आघोषात् च) प्रजा उसकी घोषणा भी स्वयं करे और (सहस्रा पुरू) सहस्रों पालक प्रजाजन (परि) उसके अधीन (वर्त्तयाते) रहें।

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥

भा०—(सः) वह (राजा) राजा (न व्यथते) पीड़ा को कभी प्राप्त नहीं होता (यस्मिन्) जिसके शासन करते हुए (इन्द्रः) सूर्य और विद्युत् (तीव्र) तीक्ष्ण होकर (गो-सखायं) भूमि के मित्र भूत (सोमं) जल को (पिबति) पान करता है और (यस्मिन्) जिसके अधीन (इन्द्रः) सेनापति और सम्पन्न भूमिपति भी (गो-सखायं) वचन के अनुसार वा भूमिवासी प्रजा के मित्रवत् उपकारक (सोमं पिबति) राष्ट्र का पालन करता है और जिस राज्य में (इन्द्रः) विद्युत् (वृत्रं) मेघ को (सत्वनैः) बलवत् प्रहारों से (अजति) कंपाता, (हन्ति) ताड़ित करता और (क्षितीः क्षेति) मनुष्यों को देवमातृक भूमियों में बसाता है और उसके तुल्य ही राजा स्वयं भी (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को (सत्वनैः) वीरों से (अजंति) उखाड़ता और (हन्ति) दण्डित करता है, (क्षितिः क्षेति) अपनी भूमियों और प्रजाओं को बसाता है। वह स्वयं राजा भी विद्युत्वत् ही (सुभगः) सौभाग्यशाली होकर (नाम पुष्यन्) अपने नाम को पुष्ट करता, प्रसिद्धि पाता है।

पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ।५।८।

भा०—(यः) जो राजा (सुत-सोमः) ऐश्वर्य प्राप्त करके भी (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (ददाशत्) ऐश्वर्य का दान वा त्याग करता है वह (क्षेमे) प्रजा के रक्षण में (पुष्यात्) पुष्ट होता है और (योगे) अलब्ध राज्य को प्राप्त करने के लिये शत्रुओं को (अभि भवाति) तिरस्कृत करता है, (वृतौ) शत्रु के वारण के निमित्त (संयती उभे) स्व और पर दोनों सेनाओं को (सं जयाति) जीत लेता है। वह (सूर्ये प्रियः) सूर्य के समान तेजस्वी पद पर स्थित होकर भी सर्वप्रिय होता है और (अग्नौ प्रियः भवाति) अग्रणी, पद पर रह कर भी सर्वप्रिय होता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३८] अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । २, ३, ४ निचृदनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे (उरोः राधसः) बहुत भारी ऐश्वर्य का यह (विभ्वी रातिः) बड़ा भारी दान है। (शतक्रतो) अनेक कर्म करने हारे! हे (विश्वचर्षणे) सब मनुष्यों के स्वामिन्! वा हे न्याय व्यवहार को देखने हारे! हे (सु-क्षत्र) उत्तम बल और ऐश्वर्य के स्वामिन्! (अध) और तू (नः) (द्युम्ना) अनेक धन (मंहय) प्रदान कर।

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥

भा०—हे (हिरण्यवर्ण) सुवर्ण को वरण करने हारे ऐश्वर्याभिलाषिन्! हे (शविष्ठ) बलशालिन्! (यद्) जो पुरुष (श्रवाय्यं) श्रवण योग्य कीर्त्तिजनक (इषं) अन्न या बल को (दधिषे) धारण करता है उस (दीर्घश्रुत्तमम्) दीर्घ काल तक उत्तम ज्ञान के श्रवण करने वाले, और (दुस्तरम्) शत्रुओं से अपराजित पुरुष को (पप्रथे) और भी विस्तृत, प्रसिद्ध करे।

शुष्मा॑सो॒ ये ते॑ अद्रिवो मे॒हना॑ केत॒साप॑: ।
उ॒भा दे॒वाव॒भिष्ट॑ये दि॒वश्च॒ ग्मश्च॒ राज॑थः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अद्रिवद् अभेद्य दुर्गादि के स्वामिन् ! (ये ते) जो तेरे (शुष्मासः) शत्रु शोषक सैन्यगण सूर्य की रश्मियों के तुल्य हैं वे (मेहना) शत्रु पर शर वर्षा करने के सामर्थ्य से युक्त होकर भी (केतसापः) संकेत मात्र से संघ बनाने में कुशल हों। (उभौ देवौ) दोनों तेजस्वी (दिवः) दिनवत् राजसभा का प्रकाशक आकाश, सूर्य और (ग्मः) भूमि का प्रकाशक राजा तुम दोनों ही (अभिष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने और चारों तरफ जलवत् ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये, (राजथः) प्रकाशित होते हो।

उ॒तो नो॑ अ॒स्य कस्य॑ चि॒द्दक्ष॑स्य॒ तव॑ वृत्रहन् ।
अ॒स्मभ्यं॑ नृ॒म्णमा भ॑रा॒स्मभ्यं॑ नृमणस्यसे ॥ ४ ॥

भा०—(उतो) और हे (वृत्र-हन्) नगरोपरोधी शत्रु को दण्ड देने में समर्थ राजन् ! (तव) तेरे (अस्य) इस (कस्य चित्) किसी (दक्षस्य) शत्रुदाहक सामर्थ्य का ही यह (नः) हमारा राष्ट्र परिणाम है। तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये ही (नृमणस्यसे) धन की इच्छा करता है। तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये ही (नृम्णम् आ भर) ऐश्वर्य को प्राप्त कर।

नू त॑ आ॒भिर॒भिष्टि॑भि॒स्तव॒ शर्म॑ञ्छतक्रतो ।
इन्द्र॒ स्याम॑ सु॒गो॒पाः शूर॒ स्याम॑ सु॒गो॒पाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म और बुद्धियों के स्वामिन् ! तेरी (आभिः) इन (अभिष्टिभिः) उत्तम अभिलाषाओं के साथ-साथ (तव शर्मन्) तेरे सुखकारक, गृह के तुल्य शान्तिदायक राज्य में रहकर हम लोग हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुगोपाःस्याम) जितेन्द्रिय और पशु सम्पन्न हों। हे (शूर) शूरवीर हम लोग (सुगोपाः स्याम) उत्तम भूमि वाले और प्रजा आदि के पालक हों। इति नवमो वर्गः ॥

[३९] अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २, ३ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडुष्णिक् । ५ बृहती । पंचर्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) दृढ़ सैनिकों के स्वामिन् ! हे (चित्र) पूज्य ! अद्भुत गुण कर्म स्वभाव ! हे (विदद्-वसो) प्राप्त धन के स्वामिन् ! (मेहना) जैसे सूर्य वृष्टि लाता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यद्) जो (मेहना) उत्तम दान देने योग्य धन वा ज्ञान है वह (त्वादातम्) सब तेरे ही द्वारा देने योग्य है । उन सबकी माता तू है (नः) हमें (तत्) वह (राधः) धनैश्वर्य तू (उभया हस्ति) दोनों हाथों से (आ भर) प्राप्त करा ।

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! प्रभो ! तू (यत्) जो (वरेण्यम्) श्रेष्ठ और उत्तम मार्ग में ले जाने वाला (द्युक्षं) अन्न और धन (मन्यसे) मानता हो (तत्) वह तू (आ भर) ले आ । (अकूपारस्य तस्य) जिसका परिणाम बुरा नहीं हो ऐसे अपार उस धनैश्वर्य को भी (वयम्) हम लोग (ते दावने) तुझ दाता का (विद्याम) जानते हैं ।

यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३ ॥

हे (अद्रिवः) शस्त्रधरों वा दानशीलों के स्वामिन् ! (यत्) जो तेरा (दित्सु) दान करने का इच्छुक (प्र-राध्यं) स्तुत्य एवं कार्यसाधक (श्रुतं) बहुश्रुत (बृहत्) बहुत बड़ा (मनः अस्ति) मन और ज्ञान है, (तेन) उससे तू (दृढ़ा

चित्) दृढ़से दृढ़ दुर्गों को (आर्दर्षि) तोड़ सकता है और (सातये) धर्माधर्म विवेक के लिये (दृढ़ा चित् आ दर्षि) दृढ़ संग्रामों को भी जीतता है।

मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! (मघोनां वः) ऐश्वर्य से सम्पन्न आप (चर्षणीनां) ज्ञानवान् पुरुषों के बीच (मंहिष्ठं) दानशील और (राजानम्) तेजस्वी राजा, (इन्द्रं) शत्रुहन्ता पुरुष को (प्रशस्तये) अच्छी प्रकार शासन करने और उसको उपदेश करने के लिये (गिरः) उपदेष्टा वाग्मी लोग (पूर्वीभिः) पूर्व की वेद वाणियों द्वारा (उप-जुजुषे) प्रेमपूर्वक उपदेश करें और उस को ज्ञान का सेवन करावें।

अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥१०॥

भा०—(अस्मै इत् इन्द्राय) उस ही महान् तेजस्वी के लिये (काव्यं वचः) कवियों का उत्तम वचन (शंस्यं) कहने योग्य होता है। (अत्रयः) त्रिविध दुखों से रहित (गिरः) उपदेष्टा और उत्तम वेदवाणियें (तस्मै उ ब्रह्मवाहसे) उसी धनैश्वर्य और वृहत् राष्ट्र के धारक शक्तियों को (वर्धन्ति) बढ़ाती हैं और (अत्रयः गिरः) तीनों प्रकार के दोषों से रहित वाणियां उसको ही (शुम्भन्ति) सुशोभित करती हैं। इति दशमो वर्गः ॥

[४०] अत्रिर्ऋषिः ॥ १-४ इन्द्रः । ५ सूर्यः । ६-९ अत्रिर्देवता ॥
छन्दः—१ निचृदुष्णिक् । २, ३ उष्णिक् । ९ स्वराडुष्णिक् ।
४ त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमपते) ऐश्वर्य के पालक ! हे (वृषन्) उत्तम प्रबन्धकर्त्तः ! हे (वृत्रहन्तम) अधिक शत्रुओं को मारने हारे, (वृषभिः अद्रिभिः) वर्षणशील मेघों से जैसे सूर्य उत्पन्न जगत् का पालन करता है वैसे ही तू भी हे राजन् ! (वृषभिः अद्रिभिः) प्रबन्धक और दृढ़ शस्त्रधर पुरुषों सहित (सुतं सोमं) पुत्रवत् राष्ट्र को वा अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को (आ याहि) प्राप्त कर और (पिब) उसका उपभोग कर।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥

भा०—(ग्रावा वृषा) शिला जैसे नीचे आये पदार्थों को कुचल देती है वैसे ही शत्रुओं को कुचलने वाला शस्त्रबल, वा (ग्रावा) अधीन शिष्यों वा भृत्यों को उपदेश वा आज्ञा देने वाला नायक पुरुष (वृषा) मेघ के समान शस्त्रवर्षी, ज्ञानवर्षी और प्रबन्धकर्त्ता हो। (मदः) प्रजाओं का दमन करने वाला पुरुष भी (वृषा) बलवान् हो। (सोमः वृषा) अभिषेक योग्य पुरुष भी बलवान् हो (अयं सुतः) यह ऐसा पुरुष अभिषेक किया जावे।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शस्त्रबल के स्वामिन् ! (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत रक्षण शक्तियों से युक्त (त्वा) तुझ (वृषणं) बलवान् पुरुष को ही (हुवे) मैं प्रजाजन स्वीकार करूं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृषन्) बलवन् ! हे (वृत्रहन्तम) शत्रुदलनकारिन् ! तू (वृषभिः) बलवान् पुरुषों सहित (वृषा) बलवान् रहकर (सोमं पिब) राष्ट्रैश्वर्य का उपभोग कर।

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥

भा०—(ऋजीषी) धर्म मार्ग में सदा स्वयं रहने का इच्छुक और औरों को चलाने हारा, (वज्री) सैन्यबल का स्वामी, (वृषभः) सुखों की वर्षा करने वाला, हृष्ट पुष्ट, (तुराषाट्) वेग से आने वाले, हिंसक शत्रुओं को पराजित करने वाला (वृत्रहा) छेदते दुष्ट पुरुषों वा शत्रुओं को दण्ड देने हारा, (सोमपावा) ऐश्वर्यों का पालक और उनका अन्न आदिवत् उपभोक्ता (इन्द्रः) तेजस्वी (राजा) राजा (शुष्मी) भारी बल का स्वामी होकर (युक्त्वा) एकाग्र चित्त होकर (हरिभ्याम्) अश्वों सहित वा दो उत्तम पुरुषों से सहायवान् होकर (अर्वाङ् उप यासत्) सन्मुख आवे और (माध्यन्दिने सवने) दिन के मध्यकाल में तपते सूर्य के समान प्रतापी होकर अभिषिक्त हो जाने पर वह (मत्सत्) खूब प्रसन्न हो।

यत्त्वा॑ सूर्य॒ स्व॑र्भानु॒स्तम॒साविध्य॑दासु॒रः।
अक्षे॑त्रवि॒द्यथा॑ मु॒ग्धो भुव॑नान्यदीधयुः॥ ५॥ ११॥

भा०—(स्वर्भानुः) 'स्वः', सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित (आसुरः) स्वयं अप्रकाशित चन्द्रादि आकाशीय पिण्ड जब (तमसा) अपने अन्धकारमय भाग से (अविध्यत्) वेध करता है, अर्थात् दोनों एक रेखा में आ जाते तब (भुवनानि) अन्य नक्षत्र आदि लोक भी (अदीधयुः) ऐसे चमकते दिखाई देते हैं (यथा) जिससे (अक्षेत्रवित्) क्षेत्र मापन की विद्या-रेखागणित वा ज्यामिति को न जानने हारा पुरुष (मुग्धः) मोह में पड़ जाता है कि यह क्या बात हुई, वह यह नहीं जानता कि चन्द्र ही सूर्य के आगे आ गया है, बड़े सूर्य को भी चन्द्र का बिम्ब आच्छादित कर लेता है। वैसे ही हे (सूर्य) तेजस्वी राजन्! जब (आसुरः) कोई बलवान् पुरुष (स्वः-भानुः) प्रताप से प्रतापी होकर (त्वा तमसा अविध्यत्) तुझे कष्टदायी बल से ताड़े तब (भुवनानि) सामान्य लोक भी ऐसे (अदीधयुः) आश्चर्यचकित हो जाते हैं (यथा) कि (अक्षेत्रवित्) निवास योग्य भूमि को प्राप्त न करने वाला जन प्रायः (मुग्धः) मोहयुक्त हो जाता है। इत्येकादशो वर्गः॥

स्वर्भा॑नो॒रध॒ यदि॑न्द्र मा॒या अ॒वो दि॒वो वर्त॑माना अ॒वाह॑न्।
गू॒ळ्हं सूर्यं॒ तम॒साप॑व्रतेन तु॒रीये॑ण॒ ब्रह्म॑णाविन्द॒दत्रिः॥ ६॥

भा०—(स्वर्भानोः) सूर्य के प्रकाशित, स्वयम् अप्रकाश चन्द्र आदि पिण्ड की (दिवः) सूर्य से (अवः) उरे या नीचे की ओर ही (वर्त्तमानाः) रह जाने वाली (मायाः) अन्धकार की रेखाओं को सूर्य (अव अहन्) नीचे की ओर ही प्रेरित करता है। (अप व्रतेन) स्वतः क्रिया शून्य, (तमसा) अन्धकार से (सूर्यं गूढं) छुपे हुए सूर्य को (अत्रिः) इस भूलोक का वासी जन (तुरीयेण ब्रह्मणा) तीनों लोकों से परे विद्यमान 'ब्रह्म' अर्थात् विशाल तेज से ही उसको (अविन्दत्) देख रहा होता है। ठीक वैसे ही हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! (अध यत्) जब (दिवः अवः वर्त्तमाना) तेजस्वी विजीगीषु तेरे से परे दूर-दूर रहने वाली (स्वः भानोः) प्रतापी शत्रु की (मायाः) अद्भुत मायाओं को भी तू (अव अहन्) मार गिराता है तब (अपव्रतेन तमसा गूढं सूर्यं) क्रियाकौशल से रहित खेदादि से आच्छादित तुझ तेजस्वी पुरुष को भी (अत्रिः) इस राष्ट्र का वासी जन (तुरीयेण) सर्वातिशायी (ब्रह्मणा) बड़े बल और ऐश्वर्य से ही (अविन्दत्) प्राप्त करता है।

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! (अत्र) इस राष्ट्र में (सन्तं) विद्यमान (इमं मां तव) इस तेरी प्रजा रूप मुझको (द्रुग्धः) द्रोही शत्रु (इरस्या) अन्न समृद्धि के लोभ से वशीभूत होकर (भियसा) तेरे से भयभीत रहकर (मा नि गारीत्) मत निगल जावे। (त्वं मित्रः असि) तू ही हमारा मित्र है। तू ही (सत्य-राधाः) सत्य का धनी है। तू (राजा) राजा और (वरुणः च) शत्रु को वारण करने हारा सेनापति (तौ) वे आप दोनों ही (इह) इस राष्ट्र में (मे) मेरी (अवतं) रक्षा करें।

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ ८ ॥

भा०—(युयुजानः) नाना प्रकार के योग अर्थात् सन्धि आदि उपाय करने वाला (ब्रह्मा) बड़े भारी राष्ट्र और धन का स्वामी, (कीरिणा) शत्रु पर फेंके जाने वाले शस्त्र बल से युक्त होकर (ग्राव्णः) शिलावत् शत्रुमर्दनकारी दृढ़ (देवान्) विजयेच्छुक पुरुषों का (सपर्यन्) सत्कार करता हुआ और उनको (नमसा) विनय से (उप शिक्षन्) शिक्षित करता हुआ, (अत्रिः) इस राष्ट्र का भोक्ता राजा वा प्रजा जन (सूर्यस्य दिवि) सूर्य के प्रकाशवत् तेजस्वी राजा के न्याय प्रकाश में (चक्षुः) यथार्थ दर्शन करने वाला विवेक (अदधात्) धारण करे और वह राजा और प्रजाजन भी (स्वर्भानोः मायाः) प्रताप से चमकने वाले शत्रु की मायाओं को (अप अघुक्षत्) दूर करे।

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥ ९ ॥ १२ ॥

भा०—(यं सूर्यं) जिस सूर्य समान तेजस्वी पुरुष को (स्वर्भानुः) सूर्य प्रकाश से प्रकाशित, चन्द्र वा मेघ के समान परोपजीवी (आसुरः) बलवान् शत्रु (तमसः) अन्धकारवत् अन्यों के आंख मूंद कर पाप या छल से (अविध्यत्) प्रहार करे तो (अत्रयः) उसी स्थान के लोग (तम्) उस तेजस्वी राजा को (अनु अविन्दन्) पुनः अपनावें और (अन्ये) दूसरे लोग (नहि अशक्नुवन्) उसे नहीं अपना सकते। उसकी पूर्व प्रजाएं ही उसको बलवान् शत्रु से बचा और पुनः स्थापित कर सकती हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

[४१] अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १५, १८ त्रिष्टुप् । ४, १३ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ७, ८, १४, १९ पंक्तिः । ५, ९, १०, ११, १२ भुरिक् पंक्तिः । २० याजुषी पंक्तिः । १६ जगती । १७ निचृज्जगती ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) मित्र, सबके हितैषी ! हे वरुण, शत्रु वारक श्रेष्ठ-पुरुष ! (कः नु) कौन है जो (वां) आप दोनों को (ऋतायन्) बल और धन का इच्छुक होकर प्राप्त होता है, आप दोनों इस बात का सदा ध्यान रक्खो और आप (मरुतः दिवः) बड़े तेजस्वी, राजा (वा) और (पार्थिवस्य) पृथिवी निवासी प्रजावर्ग के (वा) और (ऋतस्य वा सदसि) ज्ञान वा सत्य न्याय के भवन में स्थित होकर (दे) प्रकाशित होकर (यज्ञायते) परस्पर सत्संग चाहने वाले राष्ट्र के हितार्थ (नः) हमें और हमारे (वाजान्) ऐश्वर्यों को भी (पशुषः न) पशुओं के समान ही (त्रासीथाम्) रक्षा किया करो।

ते नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒माायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतो॑ जुषन्त ।
नमो॑भिर्वा॒ ये दध॑ते सुवृ॒क्तिं स्तोमं॑ रु॒द्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑ स॒जोषाः॑ ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) सर्वस्नेही, न्यायाधीश, (वरुणः) श्रेष्ठ, दुष्टवारक (अर्यमा) शत्रुनियन्ता, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (ऋभुक्षाः) बड़ा विद्वान् पुरुष (आयुः) प्राणाचार्य और (मरुतः) उत्तम वैश्यजन वा प्रजावर्ग, वायुवद् वीरजन सभी (ते) वे (नः जुषन्त) हम प्रजाजनों को प्रेमपूर्वक चाहें। (ये) जो (मीढुषे) वर्षणकारी (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के हितार्थ (सजोषाः) समान रूप से सेवा करने वाले होकर (स्तोमं दधते) उत्तम संघबल को धारण करते और जो उसके हितार्थ ही (नमोभिः) शत्रु को नमाने वाले साधनों सहित (सु-वृक्ति) शत्रु को वर्जने की उत्तम शक्ति को भी (दधते) धारण करते हैं (ते) वे पुरुष भी (नः जुषन्त) हमसे प्रेम करें।

आ वां॒ येष्ठा॑श्विना हु॒वध्यै॒ वात॑स्य॒ पत्म॒न्रथ्य॑स्य पु॒ष्टौ ।
उ॒त वा॑ दि॒वो असु॑राय॒ मन्म॒ प्रान्धां॑सीव॒ यज्य॑वे भरध्वम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) स्त्री और पुरुषो ! पति और पत्नी ! (वां) आप दोनों (येष्ठौ) नियम में रहने वाले हो अतः, (आहुवध्यै) उपदेश करता हूं कि आप दोनों (वातस्य पत्मन्) प्राण के निरन्तर चलने और (रथ्यस्य पुष्टौ) रथ

के योग्य अश्व के समान आत्मा को पुष्ट करने में (उत वा) और (दिवः असुराय) ज्ञान प्रकाश को जीवनवत् देने वाले (यज्यवे) दानशील पुरुष के (मन्म) मनन योग्य ज्ञान और (अन्धांसि) अन्न (प्र भरध्वम्) प्राप्त करो।

प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥ ४ ॥

भा०—(आशु-अश्वतमाः प्रभृते आजिं न) जैसे वेगवान् अश्वारोही लोग शत्रु पर प्रहार के लिये संग्राम में वेग से जाते हैं वैसे ही (प्र-भृथे) राज्य के अच्छी प्रकार पालन के कार्य में भी (सक्षणः) शत्रुपराजयकारी, सावधान, (दिव्यः) तेजस्वी (कण्व-होता) विद्वान् पुरुषों को देने वाला, (त्रितः) मन, वाणी और देह तीनों में स्थिर, तीनों विद्याओं में निष्णात, शत्रु, मित्र, उदासीन तीनों में प्रसिद्ध, (दिवः सजोषाः) विजय को चाहने वाला, (वातः) वायुवद् बलशाली, (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी और (पूषा) सर्वपोषक (भगः) ऐश्वर्य सम्पन्न ये सब (विश्व-भोजाः) सब राष्ट्र के पालन करने हारे लोग (आशु-अश्वतमाः) अति वेगयुक्त अश्वों पर चढ़कर (प्र जग्मुः) जाया करें।

प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो! आप (वः) अपने लिये (युक्ताश्वं) अश्व जोड़ कर ले जाने योग्य (रयिम्) प्रचुर धन को (प्र भरध्वम्) प्राप्त करो। आप (रायः) ऐश्वर्य को (एषे अवसे) प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने के लिये (धीः दधीत) नाना यत्न करो। (ये) जो (वः) आप लोगों में से (तुराणां) शीघ्रगामी रथों और शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (एवाः) गमन साधन रथ आदि से युक्त हैं वे और जो (औशिजस्य) 'उशिक्' अर्थात् कामना वाले ऐश्वर्यों के इच्छुक पुरुष की कामना योग्य उत्तम धन का (सुशेवः होता) सुख समृद्धि से युक्त, दानशील पुरुष (एवैः) रथादि साधनों से (रयिं भरन्तु)

अपने ऐश्वर्य को प्राप्त किया करें और (धीः दधतु) नाना उपाय करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरंधीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप (वः) अपने लिये (रथयुजं) रथ में जुड़ने वाले अश्व के स्थान पर (वायुं) वायु तुल्य वेगवान् साधन को (प्र कृणुध्वम्) लगाओ। (अर्कैः) अर्चना योग्य पदार्थों और मन्त्रों से (पनितारम्) उपदेश और व्यवहार करने वाले (विप्रं) विद्वान् और धनपूरक और (देवं) ज्ञान दाता और ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष का (प्र कुरुत) आदर करो। (अत्र) इसराष्ट्र में (इषुध्यवः) ऐश्वर्यों को चाहने वाली, नाना देशों को जाने वाली और बाण आदि अस्त्रों से युद्ध करने वाली (ऋतसापः) धन और ज्ञान का सञ्चय करने वाली (पुरन्धीः) राष्ट्र को धारण करने वाली प्रजाओं, सेनाओं और (वस्वीः) घर को बसाने वाली (पत्नीः) स्त्रियों के तुल्य (वस्वीः पत्नीः) ऐश्वर्य युक्त, राष्ट्र में बसी, राष्ट्रपालक शक्तियों, सेनाओं को भी (धिये) उत्तम कर्म, सम्पादन के लिये (आ धुः) आदर पूर्वक धारण करो।

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ७ ॥

भा०—(उषासानक्ता) दिन और रात्रि के तुल्य, प्रकट कामना युक्त और अप्रकट कामना से युक्त होकर रहने वाली स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर (विदुषी इव) विद्वान् स्त्री पुरुषों के तुल्य ही (मर्त्याय) मनुष्य मात्र के उत्पन्न करने और परोपकार के लिये (विश्वम् यज्ञम्) सभी प्रकार के यज्ञ अर्थात् पञ्च महायज्ञ और परस्पर के सत्संग आदि कर्म (आवहतः) धारण करें। वे दोनों (दिवः) प्रकाश और कामना के (चितयद्भिः) बतलाने वाले (अर्कैः) उत्तम वचनों से (यह्वी) महान् होकर (प्रवहतः) आगे बढ़ें और (वन्द्येभिः) स्तुति

योग्य (शूषैः) बलों से युक्त हों। हे स्त्री पुरुषो! (वः उप एषे) मैं ऐसे आप दोनों को प्राप्त होऊं।

अभि वो अर्चे पोष्यावतो नृन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीरोषधी राय एषे॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मैं (रराणः) दानशील होकर (वः) आप में से (पोष्यावतः नृन्) अपने अधीन पोष्य स्त्री पुत्र भृत्य आदि के स्वामी पुरुषों का (अभि अर्चे) आदर करूं और (त्वष्टारं) तेजस्वी और शिल्पकार, (वास्तोष्पतिम्) निवासस्थान आदि के पालक पुरुष का (अभि अर्चे) आदर करूं और मैं (रायः एषे) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (धन्यः) धन को बढ़ाने वाला, (सजोषः) प्रीतियुक्त, (धिषणा = अधि-सना) उत्तम प्रज्ञा आदि देने वाली अधिष्ठात्री तथा रानी वा सुख भोग करने वाली स्त्री, प्रजा और (वनस्पतीः) ऐश्वर्यों की पालक, वट आदि के समान सर्वाश्रय दात्री, (ओषधीः) ओषधियों और तेज को धारण करने वाली सेनाओं का भी (नमोभिः) अन्नों और शस्त्रादि-प्रदानों द्वारा (अभि अर्चे) आदर करूं।

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ॥ ९॥

भा०—जैसे (पर्वताः तुजे तने स्वैतवः वसवः) विस्तृत राष्ट्र में पर्वत पालन करने, धन देने वाले और प्रजाओं को बसाने वाले होते हैं और जैसे मेघ प्रजा पालन में स्वयं आने वाले होकर प्रजा को बसाने हारे होते हैं वैसे ही (पर्वताः) पालनकारी साधनों से युक्त बड़े लोग भी (तने) विस्तृत राष्ट्र में रह कर (नः तुजे) हमें ऐश्वर्य देने, पालने में (स्वैतवः) स्वयं आगे आने वाले, धन प्राप्त कराने वाले और (वसवः) स्वयं बसने और प्रजाओं को बसाने वाले (वीराः न) वीर पुरुषों के समान उत्साही हों। (पनितः) प्रशंसनीय, (आप्त्यः) आप्त पुरुषों का हितकारी, (यजतः) दानशील, (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी पुरुष (नः

अभिष्टौ) हमारे अभीष्ट कार्य में (नः) हमारे (शंसं) ज्ञान और ऐश्वर्य को (वर्धात्) बढ़ावे।

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति।

गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०॥१४॥

भा०—मैं (वृष्णः) बरसने वाले (भूम्यस्य) भूमि के हितकारी मेघ के (गर्भः) मध्य में रहने वाले और (अपां नपातम्) जलों को न गिरने देने वाले (सुवृक्ति) और उनको उत्तम रीति से विभक्त करने वाले विद्युत् अग्नि को लक्ष्य कर (अस्तोषि) उपदेश करता हूँ कि वह (अग्निः) अग्नि (एतरी शूषैः न) रथ पर चढ़े सेनापति के तुल्य बल युक्त प्रहारों से (गृणीते) शब्द करता है और वह (शोचिष्केशः) दीप्तियुक्त केशों के समान ज्वालाओं से युक्त भौम अग्निवत् (वना नि रिणाति) वनों के समान जलों में व्यापता है वैसे ही मैं (वृष्णः) बलशाली (भूम्यस्य) भूमि पर स्थित राष्ट्र के (गर्भं) ग्रहण करने वाले (अपां नपातम्) आप्तजनों को नीचे न गिरने देने वाले, (सुवृक्ति) उत्तम धन वा न्याय के विभाजक का (अस्तोषि) गुण वर्णन करता हूँ। वह (त्रितः) उत्तम, मध्यम और अधम और अरि, विजिगीषु और उदासीन तीनों प्रकार के लोगों से ऊपर रहकर (अग्निः) अग्रणी होकर (शूषैः) सुखकारी वचनों और शत्रुशोषक बलों से (गृणीते) सब पर शासन करता है वह (शोचिष्केशः) सूर्य या अग्नि के तुल्य तेजयुक्त होकर (वना) शत्रु के सैन्यों को वनों के अग्निवत् (नि रिणाति) जलाता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

कुथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय।

आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः॥ ११ ॥

भा०—हम लोग (महे) माननीय, (रुद्रियाय) शत्रुओं को रोकने में समर्थ राजपुत्र के तुल्य, प्रिय सैन्यों और विद्याओं का उपदेष्टा आचार्य के पुत्र वा उससे विद्या प्राप्त करने वाले विद्वान् और (चिकितुषे भगाय) ज्ञान युक्त सेवने

योग्य सत् पुरुष की (राये) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि के लिये (कथा) कैसे और (कत्) किस-किस अवसर में (ब्रवाम) उससे निवेदन आदि करें ? यह हम सदा जानें और (आपः) जल और आप्त पुरुष (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियां और प्रतापिनी सेनाएं (द्यौः) सूर्य और तेजस्वी पुरुष (वना) वन, सूर्य की किरणों और ऐश्वर्य और (वृक्षकेशाः गिरयः) वृक्षों के केशवत् धारक पर्वत और लम्बी जटा केश धारण करने वाले जटिल, (गिरयः) वृद्ध उपदेष्टा जन (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥ १२ ॥

भा०—(ऊर्जां पतिः) बलों का स्वामी (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (शृणोतु) सुने और अपनी वाणियें हमें सुनावे। (सः) वह (नभः) राष्ट्र का प्रबन्धक, (तरीयान्) सबसे अधिक बलवान् (इषिरः) अग्रगामी, (परिज्मा) चारों तरफ की भूमियों का अध्यक्ष हो। (पुरः न) उत्तम नगरियों के तुल्य (शुभ्राः) दीप्तियुक्त (आपः) आप्त जन भी (अद्रेः परिस्रुचः आपः न) मेघ से बहने वाली जल-धाराओं के तुल्य स्वयं (बवृहाणस्य) सदा वृद्धिशील (अद्रेः) शस्त्र बल के स्वामी के (परिस्रुचः) अधीन, उसकी आज्ञा में चलने वाली सेनाएं वा लोक वा (आपः) आप्त प्रजाएं भी (शृण्वन्तु) राजा की आज्ञाएं सुनें।

विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥ १३ ॥

भा०—हे (महान्तः) पूज्य पुरुषो ! (ये) जो (वः) आप लोगों में से (एवाः) ज्ञानवान् (दस्माः) शत्रुओं और अज्ञानों के नाशक और (वार्यं) वरण योग्य, उत्तम ज्ञान वा ऐश्वर्य के धारक और (वयः चन दधानाः) बल, अन्न, को भी धारण करते हैं वे (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान् होकर (वधस्नैः) शस्त्रों

सहित (अनुयतं) अनुकूल रहकर यत्न करने वाले (मर्त्तं) शत्रुमारक युवा मनुष्य को (क्षुभा) उत्साह पूर्वक संचालन की रीति से (आ अव यन्ति) अपने अधीन रख कर चलाते हैं। उनको ही हम (ब्रवाम) अपना दुःख सुख कहें और वे (विद चित्) स्वयं प्रजा के सुख दुःखों को भी जानें।

आ दैव्या॑नि॒ पार्थि॑वानि॒ जन्मा॒पश्चा॒च्छा सुम॑खाय वोचम्।
वर्ध॑न्तां॒ द्यावो॒ गिर॑श्च॒न्द्राग्रा॑ उ॒दा व॑र्धन्ताम॒भिषा॑ता अर्णाः॑ ॥ १४ ॥

भा०—मैं विद्वान् पुरुष (सुमखाय) यज्ञशील पुरुष को उन्नति के लिये (दैव्यानि) राजा, विद्वानों तथा सूर्य आदि तेजोमय पदार्थों और (पार्थिवानि) पृथिवीस्थ महान् पदार्थों के (जन्म) उत्पत्ति और (अपः च) उनके उपयोगों का (अच्छ) भली प्रकार (आ वोचं) उपदेश करूं। (उदा अभिषाताः) जल से पूरित (अर्णाः) जलमय मेघों, समुद्रों के तुल्य ही (द्यावः) प्रकाशयुक्त, ज्ञान वाली (चन्द्राग्राः) चन्द्रवत् आह्लादकारी उत्तम (गिरः) वाणियें (वर्धन्ताम्) बढ़ें।

प॒देप॑दे मे जरि॒मा नि धा॑यि॒ वरू॑त्री वा श॒क्रा या पा॒युभि॑श्च।
सिष॑क्तु मा॒ता म॒ही र॒सा नः॒ स्मत्सू॒रिभि॑र्ऋजु॒हस्त॑ ऋजु॒वनिः॑ ।१५।१५।

भा०—(मे) मेरे (पदे-पदे) प्रत्येक प्राप्त करने और जाने योग्य स्थान में, पद पद पर (वरूत्री) शत्रुओं का वारण करने वाली (शक्रा) शक्तिशालिनी, (जरिमा) शत्रु नाशक सेना (या) जो (पायुभिः च) रक्षासाधनों से युक्त हो, (निधायि) स्थापित हो और (माता) माता के समान सबको उत्पन्न और पालन करने वाली (मही) भूमि (रसा) जल और रसवान् पदार्थों से पूर्ण होकर (नः) हमें (सिषक्तु) सुख दे और वह (सूरिभिः) विद्वानों से ही (ऋजु-हस्ता) सरल, सिद्धहस्त कार्यकर्त्ताओं वाली और (ऋजु-वनिः) सरल, धर्मयुक्त पुरुषों को नाना पदार्थ देने वाली हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६ ॥

भा०—जो (मरुतः) विद्वान् (अच्छोक्तौ) अभिमुख उपस्थित जनों के प्रति उपदेश करने (प्र-श्रवसः) श्रवण योग्य ज्ञान से सम्पन्न हैं वे (मरुतः प्र-श्रवसः) उत्तम जलप्रद वायुओं के तुल्य (प्रश्रवसः) श्रवण योग्य ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। उन (मरुतः) विद्वान् (सुदानून्) उत्तम ज्ञान दाता मेघवत् उदार पुरुषों के (अच्छोक्तौ) उनके अच्छे उपदेश के निमित्त (नमसा) आदरपूर्वक हम (कथा) किस प्रकार (दाशेम) देवें, यह बात हमें अच्छी प्रकार जाननी चाहिये। जैसे (बुध्न्यः अहिः) अन्तरिक्ष में स्थित मेघ अपने प्रबल विद्युत् आघात से प्रजाओं का नाश कर सकता है वैसे ही (बुध्न्यः) ज्ञान मार्ग में ले जाने वाला (अहिः) संमुखस्थ विद्वान् भी (नः) हमें (रिषे) विनाश के लिये (मा धात्) न दे। प्रत्युत वह (अस्माकं) हमें (उपमाति-वनिः) ज्ञान दाता (भूत्) हो।

इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥ १७ ॥

भा०—हे (देवासः देवासः) दानशील, सूर्य किरणों के समान तेजस्वी पुरुषो ! (मर्त्यः) मनुष्य (चित् नु) जैसे (पशुमत्यै प्रजायै) पशु आदि से समृद्ध, प्रजा की वृद्धि के लिये भी (वः) आप लोगों की (शिवां) कल्याणकारिणी (जरां) वाणी को (आ वनते) आदर से सेवन करे वैसे ही (मर्त्यः) मनुष्य (वः) आप लोगों की (धासिम्) धारणकारिणी शक्ति को भी (आ वनते) आदर से सेवन करे। (अत्र) इस लोक में (निर्ऋतिः) रोगादि कष्ट ही प्रायः (अस्याः तन्वः) इस देह के (धासिम्) पुष्टि और (जरां चित्) दीर्घकालिक जरावस्था को भी (जग्रसीत) ग्रस लेते हैं इसलिये हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस कष्ट को दूर किया करो।

तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥ १८ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हे (वसवः) किरणों के तुल्य तेजस्वी पुरुषो ! हम (गोः शसा) वाणी के अनुशासन और पृथ्वी के शासन द्वारा (ऊर्जयन्तीम्) वल पराक्रम को वढ़ाने वाली (इषम्) अन्न और प्रेरणा को और (सुमतिम्) उत्तम प्रज्ञा को (अश्याम) प्राप्त करें। (सा) वह (देवी) सुख दात्री (सुदानुः) उत्तम दानशील प्रज्ञा विदुषी के तुल्य ही (द्रवन्ती) प्रत्येक को प्राप्त होती हुई (सुविताय) सुख के लिये (प्रति गम्याः) प्रत्येक को प्राप्त हो।

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥ १९ ॥

भा०—(इडा) यह भूमि और स्तुति योग्य, उपदेश वाणी (नः) हमारे (यूथस्य) पशु आदि और शिष्यादि समूह की (माता स्मत्) माता के समान ही है। जैसे भूमि (नदीभिः) जल पूर्ण नदियों से (उर्वशी) बहुतों से कामना योग्य, सुन्दर होती है वैसे ही वाणी भी (नदीभिः) उपदेशप्रद वाणियों से (उर्वशी) बहुतों को वश करने वाली होती है। वह (गृणातु) विद्युत् के तुल्य सदा उपदेश करे। (वा) वैसे ही (बृहद्-दिवा) अधिक ज्ञान प्रकाश से युक्त (उर्वशी) बहुत सी प्रजाओं को वश करने वाली (गृणाना) ज्ञान उपदेश करती हुई माता के समान ही वाणी (प्रभृथस्य आयोः) अच्छी प्रकार धारण किये हुए बालक के तुल्य, शिष्य आदि को (अभि ऊर्णुवाना) वस्त्रादि से आच्छादित करती हुई (गृणातु) ज्ञान का उपदेश करे।

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥ २० ॥ १६ ॥

भा०—(ऊर्जव्यस्य) अन्न और बल पराक्रम से प्रकाशित और (पुष्टेः) पोषण करने वाले राजा के अधीन हमारा राष्ट्र (सिषक्तु) खूब बल और संगठन समवाय को प्राप्त करे। इति षोडशो वर्गः ॥

[४२] अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ६, ११, १२, १५, १६, १८ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ७, ८, ९, १३, १४ त्रिष्टुप् । १७ याजुषी पंक्तिः । १० भुरिक् पंक्तिः ॥
अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (शन्तमा) अति शान्तिकारक, (दीधिती) ज्ञान का प्रकाश करती हुई (गीः) वाणी (वरुणं) श्रेष्ठ (मित्रं) सबसे स्नेही (भगम्) ऐश्वर्यवान् और (अदितिम्) अखण्डित व्रत और शासन के पालक पुरुष को प्राप्त होता है तू भी उसको (नूनम् अश्याः) अवश्य प्राप्त कर। वह वाणी, (पृषद् योनिः) मेघ के तुल्य सुखवर्षणकारी अन्तरात्मा में उत्पन्न होती और (पञ्चहोता) पांचों प्राणों द्वारा गृहीत ज्ञान को अपने में लेने हारी है। उसको ऐसा पुरुष (शृणोतु) सुने जिसका (अतूर्तपन्थाः) ज्ञान मार्ग विनष्ट न हुआ हो, जो (असुरः) प्राणों में रमण करता हो और (मयोभुः) सुखों का आश्रय-स्थान हो।

प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २ ॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड शासन करने वाली परिषत् और दीनता-रहित प्रजावर्ग (मे) मेरे (स्तोमम्) अधिकार और जन समूह को (प्रति जगृभ्यात्) ऐसे स्वीकार करे जैसे (हृद्यं) हृदयहारी (सुशेवं) सुखजनक (सूनुं माता न) पुत्र को माता स्वीकार करती है। (यत् मयोभु) जो सुखजनक (ब्रह्म) बल वा ज्ञान (देवहितं) विद्वानों का हितकारी और (प्रियम्) प्रिय (अस्ति) है उसको (अहं) मैं (मित्रे) सर्वस्नेही और (वरुणे) दुःखवारक स्वामी के अधीन रहकर प्राप्त करूं।

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ३ ॥

भा०—हे राष्ट्रवासी जनो ! (कवीनाम्) विद्वान् पुरुषों में से (कवितमं) सबसे उत्तम विद्वान् को (उद्-ईरय) उत्तम पद प्राप्त करने की प्रेरणा करो । (एनम्) उसका (मध्वा घृतेन) शोभाजनक ज्ञान वा जल से (अभि-उनत्त) अभिषेक करो । (सः) वह (देवः) तेजस्वी, ज्ञान-प्रकाशक और (सविता) ऐश्वर्यों का उत्पादक होकर (नः) हमें (हितानि) हितकारी, (प्रयता) प्रयत्न से प्राप्त करने योग्य (चन्द्राणि) आह्लादजनक (वसूनि) सुवर्ण आदि नाना पदार्थ भी (सुवाति) दे ।

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! हे अश्वादि सैन्य के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (मनसा) मन और (गोभिः) वाणियों, भूमियों और इन्द्रियों से (यत् देवहितं अस्ति) जो विद्वानों वा हम कामनाशील पुरुषों को हितकारक या विद्वानों में स्थित ज्ञानादि है उसे (स नेषि) प्राप्त करा । (नः) हमें (सूरिभिः) विद्वानों से हितकारी ज्ञान (सं) प्राप्त करा । हमें (स्वस्ति) सुखदायक प्रकार से (देव-हितं यद् अस्ति) जो दिव्य विद्वानों में विद्यमान ज्ञान आदि ग्राह्य तत्व हो वह तू (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान और धन से और (यज्ञियानां) पूजा योग्य (देवानां सुमत्या) विद्वान् पुरुषों की उत्तम बुद्धि से भी हमें (सं) प्राप्त करा ।

देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५॥१७॥

भा०—(देवः) ज्ञान और धन का दाता (भगः) सेवने योग्य ऐश्वर्यवान्, (सविता) पदार्थों और जीवों का उत्पादक (अंशः) धनों का न्यायोचित विभाग करने वाला, (वृत्रस्य) बढ़ते हुए शत्रु के विद्यमान राष्ट्र के (धनानां) ऐश्वर्यों का (संजितः) विजयी (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (ऋभुक्षा) शक्तिशाली (वाजः) ज्ञानवान्

ऐश्वर्यवान्, (उत वा) और (पुरन्धिः) पूर्वसंचित विद्याओं वा सम्पदाओं को धारने वाला, वा स्त्रीवत् गृहतुल्य, राष्ट्र का धारक ये सब (अमृतासः) दीर्घजीवी और (तुरासः) शीघ्रकारी होकर (नः अवन्तु) हम प्रजा जनों की रक्षा करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।

न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्ययुक्त ! (मरुत्वतः) शत्रुनाशक पुरुषों के स्वामी, (अप्रतीतस्य) अप्रतीयमान अद्वितीय सामर्थ्य वाले, (जिष्णोः) विजयशील, (अजूर्यतः) कभी क्षीण न होने वाले, (ते) तेरे वा तुझे, ऐसे (कृतानि) कर्त्तव्यों का (प्रब्रवाम) उत्तम उपदेश करें कि (न पूर्वे) न पहले के और (न अपरासः) न तेरे पीछे आने वाले लोग और (न नूतनः कश्चन) न कोई नया ही पुरुष (ते वीर्यम् आप) तेरा बल प्राप्त कर सकें।

उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।

यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (प्रथमम्) सबसे श्रेष्ठ, (रत्नधेयं) मनोहर गुणों को धारक (बृहस्पतिम्) बड़े भारी ज्ञान, वेद वाणी वा बड़े राष्ट्र के पालक और (धनानां सनितारम्) धनों का न्यायपूर्वक विभाग करने वाले, (जोहुवानम्) बुलाने योग्य उसको (उप स्तुहि) सबके समक्ष प्रस्तुत कर (यः) जो (शंसते स्तुवते) प्रशंसा और स्तुति प्रार्थना करने वाले को (शंभविष्ठः) सबसे अधिक सुख देने वाला और (पुरुवसु) बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी होकर हमें (आगमत्) प्राप्त होता है।

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।

ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े राष्ट्र और वेदज्ञान के पालक ! (ये) जो (तव ऊतिभिः) तेरे रक्षोपायों से (सचमानाः) सुसम्बद्ध होकर (अरिष्टा) किसी भी तरह की हिंसा के अयोग्य (मघवानः) ऐश्वर्यवान्, (सुवीरा) स्वयं उत्तम वीर, और पुत्रों और वीरों के स्वामी हो जाते हैं और (ये) जो (अश्वदाः) घोड़े के पालक वा दाता (उत वा) और (ये) जो (गोदाः) गौओं और भूमियों के पालक और दाता है और जो (वस्त्रदाः) वस्त्रों का दान करने वाले हैं वे (सुभगाः) ऐश्वर्यवान् होते हैं और (तेषु रायः) उनमें सब ऐश्वर्य विराजते हैं।

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! (ये) जो लोग (नः) हमारे (उक्थैः) उत्तम वचनों से प्रेरित होकर भी (नः अपृणन्तः) हमें सम्पदाओं से नहीं पूर्ण करते हुए स्वयं ही (भुञ्जते) भोग करते रहते हैं (एषां) उनके (वित्तम्) धन को तू (विसर्माणम्) विनाशशील (कृणुहि) कर। (प्रसवे) तेरे शासन में रहकर भी (अपव्रतान्) उत्तम कर्मों से रहित (वावृधानान्) बढते हुए, (ब्रह्म-द्विषः) वेद ज्ञान से द्वेष करने वाले मूर्खों, शत्रुओं को (सूर्यात्) सूर्य के प्रकाश से (यवयस्व) पृथक् कर।

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥१०॥१८॥

भा०—हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो ! (यः) जो पुरुष (देववीतौ) विद्वान्, उत्तम पुरुषों के रक्षा कार्य में (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (ओहते) लगावे और (यः) जो (शशमानस्य) प्रशंसनीय पुरुष के (शमीं) उत्तम कर्म की (निन्दात्) निन्दा करे और जो (सिष्विदानः) व्यर्थ क्लेश आदि सहकर भी (तुच्छ्यान् कामान् कुरुते) क्षुद्र पुरुषों की सी अभिलाषा करें ऐसे पुरुष को आप (अचक्रेभिः) राज्यचक्र वा सैन्य-चक्र रहित, अधिकारशून्य पदों से (नि यात) नीचे गिराओ।

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा मुहे सौमनुसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (स्विषुः) उत्तम बाणों वाला, (सुधन्वा) उत्तम धनुष का स्वामी और उत्तम जल वाला है, जो (विश्वस्य भेषजस्य) सब प्रकार के औषध का (क्षयति) स्वामी है, उस (रुद्रं) दुष्टों को रुलाने वाले (देवम्) विद्वान्, दानशील, (असुरं) प्राणप्रद पुरुष को (महे सौमनसाय) बड़े सुख युक्त चित्त बनाये रखने के लिये (यक्ष्व) आदर करो और उसकी (नमोभिः) अन्नों और शस्त्रों सहित (दुवस्य) परिचर्या करो। उत्तम धनुर्धर और बाणवान् पुरुष दुष्टों को रुलाने से 'रुद्र' है, वैद्य रोग दूर करने से 'रुद्र' (रुग्-द्र) है।

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥ १२ ॥

भा०—(ये) जो (दमूनसः) मन को दमन करने वाले (अपसः) कर्मकुशल, (सु-हस्ताः) सिद्धहस्त और (वृष्णः) बलवान् पुरुष की (पत्नीः) स्त्रियों के तुल्य (नद्यः) नदियें, जिनको (विभ्वतष्टाः) शक्तिशाली शिल्पियों ने बनाया है, (बृहद्-दिवा) बड़ी दीप्ति से युक्त (सरस्वती) वाणी के तुल्य वेगवती विद्युत् (उत) और (राका) सुख देने वाली स्त्री, ये सब (शुभ्राः) सुशोभित और (दशस्यन्तीः) कामनाओं को देने वाली होकर (वरिवस्यन्तु) हमें सम्पन्न करें।

प्र सू मुहे सुशरुणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहुना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥ १३ ॥

भा०—जैसे (आहनाः) अभिगन्ता पुरुष (दुहितुः वक्षणासु रूपा मिनानः) कामना पूर्ण करने हारी स्त्री की नाड़ियों में पुत्रादि को उत्पन्न करता हुआ (इदं अकृणोत्) ये सब गृहस्थादि करता है वैसे ही (यः) जो विद्युत्वत् बलशाली, (आहनाः) आघात करने हारा शिल्पी, वा राजा, (दुहितुः वक्षणासु)

सब प्रकार के जल, अन्न, आदि रस देने वाली भूमि के ऊपर बहती नदियों के आधार पर (रूपा मिमानः) रुचिकर पदार्थों को उत्पन्न करता हुआ (नः इदं अकृणोत्) हमारे लिये यह सब कुछ करता है। उस (सु-शरणाय) उत्तम प्रजा के शरण देने वाले (महे) राजा की (जायमानां) प्रकट हुई (नव्यसीं) उत्तम, (मेधां) बुद्धि और (गिरं) वाणी को (प्र सु भरे) अच्छे प्रकार से पुष्ट करूं।

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥ १४ ॥

भा०—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्तः! तू (सु-स्तुतिः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता होकर (स्तनयन्तं) मेघवत् गर्जनाशील, (रुवन्तम्) उत्तम उपदेश देते हुए, (इडस्पतिं) भूमि और वाणी की पालना करने वाले, उस विद्वान् को (प्र अयशाः) आदरपूर्वक प्राप्त हो (यः) जो (अब्दिमान्) मेघ के तुल्य जलवत् ज्ञानों और कर्मों का उपदेष्टा (उदनिमान्) जल तुल्य ही उत्तम पद पर ले जाने वाले कर्म से युक्त होकर (विद्युता) विद्युत्वत् तेज से युक्त (उक्षमाणः) शिष्यों को ज्ञान जल से स्नान कराता हुआ (रोदसी इयर्त्ति) आकाश और भूमिवत् राजा प्रजा वर्गों को समान रूप से प्राप्त होता है।

एषः स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥ १५ ॥

भा०—(एषः स्तोमः) यह बल वा अधिकार (मारुतं शर्धः) और यह वायु वेग से आक्रमण करने वाला सैन्य बल (रुद्रस्य) शत्रु को रोकने वाले प्रबल सेनानायक के (युवन्यून्) जवानों के दलपतियों और (सूनून्) सैन्यों के सञ्चालक नायकों को (अच्छ) भली प्रकार (उत् अश्याः) प्राप्त हो। (स्वस्ति) कल्याण-कारक (मा) मुझे (राये) धन प्राप्त करने का (कामः) उत्तम संकल्प (हवते) प्राप्त हो। हे विद्वन्! तू (अयासः) जाने वाले (पृषद्-अश्वान्) वाण वर्षी, बलवान् अश्वारोहियों, हृष्ट पुष्ट अश्वों से युक्त रथों का (उपस्तुहि) उपदेश कर।

प्रैषः स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥

भा०—(एषः स्तोमः) यह अधिकार सूचक वचन (राये) ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये (पृथिवीम्, अन्तरिक्षम्, वनस्पतीः, ओषधिः प्र अश्याः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियों और ओषिधियों को भी अच्छी प्रकार व्यापे, वे भी अधिकार में हों, (देवः-देवः) प्रत्येक करप्रदे पुरुष, (मह्यं) मुझ राजा के लिये (सुहवः) सुखपूर्वक कर देने वाला (भूतु) हो, (पृथिवी माता) पृथिवी या उसमें रहने वाली जनता माता के समान हितकारिणी होकर (नः) हमें (दुर्मतौ) दुष्ट संकल्प में (मा धात्) न रक्खें।

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं दानशील पुरुषो! हम सभी लोग (उरौ) बहुत बड़े (अनिबाधे) सर्वथा बाधारहित, सुखी एवं कलहहीन राष्ट्र में (स्याम) रहें।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥१९॥

भा०—हम लोग (अश्विनोः) विद्वान् स्त्री पुरुष, अध्यापक उपदेशक वा रथी और सारथी इनके (नूतनेन) नये, (मनोभुवा) सुखकारी (अवसा) रक्षण और (सु-प्रणीती) उत्तम, सुखकर नीति से (गमेम) जीवनमार्ग तय करें। वे दोनों (नः) हमें (रयिम् आ वहतम्) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें, वे (वीरान्) वीरों को (विश्वानि) समस्त प्रकार के (अमृतानि सौभगानि) अविनश्वर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें। एकोनविंशो वर्गः ॥

[४३] अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ६, ८, ९, १७ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ४, ५, १०, ११, १२, १५ त्रिष्टुप्। ७, १३ विराट् त्रिष्टुप्। १४ भुरिक्पंक्तिः। १६ याजुषी पंक्तिः ॥
सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १ ॥

भा०—(मध्वा पयसा धेनवः) मधुर दुग्ध से पूर्ण गौएं, तथा (मध्वा पयसा तूर्ण्यर्थाः) शीघ्र गमन करने वाले जल, यानादि से युक्त नदियें और (मध्वा पयसा) आनन्दजनक ज्ञान से युक्त, शीघ्र ही समझ में आने वाले अर्थों से युक्त वाणियां और (मध्वा पयसा) मधुर अन्न, जल से समृद्ध (अमर्धन्तीः) अहिंसक प्रजाएं (नः उप आयन्तु) हमें प्राप्त हों। (जरिता) विद्वान् उपदेष्टा, (विप्रः) विद्वान् पुरुष (महे राये) बड़े ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (सप्त) सात प्रकार की (मयोभुवः) सुखजनक (बृहतीः) बडी वाणियों, भूमियों, पशुओं और सात प्रकार की प्रजाओं वा प्रकृतियों का (जोहवीति) उपदेश करे। षडङ्गयुक्त वेदवाणी सप्त वाणी हैं।

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥ २ ॥

भा०—मैं (अमृध्रे) अहिंसक, (सु-स्तुती) उत्तम स्तुति योग्य, (द्यावा) ज्ञानप्रकाश से युक्त (पृथिवी) भूमि के समान आश्रयप्रद, (मधुवचाः) मधुर वचन बोलने वाली (सु-हस्ता) सुखकारी हाथों वाले पिता और माता दोनों को (नमसा) आदर सत्कार से (वर्त्तयध्यै) वर्त्ताव किया करूं और वे दोनों (पिता माता) पिता और माता (नः) हमें (भरे-भरे) प्रत्येक भरण पोषण कार्य में (यशसौ) यश और अन्न से सम्पन्न होकर (अविष्टाम्) हमारी रक्षा करें।

अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३ ॥

भा०—जैसे सूर्य के किरण (मधूनि चकृवांसः) जलों को उत्पन्न करते हुए प्रथम (वायवे चारु शुक्रम् भरन्ति) वायु के लिये ही सञ्चरणशील सूक्ष्म जल हर लेते हैं वैसे ही हे (अध्वर्यवः) मृत्यु न चाहने वाले लोगो! (मधूनि चकृवांसः) उत्तम अन्न और जलों को उत्पन्न करते हुए (चारुशुक्रम्) आप लोग शुद्ध,

कान्तिकृत् अन्न रस को (वायवे) वायु तुल्य बलशाली, एवं राजा वा विद्वान् के उपभोग के लिये (प्र भरत) लाया करो। हे (देव) राजन् ! हे विद्वन् ! तू (प्रथमः) श्रेष्ठ होकर (नः) हमें (होता इव) दाता के समान (पाहि) पालन कर और हम (ते मदाय) तेरी तृप्ति के लिये (अस्य मध्वः) इस अन्न का अंश (ररिम) देते हैं।

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे दो (शमितारा) शान्तिपूर्वक कार्य करने वाले (सुहस्ता) उत्तम हाथों से युक्त, (वाहू) वाहुएं (अद्रि) शिलाखण्ड को या दृढ़ शस्त्र को पकड़ते हैं और जैसे (दश क्षिपः अद्रि युञ्जते) दसों अंगुलियां शिलाखण्ड या शस्त्र का प्रयोग करती हैं, वैसे ही (यौ) जो दो अधिकारी (बाहू) शत्रुओं को पीड़ा देने हारे हों वे और (सोमस्य) ऐश्वर्य को (शमितारौ) शान्ति से सम्पादन करने वाले, (सु-हस्ता) उत्तम कुशल हाथों वाले होकर (अद्रि) पर्ववान् दृढ़ सैन्य बल का प्रयोग करें और (दश क्षिपः) दसों शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेनाएं भी (युञ्जते) उनका सहयोग करें। जैसे (सु गभस्तिः) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य (गिरि-ष्ठां मध्वः रसं दुदुहे) मेघ में स्थित भूमि या जल के रस को देता है वैसे ही (अंशुः) सूर्यवत् भाग ग्राही, (सु-गभस्तिः) उत्तम बाहुशाली पुरुष (गिरि ष्ठां) पर्वत वा मेघ में स्थित (मध्वः) मधु, अर्थात् पृथ्वी के (रसं) सारभूत (चनिश्चदद्) आह्लादकारी सुवर्णादि (शुक्रम्) कान्तिमान् पदार्थ को (दुदुहे) प्राप्त करे।

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः॥५॥२०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (क्रत्वे) कर्म सामर्थ्य और (दक्षाय) बल बढ़ाने के लिये और (बृहते मदाय) बड़े धन की वृद्धि, सुख और सन्तोष के

लिये (ते जुजुषाणाय) प्रेम से सेवन करने वाले तेरे लिये (सोमः) यह सब ऐश्वर्य, अन्नादि के तुल्य ही (असावि) उत्पन्न किया जाता है। तू (योगे रथे) जोड़ने योग्य रथ में (सुधुरा) उत्तम धारणशील (हरी) दो अश्वों को लगाकर (हूयमानः) अन्यों से स्पर्द्धा करता हुआ, (अर्वाक्) हमें प्राप्त हो और (प्रिया कृणुहि) हमारे लिये प्रिय कार्य कर। इति विंशो वर्गः ॥

आ नो॑ म॒हीम॒रम॑तिं स॒जोषा॒ ग्नां दे॒वीं नम॑सा रा॒तह॑व्याम् ।
मधो॒र्मदा॑य बृह॒तीमृ॑त॒ज्ञामाग्ने॑ वह प॒थिभि॑र्दे॒व॒यानैः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! (ग्नां देवीं) गमन योग्य स्त्री के तुल्य ही (नः) हमारी, (महीं) आदरणीय (अरमतिम्) आनन्ददायक, ज्ञानयुक्त, (ग्नां) ज्ञान को प्राप्त करने वाली, (नमसा) विनयपूर्वक (रातहव्याम्) दान योग्य अन्न आदि देने वाली (बृहतीं) बड़ी, (ऋतज्ञाम्) सत्य ज्ञान बतलाने वाली, वाणी को तू (सजोषाः) प्रीति युक्त होकर (मधोः मदाय) अन्नवत् वेदमय ज्ञान से तृप्त होने के लिये (देवयानैः पथिभिः) विद्वानों से गमन करने योग्य मार्गों से (आ वह) प्राप्त कर और अन्यों को भी प्राप्त करा।

अञ्ज॑न्ति॒ यं प्र॒थय॑न्तो॒ न विप्रा॑ व॒पाव॑न्तं॒ ना॒ग्निना॒ तप॑न्तः ।
पि॒तुर्न पु॒त्र उ॒पसि॒ प्रेष्ठ॒ आ घ॒र्मो अ॒ग्निमृ॒तय॑न्नसादि ॥ ७ ॥

भा०—जैसे किरण गण (वपावन्तं सूर्यं अञ्जन्ति) बीजोत्पादक शक्ति से युक्त सूर्य को प्रकट करते और (अग्निना तपन्तः) अग्नि द्वारा तपाते हैं (न) वैसे ही (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (यं) जिस (वपावन्तं) अज्ञानवत् शत्रुनाशक शक्ति और सन्तान-परम्परा से युक्त पुरुष को (प्रथयन्तः) प्रसिद्ध करते हुए, (अञ्जन्ति) खूब प्रकाशित करते हैं और जिसको उत्तम पात्र के तुल्य दृढ़ करने के लिये (अग्निना तपन्तः) तेजस्वी नायक पुरुष या पद द्वारा तपाते, अधिक तेजस्वी बनाते हुए (अञ्जन्ति) प्रकाशित करते हैं वह (धर्मः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पितुः उपसि पुत्रः न प्रेष्ठः) पिता के समीप पुत्र के तुल्य प्रिय

होकर (अग्निम् ऋतयन्) अग्रणी नायक पद को न्याय द्वारा प्राप्त करता हुआ (आ असादि) आगे बढ़ता है।

अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।

मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८ ॥

भा०—(दूतः न) उत्तम संदेशहर दूत के समान (मही बृहती) उत्तम वेदमयी (शन्तमा गीः) शान्तिकारी वाणी (अश्विना हुवध्यै) उत्तम स्त्री पुरुषों को ज्ञान देने और परस्पर को बुलाने आदि कार्य के लिये (अच्छ गन्तु) प्राप्त हो। वे दोनों स्त्री पुरुष सदा (सरथा) एक समान रथ में विराजते हुए, रथी सारथि के तुल्य (मयोभुवा) सुख प्राप्त करते हुए (यातं) जीवन-पथ पर बढ़ें। (अर्वाग्) विनीत होकर (आणिः धुरं नाभिम् न) कीला जैसे भार धारक नाभि को प्राप्त होता है वैसे ही वे दोनों (निधिम् गन्तम्) निधि, मूल 'आधार' ऐश्वर्यमय सर्वोत्तम, गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हों।

प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।

या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥९॥

भा०—(अहम्) मैं (तव्यस्य) वलवान् (तुरस्य) अति शीघ्रकारी, (पूष्णः) पुष्टिकारक सर्वपोषक और (वायोः) वायु के समान अति वलवान् प्राणप्रद पुरुषों के लिये (नमः उक्ति अदिक्षि) अधिकार-सूचक उत्तम वचन का प्रयोग करूं। (या) जो दोनों (राजसा) धन के द्वारा (मतीनां) ज्ञानवान् पुरुषों को (चोदितारा) शुभ कार्य और उन्नति के मार्ग पर उत्साहित करने वाले, (उत) और (त्मन्) अपने राष्ट्र-कार्य में (वाजस्य) अन्न और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये भी (द्रविणो-दा) धन देने वाले हों।

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।

यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ।१०।२१।

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों के कारण प्रसिद्ध ऐश्वर्यवन् ! हे वेदमय ज्ञान के द्वारा प्रसिद्ध विद्वन् ! आचार्य ! तू (विश्वान् मरुतः) समस्त वीर पुरुषों और शिष्यों को (नामभिः आ वक्षि) नाना नामों से धारण कर । और उनको (रूपेभिः आहुवानः) नाना रुचिकर पदार्थों पोशाकों से अपनाता हुआ, (आ वक्षि) आदरपूर्वक रख । हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! आप लोग (विश्वे) सभी (ऊती) राष्ट्र की रक्षा के लिये हों । आप (विश्वे) सब लोग (जरितुः) उपदेष्टा और आज्ञापक पुरुष की (गिरः यज्ञं गन्त) वाणी के सहयोग को प्राप्त होओ और (सुस्तुतिं च गन्त) उत्तम स्तुति और उपदेश को प्राप्त करो ।

आ नो॑ दि॒वो बृ॑ह॒तः पर्व॑ता॒दा सर॑स्वती यज॒ता ग॑न्तु य॒ज्ञम् ।
हवं॑ दे॒वी जु॑जुषा॒णा घृ॒ताची॑ श॒ग्मां नो॒ वाच॑मुश॒ती शृ॑णोतु ॥ ११ ॥

भा०—(बृहतः पर्वतात् सरस्वती) बड़े पर्वत से जैसे वेगवती जल भरी नदी आती है वैसे ही (बृहतः दिवः) बड़े भारी तेजस्वी और ज्ञानप्रकाशक विद्वान् से (यजता सरस्वती) दान देने और सत्संग से प्राप्त करने योग्य वाणी (नः यज्ञम्) हमारे सत्सङ्ग वा आत्मा को (आ गन्तु) प्राप्त हो । और (घृताची) घृत, तेज आदि धारण करने वाली, (जुजुषाणा देवी) प्रेम करने वाली स्त्री (नः हवम्) हमारे यज्ञ को प्राप्त हो, वह (उशती) कामना से युक्त होकर प्रेमपूर्वक (नः) हमारी (शग्मां वाचं शृणोतु) सुखप्रद वाणी सुने ।

आ वे॒धसं॒ नील॑पृष्ठं बृ॒हन्तं॒ बृह॒स्पतिं॒ सद॑ने सादयध्वम् ।
सा॒दद्यो॑निं॒ दम॒ आ दी॑दि॒वांसं॒ हिर॑ण्यवर्णमरु॒षं स॑पेम ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप (वेधसं) विद्वान्, उत्तम कर्म करने में कुशल, (नील-पृष्ठं) श्याम रूप मेघ के समान प्रचुर द्रव्य देने वाले, (बृहन्तं) बड़े, (बृहस्पतिम्) वेदवाणी और राष्ट्र पालक पुरुष को (सदने) उत्तम पद पर (सादयध्वम्) स्थापित करो । ऐसे ही (दमे) दण्डाधिकार के पद पर भी (सादद्-योनिम्) सभाभवन में न्यायासन पर विराजने वाले, (दीदिवांसं) तेजस्वी और सत्य न्याय निर्णय देने वाले, (हिरण्य-वर्णम्) सुवर्णवत् शुद्ध;

निष्कपट हित और रुचिकर वर्णों वा पदों का प्रयोग करने वाले, (अरुषम्) क्रोध से रहित, पुरुष को हम (सपेम) प्राप्त कर संगठित होकर रहें।

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥ १३ ॥

भा०—(धर्णसिः) राष्ट्र के कार्य-भार का धारक (बृहद्दिवः) बड़े भारी तेज को सूर्यवत् धारण करने और देने वाला, (रराणः) दानशील, (वृषभ) धार्मिक (त्रिधातु शृङ्गः) तीनों धातुओं से मढ़े सींगों से सुशोभित बड़े वृषभ के सदृश, तीनों धातुओं के वाणों के समान किरणों से सुशोभित, एवं तीन धातु ताम्र, लोह, सुवर्ण के वने शस्त्रास्त्रों से युक्त, (वयोधाः) बल, दीर्घ आयु और ज्ञान का धारक (अमृध्रः) प्रजाओं की हिंसा न करने वाला, दयालु पुरुष, (आहुवानः) आदर पूर्वक आमंत्रित होकर (ग्नाः) जंगम और (ओषधीः) अन्न, वृक्ष आदि स्थावर प्रजाओं को भी (वसानः) बसाता हुआ, उनकी रक्षा करता हुआ, एवं (ग्नाः) गमन योग्य भूमियों, प्रजाओं और स्त्रियों की एवं (ओषधीः) तेज और शत्रुदाहक सामर्थ्य को धारण करने वाली सेनाओं को बसाता हुआ, (ओमभिः) रक्षा साधनो सहित (आ गन्तु) हमें प्राप्त हो।

मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन्।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥ १४ ॥

भा०—(विपन्यवः) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाले गुरु, व्यवहार कुशल और (रास्पिरासः) धनैश्वर्य को पूर्ण करने वाले वैश्यजन, (नमसा) विनय से और राजा के नवाने वाले तेज से बाधित होकर (रातहव्याः) ज्ञान और धन आदि देकर (सुशेव्यम्) सुख से सेवने योग्य, सुखप्रद, प्रधान पुरुष को (वासे) बसने योग्य राष्ट्र में (वासे आयवः शिशुं न) घर में ज्ञानी लोग जैसे बालक को सजाते और स्वच्छ रखते हैं वैसे ही (आयवः) सभी मनुष्य (शिशुं) शासनकुशल पुरुष को (मृजन्ति) अभिषेक करावें और (मातुः परमे पदे) माता

के सर्वोच्च पद गृह में बालक को आशीर्वाद आदि देने जैसे लोग घर में आते हैं वैसे ही (मातुः परमे पदे) माता, पिता के सदृश सर्वोत्कृष्ट पद पर स्थित अथवा पृथिवी के सर्वोच्च पद, राजसिंहासन पर स्थित (शुक्रे) तेजस्वी, शुद्ध कर्त्तव्य में विराजने वाले (आयोः) दीर्घायु पुरुष को (आ अग्मन्) प्राप्त हों।

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशवान्, तेजस्विन् प्रभो! राजन्! (तुभ्यम् बृहते) महान् तेरे (बृहत् वयः) बड़े बल, ज्ञान और दीप्ति को (धियाजुराः) बुद्धि, कर्म और अनुभव में वृद्ध (मिथुनासः) स्त्री और पुरुष जन (सचन्त) एक साथ मिलकर बैठें। तू (देवः देवः) दानशील और सर्वप्रकाशक होकर (मह्यं) मेरे लिये (सु-हवः) उत्तम स्तुतियोग्य (भूतु) हो, (माता पृथिवी) माता, पृथिवी, पृथिवी तुल्य विशाल हृदय होकर, एवं मातृसदृश सर्वाश्रय आचार्यादि भी (दुर्मतौ) दुःखदायी बुरी मति में (नः) हमें (मा धात्) न रहने दें।

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १६ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान्, वीर पुरुषो! हम (उरौ) विशाल (अनिबाधे) बाधा, कष्टादि से रहित राष्ट्र में (स्याम) रहें।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७॥२२॥

भा०—हम लोग (अश्विनोः) अश्वयुक्त, सारथि और रथी इनके (नूतनेन) नवीन, शुद्ध (अवसा) रक्षा करने वाले बल सैन्यादि से और (मयोभुवा) सुखोत्पादक ऐश्वर्य से युक्त होकर (सुप्रणीती) उत्तम सुखकारक, नीति में ही (सं गमेम) मिल कर चलें। हे उत्तम स्त्री पुरुषो! आप दोनों (नः) हमारे लिये (रयिम् आ वहतम्) ऐश्वर्य धारण करो और (वीरान् आ वहतम्) बलवान्

पुत्र धारण करो और (विश्वानि) सब प्रकार के (अमृता) दीर्घ जीवनप्रद (सौभगानि) ऐश्वर्य, (आ वहतम्) प्राप्त करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[४४] अवत्सारः काश्यप अन्ये च सदापृणबाहुवृकादयो दृष्टलिंगा ऋषयः ॥
विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, १३ विराड् जगती। २, ३, ४, ५,
६ निचृज्जगती। ८, ९, १२ जगती। ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। १०,
११ स्वराट् त्रिष्टुप्। १४ विराट् त्रिष्टुप्। १५ त्रिष्टुप् ॥
पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! (यासु) जिन प्रजाओं के बीच रहकर (अनु वर्धसे) तू प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है और (यासु) जिनके बीच तू (प्रतीचीनम्) शत्रु के प्रति निर्भयता से जाने वाले, (आशुं) शीघ्रगामी (जयन्तम्) विजय प्राप्त करने वाले, (वृजनं) शत्रु के धारक बल को भी (गिरा) वाणी के बल से (दोहसे) दोहता है, प्राप्त करता है, (तम्) उस (प्रत्नथा) उत्तम, पुरातन के समान (पूर्वथा) पूर्ववत् (विश्वथा) सर्वस्व के तुल्य, (ज्येष्ठतातिं) श्रेष्ठ, (बर्हिषदम्) वृद्धिशील राष्ट्र में विद्यमान, (स्वर्विदम्) सुख के प्राप्त करने और कराने वाले राष्ट्र का तू सदा (दोहसे वर्धसे) दोहन कर बढ़ा।

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२॥

भा०—(विरोचमानः स्व ककुभाम् मध्ये यथा सुदृशीः उपरस्यश्रिये करोति तथा) सूर्य जैसेदिशाओं के बीच विशेष तेज से चमकता हुआ, उत्तम रीति से दिखाने वाली दीप्तियों को मेघ की शोभा उत्पन्न करने के लिये ही धारण करता है वैसे ही हे राजन्! तू भी (अचोदते) प्रेरणा न करने वाले, स्वयं शासित होने वाले राष्ट्र की (श्रिये) लक्ष्मी वृद्धि के लिये, (स्वः) शत्रु संतापक होकर (ककुभाम्) दिशाओं के बीच (विरोचमानः) विविध प्रकार से सबको अच्छा लगता हुआ

(याः) जिन (उपरस्य) मेघवत् दानशील (सुदृशीः) उत्तम रीति से देखने वाली आप्त प्रजाओं को (श्रिये) शोभा और आश्रय के लिये धारण करता है, तू उन द्वारा ही (सुगोपाः असि) राष्ट्र का उत्तम पालक हो, हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म-कुशल राजन् ! तू (मायाभिः) अपनी बुद्धियों से (परः) सर्वोत्कृष्ट होकर भी (न दभाय) राष्ट्र के नाश के लिये न हो। प्रत्युत (ते नाम) तेरा नाम, यश (ऋते) ज्ञान और न्याय के आश्रय पर ही (आस) स्थिर हो।

अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥ ३ ॥

भा०—जो (बर्हिः अनु प्रसर्स्राणः) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजा जन के अनुकूल रहकर और उत्कृष्ट पद की ओर बढ़ता है जो स्वयं (वृषा) बलवान् होकर भी (शिशुः) बालकवत् (मध्ये) प्रजा जनों के बीच सबसे रक्षा करने योग्य, सबका शासक, (युवा) शत्रु मित्र का भेद करने वाला, (अजरः) अविनाशी, (वि-स्रुहा) विविध शत्रुओं का नाशक, (हितः) ओषधिवत् सबका हितकारी होता है (सः) वह (सहोभरिः) सैन्य द्वारा राष्ट्र का पालक (होता) दानशील और (अरिष्ट गातुः) भूमि वासी प्रजाजनों को बिना पीड़ा दिये ही, अविघ्न मार्ग से जाता हुआ (अत्यं) सबसे अधिक (सत् च) स्थायी और (धातु च) पुष्टिकारक (हविः) अन्न, कर आदि (सचते) प्राप्त करता है।

प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (सु-युजः) रथ में जुते अश्व (यम्यः) सारथी के वश होकर (यामन्) मार्ग में चलते हुए (नीचीः अमुष्मै ऋतावृधः) नीचे अर्थात् विनय से चलते हुए भी उसका सुख बढ़ाते हैं वैसे ही (एते) ये (वः) आप लोगों में से जो (सुयुजः) उत्तम पदों पर नियुक्त होकर नायक का सहयोग करते हुए (ऋतावृधः) राष्ट्र के सत्य न्याय की वृद्धि करते हुए, (इष्टये) इष्ट सुख प्राप्त करने के लिये (यस्य नीचीः) जिस नायक के अधीन रहें (अमुष्मै) उस अमुक

नायक के हित के लिये होते हैं वह (क्रिविः) सर्वकर्त्ता पुरुष ही सूर्य के समान (अभीषुभिः) किरणों के तुल्य अपने (सुमन्तुभिः) उत्तम और (सर्वं शासैः) सब शासकों से (प्रवणे नामानि) नियन्ता नीचे भूमियों में स्थित जलवत् ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र में विद्यमान पदार्थों को कर रूप में (मुषायति) अदृश्य रूप से ग्रहण करे।

सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥२३॥

भा०—हे (ऋजुगाथ) ऋजु, सत्य धर्म के उपदेष्टा विद्वान्, धर्म नीति में प्रजा को ले जाने हारे राजन्! तू (सु-स्वरुः) उत्तम तेजस्वी और उपदेष्टा होकर (चित्त-गर्भासु) प्रेमयुक्त चित्त को ग्रहण करने वाली प्रजाओं में (वयाकिनं) अल्प बल वाले (सुते-गृभम्) अपने पुत्रवत् ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र में गर्भवत् सावधानी से पालन योग्य जन को (तरुभिः) वृक्षों के तुल्य स्थिर मूल वाले, शत्रु नाशक पुरुषों से (संजर्भुराणः) पालन करता हुआ, तू (धारवाकेषु) राष्ट्र धारक पुरुषों के बीच (शोभसे) शोभा को प्राप्त करता है; तू (अध्वरे) राष्ट्र को नाश न होने देने के कार्य में (जीवः) प्राण स्वरूप होकर (पत्नीः) राष्ट्र के पालन करने वाली शक्तियों तथा स्त्रियों के तुल्य प्रजाओं को भी (अभि वर्धस्व) सब प्रकार से बढ़ा। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६ ॥

भा०—(यादृग् एव) जैसा ही (ददृशे) साक्षात् किया जाता है (तादृग् उच्यते) वैसा ही वर्णन किया जाता है। जैसे वृक्ष (अप्सु छायया दधिरे) जलों पर पोषित होकर अपनी छाया से सब जनों को अपने नीचे सुख देते हैं वैसे ही शासक भी (अप्सु) अधीन प्रजाओं के ऊपर रहकर भी (सिध्रया) सुखप्रद (छायया) अपनी छत्रछाया से (अस्मभ्यं) हमारी इस (उरुषाम् महीम्) सुख समृद्धि देने वाली भूमि को (दधिरे) पालन करें और वे (ज्रयः) वेगवान् रहकर (बृहत्)

बड़े (सु वीरम्) उत्तम वीरों से युक्त (अनप-च्युतम्) कभी संग्राम में न भागने वाले (सहः) विजयी बल को भी (दधिरे) धारण करें।

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥ ७ ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य समान तेजस्वी (कविः) दूर दर्शी (अग्रुः) नायक (जनिवान्) उत्तम जन्म वा प्रतिष्ठा को प्राप्त करके (समर्यता मनसा) युद्ध इच्छा से युक्त चित्त से (स्पृधः अति वेति) सब स्पर्धालु शत्रुओं से बढ़ जावे। वह (स्व-वसुः) अपनों में रहने और अपनों को बसाने द्वारा होकर (रक्षन्तं) रक्षा करते हुए, (घ्रंसं) तेजस्वी पुरुष को (वनवत्) प्राप्त करे और (अस्माकं) हमारे (गयं) गृह और (शर्म) सुख को (वनवत्) प्रदान करे।

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८॥

भा०—(यासु ते नाम) जिन सेनाओं में तेरा यश वा दमनकारी शासन प्रतिष्ठित हो और (यादृश्मिन् धायि) जैसे राजा के अधीन वह तेरा (नाम) शत्रु को नमाने वाला बल (धायि) स्थिर रहता है, (तम्) उस राजा को (अपस्यया) उत्तम कर्म द्वारा वह प्रजा जन (विदत्) प्राप्त करे, क्योंकि (यः उ) जो प्रजा-वर्ग (स्वयं वहते) स्वयं समस्त कार्य भार को धारण करता है (स अरं करत्) वह ही बहुत ऐश्वर्य उत्पन्न करता है। प्रजा ऐसे पुरुष के अधीन रहकर (अस्य) इस (यतुनस्य) यत्नशील पुरुष के (केतुना) ज्ञान के द्वारा (ज्यायांसं) अति श्रेष्ठ (ऋषिस्वरं चरति) विद्वान् पुरुषों के ज्ञान को प्राप्त कराती है।

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥ ९ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिस राष्ट्र में या जिस नायक के अधीन (आयता) विस्तृत राज्य और भूमि वा वाणी (सवनं) ऐश्वर्य वा भक्ति भाव को (न

रिष्यति) नाश नहीं होने देती और (अग्रिमा) श्रेष्ठ वाणी (आसाम्) प्रजाओं के बीच (समुद्रम्) समुद्र न अन्तरिक्ष के तुल्य सर्वोपरि छायाकारी पुरुष को (अव तस्थे) प्राप्त हो (अत्र) उसके विषय में (ऋवणस्य) कर्म कुशल पुरुष के (हार्दि न रेजते) हृदय के भाव विचलित नहीं होते, (यत्र) और जिसके विषय में (पूतबन्धनी) पवित्र गुणों से गुथी (मतिः) बुद्धि (विद्यते) सदा बनी रहती है, वही उत्तम पद पाने योग्य हैं ।

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह ही नायक होने योग्य है जिस (क्षत्रस्य) वीर्यवान्, (मनसस्य) चित्तवान्, (एव-वदस्य) आगे जाने योग्य मार्ग का उपदेश करने वाले, (यजतस्य) दानशील, (सध्रेः) सदा साथ देने वाले, (अवत्सारस्य) राष्ट्र की रक्षा करने वालों के बीच स्वयं सारवान्, वा उन पालक पुरुषों के बने उत्तम सैन्य बल के नायक के (शविष्ठं) अति बलशाली (विदुषा चित् अर्ध्यम्) विद्वान् पुरुषों से समृद्ध, (वाजं) ज्ञान और ऐश्वर्य को हम (चित्तिभिः) सञ्चित ज्ञानों और (रण्वभिः) रमणीय विचारों, धनों, भवनों और कर्मों से (स्पृणवाम) समृद्ध करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥ ११ ॥

भा०—(आसाम्) इन समस्त प्रजाओं और सेनाओं में जो (श्येनः) बाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाला (अदितिः) माता पिता के तुल्य प्रजा-पालक, पुत्र के समान बड़ों का सेवक और अखण्ड शासनकारी, (कक्ष्यः) उत्तम कसे कसाये अश्व के समान उत्तम पेटियों से सुशोभित, (मदः) सबको आनन्द-प्रद है उस (मायिनः) बुद्धिमान्, (यजतस्य) सत्संगयोग्य एवं (विश्व-वारस्य)

सब शत्रुओं के वारण करने वाले मनुष्य के (अन्ति) समीप रहकर (ते) वे अन्य लोग भी (वि सानं) विशेष रूप से भोगने योग्य और (परिपानं) सबकी रक्षा करने वाले पद को (विदुः) प्राप्त करते और (अन्यम्-अन्यम्) अन्य भी अनेक अधिकारों को (सम्-एतवे) प्राप्त करने के लिये (अर्थयन्ति) याचना किया करते हैं।

सुदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२॥

भा०—वह राजा (सदा-पृणः) सदा प्रजा को तृप्त करने वाला, (यजतः) दानशील, (बाहुवृक्तः) बाहुबल से शत्रु का भेदन करने में कुशल, (श्रुतवित्) गुरु से उपदिष्ट ज्ञान को जानने वाला होकर (वः) आप लोगों में (सचा) सबके साथ मिलकर (तर्यः) सबको कष्टों से पार उतारने में समर्थ है वही (द्विषः) अप्रीतिकारक पदार्थों और शत्रुजनों को (वि वधीत्) विविध प्रकार से दण्डित करे। (सः) वह (उभा वरा) दोनों प्रकार के वरण योग्य ऐहिक और पारमार्थिक सुखों को (प्रति एति) प्राप्त हो। (भाति च) और वह स्वयं सूर्यवत् चमके। (यद्) और जो (ईम् गणं) इस प्रजा या सैन्यगण को (सु-प्र-यावभिः) उत्तम प्राणकारी वीर पुरुषों के साहाय्य से (भजते) सेवन करे।

सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥ १३ ॥

भा०—जो पुरुष (धेनुः) गौ के समान (रसवत् पयः) रस से युक्त पुष्टि-कारक अन्न को (शिश्रिये) धारण करता है और जो (न स्वपन्) प्रमाद न करता हुआ, (अनु-ब्रुवाणः) प्रतिदिन प्रवचन करता हुआ (अधि एति) अध्ययन करता है वही (सुतं-भरः) प्रजा को पुत्रवत् पोषण करने में समर्थ (यजमानस्य) दानशील प्रजा का (सत्-पतिः) उत्तम पालक और (विश्वासाम् धियाम्) समस्त ज्ञानों और कर्मों का (ऊधः) धारक और (उद्-अञ्चनः) ज्ञानों का पात्रवत् उत्तम रीति से प्राप्त करने हारा होता है।

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (जागार) जागता रहता है (तम् ऋचः कामयन्ते) ऋग्वेद के मन्त्रगण वा उत्तम स्तुति, आदि भी उसको ही चाहते हैं। (यः जागार) जो अविद्या निद्रा से जाग जाता है (तम् उ) उसको ही (सामानि) सामवेद के नाना गायन भेद (यन्ति) प्राप्त होते हैं। (यः जागार) जो जागा रहता है, जो सावधान रहता है (तम्) उसको ही (अयं सोमः) यह सोम, ओषधिगण और ऐश्वर्यं पुत्रवत् प्रजागण (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (तव सख्ये) तेरे मित्र भाव में (नि-ओकाः अस्मि) निश्चित निवास वना कर रहता हूँ।

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।१५।२५।३।

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (जागार) सदा सावधान रहता है, (ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्रगण और समस्त स्तुति आदि (तम् कामयन्ते) उसको ही चाहते हैं। (अग्निः जागार) अग्नि के समान ज्ञान का प्रकाशक पुरुष सदा सावधान रहता है। (तम् उ) उसको ही (सामानि यन्ति) सामवेद के गायन और सबके समान व्यवहार, उत्तम, वचन प्राप्त होते हैं। (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष (जागार) सदा सावधान रहता है (तम् अयम् सोमः आह) उसको यह ऐश्वर्य और ओषधिगण पुत्र व प्रजागण कहता है कि (अहम् तव सख्ये) मैं तेरे मैत्रीभाव में (नि-ओकाः) नियत स्थान बना कर रहता हूं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४५] सदापृण आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ पंक्तिः । ५, ९, ११ भुरिक् पंक्तिः । ८, १० स्वराड् पंक्तिः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १ ॥

भा०—जैसे (दिवः अद्रिम्) सूर्य के प्रकाश मेघ को छिन्न भिन्न करते हैं वैसे ही (विदाः) ज्ञानवान् और (दिवः) कामनावान् पुरुष (उक्थैः) वेदविहित वचनों और कर्मों से (अद्रिम्) मेघवत् आचरण वाले वा अभेद्य अज्ञान को (वि स्यन्) विविध उपायों से नष्ट करें। (आयत्याः उषसः) आने वाली प्रभात वेलाओं के समान ही (अर्चिनः) वेद मन्त्रों के द्रष्टा जन (उद्-गुः) उदय को प्राप्त हों, वे (व्रजिनीः) वर्त्तन योग्य क्रियाओं और गमन योग्य पद्धतियों को (उद् अप आवृत) प्रकट करें। (स्वः उद् गात्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष उत्तम मार्ग में जायें, अभ्युदय को प्राप्त हों, वह (देवः) मेघवत् दानशील और ज्ञान का प्रकाशक होकर (दुरः मानुषीः) गृह के द्वारों के तुल्य मननशील प्रजाओं को (वि आवः) विविध प्रकार से आवृत्त करें, उनके मन को अपनी ओर अधिक खींचे।

वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानुती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष और राजा को चाहिये कि (सूर्यः अमतिं न) रूप अर्थात् तेज को जैसे सूर्य सर्वत्र विभक्त कर देता है वैसे ही वह (श्रियं वि सात्) ऐश्वर्य को सर्वत्र प्रजाओं में विभक्त करे और विद्वान् (अमतिं वि सात्) अज्ञान को विविध उपायों से अन्धकारवत् नष्ट करे। वह (माता) माता के तुल्य दयालु होकर स्वयं (गवां माता) नाना किरणों के उत्पादक सूर्यवत् निर्माता और ज्ञाता होकर (ऊर्वात्) बड़े भारी आकाशवत् ऊंचे रहकर भी सबको (आ गात्) प्राप्त हो। जैसे (नद्यः) नदियां (धन्वर्णसः) गति युक्त जल से पूर्ण होकर (खादः-अर्णाः) खाने पीने योग्य जल वाली होती हैं वैसे ही (नद्यः) प्रजाएं और उपदेष्टा जन (धन्व-अर्णसः) स्थान-स्थान पर ज्ञानवान् और (खादः-अर्णाः) भक्षण योग्य अन्न जलों से समृद्ध हों और (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी

पुरुष भी प्रजाओं को चाहता हुआ (सुमिता स्थूणा इव) घर में उत्तम रीति से लगी आधार-वल्ली या स्तम्भ के समान (दृंहत) दृढ़ हो और राष्ट्र प्रजा को धारण करने में समर्थ हो ।

अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥ ३ ॥

भा०—(गर्भः जनुषे) जैसे गर्भ उत्पन्न होने के लिये ही (विजिहीत) विशेष रूप से गति करता है वैसे ही (पर्वतस्य) मेघ के तुल्य पर्व अर्थात् पालन आदि साधनों से युक्त पिता तुल्य आचार्य के (गर्भः) शिष्य ज्ञानग्राहक (पूर्व्याय) पूर्व विद्वानों द्वारा उपदिष्ट (उक्थाय) वेदमय (अस्मै) इस, उत्तम (जनुषे) जन्म लाभ करने के लिये (महीनां) माता के तुल्य आदरणीय गुरु जनों के बीच (वि जिहीत) विशेष रूप से जावे । (द्यौः) तेजस्वी एवं विद्या की कामना करता हुआ वह स्वयं (पर्वतः) पर्वत के समान ही दृढ़ और बलवान् होकर (वि जिहीत) विविध स्थानों पर जावे और (वि साधत) विविध विद्याओं और शक्तियों की कामना करे । ऐसे ही (महीनां गर्भः) इन भूमियों का रक्षक राजा भी (अस्मै उक्थस्य पर्वतस्य पूर्व्याय जनुषे) इस प्रशंसनीय पर्व युक्त सैन्यबल के लाभ के लिये स्वयं (पर्वतः सन् वि जिहीत वि साधत) मेघवत् पालक होकर विविध देशों में जाये और उनको विशेष रूप से साधे, इस प्रकार हम लोग (आ विवासन्तः) पुरुषों की सेवा करते हुए (भूम दसयन्त) अज्ञान आदि का नाश करते रहें ।

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र-अग्नी) विद्युत् और अग्नि तुल्य तेजस्वी और ज्ञान, प्रकाशक स्त्री पुरुषो ! (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (देव जुष्टैः) विद्वानों से सेवित (उक्थेभिः) वेदमय उत्तम (सूक्तेभिः वचोभिः) सूक्तों और वचनों से (हुवध्यै) ज्ञान प्राप्त करने के लिये (सु-यज्ञाः) उत्तम सत्संग योग्य (कवयः)

विद्वान् और (मरुतः) सामान्य लोग भी (आ विवासन्तः) एक दूसरे की सेवा तथा विविध विद्याओं का प्रकाश करते हुए (यजन्ति स्म) ज्ञान दें, लें और सत्संग करें।

एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(एत उ) आओ, हम सब लोग (नु अद्य) शीघ्र ही सब (सुध्यः) उत्तम ज्ञानवान् और कर्म करने वाले और राष्ट्र के उत्तम रीति से धारक (भवाम) बनें और (दुच्छुनाः) जो दुखदायी लोग हैं, उनको (वरीयः) अच्छी प्रकार (अभि भवाम) नष्ट करें। अथवा हम लोग ही (दुच्छुनाः सन्तः) दुष्ट, कुत्तों के समान निर्भय होकर (वरीयः) अच्छी प्रकार (प्र मिनवाम) शत्रुओं को आगे बढ़कर नष्ट करें। इस प्रकार (सनुतः) हम सदा (द्वेषांसि) शत्रुओं को (आरे दधाम) दूर करें और (प्राञ्चः) आगे बढ़कर (यजमानम्) ज्ञान और धन को देने वाले पुरुष को (अच्छ अयाम) प्राप्त हों। इति षड्विंशो वर्गः ॥

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो! आप लोग (आ इत) आइये और हम लोग (धियं) ऐसी बुद्धि और कर्म (कृणवाम) करें (या) जो (माता) माता के तुल्य (गो व्रजं) ज्ञानमय किरण और वेद वाणी के समूह को (अप ऋणुत) खोल कर स्पष्ट करें। (यया) जिससे (मनुः) मननशील पुरुष (विशिशिप्रं) प्रजा में विद्यमान तेजस्वी, सौम्यपुरुष को (जिगाय) जीतता अर्थात् अपने वश करता उसके मन को हरता है और (यया) जिससे (वङ्कुः वणिग्) धन की कामना करने वाला वैश्य जन (पुरीषम् आप) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७ ॥

भा०—(अत्र) इस अध्ययनाध्यापन काल में (अद्रिः) मेघवत् निष्पक्षपात होकर विद्वान् (हस्तयतः) हाथ पैर आदि को वश करने वाले (अनूनोत्) अन्यों को ऐसा उपदेश करे (येन) जिससे (दशमासः) दस महीने तक (नवग्वाः) नवीन मार्ग पर गमन करने वाले भी (आ अर्चन्) अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करें। (ऋतं यती सरमा) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने में यत्नशील बुद्धि (गाः) वाणियों को (अविन्दत) प्राप्त करे और (अङ्गिराः) ज्ञानवान् पुरुष (विश्वानि सत्याः) सब ज्ञानों को (चकार) प्रकट करे।

विश्वे॑ अ॒स्या व्यु॒षि माहि॑नाया॒ः सं यद्गोभि॒रङ्गि॑रसो॒ नव॑न्त ।
उत्स॑ आसां पर॒मे स॒धस्थ॑ ऋ॒तस्य॑ प॒था स॒रमा॑ विद॒द् गाः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (विश्वे अंगिरसः) समस्त विद्वान् (व्युषि) प्रभात वेला में वायुएं जैसे सूर्य की किरणों के साथ संगत होते हैं वैसे ही (अस्याः) इस (माहिनायाः) उत्तम तेजस्विनी परमेश्वरी शक्ति के (वि-उषि) विशेष प्रकट होने पर (गोभिः) वेदवाणियों से (सं नवन्त) उसकी स्तुति करते हैं (आसां) उन वाणियों का (उत्सः) उत्तम स्रोत (सधस्थे) परम स्थान में है। (सरमा) उत्तम ज्ञान को देने वाली बुद्धि (ऋतस्य पथा) ज्ञान रूप प्रकाशमय वेदोपदिष्ट मार्ग से चल कर (गाः विदत्) वेद वाणियों को भली प्रकार जानें।

आ सूर्यो॑ यातु स॒प्ताश्व॒ः क्षेत्रं॒ यद॑स्योर्वि॒या दी॑र्घया॒थे ।
र॒घुः श्ये॒नः प॑तय॒दन्धो॒ अच्छा॒ युवा॑ क॒विर्दी॑दय॒द्गोषु॒ गच्छ॑न् ॥ ९ ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (सप्त-अश्वः) वेगवान् अश्वों से युक्त होकर (क्षेत्रम्) उस रणक्षेत्र को (आ यातु) प्राप्त करे (यत्) जो (अस्य) इसके (दीर्घ याथे उर्विया) लम्बे प्रयाण के लिये भी बहुत बड़ा है। वह (रघुः) वेगवान् (श्येनः) गतिशील, सदाचारी वा बाज के समान (युवा) बलवान् (कविः) विद्वान् के तुल्य दीर्घदर्शी होकर (गोषु गच्छन्) अपनी भूमियों में गमन करता हुआ भी (अन्धः अच्छ पतयत्) राष्ट्र-धारक ऐश्वर्य का स्वामी बने और (दीदयत्) अच्छी प्रकार चमके।

आ सूर्यो॑ अरुहच्छु॒क्रमर्णोऽयु॑क्त॒ यद्ध॒रितो॑ वी॒तपृ॑ष्ठाः ।
उ॒द्ना न नाव॑मनयन्त॒ धीरा॑ आशृ॒ण्व॒तीरापो॑ अ॒र्वाग॑तिष्ठन् ॥ १० ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य जैसे (शुक्रम् अर्णा अरुहत्) अतिदीप्त वा सूक्ष्म जल को ऊपर उठाता है और (वीतपृष्ठाः हरितः अयुक्त) कान्ति युक्त रूप वाली जल हरने वाली मेघमालाओं, वा किरणों का योग करता है तब (आपः अर्वाग् अतिष्ठन्) जलधाराएं भी मेघ से नीचे आ जाती हैं वैसे ही जब (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (शुक्रम् अर्णः आ अरुहत्) कान्तियुक्त ऐश्वर्य को आदरपूर्वक प्राप्त कर सिंहासन पर विराजता है और (वीतपृष्ठाः) कान्तियुक्त पीठ वाले (हरितः यत् अयुक्त) किरणों के समान घोड़ों को जब रथ में जोड़ता है, तब (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (उद्गना नावं न) जल-मार्ग से नौका के समान (उद्गना) उत्तम मार्ग से उस राजा को (अनयन्त) ले चलें और (आशृण्वतीः आपः) राजा की आज्ञाओं को सुनने वाली आप्त प्रजाएं उसके (अर्वाक्-अतिष्ठन्) अधीन होकर रहें।

धियं॑ वो अ॒प्सु द॑धिषे स्व॒र्षां यया॑तर॒न्दश॑ मा॒सो नव॑ग्वाः ।
अ॒या धि॒या स्या॑म दे॒वगो॑पा अ॒या धि॒या तु॑तु॒र्या॒मात्यंहः॑ ॥११॥२७॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों की प्रदान की (स्वर्षाम्) सुखप्रद (धियं) उस बुद्धि को (दधिषे) धारण करूं (यया) जिससे (नवग्वाः) नवीन, सदाचारीजन (दश-मासः) दस महीनों को (अतरन्) व्यतीत करते हैं। हम लोग (अया धिया) उसी धारणावती बुद्धि से (देवगोपाः स्याम) विद्वानों, विजिगीषुओं, उत्तम गुणों और इन्द्रियों के पालक (स्याम) हों और (अया धिया) इस बुद्धि या कर्म से हम (अति तुतुर्याम) पाप कर्म और दुष्फल को अतिक्रमण करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४६] प्रातक्षत्र आत्रेय ऋषिः ॥ १—६ विश्वेदेवाः । ७, ८ देवपत्न्यो देवता ॥ छन्दः—१, भुरिग्जगती । ३, ५, ६ निचृज्जगती । ४, ७ जगती । २, ८ निचृत्पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्यां वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१॥

भा०—गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश। जैसे (धुरि हयः न अवस्युम् प्रतरणीम् वहति) अश्व धुर में लगाकर गतिशील गाड़ी को ढो ले जाता है वैसे ही मैं भी (हयः) गमन करने वाला प्रेरक कर्त्ता (विद्वान्) ज्ञानवान् और धनवान् होकर (अयुजि धुरि) जिसका अभी किसी के साथ संयोग न हुआ हो और गृहस्थ को धारण करने में समर्थ हो ऐसी स्त्री को प्राप्त करने की (वश्मि) कामना करूं और (प्रतरणीम्) नौका के समान संसार मार्ग से तरा देने वाली (अवस्युवम्) सन्तानादि की रक्षा में कुशल और (स्वयं) अपने आप पति से (अवस्युवम्)अपनी रक्षा या पालन की कामना करने वाली उस स्त्री को (वहामि) विवाह द्वारा धारण करूं। (अस्याः) उसको (पुनः) फिर (विमुचं न वश्मि) त्याग करने की कभी इच्छा न करूं और पुनः (आवृतं न वश्मि) उसका अपने सन्मुख रहते-रहते अन्य से वरण अथवा (न आवृतं) उससे कोई व्यवहार छुपा हुआ (न वश्मि) न करना चाहूं। (पुरः एता) आगे-आगे चलने वाला (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष वा स्त्री, ऐश्वर्य का लाभ करने वाला वोढा पुरुष ही (पथः) समस्त मार्गों को (ऋजु) सरलता से धर्मपूर्वक (नेषति) ले जाने में समर्थ है।

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! हे (वरुण) उत्तम पद के लिये वरने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और प्रजा के कष्टों के वारक ! हे (मित्र) स्नेही ! हे प्रजा को मरण से बचाने वाले ! हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हे (मारुत) वायु वेग से युक्त वीरगण ! हे विद्वान् जनो ! हे (विष्णो) सर्वप्रिय पुरुष ! आप सब लोग (शर्धः प्र यन्त) बल प्राप्त करो और (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य ! (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला सेनापति, विद्यार्थी का उपदेशक गुरु (अध) और (पूषा) प्रजापोषक,

(भग:) ऐश्वर्यवान्, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री ये सब भी (ग्ना: जुषन्त) उत्तम गमन योग्य वाणियों, भूमियों तथा गमनयोग्य पद्धतियों का प्रेमपूर्वक सेवन करें।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये॥ ३॥

भा०—मैं (इन्द्राग्नी) शत्रुहन्ता, अग्निवत् तेजस्वी वा ज्ञानी पुरुषों को, विद्युत् और अग्नि को (मित्रावरुणा) स्नेहवान् व श्रेष्ठ, पुरुषों को, देह में प्राण और अपान को, (अदितिम्) अखण्ड शासनकर्त्ता राजा, पृथिवी, माता, पिता पुत्र को (स्व:) तेजस्वी, सूर्य और उपदेष्टा पुरुष को (पृथिवीं द्यां) पृथिवी और आकाश और उनके तुल्य माता वा पिता को (मरुत:) विद्वानों, वीर पुरुषों और नाना प्राणगण वा वायुगण को (पर्वतान्) मेघों वा पहाड़ों तथा पालन शक्ति से युक्त नायकों और (अप:) जलों और आप्त पुरुषों को, (विष्णुं) व्यापक शक्तिशाली सम्राट् और व्यापक आकाश को, (पूषणं) सर्व पोषक वायु तथा पोषक पुरुष को, (ब्रह्मण: पतिम्) बड़े धन, बड़े राष्ट्र और वेदज्ञान के पालक को (नृशंसं) सेवा योग्य उपदेष्टा पुरुष को और (सवितारम्) उत्पादक पिता को (ऊतये) रक्षा, ज्ञानप्राप्ति आदि नाना प्रयोजनों के लिये (हुवे) प्राप्त करूं।

उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत्।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते॥ ४॥

भा०—(उत) और (न:) हमें (विष्णु:) व्यापक शक्ति वाला राजा-विद्वान्, (उत) और (वात:) वायुवत् पराक्रमी, (अस्रिध:) अहिंसक (द्रविणोदा:) ज्ञानदाता, (उत) और (सोम:) उत्तम ओषधिगण और ऐश्वर्य व पुत्र शिष्य आदि (न:) हमें (मय: करत्) सुख दें। (उत) और (ऋभव:) न्याय आचरण से प्रकाशित होने वाले, तेजस्वी पुरुष (उत अश्विना) और विद्वान् स्त्री पुरुष (उत) और (त्वष्टा) शिल्पकर्त्ता (उत) और (विभ्वा) अन्य विशेष

सामर्थ्यवान् पुरुष ये सभी (नः) हमें (राये) ऐश्वर्य लाभ के लिये (अनु मंसते) अनुमति दिया करें।

उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५ ॥

भा०—(उत) और (नः) हमें (त्यत्) वह, (मारुतं शर्धः) वीरों और विद्वान् एवं वैश्य जनों का भी बल और (आसदे) अच्छी प्रकार प्रतिष्ठित होने के लिये (दिवि-क्षयं) पृथिवी पर निवास करने वाले (यजतं) दानशील (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजाजन भी (आ गमत्) प्राप्त हो। (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र धन और वेद का पालक, (वरुणः) श्रेष्ठ, (पूषा) पोषक, (मित्रः) स्नेही (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष ये भी सब (नः) हमें (वरूथ्यं) शीत आदि कष्टों के बारक गृह के उचित (शर्म) सुख को (यमत्) प्रदान करें।

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६॥

भा०—(उत) और (त्ये) वे नाना (पर्वतासः) मेघ और पर्वत और उनके तुल्य ज्ञान, धन के दानशील (शस्तयः) उपदेष्टा लोग और (सु-दीतयः) दीप्तिमान् और जलादि देने वाली (नद्यः) नदियों के समान सु-समृद्ध प्रजाएं भी (नः त्रायगे) हमारी रक्षा के लिये (भुवन्) हों और (भगः) सेवा योग्य एवं ऐश्वर्यवान् पुरुष भी (विभक्ता) धन को प्रजाओं में यथोचित रीति से विभाग करने हारा होकर (शवसा) बल और ज्ञान तथा (अवसा) तेजस्विता, प्रेम आदि गुणों सहित, (नः) हमें प्राप्त हो और (उरु-व्यचाः) बड़े राष्ट्र में व्यापक शक्ति वाला सम्राट् और बहुत सी विद्याओं में व्याप्त ज्ञानवान् पुरुष (अदितिः) अखण्ड शासन, व्रत वाला होकर (मे हवम्) मुझ प्रजाजन की पुकार को (श्रोतु) श्रवण करे।

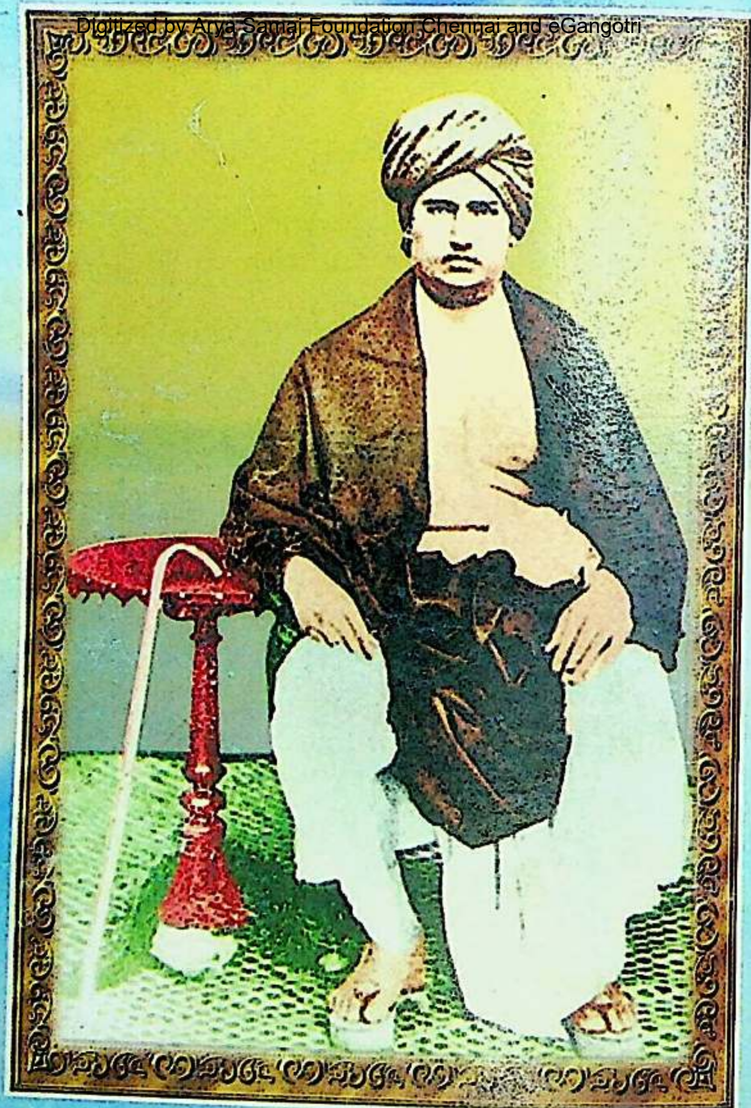
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७॥

भा०—स्त्रियों के कर्त्तव्य (पत्नीः) पत्नियें (देवानां) अपने प्रिय, कामना योग्य पतियों को (उशतीः) चाहती हुई (नः अवन्तु) हमें प्राप्त हों, और वे (तुजये) सन्तान-लाभ के लिये ही (नः प्र अवन्तु) अच्छी प्रकार प्रेम पूर्वक प्राप्त हों और वे (वाज-सातये नः प्रावन्तु) ऐश्वर्य लाभ और विभाग के लिये भी हमें प्राप्त हों। (याः) जो (पार्थिवासः) स्त्रियें पृथिवी के समान गृह आदि का आश्रय होकर रहती हैं और (याः) जो (अपाम् व्रते अपि) जलों के व्रत में स्थित अर्थात् जलों के समान तृप्तिदायक, विनय से पुरुष के अधीन रहने में कुशल हों (ताः) वे (देवीः) कामना योग्य और कामनाशील एवं (सुहवाः) शुभ नाम और ख्याति वाली होकर (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छत) प्रदान करें।

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्।८।२८।२।

भा०—(उत) और (देव-पत्नीः) विद्वानों की पत्नियां भी (ग्नाः) उत्तम वेद वाणियों का (व्यन्तु) ज्ञान करें। (इन्द्राणी) ऐश्वर्यवान् राजा की स्त्री, (अग्नायी) तेजस्वी नायक और विद्वान् की स्त्री और (अश्विनी) विवाह में बद्ध स्त्री पुरुषों में से (राट्) विशेष तेजस्विनी स्त्री और (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति और उपदेष्टा गुरु और वैद्य की स्त्री, तथा (वरुणानी) श्रेष्ठ पुरुष की स्त्री, ये भी (शृणोतु) ज्ञान का श्रवण करें। (देवीः) सभी कामना युक्त स्त्रियें (यः जनीनां ऋतुः) जो पुत्र उत्पादन करने वाली युवती स्त्रियों का ऋतु काल हो उस काल में (व्यन्तु) पतियों के पास कामना युक्त होकर जावें। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

॥ इति चतुर्थेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः॥



महर्षि दयानन्द सरस्वती

1824 - 1883